संपादक
रामनरेश त्रिपाठी

कविता-कौमुदी

चतुर्थ-भाग - उर्दू

१९२५

साहित्य-रसिक

श्रीमान् राजा श्रीकृष्णदत्त दुबे महोदय

(जौनपुर-नरेश)

को

समर्पित
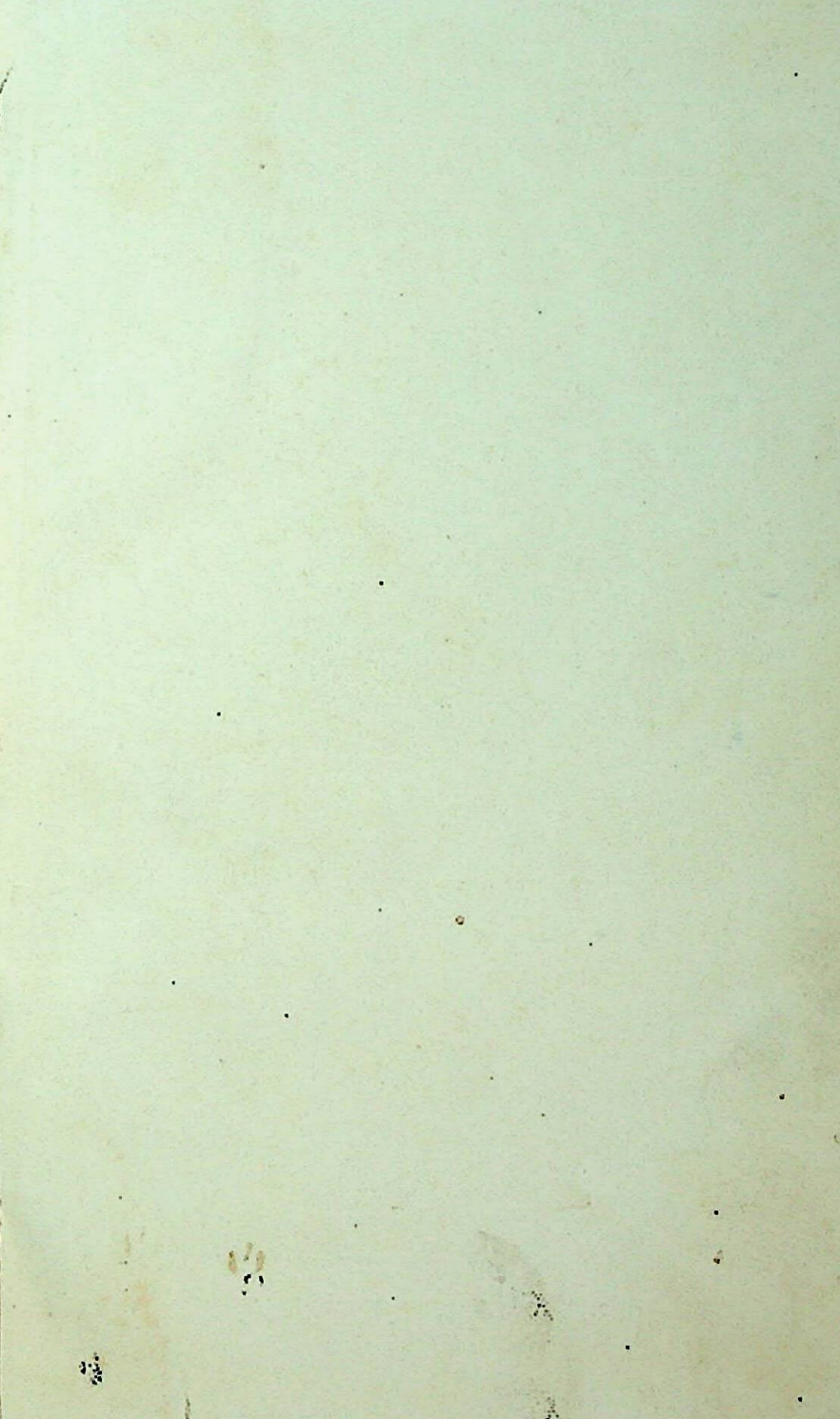
श्रीमान् राजा श्रीकृष्णदत्त दुबे महोदय
जौनपुर-नरेश

राजा श्रीकृष्णदत्त दुबे महोदय का परिचय

राजा श्रीकृष्णदत्त दुबे महोदय जौनपुर के राजा हैं। आप राजा शिवलाल दुबे के बड़े भाई पंडित सदानन्द के वंश में से हैं। पण्डित सदानन्द के एक वंशज जीविका-सम्बन्ध से कानपुर ज़िले के मूसानगर में जा बसे थे। राजा श्रीकृष्ण दत्त उसी वंश के गौरव हैं।

जौनपुर-राज के संस्थापक राजा शिवलाल दुबे बहादुर का नाम संयुक्त प्रान्त में बहुत प्रसिद्ध है। वे फ़तहपुर ज़िले के असौली गाँव के रहने वाले थे। बालकपन में अर्थ-संकट के कारण वे पन्ना चले गये और एक जौहरी के यहाँ नौकर हो गये। भाग्य अनुकूल था। जौहरी निस्सन्तान होने के कारण मरते समय उनको अपनी सम्पति का उत्तराधिकारी बना गया। वे निर्धन से धनवान और सेवक से स्वामी हो गये। वे बड़े देशकालज्ञ और नीति-निपुण थे। अंग्रेज़ों का शासन इस देश में जड़ पकड़ रहा था। उन्होंने अंग्रेज़ सरकार से आर्थिक सम्बन्ध जोड़ लिया। उन्होंने जौनपुर इलाके की वसूल तहसील का ठेका ले लिया और सरकार के एक विद्रोही को परास्त किया। उनके इस उपकार के बदले में सरकार ने उन्हें पुरस्कार-स्वरूप कुछ इलाके दिये। और बादशाह शाहआलम की दी हुई राजा बहादुर की उपाधि को वंश के लिये

स्थायी रूप से स्वीकार किया। शाहआलम बादशाह की दी हुई सनद, जिसमें उनके राजा बहादुर होने की स्वीकृति है, अब तक सुरक्षित रक्खी है। राजा शिवलाल दुबे सं० १८९३ में स्वर्गवासी हुये।

राजा शिवलाल दुबे के बाद के राजाओं में एक राजा शंकरदत्त साहब सं० १९५४ में निस्संतान स्वर्गवासी हुये। मरने से पहले एक रजिस्ट्री किये हुये अनुमति-पत्र द्वारा उन्होंने अपनी रानी को दत्तक पुत्र लेने की आज्ञा दे रक्खी थी। तदनुसार उनकी रानी ने सं० १९५७ में दत्तक-विधान के अनुसार राजा श्रीकृष्णदत्त दुबे को गोद लिया।

आप का जन्म मूसानगर में सं० १९५४ में हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में आप जौनपुर गोद आये। उस समय जौनपुर राज कोर्ट आफ़ वार्ड्स के प्रबन्ध में था। दस वर्ष की आयु तक आप की शिक्षा घर पर ही होती रही। तत्पश्चात् आप लखनऊ के ताल्लुक़दार कालिज स्कूल में भरती हुये। वहाँ इन्ट्रेन्स तक आप को शिक्षा मिली। वहाँ से आप सैनिक शिक्षा के लिये देहरादून के इम्पीरिअल केडेट कोर में प्रविष्ट हुये। वहाँ की शिक्षा समाप्त कर लेने पर तीन वर्ष तक आप को जौनपुर में राज-प्रबन्ध की शिक्षा दी गई और राज्य में भ्रमण भी कराया गया। सं० १९७४ में राज कोर्ट आफ़ वार्ड्स के प्रबन्ध से मुक्त हुआ। तब से आप ही अपने राज का प्रबन्ध बड़ी योग्यता और तत्परता से कर रहे हैं।

आप का विवाह सं० १९७२ में कानपुर ज़िले के डोंड़वा गाँव के रईस पण्डित लक्ष्मीनारायण शुक्ल की कन्या से हुआ। सं० १९७५ में आप के पुत्र कुमार यादवेन्द्र दत्त दुबे का जन्म हुआ।

इस समय आप संयुक्त प्रान्त की कौंसिल के मेम्बर, स्पेशल मजिस्ट्रेट,

म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन और डिस्ट्रिक्टबोर्ड के सदस्य हैं। गत योरपीय युद्ध में आपने सरकार को बड़ी सहायता पहुँचाई थी। इससे सरकार में आपका विशेष सम्मान है। सं० १९८२ में संयुक्तप्रान्त के गवर्नर ने आप का आतिथ्य ग्रहण करके सरकार के प्रेम का परिचय दिया था।

आपके राज-प्रबंध में प्रजा को बड़ा सुख है। प्रजा की शिकायतों को आप बड़े ध्यान से सुनते हैं और उनके दूर करने का यथासंभव शीघ्र प्रयत्न करते हैं। प्रजा को न बेदख़ली का कष्ट है न नज़राने और बेगार का। वह राजभक्त और सुव्यवस्थित है।

आपको अंग्रेज़ी के सिवा संस्कृत का भी ज्ञान है। और हिन्दी का ज्ञान तो इन दोनों से कहीं अधिक है। कविता से आपको विशेष प्रेम है। संगीत और चित्रकला का भी आपको शौक़ है। आप बड़े निरभिमानी, मृदुभाषी, सदा प्रसन्नमुख, सरल प्रकृति और गुणग्राही पुरुष हैं। सादी रहनसहन को आप बहुत पसंद करते हैं। दोनों समय आप संध्या, हवन और ईश्वर-चिन्तन करते हैं। विद्वानों, विशेषकर साहित्य-रसिकों की संगति में आप बहुत सुख अनुभव करते हैं। जौनपुर के हिन्दू-मुसलमान दोनों आपको हृदय से मानते और आवश्यकता पड़ने पर आपको अपना बड़ा सहायक समझते हैं।

शिक्षा-प्रचार के आप बड़े ही प्रेमी हैं। ज़िले की जितनी शिक्षा-संस्थायें हैं, सबको आप सहायता पहुँचाते रहते हैं। आपने स्थानीय क्षत्रिय स्कूल को ५०००); शिया स्कूल को ४०००); कायस्थ पाठशाला को ४०००); कान्यकुब्ज इंटर मीडियट कालेज, लखनऊ को १००००); और कान्यकुब्ज स्कूल, कानपुर को १००००) दान करके अपने विद्याप्रेम का परिचय दिया है। सनातन-धर्म पाठशाला जौनपुर को भी आप बहुत

दिनों से अच्छी मासिक सहायता देते आ रहे हैं। इन दानों के सिवा सदर डिस्पेंसरी जौनपुर को १५०००) और बादशाहपुर के हास्पिटल को १०००) दान देकर आपने पुण्यसंचय किया है।

सभा-सोसाइटियों में भी आप बड़ी रुचि से भाग लेते हैं। आपका भाषण बहुत मर्मस्पर्शी होता है। भारतीय कान्यकुब्ज युवक सम्मेलन के सभापति की हैसियत से आपने जो भाषण दिया था, वह बड़ा ही विचारपूर्ण और समाज-सेवा तथा देशप्रेम के उच्च भावों से भरा हुआ है।

ईश्वर ऐसे प्रजावत्सल राजा को दीर्घायु करें।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग
दीपावली, १९८२

रामनरेश त्रिपाठी

विषय-सूची

कवि-नामावली

भूमिका

कविता-कौमुदी के पहले और दूसरे भाग में जिस समय मैंने हिन्दी के पुराने और नये कवियों का परिचय प्रकाशित किया था, उसी समय उर्दू-कवियों के विषय में भी एक पुस्तक लिखने का विचार मेरे मन में उठा था। पर कई दूसरे आवश्यक कार्यों में लगे रहने के कारण मैं अपनी इच्छा पूरी न कर सका था।

एक वर्ष हुआ, जब से मैंने अन्य कामों से समय निकाल कर उर्दू-कविता का अध्ययन प्रारंभ किया। इस एक वर्ष के अन्दर कितनी ही बाधायें उपस्थित हुईं; मेरे बड़े भाई का देहान्त हो गया; घर-गृहस्थी का भार सिर पर आ पड़ा; कई नई चिन्ताओं ने मन में घर कर लिया; पर सब विघ्न-बाधाओं के होते हुये भी यह कार्य ईश्वर की कृपा से समाप्त हो गया। अतएव अपने पाठकों के सामने इसे उपस्थित करने में मुझे बहुत हर्ष हो रहा है।

कविता-कौमुदी के पिछले भागों को हिन्दी-संसार ने बड़ी रुचि से अपनाया। कलकत्ता, पटना, नागपुर और लाहौर की युनिवर्सिटियों ने पहले भाग को अपने यहाँ उच्च कक्षा के कोर्स में रक्खा। इससे मैंने समझा कि मेरी साहित्यिक सेवाएँ स्वीकार की जा रही हैं, और मैं उत्साहित हुआ। कविता-कौमुदी का यह चौथा भाग उसी उत्साह का फल है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी-संसार इसे भी स्वीकार करके मुझे और सेवा करने का अवसर देगा।

हिन्दी वालों के लिये उर्दू-कविता की जानकारी बहुत आवश्यक जानकर यह पुस्तक तैयार की गई है। उर्दू में महावरों का बहुत अच्छा प्रयोग होता है। हिन्दी वालों को भी उर्दू का यह गुण ग्रहण करना चाहिये। उर्दू-कविता में भाव चाहे कैसे ही हों, पर भाषा का

सुथरापन और महावरों का खेल तो अनोखाही है। हिन्दी में भी महावरों का प्रयोग होना चाहिये, तभी उसमें लालित्य आ सकता है।

उर्दू-कविता में वर्णित विषय हिन्दी वालों के लिये बिल्कुल नए हैं। भाषा और मुख्य कर लिपि का पर्दा पड़ा रहने के कारण केवल हिन्दी जानने वाले साहित्य-रसिक अब तक अरब और फ़ारस की इस अद्भुत छटा को देख ही नहीं पाये थे। इस पुस्तक ने वह पर्दा उठा दिया है। अब अच्छी तरह से वे देख सकेंगे कि कैसा नया और विचित्र संसार उनके पड़ोस ही में है।

इसमें जिन उर्दू-कवियों का वर्णन आया है, वे उर्दू-जगत् में मुख्य माने गये हैं। उनके सिवाय उन्हीं की श्रेणी के और भी कई कवि इस समय वर्तमान हैं, पर अभी उनके जीवन में उनकी प्रतिभा के और भी अनोखे चमत्कार प्रकट होंगे, तभी उनका जीवन-चरित उचित रीति से लिखा जायगा। फिर भी कौमुदी-कुञ्ज में उनकी कविता के नमूने दे दिये गये हैं।

कविता के चुनाव के सम्बंध में हमें विशेष रूप से कुछ निवेदन करना है। हमने जो कविता-कौमुदी के दो भागों में हिन्दी-कविताओं का चुनाव किया है, उसके सम्बंध में हिन्दी के मासिक पत्रों में बहुत सी टीका-टिप्पणियाँ निकलीं। किसी ने चुनाव को अच्छा बताया, किसी ने साधारण। हम जानते हैं कि उर्दू-कविताओं का जो चुनाव हमने किया है, उसके सम्बंध में भी ऐसा ही होगा, और यह अनिवार्य है। सब की रुचि और सब की योग्यता एक सी नहीं हो सकती। किसी को शृङ्गार प्रिय है, किसी को वीर रस। कोई करुण रस का प्रेमी है तो कोई प्रेम और भक्ति का। कोई नीति की कविता पसंद करता है तो कोई वैराग्य की। ऐसी दशा में किसी एक व्यक्ति का चुनाव सर्वप्रिय कैसे हो सकता है? चुनाव में योग्यता का भी अन्तर पड़ता है। कितने ही दोहे चौपाई छंद ऐसे हैं, जिन पर साधारण जनता ध्यान भी नहीं देती। पर उन पर बड़े बड़े विद्वान् मुग्ध देखे जाते हैं,

और अपने भाषणों में वे उनका उत्तमता से उपयोग करते हैं। न हमें अपनी योग्यता का ही दावा है, और न समालोचकों की रुचि की जानकारी का ही। हमें दावा है तो केवल इस बात का कि हमने जो कुछ चुना है, अपनी समझ से अच्छा समझ कर चुना है। रुचिभेद से वह किसी को अच्छा लगे या न लगे, हम इसके ज़िम्मेदार नहीं। हाँ, इतना हम अवश्य स्वीकार करते हैं कि संभव है, कवियों के बहुत से ऐसे शेर छूट गये होंगे जिनमें उनकी प्रतिभा के अद्भुत चमत्कार होंगे। पर यह बात भी विचारणीय है कि कवियों के लम्बे लम्बे जीवन भर की कविताओं में से चुनी हुई कविताओं के लिये भी कविता कौमुदी के पृष्ठ अपर्याप्त हैं। एक एक कवि के लिये कविता-कौमुदी ऐसी एक एक अलग पुस्तक चाहिये। कविताओं के चुनाव के सम्बंध में कुछ मित्रों की यह शिकायत भी हमने सुनी है कि हम चुनाव किसी ख़ास लक्ष्य को ध्यान में रख कर नहीं करते। अर्थात् न हम साहित्यिक दृष्टि से चुनाव करते हैं, और न किसी ख़ास विषय को लक्ष्य में रखकर। ऐसे मित्रों की सेवा में हमारा सविनय निवेदन है कि वास्तव में हम किसी ख़ास विषय को लक्ष्य में रखकर चुनाव नहीं करते। बल्कि जिस कवि का जो रूप है, हम उसे उसी रूप में अपने पाठकों के सामने लाने का प्रयत्न करते हैं। हम अपनी रुचि, विचार या लक्ष्य को कभी किसी कवि के लिये बाधक नहीं होने देते। हमें करुण और वीर रस तथा भक्ति, प्रेम और वैराग्य की कविताएँ स्वभाव से प्रिय हैं। शृंगार रस की ओर हमारी रुचि कम है। पर कविता-कौमुदी के पहले भाग में हमने हिन्दी के शृंगारी कवियों की ऐसी कविताएँ भी आने दी हैं, जिन में कुछ लोगों को अश्लीलता दिखाई पड़ती है। इस स्वतंत्रता का उपयोग हमने उर्दू-कवियों के साथ भी किया है। हमने जो उचित समझा, उसे हिन्दी-पाठकों के सामने रख दिया। अब हम स्वयं यह जानने के इच्छुक हैं कि हमने कैसा किया।

हमें इस बात का खेद है कि केवल हिन्दी जानने वाले पाठक उर्दू-

कविता को ठीक ठीक पढ़ नहीं सकेंगे। कारण यह है कि उर्दू-कविता में प्रायः प्रत्येक चरण में ऐसे अक्षर हैं जिन्हें दीर्घ होते हुये भी कविता की गति के अनुसार ह्रस्व पढ़ना पड़ता है। 'और', 'यह', । 'वह' को तो हमने उनके उच्चारण के अनुसार औ, य, व या वो कर दिया है। पर अ, इ, उ से प्रारंभ होने वाले कितने ही ऐसे शब्द हैं जिनके अ, इ उ उनके पहले के शब्द के अंतिम अक्षर में मिला कर पढ़ने पड़ते हैं।हिन्दी-लिपि में कोई ऐसे चिह्न नहीं, जिनके द्वारा हम ये कठिनाइयाँ दूर कर सकते। फिर भी हमने उर्दू के इतिहास में उर्दू-छंदों के हिन्दी-नाम बता कर यह सुगमता लाने का प्रयत्न किया है कि उनकी गति जान कर हिन्दी जानने वाले पाठक उर्दू-छंदों का पाठ आसानी से कर सकें। हमें स्मरण है कि दिल्ली के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् को एक भाषण में उर्दू के शेरों को ठीक ठीक न पढ़ सकने के कारण लज्जित होना पड़ा था। अतएव जब तक उर्दू-छन्द की गति का अभ्यास न हो जाय तब तक उसे ग़लत पढ़ कर हास्यास्पद न बनना चाहिये।

कवियों का जन्म और मरण-संवत् हमने हिजरी सन् से बना कर लिखा है। हम निस्संदेह नहीं कह सकते कि जो संवत् हमने लिखा है, वह बिल्कुल शुद्ध है। क्योंकि हिजरी सन् बहुत बेहिसाब है। आश्चर्य है कि गणित-शास्त्र के इस उजाले में भी मुसलमान भाई न उसे सुधारते हैं, न छोड़ते ही हैं।

हमें इस पुस्तक के लिखने में आबेहयात, ख़ुम ख़ानए जावेद, गुलशने हिन्द, तजकिरः शुअराय उर्दू, और सुखन शुअरा आदि उर्दू के संग्रह ग्रंथों से सहायता लेनी पड़ी है। छः सात को छोड़कर बाक़ी कवियों के विस्तृत जीवन-चरित तो मुख्य कर आबेहयात से लिये गये हैं। हम हृदय से इन सब ग्रंथों के रचयिताओं के कृतज्ञ हैं।

रामनरेश त्रिपाठी

उर्दू का संक्षिप्त इतिहास

उर्दू की उत्पत्ति

उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं; हिन्दी का ही वह एक रूपान्तर है। कविता-कौमुदी के पहले भाग में हम हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति और उसके फैलाव पर काफ़ी प्रकाश डाल चुके हैं। यहाँ उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दी का आदिकाल विक्रम की सातवीं या आठवीं शताब्दी से प्रारंभ होता है, ऐसा अनुमान किया जाता है। जो लोग यह समझते हैं कि हिन्दी व्रजभाषा से निकली है, वे भूल करते हैं। हिन्दी और व्रजभाषा दोनों एक माता की दो पुत्रियाँ हैं, जिनका वंश अलग अलग चला है। वे एक वृक्ष की दो शाखायें हैं जो अलग अलग वातावरण में फूली फली हैं। हिन्दी, जिसे आजकल हम लोग बोलते और लिखते हैं, और जिसे कुछ लोग खड़ीबोली कहते हैं, उतनी ही प्राचीन है, जितनी व्रजभाषा। व्रजभाषा ने व्रज में विकास पाया और हिन्दी पहले-पहल दिल्ली और उसके आसपास तक ही फैल कर रह गई। हिन्दुओं के आराध्य देव प्रातस्मरणीय भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मभूमि की भाषा होने के कारण व्रजभाषा को अधिक सम्मान मिला। उसमें सूरदास ऐसे अमृतभाषी कवि पैदा हुये। उसका प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि कई सौ वर्षों तक वह हिन्दुओं में कविता की भाषा होकर रही। व्रजमण्डल के बाहर के कवि भी, जो संभव है कभी व्रज में न आये-गये होंगे, और न व्रजभाषा जानते होंगे, व्रज के कवियों का अनुसरण करके व्रजभाषा में ही कविता रचते थे। इससे प्रभावित होकर रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास ने अपने उपास्य देव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की जन्मभूमि अवध की बोली में राम-

चरितमानस की रचना की। रामचरितमानस का प्रचार इतना हुआ जितना ब्रजभाषा की किसी पुस्तक का नहीं हुआ। पर अवधी बोली में ब्रजभाषा के समान बहु संख्यक कवि नहीं पैदा हुये और न वह कविता की भाषा ही बन सकी। हाँ, यह बात अलग है कि एक ही पुत्र-रत्न तुलसी, कौशल्या के राम की तरह, माता अवधी के गर्व के लिये बहुत हैं। हिन्दी प्रारंभ में किसी तीर्थ-स्थान या धर्म-क्षेत्र की भाषा नहीं थी, इसी से उसका विकास नहीं हो पाया।

हिन्दी में सब से पहली कविता अमीर ख़ुसरो की मिलती है। यहाँ उसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१)

तरवर से यक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया॥

(२)

बीसो का सिर काट लिया। ना मारा ना ख़ून किया॥

(३)

बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाँठ औरत ने खोली॥

"उसने बहुत रिझाया" "आधा नाम बताया" "बीसों का सिर काट लिया" "औरत ने खोली" आदि आजकल की हिन्दी के शुद्ध वाक्य हैं। "ने" का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है। अमीर ख़ुसरो का जन्म सं० १३१२ में और मरण सं० १३८२ में हुआ। उसने जो छन्द लिखे हैं, उनकी भाषा अवश्य ही उस समय की बोलचाल की होगी। क्योंकि उनके विषय ही ऐसे हैं, जो रोज़मर्रा की बोलचाल में ही लिखे जाने चाहियें। ख़ुसरो के बाद कबीर हुये। कबीर ने भी ख़ुसरो की हिन्दी में कुछ रेख़ते कहे हैं। कबीर सं० १४५५ में हुये। उस समय की हिन्दी का उनका एक पद्य सुनिये—

हमन हैं इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी क्या ?
रहें आज़ाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या ?
जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते ।
हमारा यार है हम में हमन को इन्तिज़ारी क्या ?
न पल बिछुड़े पिया हम से न हम बिछुड़ें पियारे से ।
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या ?
कबीरा इश्क़ का माता दुई को दूर कर दिल से ।
जो चलना राह नाज़ुक है हमन सिर बोझ भारी क्या ?

इन अवतरणों से यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि जिस भाषा को आजकल खड़ीबोली या हिन्दी कहा जाता है, वह कबीर और ख़ुसरो के समय में भी लगभग इसी रूप में वर्तमान थी। अंतर पड़ा है तो केवल कुछ मुहावरों का और कुछ विदेशी शब्दों के मिश्रण का। ख़ुसरो और कबीर की कविता के उदाहरणों के रहते हुये "आबेहयात" के लेखक स्व० प्रो० आज़ाद का यह लिखना कि "हमारी उर्दू ज़बान ब्रजभाषा से निकली है" बिलकुल ग़लत है। उर्दू कभी किसी भाषा से निकली ही नहीं। हिन्दी का ही नाम उर्दू रख लिया गया है। यदि उसका नाम उर्दू न रखकर 'मुसलमानी हिन्दी' रक्खा जाता तो अधिक सार्थक होता। जैसे आजकल स्कूल कालेजों में जो हिन्दी बोली जाती है वह, और अंग्रेज़ी पढ़े हुये सरकारी नौकरों की हिन्दी, अंग्रेज़ी शब्दों से लदी हुई होती है, पर उसका कोई अलग नाम नहीं। वैसे ही अरबी-फ़ारसी के संज्ञा और अव्यय शब्दों से लदी हुई हिन्दी का अलग नाम रखने की आवश्यकता ही क्या थी ? यदि अलग नाम पड़ही गया, तो भी वह हिन्दी के एक रूपान्तर के सिवा बिल्कुल स्वतंत्र भाषा नहीं कही जा सकती। ज़रा ध्यान दीजिये कि उर्दू-फ़ारसी पढ़ा हुआ एक मुसलमान यदि बोलता है कि—

"मैं कलकत्ते से चला और जुमा को सवेरे की गाड़ी से इलाहाबाद पहुँच गया। मरीज़ को देखा, उसके जीने की उम्मीद नहीं।"

और उसी को एक ग्रेजुएट, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, इस तरह बोलता है—

"मैं कॅलकटा से चला। फ़्राइडे को मार्निंग ट्रेन से एलाहाबॅड पहुँचा। पेशंट को देखा, वह होपलेस कंडीशन में है।"

यदि उक्त मुसलमान की भाषा का एक अलग नाम उर्दू रक्खा जायगा तो उस ग्रेजुएट की भाषा का क्या नाम होगा ? हम तो दोनों को हिन्दी कहेंगे। कोई अधिक बाल की खाल खींचने को कहेगा तो हम पहली को मुसलमानी, हिन्दी और दूसरी को अंग्रेज़ी हिन्दी कहेंगे। पर हिन्दी से अलग हम उसे तबतक न मानेंगे जब तक उसकी क्रिया कारक, लिंग और वचन भिन्न न होंगे। जब हिन्दी और उर्दू का व्याकरण एक है तब उर्दू अलग स्वतंत्र भाषा कैसे कहला सकती है। हिन्दी और उर्दू में सिर्फ़ इतनाही अन्तर है कि हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और उसमें संस्कृत के शब्द अधिक रहते हैं। और उर्दू फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों की अधिकता रहती है। गुजराती भाषा के भी दो रूप हैं, एक पारसियों की गुजराती और दूसरा गुजरातियों की गुजराती। पारसियों की गुजराती में अरबी फ़ारसी के शब्द अधिक रहते हैं और गुजरातियों की गुजराती में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द। पर दोनों रूपों का नाम एक है। यही हिन्दी में भी होना चाहिये। पर दुर्भाग्य से उर्दू एक अलग ज़बान क़रार दी गई और हिन्दू मुसलमानों के झगड़े का वह भी एक कारण बना दी गई।

हिन्दुओं का एक समय वह भी था, जब उनका राज्य पश्चिम और उत्तर में ईरान, अरब, रूम, तुर्किस्तान और मंगोलिया तक फैला हुआ था। हिन्दुओं का उद्गम-स्थान भारतवर्ष ही है, और यहीं से चारों दिशाओं में दूर दूर तक फैल कर उन्होंने राज किया और सभ्यता का विकास किया था। पुराणों में उनके दूर दूर देशों में जाने आने के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। पता नहीं, हिन्दुओं ने कितने हज़ार

वर्षों तक भारत के बाहर राज किया और कब वे फिर अपनी आदि भूमि को लौट आये। पर वे लौटे ज़रूर। इसी लौटने को अंग्रेज़ इतिहास-लेखक उनका प्रथम बार भारत में आना बतलाते हैं।

जो हो; यह तो निश्चय है कि पश्चिमोत्तर देश वालों के साथ भारतवासियों का संबंध बहुत प्राचीन काल से है। ईरान वालों के साथ तो आर्यों का विवाह-सम्बन्ध भी पाया जाता है। ऐसी दशा में प्रत्येक देश का निवासी दूसरे की भाषायें भी सीखता होगा। या दोनों देशों की भाषा एक रही होगी। महाभारत में जहाँ युधिष्ठिर के लाक्षागृह जाने का वर्णन है, वहाँ यह भी लिखा है कि विदुर ने उनको लाक्षागृह की बनावट के विषय में म्लेच्छ-भाषा में कुछ सूचनायें दी थीं। उस कथा से म्लेच्छ-भाषा का अस्तित्व ही नहीं, बल्कि यह भी प्रमाणित होता है कि विदुर और युधिष्ठिर दोनों म्लेच्छ-भाषा जानते थे। महाभारत के बाद विदेशियों के, ख़ासकर पश्चिम वालों के, कई आक्रमण भारत पर हुये, और कई जातियों ने यहाँ आकर राज किया। उनके साथ उनकी भाषा के शब्द भी आये होंगे, जो उस समय की प्रचलित भाषा में मिल गये होंगे। कालिदास के समय में यवनी स्त्रियाँ अन्तःपुर में पहरा दिया करती थीं। यह इस बात का बहुत बड़ा प्रमाण है कि विदेशियों पर हिन्दू लोग स्वदेशवासियों के समान विश्वास करते थे। जब इतना घनिष्ट संसर्ग था, तो क्या उन विदेशियों की मातृभाषा के शब्द यहाँ नहीं फैले होंगे ? यहाँ मुसलमानी हुकूमत होने के पहले ही यहाँ की प्रचलित भाषा में अरबी फ़ारसी और तुर्की के हज़ारों शब्द आ घुसे होंगे। चंद बरदाई की कविता में अरबी फ़ारसी और तुर्की के सैकड़ों शब्द मौजूद हैं। अतएव यह कहना कि, शाहजहाँ के वक्त में लश्कर के बाज़ार में उर्दू-भाषा बनी, एक ग़लत अनुमान है। भाषा पहले ही से बन चुकी थी। लोग उसे बोलते थे और लिखते थे। मुसलमान लोग हिन्दुओं से अपनी सब बातें जुदा रखते ही थे। एक

भाषा की उन्हें अलग आवश्यकता थी, हिन्दी को ही उन्होंने उर्दू नाम देकर अपना लिया। तुर्की में उर्दू लश्कर के बाज़ार को कहते हैं। लश्कर में उर्दू बाज़ार लगता था। वहाँ जो बाज़ारू हिन्दी बोली जाती थी उसका नाम भी उर्दू बोली पड़ गया होगा। पर उर्दू बाज़ार तो मुहम्मद ग़ोरी के ग़ुलाम कुतुबुद्दीन के समय से ही लगता रहा होगा। उस समय भी तो उर्दू-बाज़ार की कोई बोली रही होगी। क्या वह उर्दू न रही होगी? फिर यह क्यों कहा जाता है कि उर्दू शाहजहाँ के वक़्त में बनी?

मुसलमानों का शासन होने से उनकी बोलचाल के कुछ अधिक शब्द हिन्दी में मिल गये, और वे धीरे-धीरे शहर से लेकर गाँव तक फैल गये और सर्वसाधारण के घरों में घुस गये। जो जो चीज़ें मुसलमानी मुल्कों से यहाँ आईं, उनके नाम तो ज्यों के त्यों रह गये। जैसे—

पायजामा, इज़ारबन्द, रूमाल, शाल, दुशाला, बुर्क़ा, चोग़ा, कुर्त्ता, क़बा, आस्तीन, गरेबाँ, चपाती, पुलाव, ज़र्दा, कबाब, क़ुर्मा, अचार, गुलाब, मुश्कबेद, रकाबी, तश्तरी, चमचा, हम्माम, साबुन, शीशा, शमा, शमादान, फ़ानूस, तनूर, मशक, नमाज़, रोज़ा, ईद, शबबरात, क़ाज़ी, साक़ी, हुक़्क़ा, नैचा, चिलम, बन्दूक़, गंजीफ़ा, इत्यादि।

यहाँ की बहुत सी चीज़ों के लिये अरबी-फ़ारसी भाषा के ऐसे नाम पड़ गये कि यदि अब उनके स्थान पर संस्कृत या प्राकृत के पर्याय-वाची शब्द ढूँढ़कर रक्खे जायँ तो या तो कुछ अर्थ ही न निकलेगा या भाषा इतनी कठिन हो जायगी कि सर्वसाधारण तो क्या, शिक्षित हिन्दू भी कठिनता से समझ सकेंगे। जैसे—

पिस्ता, बादाम, मुनक्का, शहतूत, बेदाना, ख़ूबानी, अंजीर, सेब, बिही, नाशपाती, अनार, मज़दूर, वकील, जल्लाद, सर्राफ़, मसख़रा, लिहाफ़, तोशक, चादर, सूरत, शक्ल, चेहरा, तबीअत, मिज़ाज, बर्फ़, कबूतर, क़ुमरी, बुलबुल, तोता, पर, दवात, क़लम, स्याही, गुलाब, रुक़्क़ा, ऐनक़,

संदूक़, कुर्सी, तख़्त, लगाम, रिकाब, ज़ीन, तंग, नाल, कोतल, जहाज़, मस्तूल, बादबान, तुहमत, पर्दा, दालान, तहख़ाना, तनख़्वाह, मल्लाह, ताज़ा, ग़लत, सही, रसीद, रसद, कारीगर, तराज़ू, इत्यादि। शतरंज ख़ास हिन्दुस्तान की चीज़ है। पर अब इसके असली नाम "चतुरंग" से शायद ही कुछ लोग परिचित हों। अब 'पाटल' के स्थान पर 'गुलाब' ने स्थान जमा लिया है।

यहाँ विदेशी भाषा के कुछ ऐसे शब्द दिये जाते हैं जो यहाँ की बोल-चाल में आकर मिल गये हैं, और अब यहीं की सम्पत्ति हो गये हैं। जैसे—

अरबी—अक़्ल, इख़्तियार, इम्तिहान, एतराज़, औरत, हाल, सिफ़ारिश, अदालत, मुक़द्दमा, तारीख़, तनख़्वाह, हूबहू, इन्साफ़, इन्सान, ऐब, उमदा, ख़बर, ख़र्च, तकरार, दलील, दुनिया, मज़कूर, मशग़ूल, शरबत, सलाह, हुक्म आदि।

फ़ारसी—अजमायश, आदमी, उम्मेदवार, आबादी, ख़रीद, गुमाश्ता, बाग़, चश्मा, दूकान, चाक़ू, ताज़गी, गुज़रान, तन्दुरुस्ती, दस्तावेज़, दरिया, प्याला, कमर, दाग़, मोज़ा, गुलाब, साबुन, होशियार, हवा, हज़ार आदि।

तुर्की—तोप, लाश, कोतल आदि।

पोर्चुगीज़—अङ्गरेज़, पिस्तोल, पलटन, कप्तान, कमरा, नीलाम, इञ्जीनियर, चा, काफ़ी, गोदाम, चाबी आदि।

अङ्गरेज़ी—कोर्ट, अपील, टिकट, कलक्टर, डाक्टर, टेबिल, पेंसल, पेंशन, बूट, फ़ार्म, बोरडिंग, डिग्री, ग्लास, फंड, रेल, वारंट, रसीद, रबर, लालटेन, पतलून, मील, इन्च, फ़ुट, वास्कट, म्युनिसिपैलिटी, सेविंग बैंक, सोडावाटर, होटल, हास्पिटल, बोतल, पास, रजिस्ट्री, नोटिस, समन, स्कूल, कमेटी, फ़ीस, स्लेट, टिन, प्रेस, इन्स्पेक्टर, बैरिस्टर, मास्टर, काँस्टेबल, वोटर, कौंसिल, एसेम्बली, मीटिंग, मेम्बर, फ़ैमिली, स्प्रिट, बाइसिकल, ट्रेन, लाइन, बटन, कोट, हैट, निब इत्यादि।

उर्दू और हिन्दी का व्याकरण भी एक है।

हिन्दी उर्दू की क्रिया एक है। कारक, सर्वनाम, लिंग, वचन और अव्यय एक ही हैं। एक बड़ी दिलचस्प बात यह है कि अरबी-फ़ारसी के शब्दों को विवश होकर हिन्दी-व्याकरण के साँचे में ढल जाना पड़ा है। हिन्दी-व्याकरण ने उनके तन पर अपना जामा पहना दिया और वे अरब, इरानी और तुर्क बेचारे हिन्दू हो गये। कुछ उदाहरण लीजिये—

प्रायः सभी शब्दों का बहुवचन हिन्दी-व्याकरण के नियमानुसार हैं। जैसे—

मेवा	का	मेवों	न कि	मेवाजात।
निशान	का	निशानों	न कि	निशानात।
मुश्किल	का	मुश्किलों	न कि	मुश्किलात।
दफ़ा	का	दफ़ाओं	न कि	दफ़आत।
औरत	का	औरतों	न कि	मस्तूरात।
मज़दूर	का	मज़दूरों	न कि	मज़दूरान।
ख़बर	का	खबरें, खबरों	न कि	अख़बार।

इत्यादि; अब कुछ लोग उर्दू में अरबी-फ़ारसी के शब्दों के असली बहुवचन लिखने का प्रयत्न करने लगे हैं। ऐसा करके वे भाषा को और भी कठिन बना रहे हैं, और उसकी सीमा संकुचित कर रहे हैं। मामूली बोलचाल में उन शब्दों का हिन्दी-रूप ही प्रचलित है और रहेगा। पर कठिन उर्दू थोड़े से कठिन दिमागों में ही बैठी रहेगी।

फ़ारसी शब्दों से बहुत सी क्रियायें भी हिन्दी के ढंग पर बन गई हैं। जैसे—

शरम	से	शरमाना
गुज़र	से	गुज़रना
फ़रमान	से	फ़रमाना
क़बूल	से	क़बूलना
बदल	से	बदलना

बख़्श	से	बख़्शना
काहिली	से	कहलाना
मुनकिर	से	मुकरना
ख़र्च	से	ख़र्चना

इत्यादि;

कुछ क्रियायें करना, होना आदि शब्दों के योग से बन गई हैं। जैसे—

ख़ुश होना, ज़िक्र करना, रवाना होना, दिल लगाना इत्यादि।

कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका धड़ तो हिन्दुस्तानी है, और सिर फ़ारसी। जैसे—

समझदार, गाड़ीख़ाना, पीकदान, पानदान, हाथीवान, मोदीख़ाना।

बहुत से ऐसे पर्यायवाची शब्द हैं जो साथ-साथ बोले जाते हैं। जैसे—

काग़ज़-पत्र, शादी-ब्याह, आदि।

क्रिया, कारक, लिंग, वचन, सर्वनाम और अव्यय के एक रहते हुये कोई भाषा थोड़े से विदेशी शब्दों के मेल से दो नामों से नहीं पुकारी जा सकती। एक पुस्तक (संस्कृत) लाओ; एक किताब (फ़ारसी) लाओ, एक चोपड़ी (गुजराती) लाओ; एक बुक (अङ्गरेज़ी) लाओ; एक पोथी (अपभ्रंश) लाओ। एक ही अर्थ देने वाले ये पाँच वाक्य पाँच रूपों में हैं; पर क्रिया सब की एक है। अतएव केवल संज्ञा के बदलते रहने से ये वाक्य पाँच भाषाओं के नहीं कहे जा सकते। इसी तरह केवल कुछ अरबी-फ़ारसी के संज्ञा शब्दों के आ जाने से उर्दू एक नई भाषा नहीं मानी जा सकती। हम इस विषय में हिन्दू मुसलमानों से न्याय की आशा रखते हैं। मुसलमानों को चाहिये कि वे हिन्दी को अपनी मातृ-भाषा समझें और हिन्दुओं को उचित है कि वे अरबी, फ़ारसी और तुर्की के उन सब शब्दों को, जो मुसलमानों में प्रचलित हैं, अपनी भाषा में ले लें। जिससे दोनों भाषाएँ एक हो जायँ और हिन्दू मुसलमानों में एक

देशवासी होने के साथ साथ एक भाषाभाषी होने का भी बन्धुत्व क़ायम हो।

रेख़्ता

उर्दू से पहले फ़ारसी छन्दों में जो कविता उस समय की बोलचाल में लिखी जाती थी, उस बोलचाल का नाम रेख़्ता था। रेख़्ता शब्द का अर्थ है गिरा पड़ा या परेशान। उस समय अरबी-फ़ारसी के बहुत से शब्द यहाँ की बोलचाल में लावारिस की तरह परेशान घूम रहे थे। उन्हीं को बोलचाल की भाषा में जगह दे दी गई। इसी से उस बोलचाल का नाम रेख़्ता हो गया। यह नाम कब और कहाँ पड़ा, इसका पता नहीं। जब मुसलमानी हुकूमत दक्खिन में फैल गई, उस समय मुसलमानों का जो दल दक्खिन गया, उसी के साथ हिन्दी भी वहाँ गई। उस हिन्दी में अरबी फ़ारसी के शब्द तो भरे थे ही, कुछ दक्खिनी शब्दों को भी उसमें मिलाकर कुछ शायरों ने दिमाग़ लड़ाया। सं० १३९३ में मुहम्मदशाह तुग़लक ने दिल्ली को उजाड़ कर दक्खिन में दौलताबाद बसाया। पर वह बस न सका और दिल्ली से गये हुये लोग फिर वापस आये। उन्हीं के साथ बहुत से दक्खिनी शब्द भी दिल्ली की बोलचाल में आ गये। वली के बाद के उर्दू-कवियों की कविताओं में दक्खिनी शब्दों की ख़ासी बहार देखने को मिलती है। सं० १७७७ में वली का दीवान दक्खिन से दिल्ली आया। उस समय मुहम्मदशाह का ज़माना था। वली की शायरी से उत्साहित होकर दिल्ली वालों ने शायरी शुरू की। पर भाषा का नाम बहुत दिनों तक रेख़्ता ही रहा। 'मीर' साहब कहते हैं—

> ख़ूगर नहीं हम यों हीं कुछ रेख़्ता गोई के।
> माशूक़ था जो अपना बाशिन्दः दकन का था॥

'सौदा' कहते हैं—

> शेर बेमानी से तो बेहतर है कहना रेख़्ता।

ग़ालिब का एक शेर है—

रेख़ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब।
कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था॥

रेख़ता शब्द पर हमें इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि कबीर को यह शब्द कहाँ से मिल गया। कबीर ने रेख़ता नाम का एक छन्द लिखा है, जिसकी भाषा भी रेख़ता से मिलती-जुलती है। एक छन्द नमूने के लिये यहाँ दिया जाता है—

फ़हम कर फ़हम कर फ़हम कर मान यह,फ़हम बिन फ़िकिर नहिं मिटै तेरी।
सकल उँजियार दीदार दिल बीच है, ज़ौक़ औ शौक़ सब मौज तेरी॥
बोलता मस्त मस्ताने महबूब है, इनों सा अदल कहु कौन केरी।
एक ही नूर दरियाव वह देखिये, फैल वह रहा सब सृष्टि में री॥

कबीर को ही रेख़ता का आदि-कवि क्यों न माना जाय?

रेख़ती

रेख़ती सआदतयार ख़ाँ रंगीं की ईजाद है। यह ज़नाना बोली है। रंगीं के बाद इंशा ने इसमें कुछ क़लम चलाई। और जान साहब ने तो दीवान ही बना डाला।

रंगीं की रेख़ती का नमूना देखिये—

मैं वह भी ओढ़ने की नहीं कल की ओढ़नी।
बाजी मुझे मँगा दो झलाझल की ओढ़नी॥

ज़रा घर को रंगीं के तहक़ीक़ कर लो।
यहाँ से है कै पैसे डोली कहारो॥

इन्शा की ज़नानी बोली सुनिये—

मरदुआ मुझसे कहे है चलो आराम करें।
जिसको आराम वो समझे है वो आराम हो नौज॥

नहीं सनकार लिया तू ने तो फिर इन्शा ने।
मेरे दरवाज़े की क्यों चूल उखेड़ी अन्ना॥

जान साहब फ़रमाते हैं—

नमाज़ पढ़ पढ़ के तो गुनाहों से अपने तोबा तुआ किया कर।
न जान हिन्दू प दे दो गानः ख़ुदा ख़ुदा कर ख़ुदा ख़ुदा कर॥
निकाही ब्याही को छोड़ बैठे मताई रंडी को घर में डाला।
बनाया साहब इमामबाड़ा ख़ुदा की मसजिद को तुमने ढाकर॥

हिन्दुस्तानी

बोलचाल की हिन्दी का एक नाम हिन्दुस्तानी भी है। यह अंगरेज़ों का रक्खा हुआ नाम है। दिल्ली और उसके आसपास के ज़िलों में यह भाषा बहुत प्राचीनकाल से बोली जाती है। इसमें संस्कृत और अरबी फ़ारसी के वही शब्द लिये गये हैं, जो सर्वसाधारण की बोलचाल में ख़ूब प्रचलित हो गये हैं।

उर्दू-पद्य

हिन्दी और उर्दू दोनों की पद्य-रचना के इतिहास में अमीर ख़ुसरो का नाम सब से पहले आता है। अमीर ख़ुसरो का जन्म संवत् १३१२ और मरण सं० १३८० में हुआ। ख़ुसरो ने बड़ा सुन्दर स्वभाव पाया था। वे फ़ारसी के अच्छे कवि तो थे ही, अपने समय की बोलचाल में भी उन्होंने कविता की है। उनकी पहेलियाँ, ढकोसले, मुकरनियाँ, दो सख़ुने आज तक प्रचलित हैं। कहा जाता है कि ठुमरी उन्होंने ही बनाई। उनके बनाये हुये गीत दिल्ली के आसपास की स्त्रियाँ अब तक गाती हैं। उनमें से एक गीत यह है—

अम्मा मेरे बाबा को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बुड्ढा री कि सावन आया॥
अम्मा मेरे भाई को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा भाई तो बाला री कि सावन आया॥
अम्मा मेरे मामूँ को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा मामूँ तो बाँका री कि सावन आया॥

.ख़ुसरो ने ख़ालक़ बारी नाम की एक पुस्तक लिखी, जो फ़ारसी छन्दों में है; जिसे हिन्दी-फ़ारसी का पद्य-कोष कहना चाहिये। उसके उदाहरण लीजिए—

ख़ालक़ बारी सिरजनहार। वाहिद एक विदा करतार।
रसूल पैम्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोली जा ईठ॥
बया बिरादर आव रे भाई। व नशीं मादर बैठ री माई॥

इसी तरह फ़ारसी छन्द में ख़ुसरो ने एक और रचना की, जिसमें फ़ारसी और ब्रजभाषा का मिश्रण है। जैसे—

ज़े हाले मिसकीं मकुन तग़ा.फ़ुल दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि तावे हिजराँ न दारम ऐ जाँ न लेहु काहें लगाय छतियाँ॥
शबाने हिजराँ दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ो रोज़े वसलत चु उम्र कोतह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ॥

यद्यपि .ख़ुसरो ने फ़ारसी बहरों में कविता की है, पर उन्होंने भाषा का नाम रेख़ता या उर्दू कहीं नहीं लिखा। जहाँ कहीं भाषा का नाम उनकी कविता में आये हैं, वहाँ अरबी-फ़ारसी के साथ हिन्दी का नाम उन्होंने लिखा है। इससे मालूम होता है कि उस समय की बोलचाल की भाषा का नाम हिन्दी था।

.ख़ुसरो के बाद कबीर की कुछ कविता फ़ारसी बहरों में मिलती है। रेख़ता का प्रारंभ कबीर साहब के समय से समझना चाहिये। हमारा अनुमान है कि रेख़ता नाम कबीर से भी पहले का है, और यह नाम अरबी-फ़ारसी मिश्रित हिन्दी के लिये उत्तर भारत में ही पड़ा होगा। उत्तर से ही यह नाम दक्खिन गया होगा। यह शब्द इतना प्रचलित रहा होगा कि ठेठ से ठेठ हिन्दी में पद कहने वाले कबीर ने भी इसे ग्रहण किया।

जून, १९२५ की सरस्वती में प्रकाशित एक लेख से यह विदित होता है, कि गोलकुंडा के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह का एक हस्त-लिखित दीवान, जो अठारह सौ पृष्ठों में लिखा हुआ है और उस समय

की बोलचाल की भाषा में है, अभी तक निज़ाम हैदराबाद के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। कुतुबशाह सं० १६३७ में गद्दी पर बैठे थे। स्पष्ट है कि यह दीवान वली से पहले का है, और रेख़ता का सबसे पहला दीवान है।

कुतुबशाह का उपनाम 'ज़िल्ले अल्लाह' था। 'ज़िल्ले अल्लाह' के कुछ शेर यहाँ लिखे जाते हैं—

(१)

कुफ़र रीत क्या हौर इसलाम रीत।
हर एक रीत में इश्क का राज़ है॥

(२)

तुम बिन रहा न जावे अन नीर कुछ न भावे।
बिरहा किता सतावे मन सेति मन मिला दो॥

(३)

मुँज इश्क के गदा को औरङ्गशाही देता।
सब आशिक़ाँ मुँज आगे हैं तिफ़्ल जो दबिस्ताँ॥

(४)

चर्ख़ के ख़ुस खाने में सूरपिया मानो मद।
मस्त हो जाकर पड़ता गर्व के चश्मे मँझार॥

इसके बाद दक्खिन के थोड़े से शायर और हैं, जिनकी रचना के नमूने उर्दू के संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं। उनके नाम और कविता के नमूने आगे दिये जाते हैं—

अहसन—

जब ते सफ़र पी ने किया तब ते ग़रीब आवारः हूँ।
या बेग पी आया करें या मुजको लें बुलवाय कर॥

अहमद—

भरें दो नैन के छगलाँ सबूरी साथ ले तोशा।
कमर हिम्मत की बाँधी औ बिपत की बाट पर निकले॥

अशरफ़—

पिया बिन मेरे तईं बैराग भाया है जो होनी हो सो हो जावे।
भबूत अब जोगियों का अङ्ग लाया है जो होनी हो सो हो जावे॥

जाफ़र—

ग़म्ज़ाँ से देखो शोख़ मुझे मार कर चले।
मजरूह तिस प राह मनी ढार कर चले॥

ख़ुशनूदी—

सब रैन जागे सेज पर तो भी सजन आया नहीं।
चुप चुप के देखी बाट मैं दरसन को दिखलाया नहीं॥

सादी—

हमना तुमन को दिल दिया तुम दिल लिया औ दुख दिया।
तुम यह किया हम वह किया यह भी जगत की रीत है॥
सादी ग़ज़ल अंगेख़्तः शीरो शकर आमेख़्तः।
दर रेख़्तः दुर रेख़्तः हम शेर है हम गीत है॥

फ़ज़ली—

रखूँ हूँ नीमजाँ जानाँ तसद्दुक़ तुझ प करने को।
किया सब तन को मैं दरपन अझूँ दरसन न पाये हूँ॥

हाशम—

दखिन औ हिन्द के दिलबर हमन से बेहिजाब अच्छे।
कि मुखड़े चाँद से पर जिनके ख़त के पेच-ताब अच्छे॥

अज़ीज़ुल्ला—

मुझ नीमजाँ की क्या सकत बोलूँ जो वलियाँ की सिफ़त।
आज़िज़ अज़ीज़ुल्ला उपर दक्खिन के सब पीराँ मदद॥

लुत्फ़ी—

मैं इश्क़ की गली में घायल पड़ा था तिस पर।
जोबन का माता आकर मुजको खँदल गया है॥

तुझ इश्क़ की अगिन से शोला हो जल उठा जिउ ।
दिल मोम के नमूनः गलगल पिघल गया है ॥

हातिफ़ी—

तेरी आँखों औ ज़ुल्फ़ से काफ़िर हुआ सारा जहाँ ।
इसलाम औ तक़वे कहाँ ज़ुहद औ मुसलमानी किधर ॥

महमूद—

महमूद मुझ में दिसता पूरा हुनर वफ़ा का ।
है क्या हुनर जो भावे तू पी को इस हुनर से ॥

इनके बाद दक्खिन के शायरों में वली का नाम आता है। जिसका वर्णन कविता-कौमुदी के प्रारम्भ में दिया गया है।

एक और पुराने शायर हामिद का नाम भी सुना जाता है। उनका एक शेर यह है—

अज़्म सफ़र चूँ कर दी साजन नैनों नींद न आये जी ।
क़द्रे विसालत नादानिस्तम तुम बिन बिरह सताये जी ॥

"बहरुल्फ़साहत" के लेखक ने अपनी पुस्तक में मुंशी प्यारेलाल "शौक़ी" की एक ग़ज़ल दी है। और यह भी लिखा है कि वह जहाँगीर के समय में थे और फ़ारसी के शायर थे। उर्दू में भी कुछ कह लेते थे। ग़ज़ल यह है—

जिन प्रेम रस चाखा नहीं अमृत पिया तो क्या हुआ ।
जिन इश्क़ में मर ना दिया जो जग जिया तो क्या हुआ ॥
तावीज़ औ तूमार में सारी उमर ज़ाया किती ।
सीखे मगर हीले घने मुल्ला हुआ तो क्या हुआ ॥
जोगी वो जंगम सेवड़ा रँग लाल कपड़े पहिर के ।
वाक़िफ़ नहीं इस हाल से कपड़ा रँगा तो क्या हुआ ॥
जिउ में नहीं पी का दरद बैठा मशायख़ होय कर ।
मन का रहट फिरता नहीं सुमिरन किया तो क्या हुआ ॥

जब इश्क़ के दरियाव में होता नहीं ग़रक़ाब तैं।
गंगा बनारस द्वारका पनघट फिरा तो क्या हुआ॥
मारग बसी सब छोड़कर दिल तन से तैं ख़िलवत पकड़।
"शौक़ी" पियारे लाल बिन सब से मिला तो क्या हुआ॥

उर्दू-पद्य के इतिहास को हम कई युगों में बाँट सकते हैं। पहले युग के मुख्य शायर वली, आबरू, नाज़ी, यकरंग, हातिम आरज़ू और .फ़ुग़ाँ हैं। इस युग में नीचे लिखे शब्द उर्दू-कविता में प्रयुक्त होते रहे हैं—

से	के स्थान	में	सों, सें,सूँ ,सेती	मुझे	,,	,,	मुझ
को	,,	,,	कों, कूँ ,	को	,,	,,	के तईं
हमको	,,	,,	हमनकूँ	मैं	,,	,,	मों
दुनिया में	,,	,,	जग मने	ख़ाके पा	,,	,,	ख़ाके चरन
तेरे	,,	,,	तुझ	दिखाई देता	,,	,,	दिसता
तरह	,,	,,	नमन	आईना	,,	,,	आरसी
जग	,,	,,	जहान, दुनिया	तरक करके	,,	,,	तज, तजकर
कलाम	,,	,,	बचन	ज़ुल्म	,,	,,	ज़ालनी
हमेशा	,,	,,	नित	दीदार	,,	,,	दरस, दरसन,
मुँह	,,	,,	मुख	वीरान	,,	,,	सुंजाँ
तस्बीह	,,	,,	तस्बी	भाव	,,	,,	भा
बेगाना	,,	,,	बगाना	दिल	,,	,,	मन
अन्दर	,,	,,	भीतर	से	,,	,,	सेती
माशूक़	,,	,,	मोहन, सरीजन, पी, पीतम	जलगया	,,	,,	बलगया
				सिदक़े	,,	,,	बलि
आँसू	,,	,,	अँझूँ	पराठा	,,	,,	परोठा
भवें	,,	,,	भवाँ	आहिस्ता	,,	,,	धीरा
पलकें	,,	,,	पलकाँ	में	,,	,,	बीच, भीतर
आँखें	,,	,,	नैन, अँखड़ियाँ	तरफ़	,,	,,	ओर
यह	,,	,,	यो	प्यारा	,,	,,	पियारा

हैरान के स्थान में	भेचक	जिधर ,, ,,	जीधर
को ,, ,,	अपने तईंकों, कों	उधर ,, ,,	ऊधर
जानेवाला ,, ,,	जानेहारा	इन्हों ,, ,,	उन
बजाने को ,, ,,	बजावने को	यहाँ ,, ,,	याँ
फ़रमाया है ,, ,,	फ़रमायता है	वहाँ ,, ,,	वाँ
जाता है ,, ,,	जावता है	इत्यादि;	

इस युग में कुछ फ़ारसी के महावरे लाकर मिलाये गये; कुछ फ़ारसी के नये शब्द भी आये। पर वर्णन-शैली एक सी ही रही। घोड़ा का तुक गोरा मिला दिया जाता था।

दूसरे युग के मुख्य शायर जानजानाँ, सौदा सोज़, दर्द, और मीर हैं। उर्दू के विद्वानों का कथन है कि जानजानाँ, सौदा, मीर और दर्द ने उर्दू के पौधे को जंगल में से लाकर उपवन में लगा दिया और उसे सींचकर उसमें मनोहर फूल खिलाये।

दूसरे युग में यद्यपि बहुत से पुराने शब्द निकाल दिये गये, और बहुत से नये भरती कर लिये गये, पर फिर भी नीचे लिखे शब्द रह ही गये—

तूने के स्थान में	तैं	हिलना ,, ,,	हलना
हमेशा ,, ,,	नित	घिसना ,, ,,	घसना
मिटी ,, ,,	माटी	रूह, जीव ,, ,,	जीउड़ा
मिल ,, ,,	रल	पत्थर ,, ,,	पथर
लगा ,, ,,	लागा	बजता ,, ,,	बाजता
हमारे पास ,, ,,	हम पास	ढाकर ,, ,,	ढाय कर
एक ,, ,,	एकों	देखना ,, ,,	दीद करना
कहता है ,, ,,	कहे है	नाम ,, ,,	नाआँ
उधर ,, ,,	ऊधर, तिधर	कब तक ,, ,,	कबलग
उनसे ,, ,,	उन कने	उसने ,, ,,	उने
आती थीं ,, ,,	आतियाँ थीं	टटोलता है ,, ,,	टटोले है
मेरी जान ,, ,,	मेरा जान	बात ,, ,,	बचन

ज़रा	के स्थान में टुक	न	„ „ नै
कहते हो	„ „ कहो हो	नाम	„ „ नाँव
आईं	„ „ आइयाँ	इत्यादि;	

निदान, विस्तार, तनक, नगर, वास आदि शब्द भी प्रयोग में आते थे। एक विशेषता यह थी कि स्त्रीलिंग बहुवचन की क्रिया का रूप भी भिन्न था। जैसे, औरतें आती थीं या जाती थीं के बदले औरतें आतियाँ थीं, जातियाँ थीं, लिखते थे। जान, बुलबुल और सैर को पुंलिंग लिखते थे।

तीसरे युग के मुख्य शायर जुरअत, हसन, इन्शा और मसहफ़ी हैं। इस युग में उर्दू भाषा पहले से बहुत परिमार्जित हुई। हिन्दी के बहुत से शब्द हटाकर उनके स्थान में अरबी-फ़ारसी के शब्द रक्खे गये। फिर भी जो बच रहे, उनकी सूची यह है—

नित, टुक, अँखड़ियाँ, ज़ोर (बहुत), भल्लारे, झमकड़ा, अजी, जिन्हों के, उन्हों को, पौन, ईधर, पूछो हो, शर्मातियाँ, कीधर, ऊधर इत्यादि।

चौथे युग के प्रसिद्ध शायर नासिख़, आतिश, मोमिन, ज़ौक़, ग़ालिब, अमीर, अनीस, दबीर, दाग़ और आसी हैं। इस युग में उर्दू भाषा पहले की अपेक्षा बहुत परिमार्जित हो गई। फिर भी कुछ पुराने शब्द रह ही गये। जैसे पः (पर), तलक (तक), बीहड़, बलबे, अज़ीज़ाँ, भारियाँ, अँधियारियाँ, इत्यादि।

पाँचवें युग के प्रसिद्ध शायर हाली, अकबर, इक़बाल और चकबस्त आदि हैं। भाषा पहले की अपेक्षा बहुत परिमार्जित और महावरेदार हो गई है। पर पद्य की भाषा में एक दोष, जो पहले से चला आता है, वह अब तक ज्यों का त्यों है। वह यह है कि शब्द स्वाधीन नहीं हैं, बल्कि छंद की गति के अधीन हैं। जैसे—

यह न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले यार होता।
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता॥

यह लिखा तो ऐसा गया है, पर पढ़ा जाता है इस तरह—

य न थी हमारि क़िस्मत कि विसाल यार होता।
अगरौर जीत रहते यहि इन्तज़ार होता॥

विसाल और जीत को ज़रा विसाले और जीते की ओर ज़ोर देकर पढ़ना चाहिये। हिन्दी में इस ध्वनि के लिये कोई चिन्ह नहीं।

शब्दों के मनमानी प्रयोग करने में ऐसी ही स्वतंत्रता ब्रजभाषा के कवियों ने ली है। परिणाम यह हुआ है कि जो लोग ब्रजभाषा या उर्दू नहीं जानते, वे इन भाषाओं के पद्य ठीक ठीक पढ़ नहीं सकते। आजकल के हिन्दी-कवि अब शब्दों का शुद्ध प्रयोग करने लगे हैं। इससे हिन्दी-कविता पढ़ने वालों को छंद की गति अलग सीखनी नहीं पड़ती, शब्द आप से आप छंद की गति बता देते हैं। हिन्दी में तो यह त्रुटि अब नाममात्र की रह गई है, पर उर्दू के कवि अभी इधर ध्यान देते हुये नहीं दिखाई पड़ते।

उर्दू का छन्द-शास्त्र

फ़ारसी का ही छन्द-शास्त्र उर्दू में भी काम देता है। प्रायः सब छंद भी वही हैं जो फ़ारसी में व्यवहृत होते हैं। हिन्दी की अपेक्षा उर्दू का पिंगल बहुत आसान है। हिन्दी में तो सैकड़ों हज़ारों प्रकार के छंद हैं। पर उर्दू में छंदों की संख्या अधिक से अधिक ५० होगी। हिन्दी की तरह इसमें अक्षरों और मात्राओं की गिनती नहीं करनी पड़ती। चार पाँच शब्द हैं, जिनको हेर-फेर कर रखने से नये छंद बन जाते हैं। छंद को उर्दू में बहर कहते हैं। मशहूर बहरें कुल उन्नीस हैं। उनमें से पाँच बहरें ख़ास अरबी के लिये हैं। बाकी अरबी और फ़ारसी दोनों में काम देती हैं। उर्दू के पुराने शायर मुश्किल बहरों में भी कुछ कह लेने का प्रयत्न कर लेते थे। पर अब मुश्किल बहरों का प्रचार उठता जाता है, और शायर लोग सहल

भाषा के साथ आसान बहरों का भी प्रयोग करने लगे हैं। यहाँ मुख्य मुख्य बहरें दी जाती हैं—

१—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन फ़ऊलुन।

उदाहरण—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे।
मुझे तुम छोड़ कर बन को सिधारे॥

हिन्दी में इस बहर का नाम 'सुमेरु' है।

२—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलुन।

उदाहरण—

दिल इबादत से चुराना और जन्नत की तलब।
कामचोर इस काम पर किस मुँह से उजरत की तलब॥

हिन्दी में इसे गीतिका कहते हैं।

३—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन।

उदाहरण—

ख़मोशी इस लिये दीवानगी में हमने हासिल की।
ख़ुदा जाने वो क्या पूछे हमारे मुँह से क्या निकले॥

हिन्दी में इसे विधाता छंद कहते हैं।

४—फ़ायलुन मफ़ाईलुन फ़ायलुन मफ़ाईलुन।

उदाहरण—

इश्क़ से तबीअत ने ज़ीस्त का मज़ा पाया।
दर्द की दवा पाई दर्द बे दवा पाया॥

५—मफ़ऊल मफ़ाईलुन मफ़ऊल मफ़ाईलुन।

उदाहरण—

ख़ुरशेद जो निकला है इस वक्त य लरज़ाँ है।
कोठे प खड़ा शायद वह माहेलक़ा होगा॥

हिन्दी में इसे 'दिग्पाल' कहते हैं।

६—मफ़ऊल मफ़ाईल मफ़ाईल मफ़ाईल ।

उदाहरण—

(१)

तू जिसको कमर समझा है शीशे में है वो वाल ।
आईने में छाला है नहीं ऐ गुलेतर नाफ़ ॥

(२)

जिसको तेरी आँखों से सरोकार रहेगा ।
बिल्फ़र्ज़ जिया भी तो वो बीमार रहेगा ॥

हिन्दी में इसे विहारी छन्द कहते हैं ।

७—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईल ।

उदाहरण—

मुहब्बत कोड़ियों के हो अगर मोल ।
बनी आदम न ले यह दर्देसर मोल ॥

हिन्दी में इसे 'शास्त्र' छंद कहते हैं ।

८—फ़ायलातुन मुफ़ायलुन फ़ेलुन ।

उदाहरण—

शाम से कुछ बुझा सा रहता है ।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का ॥

९—मफ़ऊल फ़ायलात मफ़ाईल फ़ायलुन ।

उदाहरण—

हाजत नहीं है शमा की मेरे मज़ार पर ।
हर शब है सोज़े आह से रोशन चिराग़े दिल ॥

हिन्दी में इसे 'बिहारी' छंद कहते हैं ।

१०—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलुन ।

उदाहरण—

सुबह गुज़री शाम होने आई मीर।
तू न चेता औ बहुत दिन कम रहा॥

हिन्दी में यह "पीयूषवर्ष" छन्द कहलाता है।

११—फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन।

उदाहरण—

समाया है जब से तू आँखों में मेरी।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है॥

हिन्दी में इसे "भुजंगप्रयात" कहते हैं।

१२—फ़ऊल फ़ेलुन, फ़ऊल फ़ेलुन, फ़ऊल फ़ेलुन, फ़ऊल फ़ेलुन।

उदाहरण—

कहाँ हैं हम में अब ऐसे सालिक कि राह ढूँढ़ी क़दम उठाया।
जो हैं तो ऐसे ही रह गये हैं किताब देखी क़लम उठाया॥

इसे हिन्दी में यशोदा छंद कहते हैं।

१३—मफ़ऊल मफ़ाईलुन मफ़ऊल फ़ऊलुन, मफ़ऊल फ़ऊलुन।

उदाहरण—

सौदाए मुहब्बत जो नहीं है तुझे ऐ दिल, तो फिर मुझे बतला।
क्यों चाक किये अपने गरेबाँ को है फिरता, आँखों प है वहशत॥

हिन्दी में इसे खरारी छंद कहते हैं।

१४—मुतफ़ायलुन, मुतफ़ायलुन, मुतफ़ायलुन, मुतफ़ायलुन।

उदाहरण—

पसे मर्ग मेरी मज़ार पर जो दिया किसी ने जला दिया।
उसे आह दामने बाद ने सरे शाम ही से बुझा दिया॥

हिन्दी में यह "हरिगीतिका" छंद कहलाता है।

१५—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलात।

उदाहरण—

पूछते हैं वह कि ग़ालिब कौन है।
कोई बतलाओ कि हम बतलायँ क्या?

हिन्दी में इसे 'आनन्द वर्धक' कहते हैं

१६—मफ़ऊल फ़ायलातुन मफ़ऊल फ़ायलातुन।

उदाहरण—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोसताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह है चमन हमारा॥

हिन्दी में यह "दिग्पाल" छन्द कहलाता है।

१७—फ़ऊलन, फ़ऊलन, फ़ऊलन, फ़अल।

उदाहरण—

कहे एक जब सुन ले इन्सान दो
कि हक़ने ज़ुबाँ एक दी कान दो॥

हिन्दी में यह "भुजंगी" छंद कहलाता है।

१८—मफ़ऊल मफ़ायलुन फ़ऊलन या मफ़ाईल।

उदाहरण—

हर शाख़ में है शिगूफ़ाकारी।
समरः है क़लम का हम्देवारी॥

१९—मफ़ायलुन, मफ़ायलुन, मफ़ायलुन, मफ़ायलुन।

उदाहरण—

य थोड़ी थोड़ी मै न दे कलाई मोड़ मोड़ कर।
भला हो तेरा साक़िया पिला दे ख़ुम निचोड़ कर॥

नियमों को स्वर से पढ़ने पर उसी में उसकी गति भी निकल आती है। जो लोग उर्दू नहीं जानते, वे उर्दू के शेरों को शुद्ध शुद्ध पढ़ नहीं सकते। क्योंकि उर्दू के शायर आवश्यकता पड़ने पर दीर्घ अक्षरों को ह्रस्व

कह कर पढ़ा करते हैं। पर लिखने में वे उन्हें शुद्ध लिखते हैं। केवल हिन्दी जानने वाला उन्हें शुद्ध शुद्ध पढ़ तो लेगा; संभव है, अर्थ भी समझ ले, पर वह उसे शुद्ध बहर में नहीं पढ़ सकेगा। जैसे—

गुलिस्ताँ में जाकर हरेक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है।

बहर के अनुसार पढ़ने के लिये यह इस तरह लिखा जाना चाहिये—

गुलिस्ताँ में जाकर हर्ँक गुल क्ो द्ेखा।
न तेरी सि रंगत न तेरी सि बू है॥

हिन्दी में यह भुजंगप्रयात छंद है। भुजंगप्रयात की गति जानकर जब यह पढ़ा जायगा तो जीभ आप से आप इसे ठीक कर लेगी। ऊपर जो बहरों के लक्षण दिये गये हैं, उनके पढ़ने का अभ्यास कर लेने पर उर्दू की कविता पढ़ने में गति की गड़बड़ कम हो जायगी।

यहाँ उर्दू-पद्य के ख़ास ख़ास विषयों का वर्णन किया जाता है—

ग़ज़ल—ग़ज़ल का अर्थ है जवानी का हाल बयान करना अथवा माशूक़ की संगति और इश्क़ का ज़िक्र करना। इसलिये एक ग़ज़ल में प्रेम के भिन्न भिन्न भावों के शेर लाने का नियम रक्खा गया है। किसी शेर में आशिक़ अपनी मनोवेदना प्रकट करता है, जिससे माशूक़ पर उसका कुछ प्रभाव पड़े; किसी शेर में वह माशूक़ की प्रशंसा करता है, जिससे वह प्रसन्न हो। किसी शेर में वह माशूक़ की वफ़ा और जफ़ा का ज़िक्र करता है, और किसी में रक़ीब की शिकायत करता है। मतलब यह कि जिस बात के कहने से माशूक़ के प्रसन्न होने या और कोई ख़ास नतीजा निकलने की आशा होती है, वही बातें ग़ज़ल में आती हैं। कभी कभी सौन्दर्य, प्राकृतिक छटा और वैराग्य की बातें भी ग़ज़ल में कही जाती हैं। अब तो देशभक्ति की बातें भी ग़ज़लों में कही जाने लगी हैं। क्योंकि ग़ज़लों का स्वर बहुत लोकप्रिय हो चला है। इसलिये उर्दू के शायर ग़ज़लों से देशसेवा का काम भी लेने लगे हैं। पर ग़ज़लों

का जन्म केवल प्रेम-चर्चा के लिये हुआ था। अरब में ग़ज़ल नाम का एक आदमी था। उसने अपनी सारी उम्र इश्क़बाज़ी में बिता दी। वह सदा इश्क़ और हुस्न की ही बातें किया करता था और उन्हीं विषयों के शेर पढ़ा करता था। उसी समय से, जिस कविता में इश्क़ और हुस्न का ज़िक्र हो, लोग उसे ग़ज़ल की याद में ग़ज़ल कहने लगे। आजकल ग़ज़लों का बहुत प्रचार है। मशायरों में तो ख़ासकर ग़ज़लें पढ़ी जाती हैं। थियेटरों में ग़ज़लों का बोल बाला है। रंडियाँ प्रायः ग़ज़ल ही गाती हैं। आजकल के सभा-समाजों में भी स्वदेशी ग़ज़लों का अधिकार होता जाता है और अब तो हिन्दी के कवि भी हिन्दी-भाषा में ग़ज़लें लिखने लगे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि धीरे धीरे ग़ज़लों की सर्वप्रियता बढ़ती जा रही है।

ग़ज़ल में शेरों की संख्या ताक़ होती है। साधारण नियम यह है कि एक ग़ज़ल में पाँच से कम और ग्यारह से ज़्यादे शेर न होने चाहियें। पर कुछ पुराने शायरों ने कम से कम तीन शेर और अधिक से अधिक पचीस शेर तक की ग़ज़लें मानी हैं। आजकल सत्रह, उन्नीस और इक्कीस शेर तक की ग़ज़लें लिखी जाती हैं। यदि कोई कवि ग़ज़ल के नियमों की पाबंदी और मुहावरों का उचित प्रयोग करता हुआ पचास शेर की ग़ज़ल लिखे तो यह उसके लिये गौरव की बात है, नियम की अवहेलना नहीं।

क़सीदा—क़सीदा उन शेरों को कहते हैं जिनमें किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निन्दा हो। जैसे ग़ज़ल के लिये प्रेम की रीति-भाँति से जानकार होना आवश्यक है; वैसे ही क़सीदे के लिये दरबारी क़ायदे-क़ानून, और लोक-व्यवहार से अभिज्ञ होना बहुत ज़रूरी है। जिससे शायर प्रत्येक विषय का ठीक ठीक वर्णन कर सके और कोई बात मर्यादा के बाहर न जा सके। ग़ालिब कहते हैं कि जो शायर क़सीदा नहीं लिख सकता, उसकी गिनती शायरों में करनी ही न चाहिये। बात बिल्कुल सच है। क़सीदे से ही कवि की बहुज्ञता का पता

चलता है। उर्दू में सौदा, इन्शा और ज़ौक़ का क़सीदा लिखने में बड़ा नाम है।

मसनवी—मसनवी किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के पद्यबद्ध जीवन-वृत्तान्त या कल्पित कथा को कहते हैं। मसनवी उर्दू में बहुत कम हैं। सबसे अधिक प्रसिद्ध "गुलज़ार नसीम" है, जो पंडित दयाशङ्कर 'नसीम' की लिखी हुई है। फ़ारसी में शाहनामा, सिकन्दर नामा और युसुफ़ ज़ुलेख़ा नाम की मसनवियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

मरसिया—मरसिया शोक-गीत को कहते हैं। प्रायः सब मरसियों में हसन-हुसेन का शोकप्रद वृत्तान्त कहा गया है। अनीस और दबीर के मरसिये बहुत प्रसिद्ध हैं।

छंद और विषय के सम्बन्ध में कुछ और मुख्य बातें—

रुबाई—रुबाई चार मिसरों का छंद है। इसमें नीति या उपदेश की बड़ी बड़ी बातें थोड़े शब्दों में सुन्दर महावरेदार भाषा में कही जाती हैं। अरबी और फ़ारसी में रुबाइयों का बड़ा प्रचार है। फ़ारसी में उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि संसार की प्रायः सब प्रसिद्ध भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं।

मुसल्लस—मुसल्लस को हिन्दी में तिपदा या तिकड़ी कहना चाहिये। इसमें तीन मिसरे समान वज़न के होते हैं। जैसे—

या तो अफ़सर मेरा शाहाना बनाया होता।
या मेरा ताज गदायाना बनाया होता।
वर्ना ऐसा जो बनाया न बनाया होता॥

मुख़म्मस—मुख़म्मस को पँचकड़ी समझिये। इसमें पाँच पाँच कड़ियों का एक एक बंद होता है। पाँचवीं कड़ी का तुक मिलता हुआ रहता है। जैसे—

मुझे तो कहते हो रंग तेरा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुल है।
ज़माने की तरह ढङ्ग किसका घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।
न आज मानूँगा कल का वादा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।
किसे भरोसा कि दम का नक़शा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।
घड़ी की सूरत लगा है खटका घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है॥

मैं हूँ मरीज़े तपे मुहब्बत अयाँ है बेताबियों की सूरत।
मैं दिलजला हूँ दमे अयादत न जी के बचने की आई नौबत।
जो कोई दम पाये गर्म सोहबत तो फूँके जा सूरे सहर उल्फ़त।
न कीजो हमदम ज़रा भी ग़फ़लत कि मिस्ले अज़गर है दम की हालत।
जो दम में ज़िन्दा तो पल में मुर्दा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है॥

मुसद्दस—मुसद्दस छः मिसरों या तीन शेरों का होता है। पहले के चार मिसरों के तुक एक होने चाहियें। शेष दो के तुक अलग होते हैं। उर्दू में "हाली" का मुसद्दस बहुत प्रसिद्ध है। अनीस और दबीर के मरसिये भी मुसद्दस में हैं।

तारीख़—किसी घटना या किसी के जन्म-मरण का जब सन् कहना होता है, तब उर्दू में उस ढंग से नहीं कहा जाता, जैसे हिन्दी में है। हिन्दी कविता में अंक के स्थान पर उसी संख्या वाले पदार्थ का नाम लिखा जाता है। जैसे सं० १९८२ कहना होगा तो दृग, वसु, अङ्क, मयङ्क, (२ ८ ९ १) से मतलब निकल आयेगा। पर उर्दू में एक एक अक्षर के लिये अलग संख्या की कल्पना कर ली गई है। कोई सन् कहना होता है तो कुछ ऐसे अक्षरों के शब्द बनाकर लिखते हैं, जिनसे घटना का अर्थ भी निकल आता है और अक्षरों की संख्याएँ जोड़ने से सन् भी। प्रत्येक अक्षरके लिये जो अंक नियत हैं, उनकी सूची यहाँ दी जाती है—

अलिफ़	= १	क़ाफ़	= २०	रे	= २००
बे	= २	लाम	= ३०	शीन	= ३००
जीम	= ३	मीम	= ४०	ते	= ४००
दाल	= ४	नूँ	= ५०	से	= ५००
हे (छोटा)	= ५	सीन	= ६०	ख़े	= ६००
वाव	= ६	ऐन	= ७०	ज़ाल	= ७००
ज़े	= ७	फ़े	= ८०	ज़ाद	= ८००
हे (बड़ा)	= ८	साद	= ९०	ज़ोए	= ९००
तोए	= ९	क़ाफ़	= १००	ग़ैन	= १०००
ई (बड़ी)	= १०				

जैसे, "कुनम शुक्रे खुदा", यह तारीख़ एक बार नासिख़ ने क़त्ल होते होते बच जाने पर कही थी। इसमें इतने अक्षर हैं—ک ن م ش ک ر خ د ا सबके अंक जोड़ने पर हिजरी सन् १२३५ आयेगा।

यहाँ तक तो उर्दू के पिंगल का बाहरी परिचय दिया गया, अब उसकी भीतरी बातें सुनिये—

शेर

शेर अरबी भाषा का शब्द है, और इसका अर्थ है बाल। सौन्दर्य के लिये बाल आवश्यक पदार्थ है। सुन्दर चेहरे पर ज़ुल्फ़ या अलक या लट का लहराना कितना मनोहर होता है यह मनुष्य-जाति से छिपा नहीं है। बालों से सुन्दरता खिल उठती है। प्रेमिका कितनी ही सुन्दरी हो, पर सिर मुँड़ाये हो तो वह प्रेमी को पसंद नहीं आ सकती। शेर का भी यही हाल है। कविता एक सुन्दरी है। शेर उसके केश हैं। या साहित्य (अदब) माशूक़ है और शेर उसके गेसू हैं।

साहित्यिक परिभाषा में शेर एक ऐसा साँचा है, जिसमें विचार ढाले जाते हैं। ढालने वाला शायर कहलाता है।

शेर की मिसाल भौं से दी जाती है। क्योंकि माशूक़ के चेहरे पर दो भवें एक शेर के मिसरों की तरह होती है। 'लुग़त' में शेर का अर्थ "जानना" भी लिखा है।

मिसरा

मिसरा एक चरण या एक पंक्ति को कहते हैं।

मतला

किसी ग़ज़ल में जो सबसे पहला शेर होता है, उसे मतला कहते हैं।

मक़ता

ग़ज़ल में सबसे अंतिम शेर को मक़ता कहते हैं।

क़ाफ़िया

क़ाफ़िया को हिन्दी में तुक कहते हैं। हिन्दी की तरह उर्दू में तुक मिलाने की कड़ाइयाँ नहीं हैं। उर्दू में लगा, सदा, दुआ, बजा का भी तुक मिला हुआ समझा जाता है। क्योंकि इन शब्दों में सब के अंत में "आ" है।

रदीफ़

रदीफ़ क़ाफ़िये के बाद आती है और वह सब शेरों में अपनी जगह पर क़ायम रहती है। कभी बदलती नहीं। जैसे—

> इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना।
> दर्द का हद से गुज़रना दवा है हो जाना॥

इसमें फ़ना और दवा क़ाफ़िया और "हो जाना" रदीफ़ है। यह 'होजाना' सारी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे में आयेगा। कभी-कभी एक ही अक्षर की रदीफ़ होती हैं। और कभी-कभी आधे से अधिक मिसरा तक रदीफ़ हो जाता है। जैसे—

> मुझे तो प्यार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।
> वो बुत बेज़ार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता॥

इसमें "प्यार" और "बेज़ार" क़ाफ़िये और "ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता" कुल का कुल रदीफ़ है।

कभी कभी रदीफ़ रहती ही नहीं। जैसे—

हर शाख़ में है शिगूफ़ाकारी।
समरा है क़लम का हम्दे बारी॥

इसमें कारी और बारी का क़ाफ़िया तो है, पर रदीफ़ नहीं।

तख़ल्लुस

तख़ल्लुस को हिन्दी में उपनाम कहते हैं। यह एक छोटा सा नाम होता है, जिससे कवि और उसकी कविता पहचानी जाती है। इस तरह उपनाम रखने की प्रथा पहले पहल फ़ारसी-कवियों ने चलाई। अरबी में उपनाम रखने का चलन नहीं था। संस्कृत-कवियों ने भी उपनाम नहीं रक्खा। फ़ारसी के कवियों से उर्दू और हिन्दी दोनों ने उपनाम की प्रथा ग्रहण की। आजकल हिन्दी के कवि इस प्रथा को छोड़ रहे हैं।

उपनाम कभी-कभी तो असली नामही का एक भाग होता है। जैसे, इंशाअल्ला खाँ ने अपना उपनाम "इंशा" रक्खा। मोमिन खाँ ने "मोमिन" और मुंशी अमीर अहमद मीनाई ने "अमीर"। और कभी कभी अपनी पसंद के अनुसार नाम से बिल्कुल भिन्न उपनाम रक्खा जाता है। जैसे, मुहम्मद तक़ी का "मीर", मिर्ज़ा रफ़ी का "सौदा", मिर्ज़ा असदुल्लाखाँ का "ग़ालिब", शेख़ इब्राहीम का "ज़ौक़" और नवाब मिर्ज़ा खाँ का "दाग़", इत्यादि।

कोई कोई शायर जो फ़ारसी और उर्दू दोनों में कविता करते हैं, अपने दो उपनाम रखते हैं। जैसे अम्बरशाह खाँ का फ़ारसी में अम्बर और उर्दू में आशुफ़्ता, नवाब मुस्तफ़ा ख़ाँ का फ़ारसी में हसरती और उर्दू में शेफ़्ता, इत्यादि।

कुछ लोगों का ख़याल है कि उपनाम स्त्रीवाची शब्द न होने चाहियें। जैसे 'नसीम'। पर यह उनकी भूल है। जुरअत, इशरत,

हसरत, वहशत, हशमत आदि बहुत से स्त्रीवाची उपनाम हैं। उपनाम अच्छा होना चाहिये, चाहे वह स्त्रीलिंग हो या पुल्लिंग।

कोई कोई शायर मतला और मक़ता दोनों में अपना उपनाम लाते हैं। सौदा, मीर और नासिख़ ने प्रायः ऐसा किया है। पर ख़ास रिवाज मक़ते में ही उपनाम लाने का है।

मशायरा

उर्दू का मशायरा (कवि-सम्मेलन) देखने लायक़ होता है। तरह तरह के बाँके-तिर्छे शायर जमा होते हैं। सब जुदा जुदा पिनक में मस्त होते हैं। सब के पढ़ने के ढंग, नाज़ोअदा, कटछँट, ख़ास-ख़ास तरीक़े के होते हैं। आजकल कहीं कहीं दिन में भी मशायरे होते हैं। पर रिवाज है रात ही में होने का। जब सब शायर जमा हो जाते हैं और दर्शक काफ़ी तादाद में आ जाते हैं, तब मशायरा शुरू होता है। एक मीर मजलिस चुन लिया जाता है। मशायरे में जो जो अपनी ग़ज़लें पढ़ना चाहते हैं, उनके नामों की सूची मीर मजलिस के सामने रख दी जाती है। आजकल तो बिजली की रोशनी या झाड़ फ़ानूस या लालटेनों का ज़माना है, पर पहले मोमबत्तियाँ ही मजलिस की आँखें थीं। अब मशायरे में कुछ अंग्रेज़ी ढंग आ गया है। अर्थात्, शायर लोग मीर मजलिस के पास ऊँचे तख़्त पर खड़े होकर अपनी ग़ज़लें पढ़ते हैं। पर पहले शायरों को अपनी जगह से उठना नहीं पड़ता था। एक व्यक्ति शमा लेकर शायर के सामने जा पहुँचता था। उसी के उजाले में शायर चहकने लगते थे। लुत्फ़ उस समय आता है, जब शायर अपनी ग़ज़ल शुरू करते हैं। पहले वे उठ खड़े होते हैं। बायें हाथ में काग़ज़ का टुकड़ा होता है, जिसमें वे ग़ज़ल लिखकर लाते हैं। शुरू करने के पहले कहते हैं—मतला अर्ज़ है। मजलिस में से आवाज़ आती है—इरशाद। यदि शायर का कोई ख़ास प्रेमी या मान्य व्यक्ति वहाँ हुआ तो वह उसका नाम लेकर कहता है,...साहब मुलाहज़ा फरमाइये। वे आकर्षित होते हैं। प्रायः वे भी "इरशाद हो"

कहते हैं। इतनी पेशबंदी के बाद शायर ने एक शेर पढ़ा। अगर वह अच्छा शेर हुआ, यदि उसने श्रोताओं के कलेजे कतर दिये तो लोग यकायक चीख़ उठते हैं—वाह वा, वाह वा, क्या ख़ूब कहा है; ला जवाब शेर है; कलेजा निकाल कर रख दिया है; मुकर्रर इरशाद; मुकर्रर इरशाद; सुबहान अल्ला; क्या अच्छी तबीअत पाई है; ज़रा फिर कहिये; आदि प्रशंसा-सूचक वाक्यों की झड़ी लग जाती है। उधर तो श्रोता प्रशंसा करते हैं, इधर शायर का यह हाल कि वह ज़रा झुककर जिधर-जिधर से तारीफ़ की आवाज़ें आती हैं, उधर-उधर घूम-घूम कर दाहिने हाथ की हथेली को बार-बार माथे तक ले जाकर सलाम करता रहता है। जब इस कसरत से छुट्टी मिलती है तब शायर दूसरा शेर पढ़ता है। फिर वही तारीफ़ के वाक्य उड़ने लगते हैं। तालियाँ भी पीटी जाती हैं। क़हक़हे और चहचहे से घर गूँज उठता है। जोश में आकर लोग खड़े भी हो जाते हैं और शायर की ओर हाथ उठाकर कहते हैं—आपने तो ग़ज़ब कर दिया; आपका यह शेर लाख रुपये का है; क़लम चूम लेने को जी चाहता है। और ख़ूब ख़ूब की आवाज़ तो ख़ूब हो आती है। उधर शायर को बार-बार सिर झुका-झुका कर, हथेली को मुँह के सामने लेजा लेजा कर अपनी नम्रता दिखानी पड़ती है। शायर हाथ से ही सलाम नहीं करता, बल्कि मुँह से "आदाबर्ज़ है" भी कहता जाता है। जिसके शेर लोग दो बार तीन बार सुनते हैं, वह अपना अहोभाग्य मानता है। बड़े शायर अपने शागिर्दों को भी साथ ले जाते हैं। वे शागिर्द तो अपने उस्ताद के शेरों पर और भी आसमान सिर पर उठा लेते हैं। कभी कभी दो प्रतिद्वंदी शायर जब मशायरे में आ जाते हैं, तब तो और भी मज़ा आता है। तरफ़दार लोग वह नारे लगाते हैं कि मजलिस के बाहर के लोगों को एक हंगामा सा मालूम होता है। पहले के शायर तलवार और छूरी कटार भी बाँधकर मशायरे में जाया करते थे। कोई कोई तो तमंचे भर के बैठा करते थे। कभी-कभी तलवारें म्यान से निकल भी

पड़ती थीं। पर अब पुलीस के भय से वह मज़ा ही जाता रहा। ग़ज़ल के अख़ीर में शायर को फिर कहना पड़ता है—मक़्ता अर्ज़ है। श्रोताओं में से कोई कहता है—इरशाद। ऐसा ही तमाशा प्रत्येक शायर के उठने पर होता है। मशायरे में सचमुच बड़ी चहल-पहल रहती है। थोड़ी देर के लिये आदमी अपने सांसारिक कष्टों को भूल जाता है। कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि शेर सुनकर करुणा या हर्ष के मारे लोग मूर्च्छित हो गये हैं। मैंने एक मशायरे में एक शेर से प्रभावित होकर एक मौलाना को घंटों मूर्च्छित पड़े देखा था। पता नहीं, पाखंड था या सच।

कभी-कभी जब कोई शायर बहुत अच्छी, दिल को फड़काने वाली, तबीअत को हुलसानेवाली, कलेजे में तीर की तरह चुभने वाली कोई ग़ज़ल पढ़ते हैं तो बाक़ी शायर अपनी-अपनी ग़ज़लें फाड़कर फेंक देते हैं और कहते हैं कि अब इसके आगे कुछ पढ़ना फ़ुज़ूल है। यह कहकर कुछ हँस भी देते हैं। पढ़ने वाला शायर इसे अपना बहुत सम्मान समझता हैं। वह जीवन भर इस घटना को याद रखता है, और अपने मित्रों और शागिर्दों के सामने इसकी चर्चा भी करता है।

मशायरे में किसी-किसी उर्दू-शायर का ग़ज़ल पढ़ने का ढंग बहुत ही आकर्षक और दर्द से भरा होता है। श्रोताओं पर उसका भी असर पड़ता है।

उर्दू-गद्य

सं० १८५८ में सैयद मुहम्मद बख़्श हैदरी ने तोता कहानी लिखी। इन्हीं ने सं० १८६२ में "दह मजलिस" "गुलज़ार दानिश" और "तारीख़ नादिरी" भी लिखी है। "दह मजलिस" की भूमिका से इनकी भाषा की बानगी आगे दी जाती है—

"फिर दिल में गुज़रा कि ऐसे काम को अक़्ल चाहिये कामिल और

मदद किसू तरफ़ की होय शामिल, क्योंकि बेताईदे समदी और बेमददे जनाबे अहमदी यह मुश्किल सूरत पज़ीर न होवे ओर गौहरे मुराद रिश्तए उमीद में न आवे लिहाज़ा कोई इस सनअत का न हुआ, और अबतक तरजुमे फ़ारसी बइबारते हिन्दी नसर नहीं हुआ.।"

इस उद्धरण में "हिन्दी" शब्द ध्यान देने योग्य है। इससे मालूम होता है कि हैदरी महाशय अपनी भाषा को, जिसमें उन्होंने किताब लिखी, हिन्दी ही जानते और मानते थे। मीर की मसनवी "शोलए इश्क़" का सौदा ने गद्य किया था। इसकी भूमिका के दो एक वाक्य ये हैं—

"अगर हक़ ताला ने सुबह कागज़ सफ़ेद की मानिन्द शाम स्याह करने को यह ख़ाकसारे ख़लक किया है तो हर इन्सान के फ़ानूसे दिमाग़ में चिराग़े होश दिया है। चाहिये कि देखकर नुक्ताचीनी करे, वर्ना गज़न्द ज़हर आलूद से वे अजल काहे को मरे।"

मीर हसन की मशहूर मसनवी सहरुलबयान को मीर बहादुर अली ने उर्दू-गद्य में किया था। इन्हीं ने सं० १८५९ में इख़लाके हिन्दी नाम की एक किताब भी लिखी थी।

मीर अम्मन ने सं० १८५८-५९ में बाग़ोबहार नाम की किताब लिखी। मीर शेर अली "अफ़सोस" ने सं० १८६५ में सादी की गुलिस्ताँ का अनुवाद "बाग़ उर्दू" नाम से किया। इन्हीं ने "आराइशे महफ़िल" भी लिखी थी। सं० १८५८ में मीरज़ा अली ने 'गुलशने हिन्द' नाम की पुस्तक लिखी, जिसमें उर्दू-कवियों का ज़िक्र है। सं० १८५९ में काज़िम अली ने ब्रजभाषा की सं० १७७३ की लिखी हुई शकुंतला का उर्दू में उल्था किया। इन्हीं ने सं० १८६९ में "दस्तूरे हिन्द" नाम की एक और किताब लिखी है, जिसमें हिन्दू-मुसलमानों के त्योहारों का ज़िक्र है। सं० १८६२ में मज़हर अली ने बैतालपचीसी को उर्दू में लिखा।

डॉक्टर गिलक्रिस्ट ने सं० १८५५ में अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी का एक कोष तैयार कर के छपाया। सं० १८६५ में डॉक्टर टेलर ने एक हिन्दुस्तानी

अंग्रेज़ी कोष छपाया। सं० १८६६ में ग्लैडन साहब ने फ़ारसी-हिन्दुस्तानी का कोष छपवाया। जान शेक्सपियर ने सं० १८७४ में एक उर्दू कोष तैयार करके छपवाया। सं० १८६४ में इंशा ने उर्दू का सबसे पहला व्याकरण "क़वायद उर्दू" लिखा। इसी संवत् में मौलवी शाह अब्दुलक़ादिर ने क़ुरान शरीफ़ का तर्जुमा उर्दू में किया। स०१८९२ से सरकारी दफ़्तरों में उर्दू का प्रचार हुआ। सं० १८९३ में सबसे पहला लीथो प्रेस दिल्ली में खुला। सं० १८९३ में सबसे पहला उर्दू का अख़बार दिल्ली से प्रोफ़ेसर आज़ाद के पिता के सम्पादकत्व में निकला।

इसके बाद उर्दू की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हुई। हिन्दुओं ने उर्दू की उन्नति में बहुत काफ़ी हाथ बटाया। कायस्थों की तो उर्दू मातृभाषा ही हो गई थी। पंडित रतननाथ 'सरशार' ने उर्दू में "फ़िसाने आज़ाद" नाम की एक ऐसी दिलचस्प किताब लिखी, जिसका उर्दू में जोड़ नहीं। कश्मीरियों में अब भी उर्दू का बहुत प्रचार है। अब भी हिन्दुओं में उर्दू के बहुत अच्छे लेखक और कवि मौजूद हैं।

उर्दू-कविता

कविता एक कला है जो उतनी ही पुरानी है, जितनी पुरानी मनुष्य जाति है। असभ्य और अशिक्षित कही जाने वाली ज़ातियों में भी यह कला किसी न किसी रूप में मौजूद है। यह वह मैजिक लैन्टर्न है जो घने अंधकार में ही अधिक साफ़ और काम की होती है। जैसे जैसे ज्ञान का उजाला बढ़ता जाता है वैसे वैसे कविता की कला मंद पड़ती जाती है। क्योंकि समाज स्वयं कवित्वमय हो जाता है। कविता का कोई विषय उसके लिये नया नहीं रह जाता। यही कारण है कि समाज की उन्नत दशा में वैसे कवि नहीं पैदा होते जैसे उसको प्रारंभिक दशा में होते हैं। इस विचित्रता का भी कारण है। वह यह है कि प्रारंभिक दशा में जब मनुष्य का मस्तिष्क घटनाओं के ज्ञान से ख़ाली होता है, तब वह प्रकृति की अद्भुत लीलाओं को देखकर चकित और आनंदित होता है। वही

आनंद वाणी के द्वारा फूट निकलता है। वही कविता है। कविता के द्वारा प्रकृति समाज में मनोविकारों को जागृत करती है और संसार को चलाती है। यह कला मनुष्य-निर्मित नहीं, बल्कि प्रकृति का दान है। यह प्रकृति की कही हुई वह कहानी है, जिसे मनुष्य-जाति ने बाल्यावस्था में सुनकर अपनी जवानी का स्वप्न तैयार किया था। यह कला प्रकृति की वह उँगली है जो मस्तिष्क की गाँठें खोलती है और प्रकृति के कमरों के परदे उठाती है। मनुष्य को इस कला के लिये गर्व करना ही न चाहिये; क्योंकि यह उसके वश की चीज़ नहीं। जिसे प्रकृति देती है, वही इसे पाता है। प्रत्येक समाज को प्रकृति थोड़े से ऐसे व्यक्ति देती है, जिनके हाथ में कविता का दीपक होता है, और जो समाज को राह दिखलाते हैं। सब मनुष्य वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, शेख सादी और शेक्सपियर नहीं हो सकते।

कविता एक ऐसी कला है जो केवल मनोरंजक ही नहीं, बल्कि अत्यंत उपयोगी भी है। चित्र और मूर्ति बनाने की कलाओं में मनोरंजन का अंश उनकी उपयोगिता से कहीं अधिक है; गाने की कला में भी मनोरंजन की मात्रा से उपयोगिता बहुत है। पर कविता की कला जहाँ मनुष्य का मनोरंजन करती है, वहाँ उससे कई गुना अधिक लाभ भी पहुँचाती है। कविता ऐसे पुरुष तैयार करती है, जिनका इतिहास लिखा जाता है। कविता ऐसा समाज तैयार करती है जिनसे इतिहास बनता है। कविता भक्तों को भगवान की, मनुष्य को कर्तव्य की, खेत में काम करते हुये किसान को गृहस्थी की और उद्विग्न संसार में परस्पर सहयोगिता की याद दिलाती है। अन्य कलाओं में यह क्षमता नहीं है।

हम किसी कला को उसकी उपयोगिता से अलग नहीं कर सकते। कला में कुछ उपयोगिता होने से ही मनुष्य उसकी ओर आकर्षित होता है। केवल मनोरंजन भी तो कला की उपयोगिता ही है। हम मानते हैं कि यदि किसी शिल्पी ने शेर की एक मूर्ति बनाई, तो हमें यह देखना चाहिये की उसमें शिल्प-चातुर्य कितना है। अर्थात्, कला को कला की दृष्टि

से ही देखना चाहिये। शेर समाज के लिये उपयोगी है या हानिकारक, इस दृष्टि से उसे न देखना चाहिये। पर यदि वह शेर मनुष्यों को खाने भी लगे तो? तब तो उस कला का आदर मनुष्य-जाति नहीं कर सकती। कला की दृष्टि से तो सभी फूल सुन्दर होते हैं; पर जिनमें सौन्दर्य के साथ सुगंध भी है, वे ही विशेष आदर के पात्र हैं। यही दशा कविता की कला की भी है। यदि कविता से मनुष्य का मनोरंजन होता रहा और हृदय और मस्तिष्क पर उसका अच्छा प्रभाव भी पड़ता रहा, वहाँ तक तो मनुष्य के लिये वह लाभप्रद है; पर यदि उससे मनोरंजन तो हुआ, पर उस मनोरंजन से शराब, अफीम या भाँग का गुण पैदा हुआ तो वह मनुष्य-जाति के लिये उपयोगी नहीं कही जा सकती। वह नशे की चीज़ों के समान त्याज्य है।

कविता में भाषा मुख्य है या भाव? इसका निर्णय करना उतना ही कठिन है, जितना

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया लखाय॥

इस दोहे में यह पता लगाना कि गुरु बड़े हैं या गोविन्द। भाषा गुरु है और भाव गोविन्द हैं। भाषा न हो तो भाव का पता भी न चले, और भाव न हो तो भाषा को कोई पूछे भी नहीं। दोनों का यही रहस्य है।

हिन्दू-जाति का इतिहास कवित्वमय है। हिन्दू-जाति कविता की ही गोद में पलकर बड़ी हुई है। इस जाति की नस नस से कविता का तार बजता है। हल जोतना, बोना, निराना, आटा पीसना, झाड़ू देना, पशु चराना, जन्म, उपनयन, विवाह, संध्या, हवन, आदि बड़े से बड़े और छोटे से छोटे काम को इस जाति ने कविता से सम्बद्ध करके उन्हें सरस, सुगम, सुखद और सुन्दर बना लिया है। इस जाति के तो दातुन करने, हाथ धोने और नहाने खाने तक के नियम भी कविता की भाषामें लिखे

गये हैं। इस जाति के इतिहास से कविता का इतिहास अलग किया ही नहीं जा सकता। मुसलमानों में भी कविता का प्रचार उनके आदि काल से है। अरब में इतने अधिक कवि हुये, जितने संसार की किसी जाति में शायद ही हुये होंगे। फ़ारस तो कविता की क्रीड़ा-भूमि ही है। फ़ारसी जैसी मधुर भाषा संसार में विरली ही होगी। वैसी ही उसकी कविता भी अमृत की तरंगिणी है। फ़ारसी में सब रसों की रसीली कविता हैं। उर्दू के शरीर में फ़ारसी का ही प्राण छटपटा रहा है।

यद्यपि क़ुरान में कविता करने की मुमानियत है। पर मनुष्य प्रकृति के अधीन है, प्रकृति मनुष्य के अधीन नहीं। प्रकृति ने रुकावट होते हुये भी मुसलमानों में ऐसे ऐसे कवि उत्पन्न किये, जिनकी गणना संसार के उच्च श्रेणी के कवियों में होती है। मुसलमान अरब से निकल कर जहाँ जहाँ गये, अपने मशायरे साथ ले गये, और उन्होंने कविता को अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना रक्खा। हिन्दुस्तान में मुसलमानों का शासन बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। यद्यपि उनकी भाषा के बहुत से शब्द उनसे कई शताब्दी पहले यहाँ आ चुके थे, पर उन्होंने औरंगज़ेब के समय तक उन शब्दों से कुछ काम नहीं लिया था। वे शब्द गुप्तचर की तरह हिन्दुस्तान की भाषा में घुसकर घर-घर में जा पहुँचे थे और किसी संगठन की राह देखते थे। वली और उसके पहले के कुछ कवियों ने उन शब्दों से मिश्रित हिन्दी में कविता करनी शुरू की और उन शब्दों से एक अलग भाषा ईजाद की। उनका प्रयत्न धीरे धीरे उन्नति करता गया और उनकी वह नवनिर्मित भाषा बिल्कुल स्वतंत्र हो गई।

चूँकि उर्दू का विकास दिल्ली में हुआ था, इसलिये दिल्ली की ही बोलचाल और महावरे प्रामाणिक माने जाते हैं। प्रामाणिकता का दूसरा स्थान लखनऊ भी है। दिल्ली के शायर जब अपने उजड़े हुये वतन को छोड़ कर लखनऊ में जाकर बसे, तब उन्होंने लखनऊ की बोलचाल में भी दिल्ली के महावरे भर दिये। अब महावरों की प्रामाणिकता के लिये दिल्ली के बाद लखनऊ ही का नम्बर है। यद्यपि दोनों स्थानों की बोलचाल

में स्त्रीलिंग-पुल्लिंग का थोड़ा मतभेद है, पर वह धीरे-धीरे घटता जा रहा है। और आशा है कि थोड़े ही दिनों में भाषा का एक रूप स्थिर हो जायगा। उर्दू भाषा को सुधारने में उर्दू-कवियों ने जो परिश्रम किया है, हिन्दी में उसकी तुलना नहीं की जा सकती। उर्दू-कवियों ने शुद्ध, सुबोध और महावरेदार भाषा लिखने में कमाल कर दिया है। उनके भावों तक पहुँचने के लिये भाषा सहायक होती है, न कि बाधक। हिन्दी में क्रिया कहीं है, कर्ता कहीं है, कर्म कहीं है, विशेषण कहीं है; पर उर्दू-कविता में सब ठीक ठीक स्थान पर इस तरह बैठा दिये जाते हैं कि उन्हें ढूँढ़ना नहीं पड़ता। भाषा को इस तरह साफ़-सुथरी बनाने के लिये उर्दू-कवियों ने बड़ा प्रयत्न किया है। एक एक शब्द पर उनके यहाँ बरसों बहस छिड़ी रहती थी। शब्दों के सुन्दर प्रयोग पर मशायरों में वाहवाही मिलती थी और अशुद्ध प्रयोग पर आक्षेप होते थे। उर्दू-कविता में शब्दों का ही खेल तो है। उसी के लिये वह आदरणीय है। भाव तो दो तीन सौ वर्षों से प्रायः एक से ही रहे हैं। एक ही भाव शब्दों की अलग अलग पोशाक पहन कर खड़े हैं। जिसे जो पोशाक अच्छी लगती है, वह उसी की तारीफ़ करता है।

उस्ताद करने की प्रथा से भी उर्दू-भाषा के परिमार्जन में बड़ी सहायता मिली है। सर्वसाधारण में उस्ताद ही प्रामाणिक माने जाते थे। उनको प्रतिदिन अपने शागिर्दों की कविता का संशोधन करना पड़ता था, इससे भाषा-सम्बन्धी काटछाँट बराबर जारी रहती थी। परिणाम यह हुआ कि उस्तादों की खराद पर चढ़कर उर्दू भाषा साफ़, चिकनी और मज़ेदार हो गई। हिन्दी में "गुरु बिन होय न ज्ञान" का उपदेश तो है, और सीखने वाले गुरु करते भी हैं, पर गुरु और शिष्य किसी में वह लगन, वह उत्साह नहीं पाया जाता, जो उर्दू के उस्तादों और शागिर्दों में होता है। यही कारण है कि जो सफलता उर्दू वालों ने सौ दो सौ वर्षों में कर दिखाई, उसे हिन्दी वाले चार पाँच सौ वर्षों में भी न प्राप्त कर सके। भाषा के लालित्य की ओर हिन्दी वालों का ध्यान ही कम रहा

वे सदा भाव ही में मग्न रहे, और उसमें उनकी बराबरी उर्दू वाले नहीं कर सकते। इससे हम बेधड़क यह कह सकते हैं कि हिन्दी की कविता भाव-प्रधान है और उर्दू की कविता भाषा-प्रधान।

उर्दू-कविता में वर्णित मुख्य विषयों की सूची यह है—

आशिक़, माशूक़, बाग़, सहरा, दरिया, महफ़िल, ग़म।

सब के अलग अलग विवरण इस प्रकार हैं—

आशिक़ के विशेषण—बीमार, बेख़बर, आवारा, इश्क का पुतला, दीवाना, बेक़रार, रोनेवाला, बदनाम, वफ़ादार, जफ़ाकश, ग़म ज़दः, ज़माने का सताया हुआ, बदबख़्त, रंजीदः, शराबी, मदहोश, ज़ईफ़, रक़ीबों का दुश्मन इत्यादि।

आशिक़ के विशेषण—बेवफ़ा, बेरहम, ज़ालिम, क़ातिल, सय्याद, जल्लाद, हरजाई, बदख़ू, बदज़बान, बदचलन, बदगुमान, बेमुरव्वत, काफ़िर, बुत इत्यादि।

माशूक़ के काम—आसमान, ज़माना, भाग्य और सितारों की शिकायत; भक्त, उपदेशक और सूफ़ी को खोटी-खरी सुनाना; शराबी, शराब बेचने वाले, शराब पिलानेवाले और नशे की तारीफ़ करना; ईमान, इसलाम और भक्ति से घृणा प्रकट करना; कुफ्र और लामज़हब होने से प्रेम प्रकट करना और धार्मिकता से घृणा प्रकट करना; इश्क और आवारगी को विद्या, बुद्धि और राज्य से बढ़कर बताना; माशूक़ की गली में पागल की तरह घूमना, उसके मकान की दीवार के साये में बैठे रहना, ख़ाब देखना, मर जाना, क़ब्र में से माशूक को झाँकना, बुतपरस्ती को मुसल्मानियत से बढ़कर बताना, बोसा लेना आदि।

माशूक़ के काम—आशिक़ को क़त्ल करना; एक आशिक़ को घायल छोड़कर उसके रक़ीब से मिलना; आशिक़ की क़ब्र पर जाना; मुँह बिचका देना; ठोकर लगा देना; रूठ जाना; मन जाना; गालियाँ देना; गुस्ताख़ी और शरारत करना; बेवफ़ा होना; आशिक़ की शिकायत करना, इत्यादि।

माशूक़ का नखशिख-वर्णन—

सूरत—हूर, परी, चाँद, सूरज, गुल, बाग़, जन्नत आदि।

आँख—नरगिस, आहू (मृग), बादाम, जादूगर, मस्त आदि।

ज़ुल्फ़, पलक, अदा—साँप, तीर, तलवार आदि।

भौं—कमान।

चिबुक—कुँआँ।

दाँत—मोती।

होंठ—लाल, याक़ूत, पंखड़ी, अमृत आदि।

मुँह—ग़ुंचा।

कमर—बाल।

क़द—सरो, सनोबर, शमशाद, क़यामत आदि।

गति—बला, आफ़त, क़यामत आदि।

शृङ्गार की चीजें—दर्पण, हिना, सुर्मा, काजल, मिस्सी, पान, क़बा चीरा, पगड़ी, बुर्क़ा, नक़ाब, चादर, चोटी आदि।

बाग़—बहार, ख़िज़ाँ, सरो, क़ुमरी, गुल, बुलबुल, सय्याद, गुलचीं बाग़बान, घोंसला, जाल, पिंजड़ा, ख़ार इत्यादि।

सहरा—वादी, चश्मा, बहता पानी, सब्ज़ा, प्यास, धूल, सरसर काँटे, डाकू, राह दिखानेवाला, क़ाफ़िला, लैली, मजनूं वहशत, जनूँ इत्यादि।

दरिया—किस्ती, मल्लाह, मौज, किनारा, हुबाब, बूँद, मछली डुबकी इत्यादि।

महफ़िल—शमा, परवाना, शराब, कबाब, प्याला, मीना, सुराही शराब के मटके, नशा, ख़ुमार, साक़ी, दौर, गाना, चं मिज़राब, इत्यादि।

ग़म—रोना, आह, बेचैनी, दर्द, ईर्ष्या, शौक़, जुदाई, याद करना धीरज धरना, हसरत, रंज, ग़म, अलम, दाग़, ज़ख्म, ख़लिश

तपिश, कब्र, कफ़न, जनाज़ा।

यही इने गिने विषय और शब्द हैं, जिनके अंदर सम्पूर्ण उर्दू शायरी भरी है। विषय के अनुकूल ही उर्दू-शायरों के उपनाम भी हैं। जैसे—

आतिश, आरज़ू आराम, आज़ाद, आश्ना, आफ़त, आह, आही, अटल, अरमान, असीर, अश्क, अफ़सोस, इन्तज़ार, बेताब, बेदम, बेरंग, बेकल, बीमार, बेहोश, बेदिल, बेदार, बे ख़ुद, बेख़बर, बेजान, पाबन्द, परवाना, परेशान, तपिश, तिश्ना, तनहा, जंग, हसरत, हैरान, हैरत, ख़ाक, ख़ाकसार, ख़ामोश, ख़ता, खलिश, ख़ुमार, खंजर, दाग़, दबंग, दर्दमंद, दर्दी, दिलसोज़, दीवाना, ज़र्रा, रुसवा, रश्क, रक़ीब, रंज, रिन्द, ज़ार, ज़ख्म, ज़ख्मी, सौदा, शैदा, ज़ब्त, फ़क़ीर, मरीज़, नाक़िस, हसरत, इत्यादि।

कल्पना ही कविता का प्राण है। जो कवि अपनी अद्भुत कल्पना से अपने पाठक को एक अनोखे, अचिन्त्य और आनन्दमय प्रदेश में ले जाकर खड़ा कर देता है, वही सच्चा कवि है। केवल किसी घटना-विशेष का वर्णन कर देना कविता नहीं, वह केवल पद्य है।

उर्दू-कविता में भावों को प्रकट करने का जो ढंग है, वह हिन्दी से कहीं अच्छा है। उर्दू-कवि एक एक शब्द को चुनकर ऐसा बैठा देते हैं कि सुनतेही वे कलेजे में तीर की तरह जा घुसते हैं। तबीअत फड़क उठती है, दिल उछल पड़ता है, वाह वा आप से आप गले से फूट निकलती है। हिन्दी के मनोहर भावों को तो चुपचाप भीतर ही भीतर पी जाना पड़ता है। भाषा भावों को चमकाने में बहुत ही कम सहायता देती है। पर उर्दू में भाषा झटपट उठा कर पाठक को भावों की गोद में बैठा देती है, जहाँ वह मस्त हो जाता है। लीजिये, कुछ बानगी देखिये—

ग़ालिब कहते हैं—

उनके देखे से जो आजाती है मुँह पर रौनक़।
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है॥

पहले यह ध्यान दीजिये कि भाषा ने भाव के पास पहुँचने में को
वाधा नहीं डाली; बल्कि पूरी सहायता दी। सब शब्द अपने-अप
स्थान पर बैठे हुये अपनी अपनी ड्यूटी बजा रहे हैं। अब भाव
बहार देखिये। आशिक़ विरह-वेदना से मर रहा है। माशूक़ को देख
ही आशिक़ के चेहरे पर रौनक़ आगई। जिसे देखकर माशूक़ को इ
बात का धोखा हुआ कि बीमार की हालत अच्छी है। देखिये, इस
कवि की कितनी सूक्ष्मदर्शिता है !

एक शेर 'मोमिन' का सुनिये—

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता॥

माशूक़ से आशिक़ कह रहा है कि जब मेरे पास कोई दूसरा व्यि
नहीं होता, अर्थात् एकान्त रहता है, तब तुम रहते हो। भावार्थ य
कि एकान्त होते ही माशूक़ की मूर्ति आशिक़ की नज़रों में फि
लगती है। वह उसी के ध्यान में मग्न हो जाता है। इस शेर में कितन
स्वाभाविकता है। और कहने का ढंग कैसा अनोखा है !

मीर का एक शेर है—

शाम से कुछ बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का॥

क्या लाजवाब शेर है। मुफ़लिस के चिराग़ में मीर ने क्या करु
भर दी है। छोटा सा शेर, ज़रा सी बात और उसके भीतर करुणा
समुद्र लहरें मार रहा है।

हफ़ीज़ कहते हैं—

हाय, क्या चीज़ ग़रीबुल्वतनी होती है।
बैठ जाता हूँ जहाँ छाँव घनी होती है॥

ऐ ! है !! क्या ख़ूब कहा है। ग़रीबुल्वतनी में कितना सुख

कितनी स्वतंत्रता है। जहाँ घनी छाया देखी, बैठ गये। न कुरसी की ज़रूरत, न तख़्ते की।

मीर हसन कहते हैं—

दिल के आईने में है तसवीरे यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥

सारा मज़ा "गर्दन झुकाई" में है।

एक और शायर का कलाम सुनिये—

महफ़िले यार से उठने को उठे तो लेकिन।
दर्द की तरह उठे गिर पड़े आँसू की तरह॥

आहा! कैसी मुश्किल से उठे और कैसे सहज में गिर पड़े। बयान की ख़ूबी क़ाबिल तारीफ़ है।

इस तरह की मिसालें कहाँ तक दें। उर्दू-कविता में इस तरह का आनंद बहुत है। साधारण सी साधारण बात को भी उस्तादों ने चमका दिया है। अब ज़रा लच्छेदार बातें सुनिये।

उर्दू-शायरों की सी अत्युक्तियाँ हिन्दी में किसी कवि ने नहीं कही हैं। बिहारी ने कुछ मोर्चा लिया है ज़रूर; पर वह हैं अकेले और यहाँ तो एक से एक बढ़कर कहने वाले हैं। उर्दू के शायर उड़ते-उड़ते इतने ऊँचे उड़े हैं कि उन्हें अपने उड़ने की जगह भी दिखाई नहीं पड़ती। एक शायर फ़रमाते हैं—

अर्ज़ कीजै जौहरे अन्देशा की गर्मी कहाँ।
कुछ ख़याल आया था वहशत का कि सहरा जल गया॥

हज़रत इतने जल रहे थे कि ख़याल भी आग हो रहा था। उसमें जंगल की याद आई तो जंगल ही जल गया। मगर ख़ुद जीते जागते रहे। यही तो करामात है।

इसी तरह का एक शेर नासिख़ ने भी कहा है—

है वो परकालए आफ़त क़दे मौज़ूँ तेरा।
दीजिये उससे जो तशबीह सनोबर जल जाय॥

नासिख़ के माशूक़ का क़द ऐसा आफ़त का परकाला है कि उससे यदि सनोवर की उपमा दी जाय तो उपमा देने मात्र से वह जल जायगा। पता नहीं, नासिख़ ने कभी माशूक़ का बोसा लिया था या नहीं। एक जगह आप और फ़रमाते हैं—

आफ़ताव उसमें अगर आवे तना बन जावे।
नूर का दख़्ल नहीं मेरे सियह ख़ाने में॥

आप इतने घने अंधकार में बैठते थे कि यदि वहाँ सूर्य आवे तो वह तवे की तरह मालूम हो!

विरहावस्था में नासिख़ दुबले होते होते अदृश्य हो गये। माशूक़ उन्हें देखने आया। उस समय का ज़िक्र है—

इन्तहाये लाग़री से जब नज़र आया न मैं।
हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये॥

खटमल और जूँ से भी बहुत छोटे हो गये थे। तभी तो माशूक़ ने कहा कि बिस्तर को झाड़ो, कहीं कोने में पड़े होंगे, टपक पड़ेंगे।

सुबहान अल्ला!

नासिख़ ने और भी कहा है—

बंद हो जाती हैं सैयारों की आँखें ख़ौफ़ से।
फेंकता हूँ जब मैं दिल से आहे आतिशबार को॥

आप की आह के डर से नक्षत्र आँखें मूँद लेते हैं।
मीर कहते हैं—

तारे तो ये नहीं मेरी आहों से रात की।
सूराख़ पड़ गये हैं तमाम आसमान में॥

आहें क्या थीं, बन्दूक की गोलियाँ थीं। आसमान रूपी छत में लगीं, तो पार हो गईं।

"जुरअत" की भी जुरअत देखने योग्य है—

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहाँ है ? किस तरह की है ? किधर है॥

सनम के कमर थी ही नहीं। जुरअत से किसी ने कह दिया होगा कि है। इसी संदेह की निवृत्ति के लिये "जुरअत" ने यह प्रश्न किया है। उस्ताद नसीर की उस्तादी देखिये—

य मजनूँ है, नहीं आहू है लैला।
पहनकर पोसतीं निकला है घर से॥
जिसे तू सींग समझे है, य हैं ख़ार।
लगे हैं पाँव में, निकले हैं सर से॥

अर्थात्, ऐ लैला, यह हिरन नहीं, मजनूँ है। इसके सिर पर जो तुझे सींगें दिखाई पड़ती हैं, वह सींगें नहीं है, बल्कि काँटे हैं जो पैर में चुभे और सिर में निकल आये। देखा आपने, मियाँ नसीर के ज़माने में इतने बड़े काँटे होते थे।

सौदा ने तो और भी ग़ज़ब ढाया है—

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक़ सबने कह कह कर।
हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखों से बह बह कर॥

अंदाज़ा लगाइये, कितने आँसू रहे होंगे, जिनका समुंदर बन गया। फिर भी सौदा कहते हैं कि 'कुछ' आँसू थे। कैसे अच्छे रोने वाले थे, निर्दयी काल ने सब को खा डाला।

ज़ौक़ का एक शेर है—

न करता ज़ब्ता मैं नाला तो फिर ऐसा धुवाँ होता।
कि नीचे आसमाँ के यक नया और आसमाँ होता॥

हमारी राय में इसका दूसरा चरण ऐसा होता तो ठीक था—

"कि खाली मच्छरो पिस्सू से यह हिन्दोसताँ होता ॥"

ऐसे शायरों को बंगाल में बैठा देना चाहिये था, जहाँ मच्छरों ने क़यामत पैदा कर दी है।

अमीर मीनाई के दिल का हाल सुनिये—

यही सोज़े दिल है तो महशर में जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगल कर ॥

लाहौलविलाक़ूवत; ऐसा जलता हुआ दिल है कि जहन्नुम में भी न पच सकेगा। अच्छा हुआ हज़रत मीनाई पहले ही दुनिया से चले गये। कहीं अंग्रेज़ों के हाथ पड़ते तो अब तक उनके दिल की आग से कितनी ही मशीनें और इंजन चलते होते और होटलों में खाना पकता होता।

ज़रा अकबर की भी अकबरी देख लीजिये—

दिला! क्यों कर मैं उस रुखसारे रोशन के मुक़ाबिल हूँ।
जिसे ख़ुरशीदे महशर देखकर कहता है मैं तिल हूँ॥

माशूक़ के गाल इतने चमकदार हैं कि उन्हें देखकर प्रलयकाल का सूर्य कहता है कि मैं तो इस गाल का तिल हूँ।

मियाँ नज़ीर अकबराबादी की सूझ देखिए—

मुझ ज़ुल्फ़ के मारे को न ज़ंजीर पिन्हाओ।
काफ़ी है मेरी क़ैद को यक मकड़ी का जाला॥

वाह वा, ऐसे घायल हुये हैं कि मकड़ी के जाले से बाँधे जा सकते हैं।

बादशाह ज़फ़र ख़ूब बचे—

नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में।
कोने कोने ढूँढ़ती फिरती क़ज़ा थी, मैं न था॥

अब ज़रा ग़ालिब की मौज देखिये—

क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये।
हमने तो बोसा लिया था ख़्वाब में तसवीर का॥

माशूक़ के गाल ऐसे कोमल हैं कि ग़ालिब ने स्वप्न में माशूक़ के चित्र के गाल को चूमा तो वह नीले पड़ गये। इतने कोमल हैं कि चुम्बन के आघात से ही नीले पड़ गये। और वह चुम्बन भी तसवीर के गाल का। तसवीर भी स्वप्न में दिखाई पड़ी थी। एक ही शेर में कितना बड़ा इतिहास भर दिया है।

एक दूसरा शेर—

शब को किसी के ख़्वाब में आया न हो कहीं।
दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुक बदन के पाँव॥

नाज़ुक बदन माशूक़ के पाँव आज दुख रहे हैं। कहीं वह रात में किसी के स्वप्न में तो नहीं गया था? कैसी कोमलता है, कुछ कहा नहीं जाता।

उर्दू के शायरों ने इस तरह की कल्पनायें बहुत की हैं। पर ऐसे वर्णनों में स्वाभाविकता नहीं रह गई। विरहियों की करुणाजनक स्थिति के वर्णन से करुणा उत्पन्न होनी चाहिये, न कि हास्य, जैसा उपर्युक्त शेरों के पढ़ने से होता है।

हिन्दी की कविता संस्कृत के आधार पर नौ रसों में है। पर उर्दू की कविता में शृंगार, करुण, शान्त, भय और वीभत्स यही पाँच ही रस मुख्य हैं। हास्यरस में तो शायद नज़ीर का यह एक ही शेर है—

सुबह जब बोल उठा मुर्ग़े सहर कुकड़ू कूँ।
उठ गये पास से वो रह गया मैं टुटरूँ टूँ॥

अधिकांश करुण और वीभत्स रस है।

फ़ारसी में इश्क़ की दो सूरतें हैं, इश्क़ हक़ीकी और इश्क़ मजाज़ी। इश्क़ हक़ीक़ी में भक्ति और संसार की नश्वरता की बातें होती हैं और

इश्क़ मजाज़ी में आशिक़-माशूक़ के चोचले होते हैं। उर्दू कवियों ने इश्क़ हक़ीक़ी को नापसंद करके इश्क़ मजाज़ी का दामन पकड़ा। क्योंकि यह विषय उस समय के मुसलमान-समाज के अनुकूल था। भारत में मुसलमानी बादशाहत के अंतिम दिनों में ऐश-इशरत का ऐसा बाज़ार गर्म था कि इश्क़ हक़ीक़ी की ठंढी आहें उसमें प्रवेश नहीं कर सकती थीं। अतएव जैसा समाज था, वैसे कवि पैदा हुये। समाज के होनहार के अनुकूल उन्होंने कविताएँ लिखीं। तीतरबाज़ी, बटेरबाज़ी, पतंगबाज़ी, रंडीबाज़ी आदि जहाँ बहुत सी बाज़ियाँ लोगों में घर किये हुये थीं, वहाँ एक शेरबाज़ी भी और कई बाज़ियों को हमराह लेकर आ घुसी। क़द्रदानी का चारा मिलते ही उर्दू-कवियों ने कमाल के हाथ दिखाने शुरू किये। उन्होंने उर्दू को ख़ूब सँवारा, महावरों के भूषण से ख़ूब सजाया, ईरान की शोख़ी, नज़ाकत और चुलबुलापन सिखाया, उसे गुदगुदाया, हँसाया, खेलाया और उस पर मनुष्य का एक एक अमूल्य जीवन निसार किया। सब तरह से सज-धज कर, शायरों के कलेजे का ख़ून पीकर, दिमाग़ चाटकर वह महफ़िल में आई और रसिकों के गले का हार हुई।

उर्दू-कविता का शरीर तो है हिन्दुस्तान का, पर इसमें प्राण है ईरान का। संस्कृत और हिन्दी के कवियों में यह प्रथा चली आती है कि वे जहाँ स्त्री पुरुष का प्रेम प्रकट करते हैं, वहाँ स्त्री को पुरुष पर पहले आसक्त बताते हैं। घटना चाहे इसके विपरीत हो, पर नियम प्रायः यही है। रामायण में पहले-पहल सीता के हृदय में राम के लिये प्रेम अंकु-रित हुआ दिखाया गया है। भागवत में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-संदेश पहले भेजा। इसी तरह दमयंती नल पर और संयोगिता पृथ्वीराज पर आसक्त दिखाई गई है। अंग्रेज़ी कवियों का मार्ग इसके ठीक विपरीत है। वे पहले पुरुष को स्त्री पर आसक्त दिखलाते हैं। उनके देश का सामाजिक नियम भी ऐसा ही है। वहाँ पहले पुरुष ही अपना प्रणय प्रकट करता है। पर उर्दू-कवियों का मार्ग इन दोनों से जुदा है। वे पुरुष पर पुरुष को आसक्त बतलाते हैं। या

फ़ारसी की नक़ल है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह फ़ारसी में कहाँ से आया।

एक विद्वान् का कथन है कि यह भाव फ़ारस वालों ने यूनान से लिया। वहाँ की कविता में भी नायिका नहीं है। पर वहाँ की कविता में माशूक़ के साथ आशिक़ की उस कुप्रवृत्तिका भाव भी नहीं हैं, जो फ़ारसी और उर्दू की कविता में है। अनुमान किया जाता है कि फ़ारसी के कवियों ने यूनानी कविता का भाव पहले-पहल सूफ़ियाने ढंग पर ग्रहण किया। पीछे वही बिगड़ते-बिगड़ते अश्लीलता की सीमा पर पहुँच गया, जिससे संसार में एक अप्राकृतिक प्रेम की नींव पड़ी। उर्दू ने फ़ारसी से यह सभ्यता सीखी। उर्दू-कवियों ने फ़ारसी से आशिक़-माशूक़ ही नहीं लिये, बल्कि उनके साथ विषय-व्यापार की भी आयोजना की। फ़ारसी का बुलबुल फ़ारस में ही रोता-गाता है। हिन्दुस्तान के बुलबुल से उसका नाम के सिवा और कोई मेल नहीं। उसका रंग-रूप, रहन-सहन बोली-बानी सब यहाँ से भिन्न है। पर उर्दू के कवि उसके घोंसले के लिये हिन्दुस्तान में रोते रहे हैं। पंजाब की बड़ी बड़ी पाँच नदियाँ, गंगा, जमुना, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी से अच्छी तरह परिचित होने पर भी उर्दू-कवियों ने फ़ारस और अरब की नदियों में ही हाथ धोये हैं। ईसा, मूसा, मनसूर, लैली, मजनूँ, शीरीं फ़रहाद और यूसुफ़ ज़ुलेखा के क़िस्से भी भारत के नहीं, पर उर्दू ने उन्हें अपने गुलशन में जगह दी है। इस प्रकार पश्चिम का प्रकाश पूर्व में लाकर दिखलाने का प्रयत्न किया गया है।

कुछ लोग यह कहेंगे कि उर्दू-कविता में माशूक़ पुरुष को ही नहीं, स्त्री को भी कहते हैं। हम थोड़ी देर के लिये इसे माने लेते हैं। इसके पक्ष में हम कुछ प्रमाण भी उपस्थित किये देते हैं—

उस नाक की लौंग सूँघता हूँ।
हाजत मुझे क्या इलायची की॥

अख़गर।

कील सोने की बने अक्से तिलाई रंग से।
हल्क़ए बीनी की जा रक्खो जो तिनका नाक में॥

नादिर

कान छिदवाये जो उसने तो ग़श आया मुझको।
बालेपन ही में किया बस तहो बाला मुझको॥

सबा

बोझ इतनी चीज़ का क्या दस्त नाज़ुक से उठे।
आरसी छल्ला कड़े पहुँची सितारे चूड़ियाँ॥

नादिर

आ रही ज़ुल्फ़ हवा से जो तेरी पिस्ताँ पर।
अब्र ने ले लिया आग़ोश में कुहसारों को॥

जलाल

तुम्हारी माँग ने लूटा है होशो सब्रो क़रार।
लुटा है शाम के रस्ते में क़ाफ़िला दिल का॥

जोश

इन शेरों में ऐसी चीज़ों का वर्णन है जो केवल स्त्रियों से सम्बन्ध रखती हैं। पर ऐसे शेर नाममात्र के हैं। उर्दू के प्रायः सब कवियों ने ऐसे शेर लिखे हैं, जिनमें माशूक़ को स्पष्टतः पुरुष माना है। उदाहरण के लिये कुछ शेर यहाँ पेश किये जाते हैं—

ख़त नमूदार हुआ वस्ल की रातें आईं।
जिनका अंदेशा था मुँह पर वही बातें आईं॥

असीर

सब्ज़ए ख़त है तिलिस्मे हुस्न से मुँह पर अयाँ।
वर्ना कब मुमकिन है शोले पर ठहरना काह का॥

आबाद

साफ़ था जब तक कि ख़त तब तक जवाबे साफ़ था।
अब तो ख़त आने लगा शायद कि ख़त आने लगा॥

एक उस्ताद

सेज ऊपर ग़ैर की रहता है अब लोटा हुआ।
ज़र के लालच इस क़दर वह सीमतन खोटा हुआ॥

आबरू

रखे इस लायची लड़के को कोई कब तलक बहला।
चली जाती हैं फ़रमायश कभी यह ला कभी वह ला॥

नाज़ी

प्रो० आज़ाद आबेहयात के पृष्ठ ५४ पर लिखते हैं—

"रात को अहले मुहब्बत के जलसे में अव्वल तो साक़ी का आना वाजिब है। फिर माशूक़ बजाय एक नाज़नीन औरत के परीज़ाद लड़का हो।" इत्यादि

इस अवतरण से भी प्रमाणित होता कि उर्दू-शायरी का माशूक़ स्त्री नहीं, कोई परीज़ाद लड़का है।

इस से भी एक बात और विचित्र है कि माशूक़, जो आशिक़ को प्राण से भी प्रिय होता हैं, ऐसे बुरे विशेषणों से याद किया गया है कि वह प्रेमी है या कोई अत्यन्त निकृष्ट व्यक्ति, यह समझना कठिन हो जाता है। हिन्दी में भक्त या प्रेमी अपने उपास्य या प्रियतम को बहुत प्रिय और अच्छे शब्दों में याद करता है। विरह में वह भी झुँझलाता है, पर प्रियतम को गालियाँ नहीं देता। कभी-कभी यह कह देता है कि प्रियतम, तुम बड़े निर्मोही हो, कभी सुध भी नहीं लेते। पर उसे हत्यारा, बेईमान, क्रूर, गुस्ताख़, निर्दयी, जल्लाद, काफ़िर वह कभी नहीं कहता। उर्दू में माशूक़ के लिये यह साधारण सी बात है। किसी शायर का माशूक़ क़ातिल, काफ़िर, ज़ालिम, बेवफ़ा, सय्याद और हरजाई होने से नहीं बचा है। ऐसा कहने में कुछ मज़ा आता हो, या प्रेम की वृद्धि होती हो, सो

बात नहीं है। क्योंकि विशुद्ध प्रेम में अश्लीलता और क्रोध की उत्पत्ति नहीं हो सकती। हाँ, काम-वासना में क्रोध की उत्पत्ति होती है—

"कामात्क्रोधोभिजायते"

इससे यह प्रकट होता है कि उर्दू-कविता में इश्क़ जिस वस्तु का नाम है वह वास्तव में काम-वासना है, विशुद्ध प्रेम नहीं। संस्कृत और हिन्दी-कविता में वीभत्स रस श्रृङ्गार रस का विरोधी माना गया है। यह स्वाभाविक भी है। पर उर्दू-कविता में सर्वत्र श्रृङ्गार के साथ वीभत्स रस प्रवाहित है। किसी उर्दू-कवि के दीवान को खोल लीजिये तो मालूम होता है मानों किसी क़साईख़ाने में पहुँच गये हैं। कहीं कटार चल रही है, कहीं तलवार बरस रही है, कहीं भाले और बरछियों ने कुहराम मचा रक्खा है, कहीं बिजली गिर रही है, कहीं माशूक़ क़साई की तरह आशिक़ों को ज़बह कर रहा है, आशिक़ तड़प रहे हैं, गला दबा है ग़ों ग़ों कर रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, गालियाँ दे रहे हैं, क़यामत के दिन का भय दिखा रहे हैं, कोई कोई माशूक़ की तलवार के नीचे गर्दन झुकाये क़त्ल होने को खड़े हैं, कोई ख़ून के आँसू पी रहे हैं, चारोंओर मृत्यु का बाज़ार गर्म है। दीवान में शुरू से लेकर अख़ीर तक इसी प्रकार का वीभत्स दृश्य दिखाई पड़ता है। इस वर्णन से पढ़ने वालों की तबीअत में अच्छी भावना की जागृति हो सकती है या नहीं, यह विचारणीय है।

उर्दू-कविता में सर्वत्र मृत्यु का वर्णन मिलता है। प्रत्येक कवि, प्रत्येक आशिक़ मरने के लिये मर रहा है, उसे और अभिलाषा ही नहीं। इससे यदि उर्दू-कविता को मृत्यु-संगीत कहें तो अत्युक्ति न होगी। अश्लीलता की तो हद हो गई है। जिस ज़माने में उर्दू-कवियों का दौर दौरा था, उन्हीं दिनों हिन्दी-कवियों में भी श्रृङ्गार ज़ोरों पर था। सब नायिकाओं के रहस्य-भेद में आत्मा परमात्मा को भूल बैठे थे। उन्होंने भी अश्लील श्रृङ्गार की वृद्धि की है। इससे मालूम होता है कि वह ज़माना ही ऐसा था, जब हिन्दू-मुसलमान दोनों श्रृङ्गार रस में सिर तक डूबे हुये थे।

उर्दू-कविता का समाज पर प्रभाव कैसा पड़ा ? इस पर भी विचार करना आवश्यक है। कविता एक कला है। और कला में मनोरंजन का ही अंश अधिक रहता है। पर कविता एक ऐसी कला है, जिससे केवल मनोरंजन ही नहीं होता, बल्कि चरित्र पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। तुलसी-दास की कविता का प्रभाव हिन्दुओं के जीवन पर स्पष्ट लक्षित होता है। इसी प्रकार हिन्दी के शृङ्गारी कवियों का प्रभाव भी कुछ कम नहीं। कविता को लोग मनोरंजन के लिए याद रखतें हैं। आवश्यकता पड़ने पर गाते और सुनते सुनाते भी हैं, और उससे मनोरंजन होता भी है। पर कहने और सुनने वाले के कामों पर भी उसका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। उर्दू-कविता का भी यही हाल है। उर्दू-कविता के जानने सुनने वालों के जीवन का अध्ययन कीजिये तो मालूम होगा कि उनमें अधिकांश ऐसे हैं, जो मद्य-मांस का सेवन करते हैं, इश्क़ का भी नशा रखते हैं, रात दिन ख़ून-ख़ञ्जर की चर्चा करते रहने से उनका स्वभाव भी क्रोधी और रक्तप्रिय हो जाता है। यदि यह सब कुछ न हुआ तो मनुष्य बेकार, काहिल, अव्यवस्थित और मरीज़े इश्क़ तो हो ही जाता है। नवयुवकों के लिये तो यह बहुत हानिकारक है। उर्दू-कविता मनुष्य को मृत्यु की ओर ढकेलती है।

ज़रा अब उर्दू-कविता को मुसलमानी बादशाहत के साथ मिलाकर उसका स्वप्न देखिये। जब भारत में मुग़लों का शासन ज़ोरों पर था, तब कविता और गान-विद्या का काम केवल मनोरंजन था। बादशाह स्वयं उसमें लिप्त न होते थे। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरङ्गजेब इन चारों में से एक भी ऐसा नहीं था, जिसने कविता को अपनी प्रसिद्धि का साधन बनाया हो। औरङ्ग़ज़ेब तो कविता और गाने का शत्रु ही था। पर जब बादशाही का पतन हुआ, झट शायरी ने दरबार पर क़ब्ज़ा कर लिया। शाहआलम से लेकर बहादुरशाह ज़फ़र तक के दरबार में हा, हा हू, हू के सिवा और क्या था। शाहआलम दिल्ली के बादशाह थे। रात दिन आपस की लड़ाई-झगड़े और सल्तनत छिन जाने के भय से परेशान

रहते थे। सं० १७८९ में एक रुहेले ने दीवाने ख़ास में छाती पर चढ़ कर आपकी आँखें निकाल ली थीं। आपने सारा जीवन तकलीफ़ ही में काटा। पर शायरी का शौक़ आप को भी था। आफ़ताब तख़ल्लुस था। आप फ़रमाते हैं—

सुबह तो जाम से गुज़रती है।
शब दिल आराम से गुज़रती है॥
आक़बत की ख़बर ख़ुदा जाने।
अब तो आराम से गुज़रती है॥

उसी तख़्त पर बहादुरशाह ज़फ़र बैठे। वे भी शायर थे। बुतों पर शैदा थे। आशिक़ थे। ज़ौक़ के शागिर्द थे। तलवार छोड़ कर क़लम पर हाथ रक्खा था कि तबाही आई; पकड़ कर नज़रबन्द कर दिये गये। आप की शायरी के भी नमूने देख लीजिये—

न लेता कोई सौदा मोल बाज़ारे मुहब्बत का।
मगर कुछ जान अपनी बेंच कर लेते तो हम लेते॥
लगाया जाम ओठों से जो उसने मुझको रश्क़ आया।
कि बोसा इन लबों का ऐ ज़फ़र लेते तो हम लेते॥

× × ×

मर गया हूँ मैं किसी की हसरते दीदार में।
क़ब्र तक लाशा हमारा राह तकता जायगा॥

× × ×

दिलो जाँ दीनो ईमाँ है जो लेना है सनम ले लो।
करूँगा उज्र देने में न मैं मुझसे क़सम ले लो॥

× × ×

गले में तौक़ बेड़ी पाँव में लड़के लिये पत्थर।
अजब इक शान से ऐ बुत तेरा दीवाना आता है॥

यह है हिन्दुस्तान के एक बादशाह का कलाम। भला ऐसे दीवानों से कहीं बादशाहत चल सकती है। अकबर ने क्या ख़ूब कहा है—

क़सीदे से न चलता है न यह दोहे से चलता है।
समझ लो ख़ूब कारे सल्तनत लोहे से चलता है॥

दिल्ली के बाद लखनऊ में शायरी का रंग जमा। नवाब आसफ़ुद्दौला साहब को भी इश्क़ का रोग लगा। आप फ़रमाते हैं—

जहाँ तेग़ उसकी अलम देखते हैं।
वहाँ अपना हम सर क़लम देखते हैं॥
जो जलवा सनम तुझ में हम देखते हैं।
ख़ुदा की ख़ुदाई में कम देखते हैं॥
गुज़रते हैं सौ सौ ख़याल अपने दिल में।
किसी का जो नक़्शे क़दम देखते हैं॥
बुतों की गली में शबो रोज़ "आसफ़"।
तमाशा ख़ुदाई का हम देखते हैं॥

लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह थे। आप "अख़्तर" तख़ल्लुस रखते थे। आपके ज़माने में तो उर्दू शायरी का चाँद सोलहों कलाओं से निकला। अवध के भाग्य-विधाता, सुनिये, क्या फरमाते हैं—

नहीं चाहिये क़स्रे फ़िरदौस ज़ाहिद।
मुझे है फ़क़त कूए जानाँ से मतलब॥

× × ×

फ़ाख़ता हूँ गुल सी सूरत का।
सर्व आज़ाद हूँ मुहब्बत का॥

यह तो उस ज़माने के बादशाहों और नवाबों की बातें हैं। साधारण जनता की आशिक़ी का तो कहना ही क्या? इस इश्क़ की दीमक ने देखते देखते दो शाही ख़ान्दानों की हुकूमतें चाट लीं। देश तबाह हो रहा था; मराठों या अङ्गरेज़ों का शासन चल रहा था; लूट, मार, ठगी डकैती से प्रजा की रक्षा करने वाला कोई न था; पर बादशाह बैठे बैठे तुक भिड़ाया करते थे। जब दरबार के बाहर लूट मची थी, तब बादशाह

लुटेरों को बाँधने के बदले क़ाफ़िया बाँधा करते थे। जब उन्हें यह सोचना चाहिये था कि सल्तनत की क्या हालत है? कौन दुश्मन किधर से चढ़ रहा है? कौन मित्र है, कौन शत्रु है? तब वे माशूक़ के खञ्जर और छुरियों की कल्पित चोट से तड़प रहे थे। घिघिया कर एक बोसा माँगते थे; या जीते-जागते क़त्ल हो रहे थे। उस समय के शायर भी झूठमूठ का एक ख़याली माशूक़ या बुत की कल्पना करके उसके चारोंओर भाँवरें घूमते थे। उसी के ख़याल में मस्त, उसी में ग़र्क़ रहते थे। न कहीं कोई माशूक़ था, न उसकी आँखों से बिजली गिरती थी, न तीर चलते थे, न सैकड़ों क़त्ल होते थे, न जनाज़े और क़ब्र का ही कहीं ठिकाना था। अलग एकान्त कमरे में बैठकर शायर महाशय यह ख़याली तूफ़ान पैदा करते थे। इश्क़ नाम का एक रोग शेर रूपी नश्तरों से जीते-जागते सुन्दर तन्दुरुस्त आदमी के शरीर में प्रविष्ट कर देते थे। जो कल हट्टाकट्टा, मुस्तैद, जवाँमर्द, धर्म और जाति का सेवक और देश में स्वराज्य-स्थापन की कल्पना करने वाला था, वह आज शायरों की बदौलत इश्क़ के रोग में फँसता है। उसकी हिम्मत, उसका कर्तव्य-ज्ञान, उसकी उद्योगशीलता सब हवा हो जाती है, और वह भी आह-ऊह करके दिन काटने वालों के दल में आ मिलता है। बुतपरस्ती अर्थात् लौंडों के साथ इश्क़ को मुसलमानी धर्म और ईमान से ब ढ़कर बतलाता है। शराब पीता है। न रोज़े रखता है, और न नमाज़ पढ़ता है। उर्दू के शायर मुसलमान होते हुये भी मज़हब की पाबंदी नहीं करते थे। प्रायः सब ने इसलाम के विरुद्ध कुछ न कुछ कहा है। कुछ उदाहरण लीजिये—

हर सुबह उठ बुतोंसे मुझे राम राम है।
ज़ाहिद तेरी नमाज़ को मेरा सलाम है॥

हातिम

इन बुतों को तो मेरे साथ मुहब्बत होती।
काश बनता मैं बरहमन ही मुसलमाँ के यवज़॥

ताबाँ

बुतपरस्ती को तो इसलाम नहीं कहते हैं।
मातक़िद कौन है 'मीर' ऐसी मुसलमानी का॥

मीर

मेरी मिल्लत है मुहब्बत मेरा मज़हब इश्क़ है।
ख़ाह हूँ मैं काफ़िरों में ख़ाह दींदारों में हूँ॥

ज़फ़र

कब हक़परस्त ज़ाहिदे जन्नत परस्त है।
हूरों प मर रहा है य शहवत परस्त है॥

ज़ौक़

उम्र सारी तो कटी इश्क़े बुताँ में 'मोमिन'।
आख़िरी वक़्त में क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे॥

मोमिन

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के ख़ुश रखने को "ग़ालिब" य ख़याल अच्छा है॥

ग़ालिब

जिसमें लाखों बरस की हूरे हैं।
ऐसी जन्नत को क्या करे कोई॥
मुझसे ऐ गब्रो मुसलमाँ किसलिये इतना तपाक।
क़ाबिले मसजिद न हरगिज़ लायक़े बुतख़ाना हूँ॥

दाग़

दाग़ को वस्ल की पिछली रात में मसजिद में से अज़ान की आवाज़ आई। वस्ल में व्याघात पहुँचने से कुढकर, देखिये, आप क्या कहते हैं—

दी मुअज़्ज़न ने शबे वस्ल अज़ाँ पिछली रात।
हाय, कम्बख़्त को किस वक़्त ख़ुदा याद आया॥

पर न तो इन शायरों के विरुद्ध कोई फ़तवा निकालता है, और न ये पत्थर से मार मार कर मार ही डाले गये।

उर्दू के चमन बेनज़ीर में खाद डालने वाले मियाँ चिरकीं का नाम उर्दू के इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता। क्योंकि चिरकीं का दीवान भी उर्दू-शायरी का एक अद्भुत परिणाम है। "अदबी दुनिया में ज़िन्दा दिली पैदा करने के लिये" एक साहब ने "दीवान चिरकीं" छपवाया है। मियाँ चिरकीं ने अपने विषय के अनुकूल ही अपना तख़ल्लुस रक्खा था। शायद दुनिया की किसी भाषा में चिरकीं के विषय पर कविता न हुई होगी। लीजिये, मियाँ चिरकीं के दो चार शेर तो सुन लीजिये। जहाँ आप उर्दू के गुलशन में भीनी भीनी सुगन्ध की मस्ती का आनन्द उठाते रहे हैं, वहाँ इस खाद का भी तो कुछ मज़ा ले लीजिये--

क़ब्ज़ की हालत में मियाँ चिरकीं ने यह फ़रमाया था—

क्यों अकड़ता है निकलता क्यों नहीं।
क्या मैं हौवा हूँ तुझे खा जाऊँगा॥

× × ×

हमेशा रहते हो बैतुलख़ला में तुम चिरकीं।
जहाँ में किसको तुम्हारा मकाँ नहीं मालूम॥

× × ×

सिरोही खींचकर क़ातिल जिधर को जा निकला।
हगा हगा दिया सबको पदा पदा निकला॥

यह चिरकीं का वीररस है।

× × ×

शबे फ़ुरक़त य गू उछलेगा चिरकीं के तड़पने से।
सितारे फिटकियाँ, मह छीत, घूरा आसमाँ होगा॥

× × ×

उस बुत के आबदस्त का पानी जो हाथ आये।
चिरकीं सिड़ी हों, शेख जी उससे वज़ू करें॥

× × ×

पड़ा होगा किसी घूरे प चिरकीं।
पता क्या पूछते हो उसके घर का॥

वली के समकालीन एक जाफ़र ज़टल नाम के शायर और हो गये हैं। उन्होंने ऐसी गंदी और अश्लील शायरी की है कि मुँह से पढ़ना और कान से सुनना तो अलग रहा, उसे क़लम से लिखने में भी शर्म मालूम होती है। अश्लीलता के कारण ही, सुना है, ज़टल के दीवान को सरकार ने ज़ब्त कर रक्खा है। ये तो उर्दू के आदि कवियों में से हैं। उस समय समाज की ऐसी गिरी दशा थी कि ऐसे शायर पैदा हो सके।

सब बातों पर अच्छी तरह विचार करके आप देखेंगे कि मज़हब के नाम पर मर मिटनेवाले मुसलमानों ने उर्दू के साथ जो सहनशीलता दिखलाई है, वह अद्भुत है, आश्चर्यजनक है।

दिल्ली को तबाह हालत में छोड़कर शायर लोग लखनऊ पहुँचे। वहाँ भी बुतपरस्ती ने रंग पकड़ा। कितने ही मर्दे मैदाँ थे, नीमजान हो गये; । कितने ही भले चंगे थे, बिसमिल बनकर तड़पने लगे। कितने ही सुशील और विनयी थे. शब्दों के पीछे मरने मारने को तैयार हो गये। नवाब के दरबार में दिनरात आशिक़-माशूक़ों के मामले फ़ैसल होने लगे। नवाब लोग राज्यप्रबंध छोड़कर काफ़िया और रदीफ़ सोचने लगे। परिणाम यह हुआ कि लखनऊ की नवाबी भी 'जाती रही। कैसी विचित्र बात है कि मुसल्मानों ने हिन्दुस्तान में बुतों को तोड़कर अपनी हुकूमत क़ायम की थी; पर बुतों ने भी ऐसा बदला लिया कि सदा के लिये उनकी कमर ही तोड़ दी।

लखनऊ के उजड़ जाने पर शायरगण रामपुर पहुँचे । वहाँ भी कुछ ऐसी ही वैसी हालत रही। कुछ बुलबुलों ने उड़ने की हिम्मत बाँधी तो दूर दराज़ हैदराबाद जा पहुँचे। वहाँ इन की क़द्र तो हुई, पर दिल्ली और लखनऊ से दूर होने के कारण वह तबाही से बच गया।

अपनी शायरी का ऐसा कुपरिणाम, जैसा मुसलमान समाज ने भोगा है, शायद ही किसी जाति को मिला होगा। परंतु हमें यह देखकर

आश्चर्य होता है कि अभी तक उसका पीछा नहीं छूटा है। अब भी सफ़ी, अज़ीज़, साकिब, महशर, सायल, बे.ख़ुद, साहिर, यास, शाद, नानक, सीमाव, नूह, बिसमिल, माजिद, हसरत आदि उर्दू के अच्छे अच्छे नामी शायर हैं, जो इसी रंग में रँगे हैं, और मशायरों में उनकी अच्छी धाक रहती है। पर अभी तक उनका यह राज़ न खुला कि अब उनका लक्ष्य क्या है? वली के ज़माने से चले आते हुये एक ही प्रकार के भावों को दुहराने तिहराने में अब कुछ मज़ा तो रहा नहीं। न उनसे कुछ कला की नवीनता ही प्रकट होती है और न उनके उपयोग से देश या जाति का कुछ कल्याण ही हो सकता है। ऐसी शायरी के बारे में, देखिये, प्रोफ़ेसर आज़ाद क्या कहते हैं —

"यह इज़हार क़ाबिल अफ़सोस है कि हमारी शायरी चन्द मामूली मतालिब के फन्दों में फँस गई है, यानी मज़ामीन आशिक़ाना, मैख़्वारिये मस्ताना, गुलो गुलज़ार, बहारी रंग व बू का पैदा करना, हिज्र की मुसीबत का रोना, वस्ले मौहूम पर ख़ुश होना, दुनिया से बेज़ारी, इसी में फ़लक की जफ़ाकारी, और ग़ज़ब यह है कि अगर कोई असली माजरा बयान करना चाहते हैं तो भी ख़याल इस्तआरों में अदा करते हैं। नतीजा जिसका यह कि कुछ नहीं कर सकते हैं।

"उर्दू में जो सरमाया इंशा परदाज़ी का है, फ़ारसी की बदौलत है उर्दू वालों ने भी आसान काम समझकर और अवाम पसंदी को ग़रज़ ठहरा-कर हुस्न वो इश्क़ वग़ैरह के मज़ामीन को लिया। और इसमें कुछ शक नहीं कि जो कुछ किया बहुत ख़ूब किया। लेकिन मज़मून इस क़दर मुस्तेमल हो गये कि सुनते-सुनते कान थक गये हैं। वही मुक़र्ररी बातें हैं। कहीं हम फ़ज़ों को पसोपेश कर ते हैं, कहीं अदल बदल करते हैं, और कहे जाते हैं। गोया खाये हुये बल्कि औरों के चबाये हुये नेवाले हैं, उन्हीं को चबाते हैं और ख़ुश होते हैं। ख़याल करो, इसमें क्या मज़ा रहा? हुस्न वो इश्क़, सुबहान अल्ला, बहुत ख़ूब। लेकिन हूर या परी गले का हार हो जाय तो अजीरन हो जाती है। हुस्न वो इश्क़ से कहाँ तक

जी न घबराये। और अब तो वह भी सौ बरस की बुढ़िया हो गई।"

मौलाना हाली की राय भी सुनने लायक़ है—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है।
अबस झूठ बकना अगर नारवा है॥
तो वह महकमा जिसका क़ाज़ी .ख़ुदा है।
मुक़र्रिर जहाँ नेको बद की जज़ा है॥
गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे।
जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे॥

ज़माने में जितने .क़ुली औ नफ़र हैं।
कमाई से अपनी वो सब बहरेबर हैं॥
गवैये अमीरों के नूरे नज़र हैं।
डफ़ाली भी ले आते कुछ माँगकर हैं॥
मगर इस तपेदिक़ में जो मुब्तला हैं।
.ख़ुदा जाने वो किस मरज़ की दवा हैं॥

जो सक़्क़े न हों जी से जायें गुज़र सब।
हो मैला जहाँ गुम हों धोबी अगर सब॥
बने दम प गर शहर छोड़ें नफ़र सब।
जो टुर जायँ मेहतर तो गन्दे हों घर सब॥
पै कर जायँ हिजरत जो शायर हमारे।
कहें मिल के "ख़स कम जहाँ पाक" सारे॥

युग-परिवर्तन

मौलाना हाली ने उर्दू-कविता में युग-परिवर्तन कर दिया है। उन्होंने धारा ही पलट दी। उनकी शायरी में न गुलशन के तमाशे हैं, न बुलबुल की फ़रियाद। न महफ़िल की आफ़त है, न क़ब्र और कफ़न का

नज़ारा। जो कुछ है स्वाभाविक और सत्य है। उनके रास्ते को पहले तो लोगों ने कम पसंद किया, पर थोड़े ही समय में वह इतना उपयोगी और आकर्षक हो गया कि अब जो नये शायर निकल रहे हैं, सब उसी रंग में रँगे हुये। युग-परिवर्तन में अकबर का निराला हाथ है। अंग्रेजी सभ्यता की जैसी मीठी चुटकियाँ अकबर ने ली हैं, वैसी कोई क्या ले सकेगा। साथ ही उन्होंने उर्दू-शायरी पर भी फबती उड़ाई है। एक जगह आप लिखते हैं—

मग़रिब ने ख़ुर्दबीं से कमर उसकी देख ली;
मशरिक़ की शायरी का मज़ा किरकिरा हुआ॥

वाह वा, कैसा सुन्दर मज़ाक़ है। कमर इतनी पतली कि ख़ुर्दबीन से दिखाई पड़ी। पर परिणाम क्या हुआ कि कमर का अस्तित्व न मानने वाले पूर्व देश के शायरों की शायरी का मज़ा ही किरकिरा हो गया।

हाली और अकबर इस नई पगडंडी को सड़क बनाकर चले गये। अब इक़बाल उस पर ख़ुशबूदार छिड़काव कर रहे हैं। इक़बाल ही इस समय उर्दू के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

उर्दू का भविष्य हमें बड़ा ही आशापूर्ण दिखाई पड़ता है। हमारा अनुमान है कि थोड़े ही समय में उर्दू की पुरानी आशिक़ाना शायरी केवल इतिहास-ग्रंथों में रह जायगी। उर्दू को वह गौरव प्राप्त होगा जो आत्मा को परमात्मा में मिलने में और बूँद को समुद्र में मिलने में होता है। अर्थात्, उर्दू हिन्दी में मिल जायगी। यह संभावना हमें इसलिये दिखाई पड़ती है कि अब हिन्दी में उर्दू के बहुत से शब्द व्यवहृत होने लगे हैं। यदि हिन्दी-वाले उर्दू के सब शब्दों को अपना कर अपना भांडार भर लें तो उर्दू अलग रह नहीं सकती। दोनों आपसे आप एक हो जायँगी और हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य की एक बड़ी जड़ कट जायगी। ईश्वर करे ऐसा ही हो।

रामनरेश त्रिपाठी

कविता-कौमुदी

वली

वली का पूरा नाम शाह वली अल्लाह था। वली अहमदाबाद के रहने वाले थे। एक प्रसिद्ध फ़क़ीर के कुल में उन्होंने जन्म पाया था। उनके जन्म और मरण के ठीक समय का अभी तक पता नहीं चला है। हाँ, इतना मालूम है कि वह बादशाह आलमगीर के समय में पैदा हुये और मुहम्मदशाह के समय में दिल्ली आये। मुहम्मदशाह सं० १७७७ में गद्दी पर बैठा। अनुमान है कि वली सं० १७८० में दिल्ली पहुँचे होंगे। दिल्ली में वह मियाँ गुलशन नामक फ़ारसी के एक प्रसिद्ध कवि के मुरीद हुये।

जब वली दिल्ली पहुँचे, शोर मच गया। कविता के प्रेमियों ने उन्हें हाथों-हाथ लिया। महफ़िलें सजने लगीं। कवि चहकने

लगे। पर जो स्वर निकलता था, वली के स्वर से मिला हुआ; जो ग़ज़ल कहता था, वली के समर्थन में। दिल्ली में उनको इतना सम्मान मिला कि शाही दरबार में जो हिन्दी के पद गाये जाते थे, उनके स्थान पर उनकी ग़ज़लें गाई जाने लगीं।

उस समय सैकड़ों आदमियों को कविता का चसका लग गया होगा। पर काल ने सब के नाम मिटा दिये। अब केवल आबरू, नाजी और यकरंग ही के नाम शेष हैं।

वली कहाँ पैदा हुये, कहाँ पले, कहाँ पढ़े, कहाँ से कहाँ आये! इन सब बातों पर विचार करने से यही सच जान पड़ता है कि भाग्य उनके अनुकूल था। उनके ही सिर पर उर्दू के आदि कवि होने का मुकुट बँधना था, सो बँध गया। वह अमर हो गये। जो पद .ख़ुसरो को मिलता, वह वली को मिला। अँग्रेज़ी में जो स्थान चासर का, फ़ारसी में रादकी का और हिन्दी में .ख़ुसरो का है, वही उर्दू में वली का है।

वली ने मानों उर्दू-कविता की पगडंडी तैयार की, जो बाद को सड़क हो गई और जिसके किनारे लालटेनों की एक लम्बी क़तार से जगमगा उठे।

वली के पहले हिन्दुस्तान के मुसलमान कवि या तो फ़ारसी में कविता करते थे या हिन्दी में; जैसे .ख़ुसरो, रहीम, रसखान आदि। वली ने ही एक दूसरा रास्ता चुना। जिसकी भाषा भी

तत्कालीन कविता की भाषा से भिन्न थी, और भाव भी फ़ारसी कविता के थे। वली ने अपना एक दीवान बनाया। लोगों को अपनी ग़ज़लें सुनाईं। फ़ारसी के इश्क़ का मज़ा देशी बोलचाल में पाकर मुसलमान मुग्ध हो गये। उन्होंने उसे अपनाया; सँवारा-सजाया; प्यार किया; एक एक जन्म निसार किया; उमंग में आकर ख़ुश तबीअत वालों ने अपने अलग दीवान बनाये। अंकुर में पत्तियाँ फूटीं, टहनियाँ निकलीं। वह बड़ा पेड़ हुआ और फूला, फला।

वली का दीवान अब तक मिलता है। वह ग़ज़लों, रुबाइयों, क़तों, मुख़म्मसों, क़सीदों और मसनवी आदि तरह तरह के रंग-बिरंगे फूलों से आरास्ता है। उसमें न किसी बादशाह की तारीफ़ है, न ख़ुशामद। वली की कविता से यह जान पड़ता है कि वह फ़ारसी अच्छी तरह जानते थे। पर अरबी में उनका दख़ल नहीं था। वली के एक शेर से मालूम होता है कि वह दिल्ली में बहुत दिनों तक रहे या अंत समय तक रहे; दक्खिन नहीं गये। वह शेर यह है—

दिल "वली" का ले लिया दिल्ली ने छीन।
जा कहो कोई मुहम्मदशाह सूँ॥

वली की भाषा में ब्रजभाषा की छाप है। उनकी भाषा खड़ी-बोली और ब्रजभाषा की खिचड़ी है।

यहाँ वली के कुछ शेर दिये जाते हैं—

फिर मेरी ख़बर लेने को सैयाद न आया।
शायद कि उसे हाल मेरा याद न आया॥

गुज़र है तुझ तरफ़ हर बुलहवस का।
हुआ धावा मिठाई पर मगस का॥

शग़ल बेहतर है इश्क़बाज़ी का।
क्या हक़ीक़ी व क्या मजाज़ी का॥
हर ज़ुबाँ पर है मिस्ल शानः मुदाम।
ज़िक्र तुझ ज़ुल्फ़ की दराज़ी का॥

निकला है बेहिजाब हो बाज़ार की तरफ़।
हर बुलहवस की गर्म हुई है दुकान आज॥

रहम बेजा सितम बराबर है।
तू रक़ीबाँ उपर करम मत कर॥

जो आया मस्त साक़ी जाम लेकर।
गया इकबारगी आराम लेकर॥

हूँ गरचे ख़ाकसार वले अज़ रहे-अदब।
दामन को तेरे हाथ लगाया नहीं हनोज़॥

तुझ लब की सिफ़त लाल बदख़्शाँ से कहूँगा।
जादू हैं तेरे नैन ग़ज़ाला से कहूँगा॥
दी हक़ ने तुझे बादशाही हुस्न-नगर की।
यह किश्वरे ईराँ में सुलेमाँ से कहूँगा॥
ज़ख़्मी किया है मुझ तेरी पलकों की अनी ने।
यह ज़ख़्म तेरा खंजरे भालाँ से कहूँगा॥
बे सब्र न हो ऐ 'वली'! इस दर्द से हरगाह।
जल्दी से तेरे दर्द की दरमाँ से कहूँगा॥

❦ ❦ ❦

टुक 'वली' को सनम गले से लगा।
तुझको है बन्दापरवरी की क़सम॥

❦ ❦ ❦

बेवफ़ाई न कर ख़ुदा सूँ डर।
जग हँसाई न कर ख़ुदा सूँ डर॥
है जुदाई में ज़िन्दगी मुश्किल।
आ जुदाई न कर ख़ुदा सूँ डर॥
आरसी देखकर न हो मग़रूर।
ख़ुदनुमाई न कर ख़ुदा सूँ डर॥

❦ ❦ ❦

ऐसे नसीब मेरे कहाँ हैं 'वली' कि आज!
उस गुलबदन को अपने गले हार कर रखूँ॥

❦ ❦ ❦

सुवहते-ग़ैर में जाया न करो।
दर्दमन्दों को कुढ़ाया न करो॥

❦ ❦ ❦

देखना हर सुवह तुझ रुख़सार का।
है मुताला मतलए अनवार का॥
याद करना हर घड़ी तुझ यार का।
है वज़ीफ़ा मुझ दिले बीमार का॥
आरज़ूए चश्मए कौसर नहीं।
तिश्नालव हूँ शरवते दीदार का॥
आक़वत होवेगा क्या मालुम नहीं।
दिल हुआ है मुब्तिला दीदार का॥
मसनदे गुल मंज़िले शवनम हुई।
देख रुतवा दीदए-वेदार का॥

❦ ❦ ❦

मत तसव्वुर करो मुझ दिल को कि हरजाई है।
चमन हुस्ने परीरू का तमाशाई है॥
ऐ 'वली'! रहने को दुनिया में मुक़ामे आशिक़।
कूचए-यार है या गोशये-तनहाई है॥

❦ ❦ ❦

जव सनम को ख़याले वाग़ हुआ।
तालिवे नश्शये फ़राग़ हुआ॥

फ़ौज उश्शाक़ देख हर जानिब।
नाज़नीं साहबे दिमाग़ हुआ॥
दिले उश्शाक़ क्यों न हो रोशन।
जब ख़याले सनम चिराग़ हुआ॥
ऐ 'वली' गुलबदन को बाग़ में देख।
दिले सदबर्ग बाग़ बाग़ हुआ॥

❦ ❦ ❦

दिल छोड़ के यार क्योंकर जावे?
ज़ख़्मी हो शिकार क्योंकर जावे?
जब तक न मिले शराबे दीदार।
आँखों का ख़ुमार क्योंकर जावे?

❦ ❦ ❦

तुझ लबो जल्फ़ के तमाशे को।
चल, कि आये हैं मिश्री वो शामी॥

❦ ❦ ❦

जिस वक्त ऐ सरीजन! तू बेहिजाब होगा।
हर ज़र्रा तुझ झलक सूँ जूँ आफ़ताब होगा॥
मत जा चमन मों लाला बुलबुल प मत सितम कर।
गरमी सूँ तुझ निगह का गल गल गुलाब होगा॥
मत आइना को दिखला अपना जमाल रोशन।
तुझ मुख की ताब देखें आईनः आब होगा॥

निकला है वह सितमगर तेग़े अदा कूँ लेकर।
सीने प आशिक़ाँ के अब फ़तहयाब होगा॥
रखता है क्यूँ जफ़ा को तुझ पर रवा ऐ ज़ालिम!
महशर में तुझसे आख़िर मेरा हिसाब होगा॥
मुझको हुआ है मालुम ऐ मस्ते जाम ख़ूनी!
तुझ अँखड़ियाँ के देखे आलम ख़राब होगा॥
हातिफ़ ने यों दिया है मुझको 'वली' बशारत।
उसकी गली में जा तो मक़सद शिताब होगा॥

* * *

तुझ हुस्न आलमताब का जो आशिक़ो शैदा हुआ।
हर ख़ूबरू के हुस्न के जलवा सूँ बेपरवा हुआ॥
सीने में अब महशर तलक को नैन को बिसराये वह।
जो तुझ नयन के जाम सों मैं पी के मतवाला हुआ॥
पाया है जग में ऐ 'वली'! वह लैलिये मक़सूद कूँ।
जो इश्क़ के बाज़ार में मजनूँ नमन रुसवा हुआ॥

* * *

लिया है जब सों मोहन ने तरीक़ा ख़ुदनुमाई का।
चढ़ा है आरसी पर तब से रङ्ग हैरत फ़ज़ाई का॥

* * *

ख़ुमारे हिज्र ने जिसके दिया है दर्द दिल मुझ कूँ।
रखूँ नश्शा नमन अँखियाँ में गर वह मस्त नाज़ आवे॥

* * *

साया हो मेरा सब्ज़ बरंगे परे तूती।
गर ख़्वाब में वह नौख़ते शीरीं वचन आवे॥
हरगिज़ वह सखुन सख़्त को लावे न ज़बाँ पर।
जिस दहन में यकबार वह नाज़ुक बदन आवे॥

◡ ◡ ◡

य तिल तुझ मुख के काबा में मुझे असवद हजर दिसता।
ज़नख़दाँ में तेरे मुझ चाहे-ज़मज़म का असर दिसता॥

आबरू

आबरू उपनाम; प्रसिद्ध नाम शाह मुबारक; असली नाम नज़मुद्दीन; शाह मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी के वंशज; जन्म और मृत्यु के ठीक संवत् का पता नहीं; केवल इतना ही पता चलता है कि मुहम्मदशाह के राज्य-काल में वे क़ब्रवासी हुये।

यद्यपि बुड्ढे शायर और ख़ूब मँजे मँजाये थे। पर अभिमान नहीं था। ख़ाने आरज़ू को अपना कलाम दिखा लेते थे।

आबरू एक नेत्र से हीन थे। उनकी और मिरज़ा जानजानाँ मज़हर की ख़ूब नोकझोंक रहती थी। एक बार मिरज़ा साहब ने फ़रमाया—

आवरू की आँख में यक गाँठ है।
आवरू सब शायरों की झाँट है॥

इस पर आवरू ने जवाब दिया—

क्या करूँ हक़ के किये को कूर मेरी चश्म है।
आवरू जग में रहे तो जानजाना पश्म है॥

शाह आवरू को शाह कमाल बुख़ारी नाम के एक बुड्ढे मियाँ के बेटे मीर मक्खन से बड़ी मुहब्बत थी। उनके बहुत से शेरों में मीर मक्खन का नाम आया है या उसकी ओर कुछ इशारा हुआ है। उनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

क्या सबब तेरे बदन के गर्म होने का सजन!
आशिक़ों में कौन जलता था? गले किसके लगा?
तू गले किसके लगा, लेकिन किसी बेरहम ने।
गर्म देखा होगा तुझ को बीच में आँखों के ला॥
तुर्शरूई छोड़ दे औ तल्ख़गोई तर्क कर।
और खाना जो कि हो ख़ुश का तेरी सो कर ग़िज़ा॥
बू अली है नब्ज़दानी में बुताँ के 'आवरू'।
क्यों न होवे आशिक़ी में उसका नुसख़ा कीमिया॥

नैन सें नैन जब मिलाय गया।
दिल के अन्दर मेरे समाय गया॥
निगाहे गर्म सें मेरे दिल में।
खुश नैन आग सी लगाय गया॥
तेरे चलने की सुन ख़बर आशिक़।
यही कहता मुवा कि हाय ! गया॥
'आवरू' हिज्र वीच मरता था।
मुख दिखाकर उसे जिलाय गया॥

बोसा लबों का देने कहा कह के फिर गया।
प्याला भरा शराब का अफ़सोस गिर गया॥
क़ौल 'आवरू' का था कि न जाऊँगा उस गली।
हो करके बेक़रार देखो आज फिर गया॥

छोड़ मत दामे ज़ुल्फ़ से दिल को।
वाल बाँधा ग़ुलाम है तेरा॥

आया है सुबह नींद से उठ रसमसा हुआ।
जामा गले में रात का फूलों बसा हुआ॥
कम मत गिनो य वख़्त सियाहों का रंग ज़र्द।
सोना व है कि होवे कसौटी कसा हुआ॥

अंदाज़ से ज़ियादा निपट नाज़ .खुश नहीं।
जो ख़ाल अपने हद से बढ़ा सो मसा हुआ॥
कामत का सभ जगत में वाला हुआ है नाम।
क़द इस क़द्र बलन्द तुम्हारा रसा हुआ॥
ऐ 'आबरू' अव्वल तुँ समझ पेच इश्क़ का।
फिर .ज़ुल्फ़ से निकल न सके दिल फँसा हुआ॥

❦ ❦ ❦

सेज ऊपर ग़ैर की रहता है अब लोटा हुआ।
ज़र के लालच इस क़द्र वह सीमतन खोटा हुआ॥*

❦ ❦ ❦

पलँग को छोड़ ख़ाली गोद से उठ गे सजन मीता।
चितरकारी लगे खाने हमन को घर हुआ चीता॥
जुदाई के ज़माने की सजन क्या ज़्यादती कहिये।
कि इस ज़ालिम की जो हम पर घड़ी गुज़री सो जग बीता॥
लगा दिल यार से तब उसको क्या काम 'आबरू' हमसे।
कि ज़ख़्मी इश्क़ का फिर माँगकर पानी नहीं पीता॥

❦ ❦ ❦

यह रस्म ज़ालिमी की दस्तूर है कहाँ का।
दिल छीनकर हमारा दुश्मन हुआ है जाँ का॥

*इस शेर से उस ज़माने का मनोभाव प्रकट होता है।

हरयक निगह में हमसे करते लगे हो नोकें।
कुछ यों तेरी आँखों ने पकड़ा है तौर बाँका॥
तुझ राह में हुआ है अब तो रक़ीब कुत्ता।
बू पायकर हमारी आ बाँधता है नाँका॥
ख़न्दों के तौर गोया दीवार क़हक़हा है।
फिर कर फिरे न लुड़का जो उस तरफ़ को झाँका॥
रुस्तम दहल के दिल में डाले अँकू सों पानी।
देखे अगर भवाँ की तलवार का झमाका॥
फ़ासिक़ के दिल में डाली जब नफ़्सबद ने बुरकी।
रजवाड़े की गली का तब जा गुबार फाँका॥
सब आशिक़ों में हम कूँ मज़दा है 'आबरू' का।
है क़स्द गर तुम्हारे दिल बीच इम्तिहाँ का॥

जिस वक़्त ज़ख़्म तेरा लगता है ग़ैर के तईं।
उस वक़्त जान सेती जाते हैं जान! मर हम॥
धमकावते हैं हमको कमर बाँध बाँध कर।
खोलें कभी तो जाय मियाँ का निकल भरम॥

किन ने आ बाग़ में हैरान किया नरगिस को।
नहीं मालूम कि यह देख रही है किस को॥

लटक चलना सजन का भूलता मुझकूँ नहीं अबतक।
तरह वह पाँव रखने की मेरी आँखों में फिरती है॥

* * *

मत क़हर सेती हाथ में ले दिल हमारे कूँ।
जलता है, क्यों पकड़ता है ज़ालिम अँगारे कूँ॥
टुक बाग़ में शिताब चलो ए बहारे हुस्न!
गुल चश्म हो रहा है तुम्हारे नज़ारे कूँ॥
मरता हूँ टुक रही है रमक़ आ दरस दिखा।
जाकर कहो हमारी तरफ़ से पियारे कूँ॥
मैं आ पड़ा हूँ इश्क़ के ज़ालिम भँवर के बीच।
तख़्ता उपर चलावते हैं जी के आरे कूँ॥
अपना जमाल 'आबरू' कूँ टुक दिखाओ आज।
मुद्दत से आरज़ू है दरस की बिचारे कूँ॥

* * *

अफ़सोस है कि मुझको वह यार भूल जावे।
वह शौक़ वह मुहब्बत वह प्यार भूल जावे॥
रुस्तम तेरी आँखों के होवे अगर मुक़ाबिल।
आँखों को देख तेरी तलवार भूल जावे॥
आरिज़ के आयना प तमन्ना के सब्ज़ ख़त हैं।
तूती अगर जा देखे गुलज़ार भूल जावे॥

क्या शेख़ व क्या बरहमन जब आशिक़ी में आवे।
तसबी करे फ़रामोश ज़ुन्नार भूल जावे॥
यूँ 'आबरू' बनावे दिल में हज़ार बातें।
जब तेरे आगे आवे गुफ़्तार भूल जावे॥

* * *

फिरते ही फिरते दश्त दिवाने किधर गये!
वे आशिक़ी के हाय ज़माने किधर गये?
मिज़गाँ तो तेज़तर है व लेकिन जिगर कहाँ!
तरकश तो हैं भरे प निशाने किधर गये?

* * *

रुस्तम उस मर्द की खाते हैं क़सम ज़ोरों की।
ताब लावे जो कोई इश्क़ के झकझोरों की॥
क़द्रदाँ हुस्न के कहते हैं उसे दिल मुरदा।
साँवरे छोड़ के जो चारा करे गोरों की॥
गाँठ काटी है मेरे दिलकी तेरी आँखों ने।
दो पलक नहीं य कतरनी हैं मगर चोरों की॥
लबे शीरीं प सरीजन के नहीं ख़त्ते सियाह।
डार छूटी है मिठाई प शकरख़ोरों की॥
चिलकें सूरज मनीं जूँ ख़त्ते शुआ के शोले।
देख अँखियों मनी यह लाल झमक डोरों की॥

क़ादिरी जब कि सजी बर में सजन बूँटादार।
अक़्ल चक्कर में गई देख के छब मोरों की॥
'आबरू' कूँ नहीं कम ज़र्फ़ की सुहबत का दिमाग़।
किसको बरदाश्त है हर वक़्त के नकतोरों की॥

❦ ❦ ❦

कुंजी उसकी ज़बान शीरीं है।
दिल मेरा क़ुफ़्ल है बतासे का॥

❦ ❦ ❦

तुमने बजावने को जब हाथ बीच नै ली।
मजनून हो गये सब य इस तरह की लै ली॥

❦ ❦ ❦

सजा है नरगिसी बूंट का जामा।
करे क्योंकर न मुझसे चश्मपोशी॥

❦ ❦ ❦

'आबरू' के क़त्ल को हाज़िर हुये कसके कमर।
ख़ून करने को चले आशिक़ को तोहमत बाँधकर॥

❦ ❦ ❦

इज़्ज़त है जौहरी की जो क़ीमती हो जौहर।
है 'आबरू' हमन को जग में सखुन हमारा॥

❦ ❦ ❦

नाला हमारे दिल का ग़म का गवाह बस है।
अपने के तईं शहादत अंगुश्त आह बस है॥

❦ ❦ ❦

तुम्हारे लोग कहते हैं कमर है।
कहाँ है? किस तरह की है? किधर है॥
तख़ल्लुस 'आबरू' बर जा है मेरा।
हमेशा अश्क ग़म से चश्म तर है॥

निकले तुम आ सबा की तरह जब चमन में भूल।
गुलशन के देख तुझको गये हाथ पाँव फूल॥

सर से लगा के पाँव तलक दिल हुआ हूँ मैं।
याँ तक तो फ़ने इश्क़ में कामिल हुआ हूँ मैं॥

तुम्हारा दिल अगर हमसे फिरा है।
तो बेहतर है हमारे भी ख़ुदा है॥

आग़ोश में भवाँ की करती हैं क़त्ल अँखियाँ।
कोइ पूछता नहीं है मसजिद में क़त्ल होये॥

अब तलक खींच खींच जौरो जफ़ा।
हर तरह दोस्ती निवाही है॥
तौर क्या पूछते हो काफ़िर का।
शोख़ है बाँका है सिपाही है॥

'आबरू' क्यों न हो रहे ख़ामोश।
दर्द कहने की याँ मनाई है॥

मिलो जा 'आवरू' से ख़ुद बख़ुद तुम।
कि उसको तो पियारे बेख़ुदी है॥

मज़मून

मज़मून उपनाम; शेख़ शर्फ़ुद्दीन नाम; शेख फ़रीदुद्दी[न]
शकरगंज के वंशज; जाजमऊ इलाक़ा अकबराबाद के रहने वाले;
पेशा सिपाहगरी; जन्म-मरण का समय अज्ञात।

अवस्था में बड़े होने पर भी ये अपने से छोटे ख़ान आ[रज़ू]
से अपनी कविता में इसलाह लेते थे। इनके दाँत नज़ले से [टूट]
गये थे। इससे आरज़ू इन्हें 'शायर बेदाना' कहा करते थे।

रोज़गार की तलाश में ये घर से दिल्ली आये थे और
ज़ीनतुल्मसाजिद में उतरे थे। दिल्ली में ये सिपाहगरी करते थे।
जब दिल्ली पर तबाही आई, तब इन्होंने भी हथियार खोल दि[ये]
और मज़मून बाँधना शुरू किया। अपने समय के उस्तादों [में]
इनकी गिनती थी। ये बड़े प्रसन्नचित, अच्छी कटछँट के और
'यारबाश' आदमी थे।

इनके मरने पर इनके समकालीन मिरज़ा रफ़ी सौदा ने [यह]
ग़ज़ल कही थी—

लिये मै उठ गया साक़ी मेरा भी पुर हो पैमाना।
इलाही किस तरह देखूँ मैं इन आँखों से मैख़ाना॥
विनायें उठ गई यारो ग़ज़ल के ख़ूब कहने की।
गया मज़मून दुनिया से रहा सौदा सो मस्ताना॥

इससे मज़मून की ख्याति का अनुमान किया जा सकता है। यहाँ मज़मून के कुछ शेर नमूने के लिये दिये जाते हैं—

अफ़सोस मार झटपट दिलको रखै है अटका।
किस साहिरों से सीखा जुल्फ़ों ने तेरी लटका॥

* * *

ख़ूबों को जानता था गरमी करगे मुझ से।
दिल सर्द हो गया है जब से पड़ा है पाला॥

* * *

नहीं है ज़ाहिदों को मै सेती काम।
लिखा है उनकी पेशानी में सिरका॥

* * *

हमने क्या क्या न तेरे ग़म में ऐ महबूब! किया।
सब्र अय्यूब किया गिरियए याक़ूब किया॥

* * *

कूँचे में बेवफ़ा के मारे गये हैं आशिक़।
निकला है एक मज़मूँ भागों से अपने जीता॥

* * *

हँसी तेरी पियारे फुलझड़ी है।
यही ग़ुंचा के दिल में गुलझड़ी है॥

तीरे मिज़गाँ बरसते हैं मुझ पर।
आवे पैकाँ का इस तरफ़ है ढाल॥

तुझ बिन ज़बस कि पानी जारी किये हैं रोकर।
चश्मों से मैं अब अपने बैठा हूँ हाथ धोकर॥

अहवाल पेशे दिलबर कुछ मत कहो हमारा।
आता है नाम मेरा सुन कर उसे पसीना॥

शर्म से पानी हो जावें सब रक़ीब।
जो मेरा यूसुफ़ मिले आ चाह से॥

वही दिलदार ख़ुश आता है जो होवे बाँका।
ख़ूब लगती नहीं वह तेग़ जो ख़मदार नहीं॥

क्या हुआ जो ख़त मेरा पढ़ता नहीं।
जानता है ख़ूब वह मज़मून को॥

जब से चाहा है तेरा चाह ज़क़न।
आब चश्मों से मेरे जारी है॥

* * *

चला किश्ती में जब आगे से वह महबूब जाता है।
कभू आँखें भर आती हैं कभी दिल डूब जाता है॥
य अश्क आँखों में क़ासिद किस तरह यकदम नहीं थमता।
दिले बेताब का शायद लिये मकतूब जाता है॥

* * *

मेरे आईनए दिल से तेरा नक़्श।
जो देखा तो किसी सूरत न जावे॥

* * *

मज़नूँ तू शुक्र कर कि तेरा नाम सुन रक़ीब।
.ग़ुस्से से बुत सा हो गया लेकिन जला तो है॥

——:o:——

नाजी

नाजी उपनाम; सय्यद मुहम्मद शाकिर नाम; निवास-स्थान दिल्ली; जन्म-मरण का ठीक पता नहीं। मुहम्मदशाह के ज़माने में थे। ये मुहम्मदशाह के एक दरबारी अमीर ख़ाँ के न्यामत ख़ाने के दारोग़ा थे। शाह मुबारक आबरू से अपनी कविता में इसलाह लेते थे। इनका भी दीवान है। निन्दात्मक कविता ये अच्छी कर लेते थे।

बड़े गर्म मिजाज़ और बात बात में उलझ पड़ने वाले आदमी थे। एक बार जिसके पीछे पड़ गये, फिर उसका जी छुड़ाना कठिन हो जाता था।

नादिरशाह के हमले के वक़्त, मुहम्मदशाह की सेना की जो दुर्गति हुई, उसका वर्णन नाजी ने बड़ा दिलचस्प किया है। उसमें से नमूने के दो बंद यहाँ दिये जाते हैं—

लड़े हुये तो बरस बीस उनको बीते थे।
दुआ के ज़ोर से दाई दवा के जीते थे॥
शरावें घर की निकाली मज़े से पीते थे।
निगारो नक़्श में ज़ाहिर गोया कि चीते थे॥
गले में हँसलियाँ बाज़ू उपर तिला के नाल।
क़ज़ा से बच गया मरना नहीं तो ठाना था॥
कि मैं निशान के हाथी उपर निशाना था।
न पानी पीने को पाया वहाँ न खाना था॥
मिले थे धान जो लश्कर तमाम छाना था।
न ज़र्फ़ों मतवख़ो दुकाँ न ग़ल्ल वो वक़्क़ाल॥

* * *

यहाँ नाजी के कुछ आशिक़ाना शेर लिखे जाते हैं—

मुझको बातों में लगा मालूम नैं क्या क्या किया।
ले चला जी के तईं मुँह देखता मैं रह गया॥

* * *

देख मोहन तेरी कमर की तरफ़।
फिर गया मानी अपने घर की तरफ़॥
जिन ने देखे तेरे लबे शीरीं।
नज़र उनकी नहीं शकर की तरफ़॥
है मुहाल उनका दाम में आना।
दिल है उन सब बुताँ का ज़र की तरफ़॥
तेरे रुख़सार की सफ़ाई देख।
चश्म दाना नहीं हुनर की तरफ़॥
हश्र में पाकबाज़ है नाजी।
बद अमल जायँगे सक़र की तरफ़॥

रंग तेरा गंदुमी देख औ बदन मख़मल सा साफ़।
होश खोकर आदमी भूलै है अपनी ख़ुर्द व ख़्वाब॥

ज़ुल्फ़ के हलक़े में देखा जब से दाना ख़ाल का।
मुर्ग़ दिल आशिक़ का तब से सैद है इस जाल का॥
गंदुमी चेहरे को अपने ज़ुल्फ़ में पिनहाँ न कर।
हिन्दुआँ सुनकर मुबादा शोर डालें काल का॥
एकदम नाजी के तईं आकर जिला ले प्यार से।
जाँ बलब हूँ ऐ सजन! यह वक़्त नहिं अहमाल का॥

ऐ सबा ! कह बहार की बातें।
उस बुते गुलअज़ार की बातें॥
किस प छोड़े निगाह का शहबाज़।
क्या करे है शिकार की बातें॥
छोड़ते कब हैं नक़्द दिल को सनम।
जब य करते हैं प्यार की बातें॥

* * *

माशूक़ मिलकर आप से गर दिलबरी करे।
गर देव हो तो चाहिये आदमगरी करे॥
शीशा उसी के आगे बजा है कि रुख़ सेती।
प्याले को जब ले हाथ में रश्के परी करे॥
इस क़द से जब चमन में ख़रामाँ हो तो ऐ जाँ!
शमशादो सरो आगे तेरी चाकरी करें॥
दुश्मन है दीं का ख़ाल सियह मुख उपर तेरे।
हिन्दू से क्या अजब है अगर क़ाफ़री करे॥
जो कोइ कि 'नाजी' साफ़ करे दिल का आइना।
वह आशिक़ी के मुल्क में अस्कंदरी करे॥

* * *

कफ़न है सब्ज़ तैरे गेसुओं के मारों का।
मकान ग़म है तेरे दर के बेक़रारों का॥

* * *

रखे इस लालची लड़के को कोई कब तलक बहला।
चली जाती है फ़रमायश कभी यह ला कभी वह ला॥

है ग़रज़ मिलने में न उल्फ़त कुछ इस बेदर्द को।
पूछता है काने ज़र आशिक़ के रंगे ज़र्द को॥

ग़म नहीं गर दिलबरी से दिल को ले जाता है वह।
पास मेरे तब तो आता है जो दिल पाता है वह॥

इन बुतों को हम फ़क़ीरों से कहो क्या काम है?
यह तो तालिब ज़र के हैं और ह्याँ ख़ुदा का नाम है॥

वज़ीफ़ा रागिनी के सुर में ज़ाहिद कुफ्र है मत पढ़।
नहीं तसबीह तेरे हाथ में यह रागमाला है॥

अगर हो वह बुते हिन्दू कभू अशनान को नंगा।
भँवर में देखकर जमुना उसे ग़ोता में जा गंगा॥

देख हमसुहबत की दौलत से न रख चश्मे उमीद।
लब सदफ़ के तर नहीं हरचंद गौहर में है आब॥

भा सस्ता हो या महँगा नहीं मौक़ूफ़ ग़ल्ले पर।
य सब ख़िरमन उसी के हैं ख़ुदा है जिसके पल्ले पर॥

अँगूठी लाल की करती क़यामत आज गर होती।
जिन्हों की आन पहुँची लड़ मुये वह एक छल्ले पर॥

❦ ❦ ❦

हुआ जब आइने में जलवागर मैं तब लिया बोसा।
जो आया अपने क़ाबू में तो फिर मुँह देखना क्या है॥

❦ ❦ ❦

उस रुख़े रोशन की जो कोइ याद में मशग़ूल है।
मेहर उसके रूबरू सूरजमुखी का फूल है॥

❦ ❦ ❦

अनलहक़ बोलने लगता है उसके ज़ख्म का बिसमिल।
कटारी आबदार उस शोख़ की मंसूर ख़ानी है।

❦ ❦ ❦

उसके रुखसार देख जीता हूँ।
आरिज़ी मेरी ज़िन्दगानी है॥

❦ ❦ ❦

तसव्वुर से तेरे रुख़ के गई है नींद आँखों से।
मुक़ाबिल जिसके हो ख़ुरशीद क्यों कर उसको ख़्वाब आवे॥

❦ ❦ ❦

माहरू जब सफ़ेद पोश हुआ।
हर तरफ़ चाँदनी का जोश हुआ॥

❦ ❦ ❦

यकरङ्ग

यकरङ्ग उपनाम; गुलाम मुस्तफ़ा .कुली खाँ नाम; निवास-स्थान दिल्ली। जन्म-मरण के समय का ठीक पता नहीं। पहले आबरू से इसलाह लेते थे। वृद्धावस्था में जानजानाँ मज़हर को अपना कलाम दिखाते थे। दिल्ली में ही इनका देहान्त हुआ।

ये बड़े आशिक़-मिज़ाज़ और हरफ़न-मौला थे। गाने बजाने का भी अच्छा शौक़ रखते थे। रात दिन यारों की सुहबत में ही काटते थे। अपने नाम के अनुसार अपने ज़माने के ये यकरङ्ग थे। इनका दीवान मिलता है। इनके कुछ शेर सुनिये—

यकरङ्ग पास और सजन कुछ नहीं बिसात।
रखता है यह दो नैन कहो तो नज़र करे॥

* * *

जो कोई तोड़ता है गुञ्चये गुल।
दिले बुलबुल शिकस्त करता है॥

* * *

यकरङ्ग ने तलाश किया है बहुत बले।
मज़हर सा इस जहाँमें कोई मीरज़ा नहीं॥

* * *

पारसाई औ जवानी क्योंकर हो।
एक जगह आग पानी क्योंकर हो॥

* * *

न कहो यह कि यार जाता है।
दिल से सब्रो क़रार जाता है॥
गर ख़बर लेनी है तो ले सैयाद।
हाथ से यह शिकार जाता है॥

* * *

जिसके दर्दे-दिल में कुछ तासीर है।
गर जवाँ भी है तो मेरा पीर है॥

* * *

लगे हैं ख़ूब कानों में बुतों के।
सखुन यकरङ्ग के गोया गुहर हैं॥

* * *

उसको मत जानो मियाँ औरों की तरह।
मुस्तफ़ाख़ाँ आश्ना यकरङ्ग है॥

* * *

जुदाई से तेरी पे संदली रङ्ग!
मुझे यह ज़िन्दगानी दर्दे सर है॥

* * *

मुझे मत बूझ प्यारे अपना दुश्मन।
कोई दुश्मन हुआ है अपनी जाँ का॥

* * *

मुझको मालूम यों हुआ गुल से।
फ़ूल जाते हैं उससे दौलतमंद॥

* * *

निगहबाँ चाहिये सरशार के पास।
तेरी आँखों से क्योंकर दिल जुदा हो॥

रूठता हूँ इस सवव हर वार मैं।
ता गले तेरे लगूँ ऐ यार! मैं॥

शबे फ़ुरक़त में रो रो कर सहर की।
हक़ीक़त क्या कहूँ मैं रात भर की॥
परेशाँ हम हुये ज़ुल्फ़ उनकी उलझी।
वला मेरे लगाई अपने सर की॥
हुये एक आन मे ज़ख़्मी हज़ारों।
जिधर उस यार ने तिरछी नज़र की॥
हवा के साथ सौ सौ खा गये बल।
नज़ाकत देखिये उनके कमर की॥
व क़ातिल के यहाँ ख़त ले गया है।
खुदाया ख़ैर कीजो नामावर की॥
अभी 'यकरङ्ग' होगा वस्ल मुमकिन।
अगर कुछ मेहर से उसने नज़र की॥

उस परी पैकर को मत इन्सान बूझ।
शक में क्यों पड़ता है ऐ दिल! जान-बूझ॥

क्या जानिये विसाल तेरा हो किसे नसीब ।
हम तो तेरे फ़िराक़ में ऐ यार ! मर चले ॥

❦ ❦ ❦

रौनक़े इसलाम तेरे रू से है ।
कुफ्र का रिश्ता तेरे गेसू से है ॥

❦ ❦ ❦

बेक़रारों के तईं आराम दिल ।
ऐ मेरे प्यारे ! तेरे पहलू से है ॥

❦ ❦ ❦

हुआ मालूम यह गुंचे से हमको ।
जो कोई ज़रदार है सो तङ्ग दिल है ॥

❦ ❦ ❦

नहीं छोड़े हैं सदा जुल्फ़ तेरी अपनी मरोड़ ।
बावजूदे कि कमाल उनमें परेशानी है ॥

❦ ❦ ❦

ईज़ा शबे-फ़ुरक़त की उठाई नहीं जाती ।
अब वस्ल की सूरत कोई पाई नहीं जाती ॥
बोसे लिये तो यार के दन्दाँ नज़र पड़े ।
हीरे की कनी जान के खाई नहीं जाती ॥
तदबीर का कुछ बस नहीं तक़दीर के आगे ।
तक़दीर की तहरीर मिटाई नहीं जाती ॥

बोसे जो लिये थे लबे-शीरीं के तुम्हारे।
मुद्दत हुई अब तक व मिठाई नहीं जाती॥
क्या पूछते हो हाल शबे-वस्ल का हम से।
यह बात है परदे की बताई नहीं जाती॥
मोती की गई आब उतर चढ़ नहीं सकती।
घट जाती है इज़्ज़त तो बढ़ाई नहीं जाती॥
दो रङ्गियों के बज़्म में रङ्गत नहीं जमती।
जबतक ग़ज़ल 'यकरङ्ग' की गाई नहीं जाती॥

* * *

अब तो सजन हमीं को तबाही तुम्हीं से।
हम सब तरफ़ से यार तुम्हारे गले पड़े॥

* * *

यकरङ्ग ने हिन्दी में भी बहुत कुछ कहा है। तबीयत के बड़े रङ्गीले थे ही, रसीले रसीले दोहे, ठुमरियाँ, दादरे बहुत से बना दिये; जो अबतक भी वेश्याओं और कथकों में ख़ूब प्रचलित हैं। यदि वे सब यकरङ्ग के ही बनाये हैं, तो संदेह नहीं कि वे बड़े अच्छे मुहूर्त में लिखे गये थे, जो अबतक अमर हैं। अब यकरङ्ग की हिन्दी-रचनायें देखिये—

होली

हरदम हरनाम भजोरी।
जो हरदम हरिनाम को भजिहौ मुक्ति हो जइहैं तोरी।
पाप छोड़ के पुन्य जो करिहौ तव वैकुण्ठ मिलोरी॥
करम से धरम वनोरी॥
'यकरङ्ग' पिय से जाय कहो कोई हर घर रङ्ग मचोरी।
सुर नर मुनि सब फाग खेलत हैं अपनी अपनी ओरी॥
ख़वर कोई लेत न मोरी॥

* * *

होली आई पिया नहिं आये।
मोरा विन पिया जिया घवराये, जाय कहाँ छाये॥
फाग खेलैं सब अपने पिया सँग हमरा जिया ललचाये।
सगरी रैन मोहिं कलपत वीता नैन नीर भरि आये।
जाय कहो कोइ 'यकरँग' पियसों तुम विन कछु न सुहाये।
फाग मास जल जाये, कौन अव गाये वजाये।

* * *

पिया को मिलन कैसे जाओगी गोरी।
रङ्ग रूप सव ज़ात रहोरी॥
ना अच्छे गुन ढँग ना अच्छे जोवना,
मैली भई अव चूंदर मोरी॥

करके सिङ्गार पिया घर जइयो,

तब देखिहैं पिया तोरी ओरी ॥

जाय कहो कोइ 'यकरँग' पिया सों,

तुम बिन या गत हो गई मोरी ॥

❦ ❦ ❦

कजली

बरखा लागा मोरी गुइयाँ सैयाँ नाहीं आये मोर।
रिमझिम रिमझिम मेघवा बरसे घटा उठी घनघोर ॥
बिजली चमके बादर गरजे बरसत है चहुँ ओर।
पपिहा बोले कोयल कूके मोर मचावत सोर ॥
चुन चुन कलियाँ सेज बिछाइउँ बिन पिया हो गयो भोर।
'यकरँग' पिया सों जाय कहो कोउ राह तकत हौं तोर ॥

❦ ❦ ❦

ठुमरी

काहे गोरी चाल चलत अठिलात।
अटपट चाल चलो जिन गोरी पतली कमर बल खात।
चञ्चल चाल तोरे नैन रसीले जिहि चितवत बलि जात ॥
'यकरँग' पिया को वेगि ले आओ कलपत हूँ दिनरात ॥

❦ ❦ ❦

मितवा रे नेकी से बेड़ा पार।
जो मितवा तुम नेकी न करिहउ बुड़ि जइहौ मझधार ॥

नेक करम से धरम सुधरिहैं जीवन के दिन चार॥
'यकरँग' माँगो ख़ैर हशर की जासे हो निसतार॥

❦ ❦ ❦

बाट चलत मोरी रोकत डगरिया ढीठ लँगर जसुदा को कन्हैया।
लपट झपट मोरी गागर फोरी मसक गई मोरी सारी चुनरिया॥
बरजोरी मोरी बहियाँ मरोरी लचक गई मोरी पतरी कमरिया।
'यकरँग' पिया कहो कैसी करूँ मैं अबहीं निपट मोरी बारी उमरिया॥

❦ ❦ ❦

साँवलिया मन भाया रे, बाँके यार।
सोहनी सूरत मोहनी मूरत हिरदै बीच समाया रे बाँके यार।
देस में ढूँढ़ा बिदेस में ढूँढा अन्त को अन्त न पाया रे बाँके यार॥
काहू में अहमद काहू में ईसा काहू में राम कहाया रे बाँके यार।
सोच विचार के कहें 'यकरँग' पिया जिन ढूँढा तिन पाया रे बाँके यार॥

❦ ❦ ❦

निसदिन जो हरिका गुन गाये रे बिगड़ी बात वाकी सब बनजाये रे।
लाख कहूँ माने नहिं एको अब कहो कब लग हम समझाये रे॥
सोच विचार के करो कुछ 'यकरँग' आख़िर बनत बनत बन जाये रे।

❦ ❦ ❦

बलमा रे झुलनियाँ मुहिं का आज मँगा दे।
रतन जड़ाउ की झुलनी मँगा दे ता बिच लाल लगा दे॥

झुलनी पहन के पिया घर जइहौं निरगुन राह बता दे।
झुलनी भी ला दे सारी मँगा दे 'यकरँग' रङ्ग रँगा दे।

❦ ❦ ❦

दादरा

कहो कैसे वलमा वने मोरी तोरी।
जव लग बात न मनिहौ मोरी॥

सूनी सेज मोहिँ कल न परत है तुम सौतिन सँग राज रजोरी।
जव से गये मोरी सुधिहू न लीनी तुम विन प्रान तजत है गोरी॥

❦ ❦ ❦

दोहरा

सम्पत तो हँस के कटे, विपत कटे ना रोय।
'यकरँग' आसा राखिये, हरि चाहे सो होय॥

❦ ❦ ❦

रङ्ग वही यकरँग रँगो, कि सवसे रँगा न जाय।
'यकरँग' तुम वह रँग रँगो, कि हर रँग में मिल जाय॥

❦ ❦ ❦

पहेलियाँ

'यकरँग' वह घर कौन है, जामें हैं दस द्वार।
ऐसे घर में जो वसे, वाको क्या इतवार॥

जीव और देह

❦ ❦ ❦

'यकरँग' वह फल कौन जो, बिन बोये फरियायँ।
बढ़त बढ़त इतने बढ़ें, आखिर को झुकि जायँ॥
स्तन

हातिम

हातिम उपनाम; शेख़ ज़हूरुद्दीन नाम; पिता का नाम फ़तहउद्दीन; निवास-स्थान दिल्ली; पेशा सिपाहगरी; जन्म-संवत् १७५५; मृत्यु-संवत् १८४८; दिल्ली दरवाज़े के बाहर दफ़न हुये।

हातिम पहले सिपाही पेशा थे और नवाब उम्दुतुलमुल्क अमीरखाँ सूबे इलाहाबाद की मुसाहबत में ख़ूब ऐश-इशरत से दिन काटते थे। मुहम्मदशाह का ज़माना था ही। दिल्ली में बारहों मास वसंत रहता था। हातिम भी अपनी नौजवानी के अरमान पूरे करते थे। दिल्ली का राज्य कमज़ोर हो चला था। एक ओर सिख दूसरी ओर मराठे ताक में थे। हुकूमत की रुचि ही जाती रही थी। लोग नौकरी छोड़ छोड़कर अलग हो रहे थे। जो अपढ़ थे, वे कोई पेशा कर लेते थे। जो पढ़े लिखे थे, उन्हें मज़मून बाँधने का काम सबसे आसान समझ पड़ता था। आख़िरी उम्र में हातिम ने भी सिपाहगरी छोड़कर शायरी पकड़ी। दिल्ली

में क़दम शरीफ़ के पास मीर बादल अली शाह का तकिया था; जहाँ मस्त बेफ़िकरे निठल्ले जवान जमा हुआ करते थे। हातिम भी वहाँ की हवा खाया करते थे। जाते-जाते इनपर भी फ़क़ीरी का रंग चढ़ा और ये उन्हीं के मुरीद हो गये। धीरे-धीरे सब बुराइयाँ भी छोड़ दीं। यहाँ तक कि घर-बार से भी छुट्टी कर ली। हिन्दुस्तान में निश्चित फ़क़ीरों के चिन्ह-स्वरूप सिर्फ़ एक रूमाल और एक पतली छड़ी पास रखली। फ़क़ीरी बाना धारण तो किया, पर बाँकपन नहीं छोड़ा। सिरपर दुपट्टा टेढ़ा ही बाँधते रहे। क़िले के नीचे राजघाट के रास्ते में कुछ छाया वाले वृक्षों के नीचे ये प्रायः प्रतिदिन बैठा करते थे और वहीं इनके संगी साथी भी जमा होते थे। सब मिलकर वहाँ काव्य-चर्चा किया करते थे।

हातिम के ४५ शिष्य थे। उनमें सौदा बहुत प्रसिद्ध हैं। सौदा से इनका बहुत प्रेम भी था। कहा करते थे कि यह शागिर्द मेरे नाम को अमर कर देगा। हुआ भी ऐसा ही।

एक दिन हातिम अपने शिष्यों के साथ काव्यचर्चा में मग्न थे। सआदतयार ख़ाँ 'रंगीं', मियाँ मुहम्मद अमान 'निसार', लाला मुकुन्दराय 'फ़ारिग़', अकबर अली 'अकबर', ताबाँ, आदि शिष्य गुरु-सेवा में उपस्थित थे। शाह हातिम ने फ़रमाया कि आज रात को मैंने यह मतला कहा है—

सर को पटका है कभू सीना कभू कूटा है।
रात हम हिज्र की दौलत से मज़ा लूटा है॥

इस पर 'रङ्गीं' ने कहा—दूसरे मिसरे में यह परिवर्तन कर दिया जाय तो अच्छा हो—

सर को पटका है कभू सीना कभू कूटा है।
हमने शबे हिज्र की दौलत से मज़ा लूटा है॥

शाह साहब बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने 'रङ्गीं' का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचा, और कहा—आफ़रीं! आफ़रीं! वल्लाह, मैं दीवान में इसी तरह लिखूँगा। इससे हातिम की बड़ी दरिया दिली प्रकट होती है। कवियों में ऐसे लोग कम होते हैं जो अपनी कविता में किसी और का किया हुआ संशोधन स्वीकार करें।

पहले इनका उपनाम रम्ज़ था, पीछे हातिम हुआ। शाह हातिम का दीवान बहुत बड़ा था। पहले पहल जब उनका दीवान लोगों के सामने आया तब किसी ने कहा—शाह साहब, आपका दीवान तो दीवानों का बाप मालूम होता है। शाह साहब उस समय तो चुप रहे। पर थोड़े दिनों बाद उन्होंने उसे काट-छाँट कर छोटा कर दिया और नाम रक्खा दीवान-ज़ादा। पूछने पर बताया कि यह दीवान से पैदा हुआ है, इसलिये इसका नाम दीवान-ज़ादा रख दिया है। फिर भी पाँच हज़ार शेर उसमें रह गये। फ़ारसी में भी इनका एक छोटा सा दीवान है।

यहाँ शाह हातिम के कुछ शेर हम पाठकों की भेंट करते हैं—

फ़क़ारों से सुना है हमने 'हातिम' ।
मज़ा जीने का मर जाने में देखा ॥

* * *

हिज्र की ज़िन्दगी से मौत भली ।
कि जिसे सब कहें विसाल हुआ ॥

* * *

यार का मुझको इस सबब डर है ।
शोख़ ज़ालिम है औ सितमगर है ॥
हक़ में आशिक़ के तुझ लवाँ का बचन ।
क़न्द है नेशकर है शक्कर है ॥
क्यों के सब से तुझे छिपा न रखूँ ।
जान है दिल है दिल का अन्तर है ॥
मारने को रक़ीब के 'हातिम' ।
शेर है बबर है धनन्तर है ॥

* * *

यहाँ नालों से मिलता है पियारा ।
अबस देखै है ज़ाहिद इस्तख़ारा ॥
मैं पाया हूँ वले तुझ चश्म का भेद ।
न माँगूँगा कभी इनका इशारा ॥
निहाले दोस्ती को काट डाला ।
दिखा कर शोख़ ने अबरू का आरा ॥

लिया उस गुलवदन का हमने बोसा।
तो क्या चूमा रक़ीबों ने हमारा॥
कई आलम किये हैं क़त्ल उनने।
करे क्या एकला 'हातिम' बेचारा॥

* * *

जिसको देखा सो यहाँ दुश्मने-जाँ है अपना।
दिल को जाने थे हम अपना सो कहाँ है अपना॥

* * *

क़ासिद की ज़वाँ से उसके आगे।
पैग़ाम व सलाम कुछ न निकला॥

* * *

गुलशन उस गुल विन मेरी नज़रों में वीराँ हो गया।
झाड़ झाड़ औ बूटा बूटा दुश्मने-जाँ हो गया॥
अश्क खूँ-आलूदः मेरे इस क़द्र जारी है आज।
जा-बजा लालों से हिन्दुस्ताँ वदख़्शाँ हो गया॥
शोर दरिया तक मलाहत का तेरी पहुँचा है शोर।
बेनमक आगे तेरे लब के नमकदाँ हो गया॥
फ़ैज़ सुहबत का तेरी 'हातिम' अयाँ है हिन्द में।
तिफ़्ले मकतब था सो आलम बीच 'तावाँ' हो गया॥

* * *

छुपा नहिँ जा-बजा हाज़िर है प्यारा।
कहाँ वह चश्म जो मारे नज़ारा॥

जुदा नहिं सब सेती तहक़ीक़ कर देख।
मिला है सब से औ सब से है न्यारा॥
मुसाफिर उठ तुझे चलना है मञ्जिल।
बजे है कूच का हरदम नक़ारा॥
मिसालें बहर मौजें मारता है।
किया है जिसने इस जग सों किनारा॥
सयाने ख़ल्क़ से यूँ भागते हैं।
कि जूँ आतिश सेती भागे है पारा॥
समझ कर देख सब जग सीख माहीं।
कहाँ हैगा सिकन्दर कहाँ है दारा॥
कहै हैं अहल उर्फ़ा उसको जीता।
जो मर कर इश्क़ में दुनियाँ सूँ हारा॥
सफ़ा कर दिलके आईने को 'हातिम'।
देखा चाहे सजन गर आशकारा॥

* * *

हरयक स.ख़ुन हुआ है हमारा मिसालें .क़न्द।
शीरीं लबाँ के जब सेती बोसे लिये हैं हम॥

* * *

आबेहयात जाके किसू ने पिया तो क्या?
मानिन्द ख़िज़्र जग में अकेला जिया तो क्या॥
शीरीं लबाँ सूँ सङ्ग दिलों को असर नहीं।
फ़रहाद काम कोहकुनी का किया तो क्या?

जलना लगन में शमा सिफ़त सख़्त काम है।
परवाना जो शिताब अवस जी दिया तो क्या ?
नासूर की सिफ़त है न होगा कभी वह बन्द।
जर्राह ज़ख़्म इश्क़ का आकर सिया तो क्या ?
मुहताजगी सूँ मुझको नहीं यकदम फ़राग़।
हमने जहाँ में नाम को 'हातिम' किया तो क्या ?

❦ ❦ ❦

ख़याल उसके ने दिल लिया मेरा।
तिल में उनने लहू पिया मेरा॥
जान बेदर्द को मिला क्यों था।
आगे आया मेर किया मेरा॥
उसके कूचे में मुझको फिरता देख।
रश्क खाती है आसिया मेरा॥
नहीं शमा व चिराग़ की हाजत।
दिल है मुझ बज़्म का दिया मेरा॥
ज़िन्दगी दर्दे सर हुई 'हातिम'।
कब मिलेगा मुझे पिया मेरा॥

❦ ❦ ❦

उसके क़दमों से लगी रहती है दिन रात हिना।
ख़ूब दुनिया में बसर करती है औक़ात हिना॥

❦ ❦ ❦

ऐ ख़िरदमन्दो मुवारक हो तुम्हें फ़र्ज़ानगी।
हम हों औ सहरा हो औ वहशत हो औ दीवानगी॥
बे मुरौवत बे वफा बेदीद ऐ नाआशना।
आशनाओं से न कर बेरहमी वो बेगानगी॥
मुल्क दिल आवाद क्यों करता है 'हातिम' का ख़राव।
ऐ मेरे बस्ती! ख़ुश आती है तुझे वीरानगी॥

तेरे रुख़सार व क़द ने धूम डाला है गुलिस्ताँ में।
उधर बुलबुल सिसकती है इधर क़ुमरी बिलकती है॥
दो चार अब तुझसे क्योंकर होये हमचश्मी के दावे से।
कि नरगिस की चमन में देखकर गरदन ढलकती है॥

जब से तुम्हारी आँखें आलम को भाइयाँ हैं।
तब से जहाँ में तुमने धूमें मचाइयाँ हैं॥
जुल्फ़ों का बल बताना आँखें चुराके चलना।
क्या कज अदाइयाँ हैं क्या कम निगाहियाँ हैं॥
'हातिम' के बिन इशारे सच कह यह चश्मो अबरू!
किससे लड़ाइयाँ हैं किस पर चढ़ाइयाँ हैं॥

तुम्हारे गुञ्चा लब के शौक़ में गुलशन की सब कलियाँ।
चमन में सुन ख़बर आने की इस्तक़बाल को चलियाँ॥

लगन में तुझ सितमगर के अजब मजलिस में ग़म गुज़रा।
शमा रो रो के सारी रात सर ता पा खड़ी जलियाँ॥

* * *

ज़ुल्फ़ों चश्मों ख़ालो ख़त चारो हैं दुश्मन जानके।
हक़ रखे ईमाँ सलामत ऐसे कुफ़्रिस्ताँ के बीच॥

* * *

किसी को आपसे गर आशना करे माशूक़।
तो पहले उसको सभों से जुदा करे माशूक़॥

* * *

हमसे हो ज़रो सीम की तदबीर सो क्या ख़ाक?
दुनियाँ में बड़ी चीज़ है अकसीर सो क्या? ख़ाक!

* * *

इतनी भी आसमाँ ने फ़ुरसत कभी न दी हाय!
जो बैठकर निकालें दिलका ग़ुबार हम तुम॥

* * *

तू अज़ीयत-पेशा दुश्मन है बग़ल में दिल नहीं।
दूर हो पहलू से सुहबत के मेरी क़ाबिल नहीं॥

* * *

तुम तो बैठे हुये य आफ़त हो।
उठ खड़े हो तो क्या क़यामत हो॥
मुफ़लिसी और मिजाज़ पे 'हातिम'।
क्या क़यामत करे जो दौलत हो॥

* * *

हुस्न औ इश्क़ तेरे फ़ैज क़दम के सद्क़े।
दोनों आवाद हैं हमगुलशनो हमवीराना ॥

❦ ❦ ❦

वे .खुद इस दौर में हैं सब 'हातिम'।
इन दिनों क्या शराव सस्ती है ॥

❦ ❦ ❦

कामिलों का यह स.खुन मुद्दत सूँ मुझको याद है।
जगमों वे महवूब जीना ज़िन्दगी वरवाद है ॥

❦ ❦ ❦

हर सुबह उठ बुतों से मुझे राम राम है।
ज़ाहिद तेरी नमाज़ को मेरा सलाम है ॥

❦ ❦ ❦

लाम नस्तालीक़ का है उस बुते काफ़िर की .ज़ुल्फ़।
हम तो काफ़िर हों अगर तावा न हों इसलाम के ॥

❦ ❦ ❦

मैं नातवान हुआ इस क़द्र कि मुद्दत से।
न लब से नाला न सीने से आह निकले है ॥
ज़वाने ख़ल्क़ भी 'हातिम' अजव तमाशा है।
जिधर वह निकले उधर वाह वाह निकले है ॥

आरज़ू

आरज़ू उपनाम; सिराजद्दीन अली ख़ाँ नाम; पिता का नाम शेख़ हसामुद्दीन रहसाम। जन्मस्थान आगरा; जन्म-संवत् १७४९; मरण-संवत् १८०१।

ख़ान आरज़ू फ़र्रुखसियर के राज्यकाल में सं० १७७३ में दिल्ली आये। उस समय इनकी उम्र चौबीस वर्ष की थी, और ये अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके थे। दिल्ली से इनको बड़ा प्रेम था। शाहआलम के समय में जब दिल्ली का पतन हुआ, ये नवाब सालारजंग के साथ लखनऊ चले गये और वहीं क़ब्रवासी हुये।

ख़ान आरज़ू फ़ारसी भाषा के उस्ताद और अपने समय के बड़े ही प्रसिद्ध कवि थे। १४ वर्ष की अवस्था से ही ये कविता रचने लगे थे। उर्दू के तो ये नाममात्र के कवि थे, पर इन्होंने उर्दू को ऐसे ऐसे शागिर्द दिये, जिन्होंने उसे आसमान पर चढ़ा दिया। इनके शागिर्दों में मुख्य ये हैं—जानजानाँ मज़हर, सौदा, मीर तक़ी, मीर दर्द। मीर तक़ी ख़ान आरज़ू के भांजे थे।

ख़ान आरज़ू ने उर्दू के महावरे दुरुस्त किये, नये दाख़िल किये, पुराने और अप्रचलित महावरों को काट-छाँट कर निकाला। इन्हीं के ज़माने से उर्दू भाषा को साफ़ सुथरापन मिलना शुरू हुआ।

इनके शिष्यों में एक नौ जवान बचपन से ही सेवा में उपस्थित रहा करता था। चेहरा उसका 'प्रोफ़ेसर आज़ाद के शब्दों में' 'नमकीन' था। किसी कारण से वह कुछ दिनों तक नहीं आया। एक दिन ये राह में कहीं बैठे थे। वह भी उधर से निकला। चार आँखें हुईं। इन्होंने बुलाया, पर वह किसी आवश्यक काम के कारण न रुक सका। इन्होंने उसे रोक कर यह शेर पढ़ा—

यह नाज़ यह ग़ुरूर लड़कपन में तो न था।
क्या तुम जवान होके बड़े आदमी हुए ?

फ़ारसी में इनके दो दीवान हैं। इन्होंने दीवानों के सिवा और भी कई बड़ी ही उपादेय पुस्तकों की रचना की है। उन में से कुछ के नाम ये हैं—सिराजुल्लुग़ात, चिराग़े हिदायत, शरह गुलिस्ताने सादी, शरह सिकन्दर नामा, तंबीहुलग़ाफ़लीन, तज़किरा शुअराय हिन्द इत्यादि।

वास्तव में ये उर्दू के कवि नहीं थे। उर्दू में कुछ लिखना भी ये अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे। जैसे हमारे संस्कृत के पण्डित हिन्दी लिखने में अपना असम्मान समझते हैं। फिर भी मौक़े मौक़े पर ख़ान आरज़ू ने उर्दू में कुछ शेर कहे भी हैं। उनमें से कुछ पाठकों की भेंट किये जाते हैं—

खोल कर बन्दे-क़बा का मुल्के-दिल ग़ारत किया।
क्या हिसारे क़ल्ब दिलबर ने खुले बन्दों लिया॥

वादे थे सब ख़िलाफ़ जो तुझ लब से हम सुने।
क्या लाल क़ीमती देखो झूठा निकल गया॥

आता हर सहर उठ तेरी बराबरी को।
क्या दिन लगे हैं देखो खुरशीद ख़ावरी को॥
उस तुन्दख़ू सनम से जब से लगा हूँ मिलने।
हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को॥

तुझ ज़ुल्फ़ में लटक न रहे दिल तो क्या करे।
बेकार है अटक न रहे दिल तो क्या करे॥

रखे सीपारये-दिल खोल आगे अन्दलीबों के।
चमन में आज गोया फूल हैं तेरे शहीदों के॥

उस ज़ुल्फ़ सियहफ़ाम की क्या धूम पड़ी है।
आईना के गुलशन में गताभूम पड़ी है॥

मेरे शोखे ख़राबाती की कैफ़ीयत न कुछ पूछो।
बहारे हुस्न को दी आब उसने जब चरस खींचा॥

जान तुझ प कुछ एतमाद नहीं।
ज़िन्दगानी का क्या भरोसा है॥

मैख़ाने बीच जाकर शीशे तमाम तोड़े।
ज़ाहिद ने आज अपने दिल के फफोले फोड़े॥

❦ ❦ ❦

दिखाई चश्म मस्त अपनी जब उस रिन्दे शराबी ने।
न दम मारा कटोरे ने न हिचकी ली गुलाबी ने॥

फ़ुग़ाँ

.फ़ुग़ाँ उपनाम; अशरफ़ अली ख़ाँ नाम। ये अहमदशाह बादशाह के कोका थे। ज़रीफुल्मुल्क कोका ख़ाँ की इनको उपाधि मिली थी। शायरी में ये 'नदीम' के शागिर्द थे। कोई कोई इन्हें कज़लिबास ख़ाँ 'उमीद' का शागिर्द बताते हैं। पर यह बात ग़लत है। .ख़ुद .फ़ुग़ाँ ने 'नदीम' को अपना उस्ताद स्वीकार किया है—

हरचन्द अब नदीम का शागिर्द है .फ़ुग़ाँ।
दो दिन के बाद देखिये उस्ताद हो गया॥

❦ ❦ ❦

दश्ते जुनूँ में क्यों न फिरूँ मैं बरहना पा।
अब तो .फ़ुग़ाँ नदीम मेरा रहनुमा हुआ॥

अहमदशाह दुर्रानी के हमलों से जब दिल्ली-दरबार की रौनक़ जाती रही, तब .फ़ुग़ाँ भी मुरशिदाबाद चले गये। वहाँ

से अवध आये। दिल्ली के निवासी सभ्यता और उठ-बैठ की कला में आदर्श माने जाते थे। नवाब शुजाउद्दौला का समय था। उन्होंने इनकी बड़ी ख़ातिर की। ये नवाब के दरबारियों में हो गये।

पर ये नाज़ुक मिज़ाज़ बहुत थे। एक दिन नवाब के हाथ से किसी तरह इनका कपड़ा जल गया। ये अप्रसन्न होकर अज़ीमाबाद चले गये। वहाँ राजा सितावराय ने इनका लखनऊ से भी बढ़कर सम्मान किया। जीवन भर ये वहीं रहे। वहीं इन्होंने सं० १८२८ में क़ब्र में निवास लिया।

फ़ुग़ाँ ने उर्दू-भाषा को और भी उन्नति दी। सौदा भी इनकी कविता के क़ायल थे। ज़ौक भी इनकी बड़ी तारीफ़ किया करते थे। इनका दीवान मिलता है। लतीफ़ा कहने में ये एकता थे और बड़े हाज़िर जवाब थे।

इनका स्वभाव बड़ा ही तेज़ था। ज़रा भर भी स्वभाव के विरुद्ध हुआ कि बारूद में आग लग गई। एक दिन का ज़िक्र है कि राजा सितावराय के दरबार में इन्होंने एक ग़ज़ल पढ़ी, जिसका तुक था लालियाँ और जालियाँ। सब साहित्य के मर्मज्ञों ने उसकी प्रशंसा की। दरबार में एक जुगनू मियाँ थे। मसखरे थे। राजा साहब के विशेष कृपापात्रों में थे। उन्होंने कहा—आपने सब क़ाफ़िये तो बाँधे, पर एक तालियाँ रह गई। इन्होंने कुछ उत्तर न दिया। राजा साहब ने कहा—नवाब साहब,

जुगनू मियाँ क्या कहते हैं ? इन्होंने कहा—महाराज, मैंने इसे यों ही छोड़ दिया था। अब आप आज्ञा दें तो अब भी कह सकता हूँ। राजा साहब ने कहा—हाँ, कुछ कहना तो चाहिये। इन्होंने उसी वक़्त यह पढ़ा—

जुगनू मियाँ की दुम जो चमकती है रात को।
सब देख देख उसको बजाते हैं तालियाँ॥

सब दरबार चहचहा उठा। मियाँ जुगनू सिटपिटा कर रह गये।

अब इनकी शायरी का कुछ मज़ा चखिये—

* * *

ऐ शेख़ ! अगर .कुफ्र से इसलाम जुदा है।
पस चाहिये तसबीह में ज़ुन्नार न होता॥

* * *

काश आजावे क़यामत औ कहे दीवान हश्र।
वह '.फ़ुग़ाँ' जो है गरेबाँ चाक फ़रियादी कहाँ ?

* * *

ख़त दीजियो छुपा के मिले वह अगर कहीं।
लेना न मेरे नाम को ऐ नामाबर कहीं॥
बादे सबा तू उक़्दहकशा उसकी हूजियो।
मुझसा गिरफ़्त दिल अगर आवे नज़र कहीं॥
इतना वफ़ूर ख़ुश नहीं आता है अश्क का।
आलम कूँ मत डुबोइयो ऐ चश्मतर कहीं॥

मेरी तरफ़ से ख़ातिरे सैयाद जमा है।
क्या उड़ सकेगा तायरे बे बालो पर कहीं॥
तेरी गली में ख़ाक भी छानी कि दिल मिले।
ऐसा ही गुम हुआ कि न आया नज़र कहीं॥
रोना जहाँ तलक था मेरी जान! रो चुका।
मुतलक़ नहीं है चश्म में नम का असर कहीं॥
बावर अगर तुझे नहीं आता तो देख ले।
आँसू कहीं ढलक गये लख़्ते-जिगर कहीं॥
ईज़ा 'फ़ुग़ां' के हक़ में यहाँ तक रवा नहीं।
ज़ालिम यह क्या सितम है ख़ुदा से भी डर कहीं॥

मुफ़्त सौदा है अरे यार कहाँ जाता है।
आ मेरे दिल के ख़रीदार कहाँ जाता है॥
लिये जाती है अजल जाने 'फ़ुग़ाँ' को ऐ यार!
लीजियो, तेरा गिरफ़्तार कहाँ जाता है॥

मेरा मुक़ाम है उस सर ज़मी प आरीतन।
उधर को जाना है आख़िर जिधर गये अपने॥
किसे तू ढूँढ़ता फिरता है ऐ 'फ़ुग़ाँ' तनहा।
कि इस सरा के मुसाफ़िर तो घर गये अपने॥

शबे फ़िराक़ न तनहा मुझे रुलाती है ।
यह सुबहे वस्ल भी आँसू से मुँह धुलाती है ॥

* * *

सनम बता तो .ख़ुदाई का मुझको क्या न हुआ ।
हज़ार शुक्र कि तू बुत हुआ .ख़ुदा न हुआ ॥
कबाब हो गया आख़िर को कुछ बुरा न हुआ ।
अजब यह दिल है जला तो भी बेमज़ा न हुआ ॥
मुवा न मैं जिया आख़िर को नीम बिसमिल हो ।
ग़जब हुआ मेरे क़ातिल का मुद्दआ न हुआ ॥
निपट हुआ हूँ फ़ज़ीहत बहुत हुआ हूँ ख़राब ।
तेरी तुफ़ैल पे ख़ाना-ख़राब क्या न हुआ ॥
तरफ़ से अपनी तू नेकी में है मेरा साहब ।
मेरी बला से '.फ़ुग़ाँ' का अगर भला न हुआ ॥

* * *

बे फ़ायदा है आरज़ूए सीमो ज़र .फ़ुग़ाँ ।
किस ज़िन्दगी के वास्ते यह दर्दे-सर .फ़ुग़ाँ ॥
जलते हैं इस गली में फरिश्ते के पर .फ़ुग़ाँ ।
क्योंकर फिरे वहाँ से तेरा नामाबर .फ़ुग़ाँ ॥
बूए कबाब सोख़्ता आती है ख़ाक से ।
दामन से क्या गिरा कोई लख़्ते जिगर .फ़ुग़ाँ ॥

याँ तक तो गर्म है मेरे ख़ुरशीद-रू का हुस्न।
देखें अगर कोई तो न ठैरे नज़र फ़ुगाँ॥

अगर मेरी ज़वाँ पर वार दीगर इन्तज़ार आवे।
अभी रोने प ज़ालिम दिल मेरा वेइख़्तियार आवे॥

दिल ज़ुल्फ़ में उलझा मुझे आराम यही है।
मैं सैद वलाकश हूँ मेरा दाम यही है॥

कहते हैं फ़स्ले गुल तो चमन से गुज़र गई।
ऐ अन्दलीव तू न क़फ़स बीच मर गई॥
शिकवा तू क्यों करे है मेरे अश्क सुर्ख़ का।
तेरी कब आस्तीं मेरे लोहू से भर गई॥
इतना कहाँ रफ़ीक़ बिसारत है चश्म की।
दिल भी उधर गया मेरी जीधर नज़र गई॥
तनहा अगर मैं यार को पाऊँ तो यों कहूँ।
इन्साफ़ को न छोड़ मुरव्वत अगर गई॥
आख़िर फ़ुगाँ वही है उसे क्यों भुला दिया।
वह क्या हुये तपाक वह उल्फ़त किधर गई॥
मुझ से जो पूछते हो तो हर हाल शुक्र है।
यों भी गुज़र गई मेरी वों भी गुज़र गई॥

तार की तरह कहीं ज़ुल्फ़े-बुताँ से टूटे।
या इलाही दिले बीमार बला से छूटे॥

❦ ❦ ❦

ज़ईफ़ है दिले बीमार इस क़रीने से।
अटक के आह निकलती है मेरे सीने से॥

❦ ❦ ❦

खा पेचो ताब मुजको डसें अब ब कालियाँ।
ज़ालिम इसीलिये तैंने ज़ुल्फ़ें थीं पालियाँ॥
तनहा न दुर को देख के गिरते हैं अश्के चश्म।
सूराख़ दिल में करती हैं कानों की बालियाँ॥
देखा कि यह तो छोड़ता मुमकिन नहीं मुझे।
चलने लगा वह शोख़ मेरा तब यह चालियाँ॥
हर बात बीच रूठना हरदम में नाख़ुशी।
हर आन दूखना मुझे हरवक़्त गालियाँ॥
ईज़ा हरेक तरह से देना ग़रज़ मुझे।
कुछ बस न चल सका तो यह तरहें निकालियाँ॥
हमने शबे फ़िराक़ में सुनता है ऐ फ़ुग़ाँ!
क्या ख़ाक सोके हसरतें दिलकी निकालियाँ॥
यह था ख़याल ख़्वाब में हैगा य रोज़ वस्ल।
आखें जो खुल गईं वही रातें हैं कालियाँ॥

❦ ❦ ❦

उश्शाक तेरी गरमए-बाज़ार कर गये।
इस जिन्स को गिराँ य ख़रीदार कर गये॥

* * *

उठ चुका दिल मेरा ज़माने से।
उड़ गया मुर्ग़ आशियाने से॥
देखकर दिलको मुड़ गईं मिज़गाँ।
तीर ख़ाली पड़ा निशाने से॥
हमने पाया तो यह सितम पाया।
इस ख़ुदाई के कारख़ाने से॥

* * *

ग़ैर अज़ दुई के मानए-दीदार कौन है?
वह यार हो गया तो फिर अग़यार कौन है?
बीमे ग़ज़ब रखे है मुझे मग़फ़रत से दूर।
गर वह करीम है तो गुनहगार कौन है?
जागा न कोई ख़्वाबे-अदम से कि पूछते।
आसूदगाने ख़ाक में बेदार कौन है?
मैं मर गया प आह न पूछा 'फ़ुग़ाँ' मुझे।
दर्दे जिगर किसे है यह बीमार कौन है?

मज़हर

मज़हर उपनाम; मिर्ज़ा जानजानाँ मज़हर नाम; बाप का नाम मिर्ज़ा जान; जन्म-संवत् १७५४; मरण-संवत् १८३६। इनका जन्म कालाबाग़ इलाके मालवा में हुआ था। इनके पिता आलमगीर के दरबार में मनसब थे। बादशाह आलमगीर ने इनका नाम जानजानाँ रक्खा। यद्यपि बाप ने शम्सुद्दीन नाम रक्खा, पर बादशाह के रखे हुये नाम के आगे वह नहीं चला। इनके बाप भी शायर थे और 'जानी' उनका उपनाम था।

१६ वर्ष की अवस्था में इनके बाप मर गये। ये ३० वर्ष की उम्र तक मद्रसों और खानकाहों की ख़ाक छानते रहे।

बचपन से ही ये सौन्दर्योपासक थे। कुरूप पुरुषों की गोद में जाते ही न थे और रूपवान की गोद से उतरते ही न थे। शायरी का शौक़ भी बचपन से ही था। जब ये दिल्ली में आकर रहने लगे थे, उन दिनों मीर अब्दुल हई ताबाँ के रूप की बड़ी प्रशंसा थी। लोग उन्हें दूसरा यूसुफ़ कहते थे। उनके गोरे तन पर काली पोशाक ऐसी खिलती थी कि देखने वाले लहालोट हो जाते थे। उसकी ख़बर यहाँ तक फैली कि बादशाह ने भी सुना। उन्हें भी देखने का शौक़ हुआ। एक रोज़ उसी राह से सवारी निकली, जिस राह में ताबाँ का मकान था। मकान के सामने पहुँच कर बादशाह ने आबेहयात (बादशाही

ज़बान में पानी) माँगा। तावाँ बने-ठने मोढ़े पर बैठ थे। बादशाह पानी पीकर उन्हें देखते हुये चले गये।

तावाँ के रूप पर सारा शहर न्योछावर था। पर वह भी किसी के रूप पर आशिक़ थे। सुलेमान नामका एक लड़का था। तावाँ उसी पर आसक्त थे। यद्यपि उसका वियोग उनको सहन नहीं करना पड़ता था, पर वे रात दिन उसी के इश्क़ में आह भरा करते और रोया करते थे। शराब में रात दिन मस्त रहते थे। मेले-तमाशों में जाने के बड़े शौक़ीन थे। रईसों की महफ़िलें उनके बिना बेजान सी रहती थीं। वे साधारण हैसियत के थे, पर अपने रूप और गुण की बदौलत अमीरों की तरह ऐश-आराम से रहते थे। इधर उनके चाहने वालों में मिर्ज़ा जानजानाँ और सौदा थे। सौदा भी कभी कभी इसलाह दिया करते थे। माशूक़ जब ख़ुद किसी का आशिक़ हो, तब उसके आशिक़ की तो बड़ी दुर्गति होती है। हज़रत ज़ान-ज़ानाँ ने अपने एक शेर में अपने दिल की यह तकलीफ़ कह डाली है। वह शेर यह है—

कोई लेवे दिल अपने की ख़बर या दिलबर अपने की।
किसी का यार जब आशिक़ कहीं हो, क्या क़यामत है!

तावाँ भी शायर थे, उनका भी दीवान है। वह शाह हातिम और मीर मुहम्मद अली 'हशमत' के शागिर्द और मिर्ज़ा जान-जानाँ के मुरीद थे। जानजानाँ तावाँ के आशिक़ थे। जलसों

में एक ओर शेर पढ़े जाते थे, दूसरी ओर जानजानाँ तावाँ की ओर टकटकी लगाये देखा करते थे। तावाँ भी वहुत शोख़ और चिचिल्ले हो चले थे। कभी कभी जलसे में ही उठकर कुछ कहने की आज्ञा लेकर जानजानाँ के कान के पास मुँह ले जाकर वाहियात वातें भी वक आया करते थे। जानजानाँ भी इस रस के रसिया थे। तावाँ के साथ कानाफूसी करना उन्हें भी वड़ा प्रिय लगता था। खेद की बात है कि तावाँ का भरी जवानी में देहान्त हो गया। तावाँ की मृत्यु पर दिल्ली में शोक मनाया गया। मीर तक़ी ने भी अपनी एक ग़ज़ल के मक़ते में अपना शोक प्रकट किया है—

दाग़ है तावाँ अलुर्रहमतः का छाती प 'मीर'।
हो नजात उसको वेचारा हमसे भी था आशना॥

तावाँ जिस मकान में रहते थे, अभी तक वह मौजूद है।

मज़हर जानजानाँ कुछ वहुत पढ़े-लिखे न थे। पर रङ्ग-ढङ्ग, वोलचाल, रहन-सहन, कटछँट और अदव-क़ायदे के वड़े पावंद थे। उनके साथ बैठने वालों को वहुत सावधान रहना पड़ता था। अशिष्ट व्यवहार को वे सहन न कर सकते थे।

एक दिन एक नवाव साहव मुलाक़ात के लिये आये। प्यास लगने पर स्वयं सुराही से उँडेल कर उन्होंने पानी पिया। पर पानी पीकर उन्होंने आवखोरा सीधा न रक्खा। जानजानाँ आपे से वाहर हो गये। बिगड़ कर बोले—अजीब बेवक़ूफ़ अहमक़ था,

जिसने तुम्हें नवाब बना दिया, जो सुराही पर आबखोरा भी रखना नहीं जानता।

सुकुमारता इतनी थी कि एक दिन दरज़ी ने टोपी ज़रा सी टेढ़ी बना दी। उसे पहन कर निकले तो सिर में दर्द हो आया।

मौलवी ग़ुलाम यहिया किसी दैवी प्रेरणा से मिर्ज़ा जान-जानाँ के मुरीद होने दिल्ली आये। उनकी दाढ़ी बहुत बड़ी थी। जुमा के दिन जामे मसजिद में मिर्ज़ा साहब से उनकी भेंट हुई। उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया। मिर्ज़ा जान-जानाँ ने पहले तो उन्हें ग़ौर से देखा और फिर कहा—पहले दाढ़ी को तरशवा कर भलेमानसों की सी सूरत बनाइये, तब हमारे यहाँ तशरीफ़ लाइयेगा। भला, यह रीछ की सी सूरत जब मुझे अच्छी नहीं मालूम होती तो ख़ुदा को कब पसन्द आयेगी।

मुल्ला तीन दिन तक घर बैठे रहे, पर जब लगातार तीन दिन तक दैवी प्रेरणा होती रही, तब मिर्ज़ा साहब की तरह दाढ़ी कतरवाकर मुरीदों में दाख़िल हुये।

सैयद इन्शा अल्लाख़ाँ से मिर्ज़ा जानजानाँ मज़हर की भेंट हुई थी। इन्शा ने उस भेंट की चर्चा अपनी एक पुस्तक में की है।

मज़हर साहब का एक दीवान फ़ारसी में है, जिसे उन्होंने ६० वर्ष की उम्र में बीस हज़ार शेर में से एक हज़ार

शेर चुनकर तैयार किया था। उर्दू में भी दीवान है, पर वह पूरा नहीं है। भाषा वही सौदा और मीर की है। ग़ज़लें सब आशिक़-माशूक़ों के चोचलों से भरी हैं। सौदा ने इनके शेरों की ख़ूब दिल्लगी उड़ाई है। वे लिखते हैं—

'मज़हर' का शेर फ़ारसी और रेख़ता के बीच।
'सौदा' यक़ीन जान कि रोड़ा है बाट का॥
आगाहे फ़ारसी तो कहें उसको रेख़ता।
वाक़िफ़ जो रेख़ता के ज़रा होवे ठाट का॥
सुनकर व यह कहे कि नहीं रेख़ता है यह।
और रेख़ता भी है तो फ़िरोज़शाह की लाट का॥
अलक़िस्सा इसका हाल यही है जो सच कहूँ।
कुत्ता है धोबी का कि न घर का न घाट का॥

मिर्ज़ा साहब ने एक धोबिन घर में डाल ली थी। आख़िरी शेर में उधर भी संकेत है।

अस्सी वर्ष की अवस्था में रात के समय एक व्यक्ति मिठाई का टोकरा लेकर आया। द्वार बन्द था। उसने पुकारा और कहा कि मैं मुरीद हूँ। भेंट-पूजा लेकर आया हूँ। मज़हर साहब बाहर निकले। निकलते ही उसने तमंचा मारा। गोली छाती के पार हो गई। वह तो भाग गया और ये मूर्छित होकर गिर पड़े। तीन दिन तक जीवित रहे, पर पीड़ा से बेचैन रहते थे। ये तीन दिन इन्होंने बड़े धैर्य से काटे। शाहआलम बादशाह को

मालूम हुआ तो उसने कहला भेजा कि हुलिया बतायें तो हम उसे पकड़वाकर दंड दें। मज़हर साहब ने उत्तर भेजा कि मैं अब मृत्यु की राह में हूँ। मरे को मारना अपराध नहीं है। घातक मिले तो आप दंड न दें। मेरे पास भेज दें। अंत में सं० १८३६ में मुहर्रम की दसवीं रात के समय ये इस संसार से चल बसे। मृत्यु के कुछ दिन पहले ही से इन्हें अपना अन्तकाल निकट आया जान पड़ता था। इस बात का संकेत ये अपने शेरों में भी करते थे और मित्रों से भी बातचीत के समय कहा करते थे। मृत्यु से थोड़े ही दिन पहले एक व्यक्ति शागिर्द होने और इसलाह लेने के लिये आया। इन्होंने कहा— अब समय कुछ और है, इसलाह के होशहवास किसे हैं? एक शेर याद आता है। इसे ही इसलाह समझो—

लोग कहते हैं मर गया मज़हर।
फिलहक़ीक़त में घर गया मज़हर॥

मज़हर साहब को किसने मारा? इस विषय में बड़ा विवाद है। कोई कहता है सुन्नी ने मारा, कोई कहता है शिया ने। हकीम क़ुदरतुल्ला ख़ां क़ासिम का कथन है कि मज़हर साहब प्रायः हज़रत अली के विरुद्ध शेर कहा करते थे। इसी से बिगड़ कर किसी सुन्नी ने उन्हें मार डाला।

दिल्ली में चितली क़बर के पास ये दफ़न हुये थे। वह अब ख़ानक़ाह कहलाती है। क़ब्र पर इन्हीं का यह शेर लिखा है—

बलैहे तुरबते मन याफ़तन्द अज़ ग़ैब तहरीरे।
कि ईं मक़तूलरा जुज़ बेगुनाही नेस्त तक़सीरे॥

मज़हर साहब जैसे रहन-सहन के बड़े पाबन्द थे, वैसे ही भाषा की सफ़ाई पर भी उनका बहुत ध्यान था। उर्दू के पुरानेपन को उन्होंने काटछाँट कर बहुत सुधारा। उनके शिष्यों में मुख्य मीर मुहम्मद बाक़र, बसावन लाल 'बेदार', ख़्वाजा अहसनुल्ला ख़ाँ 'बयान', और इनामुल्ला ख़ाँ 'यक़ीन' थे। इन सब के भी दीवान हैं और ये भी अच्छे कवि थे।

मज़हर साहब के कुछ शेर, जो हाथ आये, पाठकों के मनोविनोदार्थ यहाँ दिये जाते हैं—

चली अब गुल के हाथों से लुटाकर कारवाँ अपना।
न छोड़ा हाय बुलबुल ने चमन में कुछ निशाँ अपना॥
य हसरत रह गई क्या क्या मज़े से ज़िन्दगी करते।
अगर होता चमन अपना गुल अपना बाग़बाँ अपना॥
अलम से याँ तलक रोईं कि आख़िर हो गईं रुसवा।
डुबाया हाय आँखों ने मज़हका खान्दाँ अपना॥
रक़ीबाँ की न कुछ तक़सीर साबित है न ख़ूबाँ की।
मुझे नाहक़ सताता है यह इश्के-बदगुमाँ अपना॥
मेरा जी जलता है उस बुलबुले-बेकस की ग़ुरबत पर।
कि जिनने आसरे पर गुल के छोड़ा आशियाँ अपना

जो तूने की सो दुश्मन भी नहीं दुश्मन से करता है।
ग़लत था जानते थे तुझ को जो हम मेहरबाँ अपना॥
कोई आज़ुरदः करता है सजन अपने को ऐ ज़ालिम!
कि दौलत ख़्वाह अपना 'मज़हर' अपना जानजाँ अपना॥

❦ ❦ ❦

गरचे अल्ताफ़ के क़ाबिल य दिले ज़ार न था।
लेकिन इस जौरोजफ़ा का भी सज़ावार न था॥
लोग कहते हैं मुवा मज़हरे बेकस अफ़सोस।
क्या हुआ उसको, वह इतना भी तो बीमार न था॥

❦ ❦ ❦

जवाँ मारा गया ख़ूबाँ के बदले मीरज़ा 'मज़हर'।
भला था या बुरा था, ज़ोर कुछ था ख़ूब काम आया॥

❦ ❦ ❦

हमने की है तौबा औ धूमें मचाती है बहार।
हाय, बस चलता नहीं क्या मुफ़्त जाती है बहार॥
लाला औ गुल ने हमारी ख़ाक पर डाला है शोर।
क्या क़यामत है मुवों को भी सताती है बहार॥
शाख़ गुल हिलती नहीं यह बुलबुलों को बाग़ में।
हाथ अपने के इशारे से बुलाती है बहार॥
हम गिरफ़्तारों को अब क्या काम है गुलशन से लेक।
जी निकल जाता है जब सुनते हैं आती है बहार॥

❦ ❦ ❦

य दिल कब इश्क़ के क़ाबिल रहा है।
कहाँ इसको दिमाग़ो दिल रहा है॥
ख़ुदा के वास्ते इसको न टोको।
यही यक शहर में क़ातिल रहा है॥
नहीं आता इसे तकिया प आराम।
य सर पावों से तेरे हिल रहा है॥

अगर मिलिये तो ख़फ्फ़त है वगर दूरी क़यामत है।
ग़रज़ नाज़ुक दिमाग़ों को मुहब्बत सख़्त आफ़त है॥
कोई लेवे दिल अपने की ख़बर या दिलबर अपने की।
किसी का यार जब आशिक़ कहीं हो क्या क़यामत है॥

तौफ़ीक़ दे कि शोर से यकदम तो चुप रहे।
आख़िर मेरा यह दिल है इलाही जरस नहीं॥

रुसवा अगर न करना था आलम में यों मुझे।
ऐसी निगाहे-नाज़ से देखा था क्यों मुझे॥

अब ताबाँ के भी कुछ शेरों का मुलाहज़ा फरमाइयें—
सरसब्ज़ ख़त से दूना हुआ हुस्न यार का।
आख़िर ख़िज़ाँ ने कुछ न उखाड़ा बहार का॥

अक्सर जो इस ज़मीन को होता है ज़लज़ला।
शायद गिरा है जिस्म किसी बेक़रार का॥
किस किस तरह से दिल में गुज़रती हैं हसरतें।
है वस्ल से ज़ियादा मज़ा इन्तज़ार का॥

* * *

नहीं कोइ दोस्त अपना यार अपना मेहरबाँ अपना।
सुनाऊँ किसको ग़म अपना अलम अपना बयाँ अपना॥
बहुत चाहा कि आवे यार या इस दिल को सब्र आवे।
न यार आया न सब्र आया दिया जी में नदाँ अपना॥
क़फ़स में तड़फे हैं यह अंदलीबाँ सख़्त बेबस हैं।
न गुलशन देख सकते हैं न यह अब आशियाँ अपना॥
मुझे आता है रोना ऐसी तनहाई प पे ताबाँ!
न यार अपना न दिल अपना न तन अपना न जाँ अपना॥

* * *

अख़गर को छिपा राख में मैं देखके समझा।
ताबाँ तो तहे ख़ाक भी जलता ही रहेगा॥

* * *

रहता हूँ ख़ाको खूँ में सदा लोटता हुआ।
मेरे ग़रीब दिल को इलाही य क्या हुआ॥
मैं अपने दिल को गुंचये तसवीर की तरह।
या रब कभू ख़ुशी से न देखा खिला हुआ॥

नासेह अबस नसीहते-बेहूदा तू न कर।
मुमकिन नहीं कि छूट सके दिल लगा हुआ॥
हम बेकसी प अपनी न रोवें तो क्या करें।
दिल सा रफ़ीक़ हाय! हमारा जुदा हुआ॥

कोई दूसरा मुझसा तावाँ न होगा।
कि दिल दे तुझे फिर पशेमाँ न होगा॥

जफ़ा प अपनी पशेमाँ न हो हुआ सो हुआ।
तेरी बला से मेरे जी प जो हुआ सो हुआ॥
सबब जो मेरी शहादत का यार से पूछा।
कहा कि अब तो उसे गाड़ दो हुआ सो हुआ॥
य दर्दे इश्क़ है मेरा नहीं इलाज तबीब।
हज़ार कोई दवायें करो हुआ सो हुआ॥
भले बुरे की तेरे इश्क़ में उड़ा दी शरम।
हमारे हक़ में कोई कुछ कहा हुआ सो हुआ॥
न पाई ख़ाक भी 'तावाँ' की हमने फिर ज़ालिम।
व एकदम हो तेरे रूबरू हुआ सो हुआ॥

बेताबियों की इश्क़ के करता है क्या इलाज।
'तावाँ' यही जो दिल है तो आराम हो चुका॥

आशना हो चुका हूँ मैं सब का।
जिसको देखा सो अपने मतलब का॥
हैं बहुत जामाज़ेब पर हमने।
कोई देखा नहीं ये चपढब का॥
याँ पलक भी न हम सकें झपका।
ऐसा क़ासिद तू जाइयो लपका॥

* * *

सुन फस्ल गुल .खुशी हो गुलशन में आइयाँ हैं।
क्या बुलबुलों ने देखो धूमें मचाइयाँ हैं॥
बीमार है ज़मी से उठती नहीं असा बिन।
नरगिस को तुम ने शायद आँखें दिखाइयाँ हैं॥
आईना रूबरू रख औ अपनी छब दिखाना।
क्या .खुदपसंदियाँ हैं क्या .खुदनुमाइयाँ हैं॥
देखे से आईना भी हैरान है तेरा रू।
चेहरा के बीच तेरे क्या क्या सफ़ाइयाँ हैं॥
.खुरशीद गर कहूँ मैं तो जान है व पीला।
जो मह कहूँ तेरा रू उस पर तो छाइयाँ हैं॥
जब पान खा के प्यारा गुलशन में जा हँसा है।
बे इख़्तियार कलियाँ तब खिलखिलाइयाँ हैं॥
कहते थे हम किसी से तुम बिन नहीं मिलेंगे।
अब किस के साथ प्यारे ये दिल रुबाइयाँ हैं॥

आशिक़ से गर्म मिलना फिर बात भी न कहना।
क्या वे मुरव्वतीं है क्या वे वफ़ाइयाँ हैं॥
अफ़सोस ऐ सनम! तुम ऐसे हुये हो अवतर।
मिलते तो ग़ैर से जा हम से रुखाइयाँ हैं॥
क़िस्मत में देखें क्या है जीते रहें कि मर जायँ।
क़ातिल से हम ने यारो आँखें लड़ाइयाँ हैं॥
अब मेहरबाँ हुआ है 'ताबाँ' तेरा सितमगर।
आहें तेरीं किसी ने शायद सुनाइयाँ हैं॥

* * *

लिया था दोस्ती से जिन ने दिल हाय!
व अब दुश्मन हुआ है मेरे जी का॥
मुझे तरसा के उस काफ़िर ने मारा।
नतीजा क्या यही था आशिक़ी का॥

* * *

होटों प तेरे ज़ालिम मिस्सी की यह धड़ी है।
या उनके तईं किसी ने मलमल किया है नीला॥

* * *

अकेला सनम बाग़ में कल गया था।
उसे देख काँटों पे गुल लोटता था॥
लिया चाह से खींच यूसुफ़ को अपने।
तेरा इश्क़ 'ताबाँ' क़यामत रसा था॥

फ़ुग़ाँ ने मेरा मुँह फिर आकर खुलाया।
अभी रोते रोते ही चुपका रहा था॥

❦ ❦ ❦

मेरी लौह तुरबत प यारो खुदाना।
न इस संगदिल से कोई जी लगाना॥

❦ ❦ ❦

गली में अपनी रोता देख मुझ को वह लगा कहने।
कि कुछ हासिल नहीं होने का सारी उम्र रो बैठा॥

❦ ❦ ❦

सबा मेरा पैग़ाम उन तक तू ले जा।
कि तुझ बिन रहें हम, कहाँ यह कलेजा॥
किसी बात का मैं न शिकवा करूँगा।
तेर जी में आवे सो मुझ को कहे जा॥

❦ ❦ ❦

तुम्हारे हिज्र में रहता है हम को ग़म मियाँ साहब।
ख़ुदा जाने जियेंगे या मरेंगे हम मियाँ साहब॥

❦ ❦ ❦

आशना तो मुझ से ऐसा है कि जैसा चाहिये।
पर जो कुछ दिल चाहता है हाय! वह होता नहीं॥

❦ ❦ ❦

सुलेमाँ! क्या हुआ गर तू नज़र आता नहीं मुझ को।
मेरी आँखों की पुतली में तेरी तसवीर फिरती है॥

❦ ❦ ❦

तू भली बात से भी मेरी ख़फ़ा होता है।
क्या भला चाहना ऐसा ही बुरा होता है॥
तेरी अब्रू से मेरा दिल न छुटेगा हरगिज़।
गोश्त नाख़ुन से कहूँ कोई जुदा होता है॥

❦ ❦ ❦

जो करता हूँ फ़रियाद मैं उसके आगे।
तो कहता है तावाँ! तू जाता नहीं है॥
अभी पस्त हो जागा लातों के मारे।
तेरा शोर कुछ मुझको भाता नहीं है॥

❦ ❦ ❦

तवस्सुम देख उस गुंचा दहन का।
जिगर टुकड़े हुआ है हर कली का॥

❦ ❦ ❦

मैं ख़्वाब में देखा है उसे मेहँदी लगाये।
क्या जानिये किस किस का लहू आज बहेगा॥
अब्रू तेरी ने मुझ प किया वार बेतरह।
दिल में मेरे लगी है य तलवार बेतरह॥
मुमकिन नहीं कि इश्क़ के हाथों से जाँ बचे।
पैदा हुआ है मुझको य आज़ार बेतरह॥
क्या जानिये कि आज किस आशिक़ को है अजल।
काफ़ी हुआ है अब तो मेरा वार बेतरह॥

ग़ारत ख़ुदा करे य तेरे मुल्क हुस्न को।
है फ़ौज ख़त की गिर्द नमूदार बेतरह॥
तावाँ बता के यार को क्यों कर मनाइये।
अब के हुआ है मुझ से वो बेज़ार बेतरह॥

हरम को छोड़ रहूँ क्यों न बुतक़दे में शेख़!
कि याँ हरएक को है मर्तबा ख़ुदाई का॥

ख़िज़ाँ तक तू रहने दे सैयाद हमको।
कहाँ यह चमन फिर कहाँ आशियाना॥

हँसता है गुल चमन में तो नालाँ है अन्दलीब।
दो दिल ख़ुशी न देखे कभी इस जहाँ के बीच॥

ले मेरी ख़बर चश्म मेरे यार की क्यों कर।
बीमार अयादत करे बीमार की क्यों कर॥
मंसूर को होती न अगर दार से सीढ़ी।
तो राह वह पाता तेरे दीदार की क्योंकर॥

सौदे में गुज़रती है क्या ख़ूब तरह 'तावाँ'।
वह चार घड़ी रोना वह चार घड़ी बातें॥

मेरे नज़दीक शादी और ग़म दोनों बराबर हैं।
कि असला ग़म नहीं होता कभी आज़ाद के दिल में॥

❦ ❦ ❦

याँ तक तपिश है इश्क़ की मुझ में कि बादे मर्ग।
गुल भी मेरे मज़ार पै गल कर गुलाब हो॥

❦ ❦ ❦

मरते हैं आरज़ू में इस वक़्त आन पहुँचो।
टुक तुम को देख लें हम जल्दी से जान पहुँचो॥

❦ ❦ ❦

जाती है उम्र हरदम हमको ख़बर नहीं है।
क्या जानिये कि कब तक हम बेख़बर रहेंगे॥

❦ ❦ ❦

मुक़र्रर नहीं कोई 'तावाँ' का मज़हब।
कहीं है मुसलमाँ कहीं बरहमन है॥

❦ ❦ ❦

तुझे ऐ माहरू! मैं शमा से तशबीह दूँ क्योंकर।
कि कुछ निस्बत नहीं है उसको वह नारी है तू नूरी॥

❦ ❦ ❦

देख क़ासिद को मेरे यार ने पूछा 'तावाँ'।
क्या मेरे हिज्र में जीता है वह ग़मनाक हनोज़॥

❦ ❦ ❦

पालकी भी मुझे ख़ुदा ने दी।
तौभी 'तावाँ' रहा मैं ख़ानावदोश॥

❦ ❦ ❦

किसी से इसलिये करते नहीं हैं हम इख़लास।
कि बे निफ़ाक़ ज़माने में है अब कम इख़लास॥

❦ ❦ ❦

इन बुतों को तो मेरे साथ मुहब्बत होती।
काश बनता मैं बरहमन ही मुसलमाँ के यवज़॥

❦ ❦ ❦

कोई दिन देखने दे मौसिमे गुल!
अरे सैयाद फिर बहार कहाँ॥

❦ ❦ ❦

महफ़िल के बीच सुन के मेरे सोज़े दिल का हाल।
बे इख़्तियार शमा के आँसू ढुलक पड़े॥

❦ ❦ ❦

क़यामत मुझ प कल की रात उसके हिज्र में लाई।
न आया यार मेरा आज भी वह रात फिर आई॥

❦ ❦ ❦

मैं तेरे इश्क़ से अज़ बस कि कुफ़्र में आया।
तरीक़ मसजिदो बुतख़ाना एक सा सूझा॥

इश्क़ क्या शै है किसी कामिल से पूछा चाहिये।
किस तरह जाता है दिल बेदिल से पूछा चाहिये॥
क्या तडपने में मज़ा है क़त्ल हो प्यारे के हाथ।
उसकी लज्जत को किसी बिसमिल से पूछा चाहिये॥
जिसने उसका ज़ख़्म खाया है उसे मालूम है।
तेग़े अबरू की सिफ़त घायल से पूछा चाहिये॥
यार के मिलने की तो कोइ तरह बन आती नहीं।
तरह मिलने की किसी वासिल से पूछा चाहिये॥
आहो नाले की हक़ीक़त देखता हूँ हिज्र में।
क्या गुज़रती होगी ताबाँ दिल से पूछा चाहिये॥

सौदा

सौदा उपनाम; मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी नाम; बाप का नाम मिर्ज़ा मुहम्मद शफ़ी; जन्मस्थान दिल्ली; जन्म-संवत् १७६८; मृत्यु-संवत् १८३७।

सौदा के पूर्वज सिपाहीपेशा थे, और क़ाबुल के रहने वाले थे। मिर्ज़ा मुहम्मद शफ़ी व्यापार करते-कराते क़ाबुल से दिल्ली आये। कुछ लोगों का कथन है कि पिता के सौदागर होने के कारण से ही सौदा ने अपना उपनाम सौदा रक्खा। जो हो, उर्दू-कवियों के इश्क़ से सौदा और पागलपन तो पैदा ही होते हैं। बाप सौदागर हो या मज़दूर, शायर बेटे का सौदा उपनाम हर हालत में सार्थक होता है।

सौदा पहले सुलेमान क़ुली ख़ाँ के और फिर शाह हातिम के शागिर्द हुये। ख़ान आरज़ू की संगति से भी इन्होंने साहित्यिक लाभ उठाया। पहले ये फ़ारसी में कविता लिखते थे। ख़ान आरज़ू ने इनको सम्मति दी कि अपनी मातृभाषा में कविता लिखो, तो तुम्हें बड़ी कीर्ति प्राप्त होगी और तुम लोक-प्रसिद्ध होगे।

सौदा ने इस उपदेश को अपने लिये मार्गप्रदर्शक समझा। इन्होंने उर्दू में कविता लिखनी प्रारम्भ की। थोड़े ही समय में इनकी ऐसी प्रसिद्धि हुई कि इनकी उर्दू-कविताएँ दिल्ली ऐसे

बड़े नगर में गली-कूचे, चौराहों पर सर्वसाधारण में बड़ी रुचि से पढ़ी जाने लगीं। यहाँ तक कि शाहआलम बादशाह भी आकर्षित हुये, और वे अपना कलाम सौदा को इसलाह के लिये देने लगे। पर बादशाह से इनकी बहुत दिन नहीं पटी। एक दिन बादशाह ने पूछा—मिर्ज़ा, तुम कै ग़ज़लें रोज़ कह लेते हो? मिर्ज़ा ने कहा—जब उमंग आती है तो दो चार शेर कह लेता हूँ। बादशाह ने कहा—भई, हम तो पाख़ाने में बैठ बैठे चार ग़ज़लें कह लेते हैं। सौदा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—वैसी ही बू भी आती है। यह कहकर ये दरबार से चले गये और फिर नहीं आये। बादशाह ने कई बार बुला भेजा और कहा कि हमारी ग़ज़ल बनाओ, हम तुम्हें राजकवि बना देंगे। सौदा ने कहा—आपके राजकवि बनाने से क्या होता है? बनायेगी तो मेरी कविता मुझे राजकवि बना देगी।

सौदा घर बैठ रहे। चाहनेवाले बहुत से थे। किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। बादशाह के दो ख़्वाजासरा मेहरबान ख़ाँ और बसंत ख़ाँ की बदौलत सौदा के दिन बड़े ऐश-आराम से कटने लगे।

इनकी रचना की प्रसिद्धि यहाँ तक बढ़ी कि लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला ने इन्हें पत्र में 'बिरादरमन मुशफ़िक़ मेहरबान मन' लिखकर लखनऊ बुलाया और दूत के हाथ मार्गव्यय के लिये पर्याप्त धन भेजा। पर सौदा को दिल्ली छोड़ना स्वीकार

नहीं था। इन्होंने पत्रोत्तर के अंत में यह रुबाई लिखकर लखनऊ जाना अस्वीकार कर दिया —

सौदा पये दुनिया तो वहर सू कब तक?
आवारा अर्जी कूचये वाँ कू कब तक?
हासिल यही इससे न कि दुनिया होवे!
बिलफ़र्ज़ हुआ यों भी तो फिर तू कबतक!

कई वर्ष के उपरान्त सौदा के सहायक मर गये। सौदा बहुत घबराये। उन दिनों दिल्ली से भागने वालों के लिये दो ही ठिकाने थे—लखनऊ और हैदराबाद। लखनऊ निकट था और हैदराबाद दूर। दिल्ली से जो निकलता था, सीधा लखऊन की ओर मुँह करके चल खड़ा होता था।

सौदा भी आश्रयदाता की तलाश में दिल्ली से निकले। उस समय इनकी अवस्था ६० या ६६ वर्ष के लगभग थी। पहले ये फ़र्रुख़ाबाद के नवाब बंगश के पास कुछ दिन तक रहे। नवाब बंगश की प्रशंसा में भी सौदा ने कुछ क़सीदे कहे। वहाँ से ये लखनऊ पहुँचे और नवाब शुजाउद्दौला का इन्होंने आश्रय ग्रहण किया। नवाब शुजाउद्दौला ने इनके आने से बड़ा हर्ष प्रकट किया। पर एक दिन उन्होंने कहा कि मिर्ज़ा, तुम्हारी वह रुबाई मेरे हृदय पर चित्रित हो गई है। यह कह कर उन्होंने उसे दुबारा पढ़ा। सौदा को अपनी दशा पर बड़ा शोक हुआ। उस दिन से ये फिर दरबार में न गये। यहाँ तक

कि शुजाउद्दौला मर भी गये और आसफ़ुद्दौला सिंहासनासीन हुये। एक दिन लखनऊ में मीर और सौदा की कविता के सम्बन्ध में दो व्यक्तियों में विवाद उठ खड़ा हुआ। दोनों ख़्वाजा बासत के मुरीद थे। दोनों उनके पास गये और उनसे निर्णय चाहा। उन्होंने कहा—दोनों उच्च श्रेणी के कवि हैं। पर अन्तर केवल इतना है कि मीर साहब का कलाम आह है और मिर्ज़ा साहब का वाह। उदाहरण के लिये उन्होंने यह शेर पढ़े—

सिर्हाने मीर के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते रोते सो गया है॥ मीर

* * *

सौदा की जो बालीं प गया शोरे क़यामत।
ख़ुद्दामे अदब बोले अभी आँख लगी है॥ सौदा

दोनों में से एक, जो सौदा के पक्ष में थे, सौदा के पास आये और उन्होंने कुल बातें कह सुनाईं। सौदा मीर साहब के शेर को सुन कर मुसकुराये और बोले—"शेर तो मीर साहब का है, पर दर्दख़्वाही उनके दादा की मालूम होती है।"

लखनऊ में एक मिर्ज़ा फ़ाख़िर मक़ीं रहते थे। उनसे इनकी ऐसी बिगडी कि शेरों के बदले खंजर तक की नौबत आ गई। अशरफ़ अली ख़ाँ नाम के एक सद्गृहस्थ ने १५ वर्ष की लगातार मिहनत से फ़ारसी की चुनी हुई कविताओं का एक संग्रह तैयार किया। वे उसे संशोधन और परिवर्तन-परिवर्द्धन के

लिये मिर्ज़ा फ़ाख़िर के पास ले गये। क्योंकि मिर्ज़ा फ़ाख़ि
उन दिनों फ़ारसी कविता के लिये बहुत प्रसिद्ध थे
मिर्ज़ा फ़ाख़िर ने अपनी योग्यता दिखलाने के लि
उस में बहुत काट-छाँट की। कुछ दिनों के बाद जब यह समा
चार अशरफ़ अली ख़ाँ को मालूम हुआ, तब वे बेचारे किसी
तरह कह सुनकर उस संग्रह को मिर्ज़ा फ़ाख़िर के यहाँ से उ
लाये। पुस्तक तो कटकुट कर चलनी हो गई थी। वे उसे मिर्
सौदा के पास ले आये।

सौदा ने कहा—मुझे फ़ारसी भाषा का अभ्यास नहीं। उ
के कुछ शब्द इधर उधर से जोड़ लेता हूँ, सो ईश्वर जाने कै
उन्हें हृदय में स्थान मिल जाता है। मिर्ज़ा फ़ाख़िर फ़ारसी
ज्ञाता हैं; उन्होंने जो कुछ किया होगा, समझ कर किया होगा
यदि आप औरों की सम्मति चाहते हैं, तो स्व० शेख़ अ
हज़ीं के शिष्य शेख़ आयतुल्ला 'सना', मीर शम्सुद्दीन फ़क़ीर
शिष्य मिर्ज़ा भच्चू 'ज़र्रा' वर्तमान हैं। बङ्गाल में हकीम बू अ
ख़ाँ, फ़र्रुख़ाबाद में निजामुद्दीन बिलग्रामी, शाहजहानाबाद
शाहनूरुल्ऐन वाक़िफ़ हैं, इन लोगों से सम्मति लीजिये।

अशरफ़ अली ख़ाँ ने कहा—मिर्ज़ा फ़ाख़िर तो इन फ़ारसी
दानों को कुछ नहीं समझते।

अस्तु; असरफ़ अली ख़ाँ के आग्रह से सौदा ने पुस्त
रख ली। सौदा ने पुस्तक खोल कर देखी तो कितने

शब्द बिना उनके अर्थ समझे ही काटे गये थे। इससे इन्हें बहुत दुःख हुआ। इन्होंने 'इबरतुलग़ाफ़लीन' नाम की एक पुस्तक लिखी, जिसमें मिर्ज़ा फ़ाख़िर की साहित्यिक भूलों का ख़ूब दिग्दर्शन कराया और उचित सम्मति भी दी।

मिर्ज़ा फ़ाख़िर को जब यह समाचार मिला तब वे बहुत घबराये और बातचीत के लिये अपने शिष्य बक़ाउल्ला ख़ाँ को उन्होंने सौदा के पास भेजा। बक़ाउल्ला ख़ाँ भी शायर थे। कुछ देर तक उन्होंने अपने गुरु का पक्ष लेकर ख़ूब बहस की। पर सौदा ने उन्हें निरुत्तर कर दिया। और कहा कि अपने उस्ताद से कह दो कि उस्तादों के शेरों को देखा करो तो समझा भी करो।

तात्पर्य यह कि इस विवाद से मिर्ज़ा फ़ाख़िर का मनोरथ पूर्ण न हुआ। तब उन्होंने दूसरी चाल चली। लखनऊ में उनके चेले-चाटियों की कमी थी ही नहीं। और शेखज़ादों की शेख़ी बढ़ी चढ़ी थी। एक दिन सौदा अपने घर में निश्चिन्त बैठे थे कि मिर्ज़ा फ़ाख़िर के चेले ऊपर चढ़ आये और एक ने सौदा के पेट पर छुरी रखकर कहा कि मेरे उस्ताद के सम्बन्ध में आपने जो कुछ कहा, उसका फल चखो, या तो मेरे उस्ताद के पास चल कर निर्णय करो। सौदा ने बातों के तोते तो ख़ूब उड़ाये थे, और रात दिन मज़मून बाँधने का ही वे अभ्यास करते रहते थे; पर आज का विषय तो बिल्कुल नया था। वे विवश हो गये और मियाने में बैठकर उस शैतानी दल के साथ चले। चौक में

पहुँचने पर फ़ाख़िर के चेलों ने इन्हें अपमानित करना चाहा। वे झगड़े का कोई बहाना ढूँढ़ने लगे। संयोग से उसी समय उधर से सआदत अली ख़ाँ की सवारी आ निकली। भीड़ देखकर उन्होंने सब समाचार मालूम किया और सौदा को हाथी पर अपने साथ बैठाकर वे ले गये। उस समय आसफुद्दौला अन्तःपुर में भोजन करने बैठे थे। सआदत अली ख़ाँ भीतर गये और कहा कि भाई साहब, बड़ा अनर्थ है। आपका शासन और नगर में यह अन्धेर! आसफ़ुद्दौला के पूछने पर उन्होंने सौदा का कुल समाचार कह सुनाया और अंत में कहा कि पिता जी ने मिर्ज़ा रफ़ी को 'बिरादरमन और मुशफ़िक़ मेहरबानमन' कह कर पत्र लिखा था; उन्हीं की आज यह दुर्गति हो रही है। आज मैं न पहुँचता तो नगर के बदमाशों ने इसे बेइज़्ज़त कर डाला होता।

आसफ़ुद्दौला ने कहा—मिर्ज़ा फ़ाख़िर ने ऐसा किया तो मिर्ज़ा रफ़ी का नहीं, बल्कि मुझे अपमानित किया। पिता जी ने इन्हें भाई लिखा तो ये मेरे चचा हुये।

यह कहकर आसफ़ुद्दौला बाहर निकल आये और क्रोध में उन्होंने आज्ञा दी कि "शेखज़ादों का महल्ला का महल्ला उखड़वा कर फेंक दो। और उन्हें शहर से निकाल दो। मिर्ज़ा फ़ाख़िर को, जिस दशा में हो, उसी दशा में, लाकर उपस्थित करो।"

सौदा की भलमनसाहत देखिये कि यह आज्ञा सुनते ही वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुये और बोले—महोदय, हम लोगों के

लड़ाई का फ़ैसला काग़ज़-क़लम के मैदान में आपही हो जाता है। आप इस बीच में न पड़ें। इससे मेरी बदनामी होगी। जितनी सहायता आपके प्रताप से पहुँची, वह पर्याप्त है।

सौदा की सहृदयता का नवाब पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने सिपाहियों के साथ इन्हें घर तक भेजवा दिया। इतनाही नहीं, बल्कि पुरस्कार भी दिया और ६०००) वार्षिक वेतन भी बाँध दिया। ऐसी तो उस समय की गुण-ग्राहकता थी।

नवाब सौदा पर बहुत ही प्रेम प्रकट करने लगे। कभी वे अंतःपुर में होते और सौदा अपनी उपस्थिति की सूचना भेजते तो वे तत्काल बाहर निकल आते, शेर सुनकर प्रसन्न होते और पुरस्कार देकर सौदा को प्रसन्न करते थे। सौदा लखनऊ में ही क़ब्रवासी हुये। नवाब आसफ़ुद्दौला की कृपादृष्टि इनपर अंतिम दम तक बनी रही।

सौदा बड़ी ही स्वतंत्र प्रकृति के कवि थे। निन्दात्मक कविता लिखने में तो बस एक ही थे। इनके नौकर का नाम था गुंचा। जहाँ किसी पर ये अप्रसन्न हुए कि पुकारते थे—"ओ गुंचा, ला तो क़लमदान; ज़रा मैं इसकी ख़बर तो लूँ। इसने मुझे समझा क्या है?" बस, क़लम हाथ में आई कि लाज शरम गई। फिर तो ये ऐसी जलीकटी सुनाते थे कि शैतान भी क्षमा माँगने लगे। जहाँ ज़रा सा भी क्रोध इन्हें आया, बस

क़लम उठाई और निन्दा का तूफ़ान ला दिया। पंडित, मूर्ख, धनी, ग़रीब, भला, बुरा इन्होंने सब की दाढ़ी नोची। ये इस प्रकार पीछे पड़ते थे कि पिंड छुड़ाना कठिन हो जाता था। यद्यपि मीरज़ाहक, फ़िद्वी, मकीं, बक़ा आदि ने भी इन्हें आड़े हाथों लिया। पर प्रसिद्धि इन्हीं के शेरों की हुई। बच्चे बच्चे तक उसे जानते थे। फ़िद्वी ने सौदा के लिये एक बार लिखा था—

कुछ कट गई है पेटी कुछ कट गया है डोरा।
दुम दाव सामने से वह उड़ चला लटोरा॥
भडुवा है, मसख़रा है, सौदा उसे हुआ है।

दिल्ली में मीर ज़ाहक़ नाम के एक हज़रत थे। बड़े हँसमुख, सरल स्वभाव और कवि भी थे। वेष-भूषा बिलकुल दिल्ली के नमूने की थी। सिर पर हरी पगड़ी, बड़े घेर का अंगरखा जो प्रायः हरा ही होता था, गले में कंठा, दाहिने हाथ में एक चूड़ी, एक एक उँगली में कई अँगूठियाँ, दाढ़ी कटी हुई और मेहँदी लगी हुई, हाथ भी मेहँदी से लाल, मझोला कद, रंग गोरा। सौदा से उनकी आजीवन नहीं पटी। पहले छेड़खानी उन्होंने ही की थी। सौदा ने उनके विरुद्ध कुछ लिखने से पहले उनके पास जाकर प्रार्थना की थी कि "आप हमारे पूज्य हैं, मैं आपका सेवक हूँ, मेरे सम्बन्ध में आप कुछ कहने का कष्ट न करें। ऐसा न हो कि मेरे मुँह से भी कुछ निकल जाय और क़यामत के दिन मैं अपराधी समझा जाऊँ।"

मीर ज़ाहक ने कहा—भई, यह तो कविता है। इसमें छोटाई बड़ाई क्या ?

सौदा अब क्या करते। उन्होंने भी क़लम उठाई और ऐसी निन्दा लिखी कि पढ़कर आश्चर्य होता है कि मीर ज़ाहक जीते कैसे रहे; जब कि दिल्ली का बच्चा-बच्चा उनकी निन्दात्मक कविताएँ गली कूचों में गाता फिरता था। मीरज़ाहक ने भी सौदा के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा, पर एक विचित्र ढंग से वह नष्ट हो गया। मीर ज़ाहक का लड़का सौदा का शिष्य था। मीर ज़ाहक मर गये तब सौदा फ़ातिहा के लिये गये। अपना दीवान भी साथ लेते गये थे। शोक-प्रदर्शन और सहानुभूति प्रकट करने के बाद सौदा ने मीर ज़ाहक के लड़के से कहा कि तुम उनके लड़के हो। मैंने उनके विरुद्ध जो कुछ कहा है, उसे तुम क्षमा करो। यह कहकर उन्होंने नौकर से अपना दीवान मँगाकर उसे वहीं सबके सामने फाड़ डाला। मीर ज़ाहक के लड़के ने भी उसी दम बाप का दीवान, जो सौदा की निन्दाओं से पूर्ण था, मँगाकर फाड़ डाला। सौदा की कविता से तो दिल्ली की हवा बसी हुई थी। दीवान फाड़े जाने पर भी उसका अंत नहीं होने पाया। पर मीर ज़ाहक की कविता उनके दीवान के साथ ही उनके लड़के के हाथ से लुप्त हो गई। मीर ज़ाहक की निन्दा में कहे हुये सौदा के कुछ शेरों का मुलाहज़ा फ़रमाइये।

तोड़ खाता है जाके पाख़ाने ।
यह बवासीर अपनी के दाने ॥

शादी में गर किसी के घर यह जाय।
साहबे-ख़ाना रंडियाँ बुलवाय ॥
राग गर हो कलावतों का वहाँ।
उस जगह गा रहा हो जीवन ख़ाँ ॥
कैसी ही देवीदास परनी ले ।
न सुने आप यह न सुनने दे ॥
यही पूछे हरेक से बेशरम ।
पूरी का आटा स़ख़्त है या नरम ॥

खाना आवे तो इस तरह छूटे ।
जैसे कोई किसी का घर लूटे ॥
मारे लुक़मे तो इस तरह बदज़ात ।
जैसे झाड़े कोई पटे के हात ॥
देगची जब यह चाट के छोड़े ।
मुँह को खाने से मोड़े तो मोड़े ॥

जावे बाज़ार को अगर वह लईम ।
ख़ल्क़ समझे कि पहुँची फ़ौज ग़नीम ॥

नान या बनिये कुँजड़े हलवाई।
कहँ आफ़त किधर से यह आई॥
भूक में जब इधर यह आता है।
लोगों को काट काट खाता है॥
जिन है या आदमी है या क्या है?
या कोई देव बौखलाया है॥

मीरज़ाहक़ को सौदा ने इसी तरह गालियाँ दी हैं।

एक बार आस.फुद्दौला शिकार को गये। जंगल से समाचार आया कि नवाब ने भीलों के बन में एक सिंह मारा। सौदा ने एक शेर बना डाला—

यारो यह इब्ने मुलजिम पैदा हुआ दोबारा।
शेरे .खुदा को जिसने भीलों के बन में मारा॥

नवाब ने भी सुना। मित्र की तरह वे कहने लगे—मिर्ज़ा, तुम ने मुझे .खुदा के शेर का घातक बनाया? सौदा ने हँसकर कहा—श्रीमन्, सिंह तो .खुदा का ही था, न मेरा न आप का।

नवाब आस.फुद्दौला की एक धाय थी। उसके एक छोटी सी कन्या थी। कन्या प्यार के मारे बड़ी ढीठ हो रही थी। एक दिन नवाब सो रहे थे। लड़की ने इतना हल्ला मचाया कि नवाब की नींद उचट गई। वे झुँझलाकर बाहर निकल आये।

सौदा को उसी क्षण उपस्थित होने के लिये उन्होंने आज्ञा भेजा। सौदा आ हाज़िर हुये। नवाब ने कहा—मिर्ज़ा, इस लड़की ने मुझे बहुत हैरान कर रक्खा है। लड़की की निन्दा में कोई कविता लिखो।

यहाँ क्या देर थी? क़लम उठाया और एक निन्दात्मक कविता रच डाली। उसका एक शेर यह है—

लड़की वह लड़कियों में जो खेले।
न कि लौंडों में जाके डँड़ पेले॥

कुछ लोगों का कहना है कि लड़की पर निन्दात्मक कविता सौदा ने एक भठियारिन की लड़की के लिये लिखी थी, जो बड़ी लड़ाका और चचल थी। सौदा उसी राह से रोज़ आते जाते थे। एक दिन वह ध्यान पर चढ़ गई और इन्होंने उसकी निन्दा कर डाली।

एक बार इटावे के शेख़ क़ायम अली, जो अच्छे शायर थे, शिष्य होने के लिये सौदा के पास आये, और अपनी कविताएँ सुनाईं। सौदा ने पूछा—उपनाम क्या है? उत्तर मिला—उम्मीदवार। सौदा ने यह शेर पढ़ा—

है फ़ैज़ से किसी के शजर इन का बारदार।
इस वास्ते किया है तख़ल्लुस उमीदवार॥

जब स्त्री गर्भिणी होती है तो बोलचाल में यह कहा जाता है कि उमीदवारी है। इस शेर में यही दिल्लगी की गई है।

बेचारे क़ायम अली लज्जित हो चले गये। उन्होंने अपना उपनाम 'क़ायम' कर लिया और वे किसी अन्य के शिष्य हो गये।

अज़ीमाबाद के रहने वाले रासिख़ नाम के एक शायर थे। एक बार वे सौदा के पास शिष्य होने के लिये आये। सौदा ने पूछा—कुछ कहा हो तो सुनाइये। रासिख़ ने यह शेर पढ़ा—

हुये हैं हम ज़ईफ़ अब दीदनी रोना हमारा है।
पलक पर अपनी आँसू सुबहे पीरी का सितारा है॥

सौदा ने उठ कर उन्हें गले लगा लिया।

एक दिन एक मुशायरे में सैयद इन्शा ने यह ग़ज़ल पढ़ी—

झिड़की सही अदा सही चीने-जबीं सही।
सब कुछ सही पर एक नहीं की नहीं सही॥

इसके आगे यह शेर पढ़ा—

गर नाज़नीं कहे से बुरा मानते हो तुम।
मेरी तरफ़ तो देखिये मैं नाज़नीं सही॥

सौदा भी मुशायरे में मौजूद थे। उसे सुनकर इन्होंने कहा—दरीं चे शक। इसमें क्या सन्देह है। उस समय सौदा बुड्ढे हो चले थे और इन्शा की जवानी उभर रही थी।

एक दिन सौदा मुशायरे में बैठे थे। लोग अपनी अपनी ग़ज़ल सुना रहे थे। १२,१३ वर्ष के एक लड़के ने ग़ज़ल पढ़ी। मतला यह था—

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से॥

सौदा चौंक उठे। पूछा—यह मतला किसने पढ़ा? लोगों ने लड़के की ओर संकेत किया। सौदा ने बड़ी प्रशंसा की। कई बार उससे पढ़वाया, और अंत में कहा—मियाँ लड़के, तुम जवान होते तो नहीं दिखाई पड़ते। हुआ भी यही। वह लड़का थोड़े ही दिनों में जलकर मर गया।

जब सौदा लड़के थे, उस समय मीर ज़ाफ़र ज़टल बुड्ढे हो चुके थे। उस समय नक़्क़ाशी की हुई रंगीन छड़ियाँ हाथ में रखने का प्रायः चलन था। एक दिन संध्या के समय ज़टल महाशय एक हरे रंग की छड़ी टेकते हुये टहलने को बाहर निकले। सौदा किताबें बग़ल में दबाये सामने से आ रहे थे। शिष्टाचार के ख़याल से इन्होंने झुककर सलाम किया। ज़टल ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। सौदा बचपन से ही कवितामय हृदय के लिये प्रसिद्ध थे। ज़टल ने साहित्यक चर्चा के लिये सौदा को बातों में लगा लिया। ये साथ साथ चले। ज़टल ने बातों ही बातों में कहा—मिर्ज़ा, इस मिसरे पर मिसरा तो लगाओ—

लाला दर बाग़ दाग़ चूँ दारद।

सौदा ने सोच कर कहा—

उम्र कोतास्त ग़म फ़ज़ूँ दारद।

ज़टल ने हँसकर कहा—

दिन भर के भूखे थे, कोताह का ह खा गये ?

सौदा ने फिर कहा—

अज़ ग़मे इश्क़ सीना ख़ूँ दारद।

ज़टल ने कहा—

वाह, दिल ख़ून होता है कलेजा ख़ून होता है,
भला सीना क्या ख़ून होगा ? सीना पुरज़ख़ूँ होता है॥

सौदा ने फिर कहा—

चह कुनद सोज़िशे दरूँ दारद।

ज़टल ने कहा—मिसरा तो ठीक है। पर ज़रा तबीअत पर ज़ोर देकर कहो।

सौदा तंग आ चुके थे। चुलबुली तबीअत तो बचपन से ही पाई थी। झट बोल उठे—

यक असा सब्ज़ ज़ेर....दारद।

ज़टल हँस पड़े और छड़ी उठा कर बोले—क्यों, हमसे भी ? देख, तेरे बाप से कहूँगा। बाज़ी बाज़ी बरीश बाबा हम बाज़ी।

सौदा लड़के थे ही, भाग गये।

सौदा का कुल्लियात छपा मिलता है। उसमें फ़ारसी के क़सीदे, मसनवियाँ, बहुत सी हिकायतें और लतीफ़े पद्यबद्ध

हैं। फ़ारसी का एक छोटा दीवान है। बहुत सी रसीदें, ग़ज़लें, रुबाइयाँ, क़तआत, तारीख़ें, पहेलियाँ, वासोख़्त, तरजीअबंद, मुख़म्मस, आदि सब प्रकार के विषय और छंद उस संग्रह में हैं। निन्दात्मक कविताओं का तो कहना ही क्या? वह तो सौदा की ख़ास चीज़ ही ठहरी।

ग़ज़लें पहले भी लोग कहते थे; पर क़सीदे ऐसे अच्छे किसी ने नहीं कहे थे, जैसे सौदा के हैं। सौदा क़सीदे के बादशाह कहलाते हैं। वे स्वयं साक्षी हैं—

लोग कहते हैं कि सौदा का क़सीदा है ख़ूब।
उनकी ख़िदमत में लिये मैं यह ग़ज़ल जाऊँगा॥

सौदा में ज़िन्दादिली ख़ूब थी। वृद्धावस्था तक ये अपने बचपन को सुरक्षित रख सके थे। इनकी निन्दात्मक कविताओं के एक एक चरण में इनकी शोख़ी लहरें मार रही है। सौदा ने मरसिये भी कहे हैं। पर आजकल मरसियों की जो उन्नति हुई है, इसके सामने तो वे कुछ नहीं हैं। शायद उन्हीं मरसियों को देखकर यह मसल मशहूर हुई थी कि—

बिगड़ा शायर मरसिया-गो।
बिगड़ा गवैया मरसिया-ख़्वाँ॥

बात भी ठीक ही है। मरसिया तो दुःखों का रोना है। दूसरों का रोना रोकर जो औरों को रुलाने की कोशिश करता है, उसे कौन पसन्द कर सकता है?

सौदा गद्य भी लिखते थे। पर उस समय का उर्दू गद्य फ़ारसी और अरबी शब्दों के बोझ से बेतरह दवा रहता था। पर पद्य में इन्होंने कमाल का हाथ दिखलाया है। हिन्दी-भाषा में फ़ारसी महावरों को इन्होंने ऐसी ख़ूबी से भरा है कि उन महावरों ने यहाँ की बोलचाल में घर कर लिये। उर्दू भाषा को सुधारने में जिन कवियों और लेखकों की कीर्ति है, उनमें एक सौदा भी थे।

क़ाफिया बाँधने में तो सौदा अद्वितीय थे। चाहे जैसा टेढ़ा-सीधा क़ाफिया हो, ये वरावर उसी के जोड़ के क़ाफ़िये पर क़ाफ़िये बाँधते चले जाते थे। देखिये, नवाव आसफ़ुद्दौला की प्रशंसा में इन्होंने कुछ शेर कहे हैं, उनमें हिन्दी शब्दों की ख़ासी भीड़ है—

तेरे साया तले है तो वह महन्त।
पश्शा कर जाय देव दद से लड़न्त॥
नाम सुन पील कोह पैकर के।
वह चलें जूये शेर हो कर दन्त॥
सहर सूलत के सामने तेरे।
सामरी भूल जाय अपनी पढ़ंत॥
तेरी हैबत से नुह फ़लक के तले।
काँपती है ज़मीं के वीच गड़न्त॥

तकले की तरह वल निकल जावे।
तेरे आगे जो दो करे अकड़न्त॥
देख मैदाँ में तुझको रोज़े न वुर्द।
मुँह प रावन के फूल जाय वसन्त॥
तगतगे पा अगर सुने तेरे।
दाव कर दुम खिसक चले हनुवन्त॥
तन का उनके ज़िरह में हो यों हाल।
मुर्ग़ की दाम में हो जूँ फड़कन्त॥

इसी तरह के फड़कन्त, भसमन्त, सरकन्त, खुदन्त, डपटन्त, दबकन्त, पशमन्त, निचन्त, लपटन्त और पढ़न्त आदि शब्दों से सारे शेर भरे हैं। सौदा उस समय के बोलचाल के हिन्दी महावरों का भी प्रयोग कर लिया करते थे। सुनिये—

तरकश अलीन्ड सीनए आलम का छान मारा।
मिज़गाँ ने तेरे प्यारे अर्जुन का वान मारा॥

* * *

मुहब्बत के करूँ भुजबल की मैं तारीफ़ क्या यारो।
सितम परवत हो तो उसको उठा लेता है जूँ राई॥

* * *

नहीं है घर कोई ऐसा जहाँ उसको न देखा हो।
कन्हैया से नहीं कुछ कम सनम मेरा व हरजाई॥

* * *

सावन के बादलों की तरह से भरे हुये।
यह वह नयन हैं जिनसे कि जङ्गल हरे हुये॥
बूँदी के जमधरों से वह भिड़ते हैं हम दिगर।
लड़के मुझ आँसुओं के ग़जब मनकरे हुए॥
पं दिन य किससे बिगड़ा कि आती है फ़ौज अश्क।
लख़्ते जिगर की लाश को आगे धरे हुये॥

❦ ❦ ❦

सौदा ने हिन्दी में भी बहुत कुछ कहा है। कुछ पहेलियाँ आगे दी जाती हैं—

देखे हम दो टोपी दिये।
मर्द इस्तरी उनसे जिये॥ स्तन।

❦ ❦ ❦

अजब तरह की है इक नार।
उसका क्या मैं करूँ विचार॥
वह दिन डूबे पी के सङ्ग।
लाग रहे निशि वाके अङ्ग॥
दिया बरे तो वह शरमाय।
ढिग से सरक दूर हो जाय॥ छाया।

❦ ❦ ❦

रुत को जोगी नहिं कनफटा।
गुदड़ी ओढ़ सर पर जटा॥

अङ्ग अङ्ग मोती से छाया।
चार महीने जग को भाया॥ भुट्टा।

॰ ॰ ॰

अति चञ्चल उज्ज्वल सभी, हाड़ मास औ चाम।
नर नारी सब एक सों, करैं चाम के दाम॥

मछली।

॰ ॰ ॰

वा बिन मोको भवन न भावै।
जुफ़्त नहीं पै ताक़ कहावै॥

ताक़।

॰ ॰ ॰

मारे से वह जी उठै, बिन मारे मर जाय।
बिन पाँवों जग जग फिरे, हाथों हाथ बिकाय॥

तबला।

॰ ॰ ॰

उर्दू-कवियों में मीर और सौदा के विचार कहीं कहीं टक्कर खा गये हैं। इस तरह के कुछ शेर सुनिये—

मीर—हमारे आगे तेरा जब किसी ने नाम लिया।
दिल सितमज़दह को हमने थाम थाम लिया॥
क़सम जो खाइये तो तालए ज़ुलेख़ा की।
अज़ीज़ मिस्र का भी साहब इक ग़ुलाम लिया॥

सौदा—चमन में सुवह जो उस जंगजू का नाम लिया।
सबा ने तेग़ का मौजे रवाँ से काम लिया॥
कमाल बन्दगीए इश्क़ है ख़ुदावन्दी।
कि एक ज़न ने महे-मिस्र सा ग़ुलाम लिया॥

मीर—गिला मैं जिससे करूँ तेरी बेवफ़ाई का।
जहाँ में नाम न ले फिर वह आशनाई का॥

सौदा—गिला लिखूँ मैं अगर तेरी बेवफ़ाई का।
लहू में ग़र्क़ सफ़ीना हो आशनाई का॥
दिखाऊँगा तुझे जाहिद उस आफ़ते-दीं को।
ख़लल दिमाग़ में तेरे है पारसाई का॥

मीर—चमन में गुल ने कल जो दावए जमाल किया।
जमाले यार ने मुँह उसका ख़ूब लाल किया॥

सौदा—बराबरी का तेरी गुल ने जब ख़याल किया।
सबा ने मार थपेड़ा मुँह उसका लाल किया॥

मीर—एक महरूम चले मार हमी दुनिया से।
वरनः आलम को ज़माने ने दिये क्या क्या कुछ॥

सौदा—सौदा जहाँ में आके कोई कुछ न ले गया।
जाता हूँ एक मैं ही दिल प आरज़ू लिये॥

मीर—रात सारी तो कटी सुनते परेशाँ-गोई।
मीर जो कोई घड़ी तुम भी तो आराम करो॥

सौदा—सौदा तेरी फ़रियाद से आँखों में कटी रात।
आई है सहर होने को टुक तो क़हीं मर भी॥
होती नहीं है सुबह न आती है मुझको नींद।
जिसको पुकारता हूँ वह कहता है मर कहीं॥
मीर—कुफ़्र कुछ चाहिये इसलाम की रौनक़ के लिये।
हुस्न ज़ुन्नार है तसबीह सुलेमानी का॥
सौदा—हुआ जब कुफ़्र साबित है वह तमग़ाए मुसल्मानी।
न टूटे शेख़ से ज़ुन्नार तसबीहे सुलेमानी॥
मीर—मत रञ्ज कर किसी को कि अपने तो एतक़ाद।
दिल ढाय कर जो काबा बनाया तो क्या हुआ॥
सौदा—काबा अगरचे टूटा तो क्या जाय ग़म है शेख़।
यह क़सर दिल नहीं कि बनाया न जायगा॥
मीर—न भूल ऐ आरसी! गर यार को तुझसे मुहब्बत है।
नहीं है एतबार इसका य मुँह देखे की उल्फ़त है॥
सौदा—बगोले से जिसे आसेब औ सरसर से ज़हमत है।
हमारी ख़ाक यों बरबाद हो ऐ अब्र! रहमत है॥

सौदा लगभग साठ वर्ष की अवस्था में दिल्ली से लखनऊ आये और सत्तर वर्ष तक वे जीते रहे। लखनऊ में वे आ... वाक़र के इमामबाड़े में गाड़े गये। इब्राहीम अली ख़ाँ "तज़कि... गुलज़ार इबराहीमी" में लिखते हैं कि मिर्ज़ा ग़ुलाम हैदर 'मज...

ज़ूब' सौदा के बेटे हैं और लखनऊ में रहते हैं।" पर अब सौदा के वंश में शायद कोई नहीं है।

यहाँ सौदा की कुछ कविताएँ लिखी जाती हैं—

दिल मत टपक नज़र से कि पाया न जायगा।
जूँ अश्क फिर ज़मीं से उठाया न जायगा॥
रुख़सत है बाग़वाँ कि टुक इक देख लें चमन।
जाते वहाँ जहाँ से फिर आया न जायगा॥
आवेगा वह चमन में न ऐ अब्र! जब तलक।
पानी गुलों के मुँह में चुवाया न जायगा॥
तेग़े जफ़ाए-यार से दिल सर न फेरिये।
फिर मुँह वफ़ा को हम से दिखाया न जायगा॥
ज़ालिम मैं कह रहा कि तू इस ख़ूँ से दर गुज़र।
सौदा का क़त्ल है य छिपाया न जायगा॥

* * *

ग़ैर के पास यह अपना ही गुमाँ है कि नहीं।
जलवागर यार मेरा वरनः कहाँ है कि नहीं॥
दिल के पुरज़ों को बग़ल बीच लिये फिरता हूँ।
कुछ इलाज इनका भी ऐ शीशगराँ है कि नहीं॥
मेहर हर ज़र्रा में मुझको ही नज़र आता है।
तुम भी टुक देखो तो साहब नज़राँ है कि नहीं॥

जुर्म है उसकी जफ़ा का कि वफ़ा की तक़सीर।
कोई तो बोलो मियाँ मुँह में ज़बाँ है कि नहीं॥
पासे नामूस मुझे इश्क़ का है ऐ बुलबुल!
वरना याँ कौनसा अन्दाज़ फ़ुग़ाँ है कि नहीं॥
आगे शमशीर तुम्हारी के भला यह गरदन।
मू से बारीक तर ऐ ख़ुश्क मराँ है कि नहीं॥
पूछा सौदा से मैं यकरोज़ कि ऐ आवारा!
तेरे रहने का मुएअन भी मकाँ है कि नहीं॥
यक-बयक होके बर आशुफ़्ता लगा वह कहने।
कुछ तुझे अक़्ल से बहरह भी मियाँ है कि नहीं॥
देखा मैं क़सरे फ़रीदूँ के दर उपर यक शख़्स।
हल्क़ा ज़न हो के पुकारा कोई याँ है कि नहीं॥

* *

अश्क़ आतिश व ख़ूँ आतिश व हर लख़्ते दिल आतिश।
आतिश प बरसती है पड़ी मुत्तसिल आतिश॥
दिल इश्क़ के शोला से जो भड़का तो रहा क्या?
ऐ जान! निकल जा कि लगी मुत्तसिल आतिश॥
यक क़तरए-मै ले उड़ी 'सौदा' को जगह से।
बारूत के तूदे को है बस एक तिल आतिश॥

* * *

नाविक ने तेरे सैद न छोड़ा ज़माने में।
तड़पे हैं मुर्ग़ क़िब्लानुमा आशियाने में॥
क्योंकर न चाक चाक गरेबाने-दिल करूँ।
देखूँ जो तेरी ज़ुल्फ़ को मैं दस्ते शाने में।
ज़ीनत दलील मुफ़लिसी ही टुक कमाँ को देख।
नक़शो निगार छुट नहीं कुछ उसके ख़ाने में॥
ऐ मुर्ग़ दिल! समझ के तू चश्मे तमा को खोल।
तू ने सुना है दाम जिसे है वह दाने में॥
चिल्ले में खींच खींच किया क़द को जो कमाँ।
तीरे मुराद पर न बिठाया निशाने में॥
पाया हरेक बात में अपने में यूँ तुझे।
पानी को जिस तरह से स.ख़ुन आशिक़ाने में॥
हम सा तुझे तो एक हमें तुझसे हैं कई।
जा देख ले तू आप को आईना-ख़ाने में॥
'सौदा' ख़ुदा के वास्ते कर क़िस्सा मुख़्तसर।
अपनी तो नींद उड़ गई तेरे फ़िसाने में॥

* * *

अफ़ई को यह ताक़त है कि उससे बसर आवे।
वह ज़ुल्फ़ सियह अपनी अगर लहर पर आवे॥
सूरत हमें इस महर की पहचान अगर आवे।
हर ज़र्रा में कुछ और ही झमका नज़र आवे॥

फिरता हूँ तेरे वास्ते मैं दर बदर ऐ यार !
तुझसे न हुआ यह कि कभू मेरे घर आवे ॥
गोया दिले आशिक़ भी है इक फ़ील सियह मस्त।
रुकता नहीं रोके से किसू के जिधर आवे ॥
कह कहके दुख अपना मैं किया मग़ज़ को ख़ाली।
इतना न हुआ सुन के तेरी आँख भर आवे ॥
क्या हो जो क़फ़स तक मेरे अब सहने-चमन से।
दो बर्ग लिये गुल के नसीमे-सहर आवे ॥
सब काम निकलते हैं फ़लक़ तुझ से व लेकिन।
मेरे दिले नाशाद की उम्मीद बर आवे ॥
नामे का जवाब आना तो मालूम है अब काश।
क़ासिद के बदो नेक की मुझ तक ख़बर आवे ॥
सब से कहे सोता हूँ यह कहदें कि फिर आना।
बालीं प मेरे शोरे क़यामत अगर आवे ॥
देता जो कोई मुर्ग़ दिल उस शोख़ को 'सौदा'।
क्या क़हर किया तूने ग़ज़ब तेरे बर आवे ॥

* * *

ख़ूबों में दिलदिही की रविश कम बहुत है याँ।
ख़्वाहाने जाँ जो चाहो तो आलम बहुत है याँ ॥
ग़ाफ़िल न रह तू अहले तवाज़ा के हाल से।
तेग़ो कमाँ की तरह खमो चम बहुत है याँ ॥

चश्मे हविस उठा ले तमाशे से जूँ हुबाब।
नादीदनी का दीद बस इकदम बहुत है याँ॥
आँखों में दूँ उस आइना रू को जगह वले।
टपका करे है बस कि यह घर नम बहुत है याँ॥
देखा जो बाग़े दहर तो मानिन्द सुबह व गुल।
कम फुरसती मिलाप की बाहम बहुत है याँ॥
'सौदा' कह उससे दिल की तसल्ली के वास्ते।
गोशा से चश्म के निगाह कम बहुत हैं याँ॥

* * *

है परवरिश स.ख़ुन की मुझे अपनी जाँ तलक।
जूँ शमा ज़िन्दगानी मेरी है ज़बाँ तलक॥
जिसकी बहार पहुँची न आख़िर ख़िज़ाँ तलक।
आया न एक गुल कभी उस बोस्ताँ तलक॥
इस चर्ख़ दूँ परस्त तले बहरे मश्ते जो।
मानिन्द आसिया के फिरूँ मैं कहाँ तलक॥
मक़दूर नहीं उसकी तजल्ली के बयाँ का।
जो शमा सरापा हो अगर सिर्फ़ ज़बाँ का॥
इस हस्तिए-गुलशन में अजब दीद है लेकिन।
जब आँख खुली गुलकी तो म.सम है ख़िज़ाँ का॥

* * *

बेकस कोई मरे तो जले इस प दिल मेरा।
गोया य है चिराग़ ग़रीबों के गोर का॥

* * *

किसी दींदारो काफ़िर को ख़याल इतना नहीं आता।
सहर क्या हो चुका 'सौदा' की सर पर शाम क्या होगा॥

* * *

क़ाबू में हूँ मैं तेरे गो अब जिया तो फिर क्या।
खंजर तले किसी ने टुक दम लिया तो फिर क्या॥
'सौदा' हुये जब आशिक़ क्या पास आबरू का।
सुनता है ऐ दिवाने! जब दिल दिया तो फिर क्या॥

* * *

टूटे अगर निगह से तेरी दिल हुबाब का।
पानी भी पीजिये तो मज़ा हो शराब का॥

* * *

किसी का दीन किया हक़ ने किसी की दुनिया।
सबका सब कुछ किया पर तुजको हमारा न किया॥

* * *

न खींच ऐ शाना इन जुल्फ़ों को याँ 'सौदा' का दिल अटका।
असीर नातवाँ है यह न दे ज़ंजीर का झटका॥
परे रह वक़् ख़ारे आशियाँ अपने से कहता हूँ।
उड़ेगा धज्जियाँ होकर जो याँ दामन तेरा अटका॥

* * *

मौजे आतिश है सैल आँखों में।
शायद इस दिलका आवला फूटा॥

❦ ❦ ❦

न जिया तेरी चश्म का मारा।
न तेरी ज़ुल्फ़ का बँधा छूटा॥

❦ ❦ ❦

तेरा जी मुझसे नहीं मिलता मेरा जी रह नहीं सकता।
ग़रज़ ऐसी मुसीबत है कि मैं कुछ कह नहीं सकता॥

❦ ❦ ❦

सौदा से यों कहा मैं दिल इस क़द्र से खोना।
कहने लगा कि नादाँ क्या पूछता है होना॥

❦ ❦ ❦

तेरे कूचे से जो मैं आपको चलते देखा।
जी किसी तन से न इस तरह निकलते देखा॥
सूझी तद्बीर न तक़दीर को बहलाने की।
जब तुझे क़त्ल पर आशिक़ के मचलते देखा॥

❦ ❦ ❦

जी मेरा मुझसे यह कहता है कि टल जाऊँगा।
हाथ से दिल के तेरे अब मैं निकल जाऊँगा॥
क़तरए-अश्क हूँ प्यारे मेरे नज़ारे से।
क्यों ख़फ़ा होते हो पल मारते ढल जाऊँगा॥

छेड़ मत वादे बहारी कि मैं ज़ूँ नकहते गुल।
फाड़ कर कपड़े अभी घर से निकल जाऊँगा॥
इस ख़रावी से तो मत मुजको निकाल अब घर से।
तू कहे आज निकल मैं कहूँ कल जाऊँगा॥

टुक जाग ले तू छोड़कर ग़ाफ़िल पलङ्ग व ख़्वाव।
आख़िर को फिर यही है कि छाती प सङ्ग व ख़्वाव॥

हिन्दू हैं बुतपरस्त मुसलमाँ ख़ुदा-परस्त।
पूजूँ मैं उस किसी को जो हो आशना-परस्त॥

क़ातिल के दिल से आह न निकली हवस तमाम।
ज़र्रा भी हम तड़पने न पाये कि वस तमाम॥

ऐ लाला! गो फ़लक ने दिये तुझको चार दाग़।
छाती मेरी सराह कि यक दिल हज़ार दाग़॥

गर हो शराव ख़िलवतो माशूक़े ख़ूवरू।
ज़ाहिद तुझे क़सम है जो तू हो तो क्या करे?

जग में शराव ख़्वार की तशहीर के लिये।
सौदा जो मुहतसिब हो तो ज़ाहिद को ख़र करे॥

हनोज़ आईना गर्द इस ग़म से अपने मुँह प मलता है।
ख़ुदा जाने कि क्या क्या सूरतें इस ख़ाक में गड़ियाँ॥

मुँड़ाकर ख़त तुम अपने हक़ में क्यों काँटों को बोते हो।
यह आरिज़ गुल न होवेंगे अबस सब्ज़ा भी खोते हो॥
रक़ीबो मैं हूँ ज़ेरे आसमाँ यक जान दो क़ालिब।
मुख़ातिब तुम बलफ़्ज़े जान हम दोनों के होते हो॥

जिगर उनका है जो तुजको सनम कर याद करते हैं।
मियाँ हमतो मुसलमाँ हैं ख़ुदा भी कहते डरते हैं॥

किस किस तरह की देखें इस बाग़ की फ़ज़ायें।
कीधर गये व साक़ी वह अब्र वह हवायें॥

इस दिल को देके लूँ दो जहाँ यह कभू न हो।
'सौदा' तो होवे तब न कि जब उसमें तू न हो॥
क़िस्सा तो हुस्नो इश्क़ का चुकता है पल के बीच।
गर महकमे में क़ाज़ी के तू रूबरू न हो॥

ख़ाक पर भी तेरे दीवाने की यह तद्बीर है।
हर बगोला तौक़ हर मौजे हवा ज़ंजीर है॥

मेरी आँखों में तू रहता है मुज को क्यों रुलाता है।
समझ कर देख लो अपना भी कोई घर डुबाता है॥
अयाँ है शौक़ मिलने का मेरे नामे के काग़ज़ से।
कि जब खोले है तू उसको तो वह लपटा ही जाता है॥

अबके भी दिन बहार के यों हीं चले गये।
फिर फिर गुल आचुके प सजन तुम भले गये॥
पूछे हैं फूलो फल की ख़बर अब तो अन्दलीब।
टूटे झड़े ख़िज़ाँ हुये फूले फले गये॥

न तलत्तुफ़ न मुरौवत न मुहब्बत न वफ़ा।
सादगी देख कि इस पर भी लगा जाता हूँ॥

ऐ गुन्चा-दहन, प्यार से टुक हँसकर बोल।
क्या दिल है मेरा तू कि नहीं खुलता है॥

दुनिया की तलब में दीन खोकर बैठे, होकर गुमराह।
करना ही न था जो काम सो कर बैठे, ऐ अक़्ल तबाह।
है आरज़ी ख़ाना जिस्म ख़ाकी 'सौदा', बे शुबहो शक।
सो मालिक ही उसके आप हो कर बैठे, सुबहान अल्लाह।
ताक़त नहीं रोने की बहुत हिज्र से तेरे, गो दिल में य ग़म है।
काई दम की रमक़ है अब तन में जो मेरे, सो चश्म में नम है।

भूले ही नहीं याँ कभी फिर आता है पै यार, और जाय है सब जा।
क्या मुझसे तेरा जुर्म हो साँझ सवेरे, जो इतना सितम है॥
हरचन्द जहाँ में कम हैं वा फ़रहम हैं, कर देखो गुनाह।
मंज़िल भी हमी हैं और मुसाफ़िर हम हैं, हर शाम व पगाह॥
बोली से मैं दुनिया में कहा यों जाकर, सुना पै बेपर्द।
अब एक की हो रह, न फिरा कर घर घर, बनी सूरते नर्द॥
बोली कि जो कोई मर्द है सो तो मुजको, रखता ही नहीं।
बाँधी है जिन्होंने मेरे रखने प कमर, सो हैं नामर्द॥

इस क़द्र अब की हवा मस्त है वीराने की।
किसी लड़के को नहीं सुध किसी दीवाने की॥
जल मुवा शमा को देखा जो मेरे वालों पर।
बद गुमानी से मैं अब दाग़ हूँ परवाने की॥
शुक्र सद शुक्र नहीं मैं किसी ख़ातिर का ग़ुबार।
ख़ाक काबा की हूँ या गर्द सनम ख़ाने की॥

हलक़ तेरी ज़ुल्फ़ का जब यार मुँह खोले रहे।
बच चुका वह जिसकी ख़ातिर मार मुँह खोले रहे॥
चश्म नरगिस की मुँदे किस तरह तेरे सामने।
जिसके आगे तुझ सा गुल रुख़सार मुँह खोले रहे॥

तनहा तेरे मातम में नहीं शाम सियहपोश।
रहता है सदा चाक गरेबान सहर भी॥
'सौदा' तेरी फ़रियाद से आँखों में कटी रात।
आई है सहर होने को टुक तो कहीं मर भी॥

* * *

भर नज़र तुझको न देखा कभू डरते-डरते।
हसरतें जी का रहीं जी ही में मरते-मरते॥
खींचते क्या हो मियाँ तेग़ कि याँ रिश्ता उम्र।
सर्फ़ सीने प हुआ टाँके ही भरते-भरते॥
क्या हमें फ़ायदा आँखों से बक़ौले सौदा।
भर नज़र तुझको न देखा कभी डरते-डरते॥

* * *

जूँ गुन्चा तू चमन में बन्दे क़वा को खोले।
फिर गुल से ए पियारे! बुलबुल कभू न बोले॥
आवेगा वह तड़के चमन में ही मैकशी को।
शबनम से कह दे बुलबुल प्याले गुलों के धो ले॥
बागे जहाँ में आकर कुछ हमने फल न पाया।
इक दिल मिला कि जिसमें हैं सैकड़ों मलोले॥
ऐसा ही जाऊँ जाऊँ करते हो तो सिधारो।
इस दिल प कल जो होनी हो आज ही सो होले॥

कौन ऐसा अब कहे यह 'सौदा' गली में उसका।
आ तुझको ले चलें हम दिल खोल करके रो ले॥

मीर

मीर उपनाम; मुहम्मद तक़ी नाम; पिता का नाम मीर अब्दुल्ला; जन्म स्थान आगरा; जन्म-संवत् १७६८; मृत्यु संवत् १८६५।

मीर सर्वसाधारण में ख़ाने आरज़ू के भांजे करके प्रसिद्ध थे। ये मीर अब्दुल्ला की पहली स्त्री से हुये थे। पहली स्त्री के मर जाने पर मीर अब्दुल्ला ने ख़ाने आरज़ू की बहन से दूसरा विवाह किया। इसी सम्बन्ध से ये ख़ाने आरज़ू के भांजे कहलाते हैं। इनका रङ्ग गेहुआँ, क़द मझोला और शरीर पतला था। बचपन में ही पिता के मर जाने पर ये दिल्ली चले आये। ख़ान आरज़ू ने ही इन्हें पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया और कविता करना सिखलाया। पर किसी धार्मिक मतभेद के कारण ये उन से अलग हो गये।

अपनी कविता के लिये ये दिल्ली में इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि इनकी ग़ज़लों को लोग भेंट की तौर पर एक शहर से दूसरे शहर को ले जाते थे। पर अपनी स्वतंत्र प्रकृति के कारण इनका जीवन सदा ग़रीबी ही में बीता। ये संसार में किसी

को बड़ा नहीं समझते थे। फिर भला ख़ुशामद-पसन्द संसार इनका ओर शुभ-दृष्टि क्यों करने लगा? शाहआलम के दरबार में इनका बड़ा सम्मान था सही, दरबार में अमीर-उमरावों की महफ़िलों में इनके लिये सम्मान का स्थान रहता था सही, पर केवल सम्मान से तो पेट नहीं भर सकता। अपना और कुटुम्ब का पालन-पोषण करने के लिये तो धन की ज़रूरत होती है। शाहआलम का ख़ज़ाना ख़ाली पड़ा था। ख़ाली ऊपरी चमक-दमक शेष थी, उससे इनको क्या लाभ था? धनाभाव से खिन्न होकर सं० १८३१ में इन्होंने दिल्ली छोड़ी। दिल्ली से लखनऊ तक का गाड़ी-भाड़ा भी इनके पास न था। विवश होकर इन्होंने एक व्यक्ति को साथ कर लिया और दिल्ली को अंतिम प्रणाम किया। दोनों व्यक्ति गाड़ी में बैठकर चले। कुछ दूर आगे चल कर उस व्यक्ति ने कुछ बात की। इन्होंने उसकी ओर से मुँह फेर लिया। कुछ देर के बाद उसने फिर कोई बात चलाई। मीर साहब ने झुँझला कर कहा—जनाब, आपने किराया दिया है, गाड़ी में बैठिये। बातों से आपका क्या सम्बन्ध? उसने कहा—हज़रत, हर्ज क्या है? राह में बातों से ज़रा जी बहलता है। मीर साहब बिगड़कर बोले—आपका तो जी बहलता है और मेरी भाषा बिगड़ती है।

ख़ैर; जैसे-तैसे लखनऊ पहुँचे। वहाँ एक सराय में उतरे। उस दिन शहर में कहीं मुशायरा था। इनको समाचार मिला।

ये अपने को रोक न सके। उसी वक्त ग़ज़ल लिखी और कपड़े पहन कर मुशायरे में जा बैठे। पुराना रङ्ग-ढङ्ग, खिड़की दार पगड़ी, पचास गज़ के घेर का जामा, एक पूरा थान कमर से बँधा, पटरीदार तह किया हुआ एक रूमाल, मशरू का पाजामा, नागफनी की अनीदार जूती, जिसकी नोक डेढ़ बीते ऊँची थी, कमर में एक ओर सीधी तलवार, दूसरी ओर कटार, हाथ में छड़ी। इस रूप में इनको देखकर लखनऊ की नई क़टछँट के बाँके तिर्छे नौजवान हँसे बिना न रह सके। मीर साहब बेचारे हाथ के तङ्ग, ज़माने के सताये हुये, इस हँसी से और भी मर्माहत हुये और एक ओर बैठ गये।

सब ग़ज़लें पढ़ चुके। इनके सामने जब शमा आई तो सब की दृष्टि इन पर आ पड़ी। किसी किसी ने पूछा—आप का 'वतन' कहाँ है? मीर साहब ने समस्या-पूर्ति वाली ग़ज़ल में नीचे लिखे मिसरे मिलाकर पढ़ा—

क्या बूदोबाश पूछो हो पूरब के साकिनों।
हमको ग़रीब जान के हँस हँस पुकार के॥
दिल्ली जो एक शहर था आलम में इन्तख़ाब।
रहते थे मुन्तख़िब ही जहाँ रोज़गार के॥
उसको फ़लक ने लूट के वीरान कर दिया।
हम रहने वाले हैं उसी उजड़े दयार के॥

सबको इनका परिचय प्राप्त हुआ। सबने इनसे अपने हास-परिहास के लिये क्षमा चाही। सबेरा होते-होते सारे शहर में मीर साहब के आने का समाचार फैल गया। नवाब आसफ़द्दौला ने भी सुना। उन्होंने इनका दो सौ रुपये महीना वेतन नियत कर दिया।

क्रोध तो इनकी नाक पर रहता था। एक दिन नवाब ने एक ग़ज़ल चाही। ये उसके दूसरे तीसरे दिन फिर गये तो नवाब ने पूछा—मीर साहब, हमारी ग़ज़ल ले आये। मीर साहब आपे से बाहर हो गये। बोले—जनाब आली! मज़मून मेरी जेब में तो भरे नहीं रहते कि आपने चाहा और मैंने ग़ज़ल निकाल कर दे दी। नवाब बेचारे अच्छे स्वभाव के थे, कहने लगे—अच्छा, जब इच्छा हो, कह दीजियेगा।

एक दिन नवाब ने बुला भेजा। जब ये पहुँचे, तब वे हौज़ के किनारे खड़े थे। हाथ में छड़ी थी, पानी में हरी-लाल मछलियाँ तैरती थीं, वे उनका खेल देख रहे थे। मीर साहब को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुये और कहने लगे—मीर साहब! कुछ कहिये। मीर साहब ने ग़ज़ल सुनाना प्रारम्भ किया। नवाब सुनते जाते थे और छड़ी से मछलियों के साथ खेलते भी जाते थे। मीर साहब को यह अच्छा न लगता था। वे प्रत्येक शेर पर कुछ ठहर जाते थे। इन्हें तो एक वाह वाह कहने वाला चाहिये था। उधर नवाब का ध्यान दूसरी ओर था।

नवाब केवल यह कहते जाते थे कि हाँ, पढ़िये। चार शेर पढ़कर मीर साहब ठहर गये और बोले कि पढ़ें क्या? आपता मछलियों से खेलते हैं। इधर ध्यान दें तो पढ़ूँ। नवाब ने कहा—जो शेर होगा वह आपही ध्यान आकर्षित कर लेगा। मीर साहब को यह बात बहुत बुरी लगी। ग़ज़ल को जेब में रखकर ये घर चले आये और फिर कभी न गये। एक दिन ये बाज़ार से होकर जा रहे थे कि नवाब की सवारी सामने से आ रही थी। चार आँखें होते ही नवाब ने प्रेम से पूछा—मीर साहब, आपतो मुझको भूल ही गये; कभी आते भी नहीं। मीर साहब ने कहा—बाज़ार में खड़े-खड़े बातें करना यह कोई सभ्यता नहीं। यह बातचीत का क्या अवसर है? तात्पर्य यह कि मीर घर में जाकर बैठ रहे और निराहार रहकर दिन बिताने लगे। अपने एक शेर में मीर कहते हैं—

फिरते हैं मीर ख़्वार कोई पूछता नहीं।
इस अशिक़ी में इज़्ज़ते सादात भी गई।

मीर साहब की रहन-सहन बहुत सादी और पवित्र थी। स्वभाव अवश्य रूखा था। इसी से दूसरों को प्रसन्न रखना इनके लिये असंभव था। ग़रीब रहकर, भूख और प्यास से विकल होकर इन्होंने जीवन बिता दिया, पर कभी दीनता प्रकट न की। नौकरी के नाम से इन्हें चिढ़ थी। संसार से विरक्त सा होकर ये घर में बैठे रहते, लोग इन्हें बददिमाग़

कहते, ये सुनते और समझते, पर किसी की परवा न करते थे। एक शेर में कहते हैं—

हालत तो यह कि मुझको ग़मों से नहीं फ़राग़।
दिल सोज़िशे दरूनी से जलता है जूँ चिराग़॥
सीना तमाम चाक है सारा जिगर है दाग़।
है नाम मजलिसों में मेरा मीर बद्दिमाग़॥
अज़बस कि कम दिमाग़ी ने पाया है इश्तिहार।

निर्धनता का इतना दंड भोगते रहने पर भी इनका मस्तिष्क बहुत ऊँचा उठता था। ये अपने विचारों के बादशाह थे। न किसी के सामने कभी सिर झुकाया, न इनकी भौं का टेढ़ापन गया, मुसीबतों पर मुसीबतें झेलते रहे और अपनी आनबान के साथ गर्दन ऊँची किये ही हुये ये असार संसार से चले गये। इनके एक एक पद में इनके हृदय की करुणा उमड़ी पड़ती है।

ये कभी किसी की बड़ाई न करते थे। यहाँ तक कि फ़ारसी के अजर अमर कवि हाफ़िज़ और सादी के शेर सुनकर भी ये सिर हिलाना अपराध समझते थे। साधारण कवियों की तो बात ही क्या। एकबार लखनऊ में किसी ने पूछा—क्यों हज़रत! आजकल कवि कौन कौन हैं? मीर साहब ने फ़रमाया—एक सौदा, दूसरा मैं। फिर कुछ सोचकर, आधे मीर दर्द। एक दूसरे ने पूछा—और सोज़? मीर साहब ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—क्या सोज़ भी कवि हैं? पूछने वाले ने कहा—आखिर

नवाब आसफ़द्दौला के गुरु हैं। मीर साहब ने कहा—अच्छा, एक चौथाई इन्हें भी गिन लो। कुल पौने तीन कवि हैं।

लखनऊ में एक दिन कुछ साहित्य-प्रेमियों ने एकत्र होकर मीर से भेंट करनी चाही। वे इनके घर गये। बाहर से पुकारा। लौंड़ी ने दरवाज़ा खोला। हाल पूछकर वह भीतर गई, और एक बोरिया लाकर ड्योढ़ी में बिछा गई। एक पुराना सा हुक़्क़ा भी साफ़ करके सामने रख गई। इसके बाद मीर साहब भीतर से बाहर आये। सामयिक शिष्टाचार के बाद आगंतुकों ने कुछ शेर सुनने की इच्छा प्रकट की। मीरसाहब ने पहले तो कुछ टाल-मटोल की। पर बहुत आग्रह किये जाने पर इन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मेरे शेर आपकी समझ में नहीं आ सकते। इस उत्तर से खिन्न होने पर भी उन लोगों ने फिर आग्रह किया। मीर साहब ने इन्कार किया। फिर उन लोगों ने कहा— जनाब, हम लोग अनवरी और ख़ाक़ानी की कविता समझते हैं, आपही की न समझेंगे। मीरसाहब ने कहा—यह ठीक है; पर उनकी कुंजियाँ टीका-टिप्पणियाँ और आलोचनाएँ-प्रत्यालोचनाएँ भी तो बहुत सी हैं। और मेरी कविता के लिये तो उर्दू के महावरों का ज्ञान होना आवश्यक है। आप उनसे वञ्चित हैं।

यह कहकर मीरसाहब ने यह शेर पढ़ा—

इश्क़ बुरेही ख़्याल पड़ा है चैन गया आराम गया।
दिल का जाना ठैर गया है सुबह गया या शाम गया॥

फिर कहने लगे—आप इसमें कहेंगे कि ख़याल शब्द को ख्याल क्यों कहा? इसका तो यहाँ यही उत्तर है कि महावरा यही है।

जब नवाब आसफुद्दौला मर गये, तब सआदतअलीखाँ गद्दी पर बैठे। मीर साहब दरबार जाना पहले ही छोड़ चुके थे। किसी ने इनको बुलाया भी नहीं। एक दिन नवाब की सवारी जा रही थी। ये रास्ते की एक मसजिद पर बैठे थे। सवारी सामने आई, सब उठकर खड़े हुये, मीरसाहब वैसे ही बैठे रहे। सैयद इन्शा ख़वासों में थे। नवाब ने पूछा—इन्शा, यह कौन व्यक्ति है? इन्शा ने कहा—हुजूर, यह वही व्यक्ति है, जिसके चर्चे आप प्रायः सुन चुके हैं। जीविका का तो वह हाल और मिज़ाज का यह हाल। आज भी भूखा ही बैठा होगा।

सआदत अली ख़ाँ ने दरबार में आकर मीरसाहब को फिर बहाल किया और एक हज़ार रुपया भेंट स्वरूप भेजा। चोबदार लेकर गया, पर मीर साहब ने वापस कर दिया और कहा—मसजिद में भेजवा दीजये, मैं इतना मुहताज नहीं। सआदत अलीखाँ यह उत्तर सुनकर चकित हो गये। मुसाहिबों के समझाने-बुझाने से नवाब की आज्ञा से सैयद इन्शा खिलअत लेकर गये और अपनी ओर से समझाया कि भई, अपने ऊपर न सही, अपने बालबच्चों पर तो दया करो। मीरसाहब ने कहा—साहब, वे अपने मुल्क के बादशाह हैं, मैं अपने मुल्क

का बादशाह हूँ। कोई अनजान मेरे साथ ऐसा व्यवहार करता तो मुझे कुछ मलाल न होता। वे मुझे अच्छी तरह जानते हैं और मेरी दशा से भी अच्छी तरह जानकार हैं। इतने दिनों के बाद दस रुपिल्ली के एक नौकर के हाथ ख़िलअत भेजी। मुझे भूखों मरना स्वीकार है, पर यह अपमान मुझे असह्य है। पर सैयद इन्शा भी तो बातों के बादशाह थे। उन्होंने ऐसे ढङ्ग से समझाया कि मीर साहब को स्वीकार करना ही पड़ा। ये दरबार में भी कभी कभी जाने लगे। नवाब सआदत अली ख़ाँ इनकी ऐसी इज़्ज़त करते थे कि अपने सामने बैठाते थे और अपना पेचवाँ पीने को देते थे।

मीर साहब को बहुत कष्ट में देखकर लखनऊ के एक रईस बाल-बच्चों सहित इनको अपने घर ले गये, और रहने के लिए एक अच्छा सा मकान दिया। बैठक की बग़ल में एक बाग़ था और बाग़ की ओर खिड़कियाँ थीं। रईस का अभिप्राय यह था कि खिड़कियों की राह बाग़ को देखकर मीर साहब की तबी-यत हरी रहेगी। जब ये मकान में पहुँचे तब खिड़कियाँ बन्द थीं। कई बरस बीत गये, पर इन्होंने खिड़कियाँ नहीं खोलीं। एक दिन एक मित्र मिलने आया। उसने कहा—इधर बाग़ है। आप खिड़कियाँ खोलकर क्यों नहीं बैठते? मीर साहब ने आश्चर्य में आकर कहा—हाँ! क्या इधर बाग़ भी है? मित्रने

कहा—इसीलिये तो आप को यह मकान दिया गया था कि आप बाग़ से अपना जी वहलाते। मीर साहब ने अपनी ग़ज़लों की ओर, जो फटे पुराने काग़ज़ों पर लिखी हुई आसपास बिखरी पड़ी थीं, देखकर कहा—मैं तो इस बाग़ की चिन्ता में ऐसा उलझा रहता हूँ कि उस बाग़ को मुझे ख़बर ही नहीं। यह कहकर चुप हो रहे।

क्या अद्भुत कवि का जीवन है! बरसों बीत गये, खिड़की खोलने तक का अवकाश न मिला! इन्होंने संसार के बाग़ की ओर तो न देखा, पर भगवान् ने उनकी कविता की बाग़ को वह गौरव प्रदान किया कि उसमें सदा वसंत ही रहता है।

वसंत के आने के दिन थे। मीर साहब एक दिन ध्यान में मस्त टहल रहे थे। रह रह कर यह मिसरा पढ़ते जाते थे—
अब के भी दिन वहार के यों हीं गुज़र गये।

एक सज्जन मिलने आये, और सलाम करके बैठ गये। थोड़ी देर तक बैठे रहकर वे उठे और सलाम करके चले गये। मीर साहब को कुछ पता न चला। सम्भव है, वे दूसरे चरण की पूर्ति के ध्यान में संसार से दूर थे।

गवर्नर जनरल या दूसरे बड़े बड़े साहब जब कभी लखनऊ आते तो मिलने के लिये मीर साहब को भी बुलाते। पर मीर साहब एक न एक वहाना करके कभी मिलने नहीं जाते

थे। कारण पूछने पर एक बार इन्होंने बताया था कि मुझसे जो कोई मिलता है तो या तो मुझ फ़क़ीर के ख़ान्दान का विचार करके या मेरी कविता का। पर साहब को ख़ान्दान से कोई मतलब नहीं। मेरी कविता वे समझते नहीं। हाँ, कुछ इनाम देंगे। पर ऐसी भेंट अपमान के सिवा और कुछ नहीं।

महल्ले में अत्तार की एक दूकान थी। मीर साहब कभी कभी उस दूकान पर जा बैठते थे। अत्तार के एक नौजवान लड़का था, जो ख़ूब बन ठन कर निकलता था। मीर साहब को अच्छा न लगता था। एक जगह आप कहते हैं—

कैफ़ीयतें अत्तार के लौंडे में बहुत हैं।
इस नुस्ख़ा की कोई न रही हमको दवा याद॥

पर उर्दू-कवि की तबीयत ही तो, कभी उस लौंडे पर प्रसन्न भी हो गये और यह कह डाला—

'मीर' क्या सादे हैं बीमार हुये जिसके सबब।
उसी अत्तार के लड़के से दवा लेते हैं॥

यहाँ तक तो मीर साहब के बाहरी ढङ्ग-ढाँचे की बातें हुईं। अब उनके भीतर के सौन्दर्य पर ध्यान दीजिये।

मीर साहब की सारी ज़िन्दगी एक प्रकार से मुफ़लिसी ही में बीती। इससे उनकी कविता में करुण रस का प्रवाह बड़े ज़ोरों से बह रहा है। इन्होंने जो कुछ कहा है, अनुभव की गहराई से कहा है। एक एक शब्द से असह्य मर्म-व्यथा टपकती है।

अपने विषय में भी इन्होंने बहुत कुछ कहा है। एक जग
कहते हैं—

तेरी चाल टेढ़ी तेरी बात रूखी।
तुझे 'मीर' समझा है याँ कम किसू ने॥

एक जगह पर क्या ख़ूब कहा है—

मुझ को शायर न कहो 'मीर' कि साहब मैंने।
दर्दोंगम कितने किये जमा तो दीवान किया॥

एक जगह फ़रमाते हैं—

बातें हमारी याद रहें फिर बातें ऐसी न सुनियेगा।
पढ़ते किसी को सुनियेगा तो देर तलक सिर धुनियेगा॥

मीर उर्दू-कवियों में एक ख़ास स्थान रखते हैं। ये अप
रङ्ग के एक ही कवि थे। ग़ालिब मीर के विषय में कहते हैं—

रेख़ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो 'ग़ालिब'।
कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था॥

* * *

'ग़ालिब' अपना यह अक़ीदा है बक़ौले नासिख़।
आप बेबहरा है जो मुअातक़दे मीर नहीं॥

ज़ौक़ भी कहते हैं—

न हुआ पर न हुआ मीर का अन्दाज़ नसीब।
'ज़ौक़' यारों ने बहुत ज़ोर ग़ज़ल में मारा॥

मीर साहब की ग़ज़लों के छः दीवान हैं। मीर की ग़ज़लें सौदा की ग़ज़लों से अच्छी हैं। उनमें साफ़ और सुलझी हुई बातें इस सुन्दरता से बैठा दी गई हैं कि सुनकर तबीअत फड़क उठती है। महावरों का ऐसा सुन्दर प्रयोग मीर के पर्ववर्ती किसी कवि ने नहीं किया था। मीर साहब फ़ारसी के उम्दा शेरों पर उर्दू का मिसरा भी लगा दिया करते थे। यह उनकी ख़ास चीज़ थी। मीर साहब ने कभी किसी की प्रशंसा में कोई कविता नहीं लिखी। इन्हें अपने ही से .फ़ुरसत नहीं मिलती थी। दूसरे के गुण-दोष कहाँ देखते फिरते। सिर्फ़ एक मसनवी शिकारनामा में नवाब आसफुद्दौला के शिकार का वर्णन किया है। इन्होंने अपने मुर्ग़, बिल्ली, बिल्ले, कुत्ते और बकरी पर भी मसनवी लिखी है। एक बार बरसात में ये एक अमीर के साथ मेरठ गये। रास्ते में बड़ी तकलीफ़ें झेलनी पड़ीं। उस पर इन्होंने बरसात की मुसीबत पर एक कविता लिख डाली। एक अजगर नामा भी लिखा है। दिल्ली के कवियों में उसके विरुद्ध बड़ी चहल-पहल रही।

मीर साहब ने निकातुश्शुअरा नाम की एक पुस्तक और लिखी है जिसमें उर्दू के पुराने कवियों की चर्चा है। पर कोई बेचारा उनके व्यङ्गबाण से नहीं बचा है।

सौदा, दर्द, जानजानाँ मज़हर, क़ायम, यक़ीन आदि उर्दू

के प्रसिद्ध कवि मीर के समकालीन थे । जुरअत और इं
उनके अंतिम दिनों में प्रसिद्ध हुये थे ।

मीर साहब की कुछ कविताएँ यहाँ दी जाती हैं—

रेख़ता ख़ूब ही कहता है जो इंसाफ़ करो।
चाहिए अहले-सखुन 'मीर' को उस्ताद करें॥

* * *

जहाँ से देखिए यक शेर शोरंगेज़ निकले है।
क़यामत का सा हंगामा है हर जा मेरे दीवाँ में॥

* * *

जाने का नहीं शोर सख़ुन का मेरे हरगिज़।
ता हश्र जहाँ में मेरा दीवान रहेगा॥

* * *

अगर्चे गोशा नशीं हूँ मैं शायरों में 'मीर'।
प मेरे शोर ने रूये ज़मीं तमाम लिया॥

* * *

सारे आलम पै हूँ मैं छाया हुआ।
मस्तनद है मेरा फ़रमाया हुआ॥

* * *

जो इस सोज़ से 'मीर' रोता रहेगा।
तो हमसाया काहे को सोता रहेगा॥

* * *

क्योंकर गली से उसकी उठकर मैं चला जाता।
याँ ख़ाक में मिलना था लोहू में नहाना था॥
कहता था किसू से कुछ तकता था किसू का मुँह।
कल 'मीर' खड़ा था याँ सच है कि दीवाना था॥

* * *

जफ़ायें देख लियाँ वे वफ़ाइयाँ देखीं।
भला हुआ कि तेरी सब बुराइयाँ देखीं॥

* * *

यक शख़्स मुझी सा था कि था तुझसे प आशिक़।
वह उसकी वफ़ा पेशगी वह उसकी जवानी॥
यह कहके मैं रोया तो लगा कहने न कह 'मीर'।
सुनता नहीं मैं .ज़ुल्म-रसीदों की कहानी॥

* * *

जब नाम तेरा लीजिए तब चश्म भर आवे।
इस तरह के जीने को कहाँ से जिगर आवे॥

* * *

मुत्तसिल रोते ही रहिए तो बुझे आतशे दिल।
एक दो आँसू तो और आग लगा जाते हैं॥

* * *

इश्क़ हमारे ख़्याल पड़ा है ख़्वाब गया आराम गया।
दिलका जाना ठहर गया है सुबह गया या शाम गया॥

* * *

जी है देने का नहीं कुढ़ना फ़क़त।
उसके दर से जाने की हसरत भी है॥

* * *

अब के जुनूँ में फ़ासला शायद न कुछ रहे।
दामन के चाक और गरेबाँ के चाक में॥

* * *

सिरहाने 'मीर' के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते रोते सो गया है॥

* * *

वस्लो हिजराँ से जो दो मंज़िल हैं राहे-इश्क़ की।
दिल ग़रीब उनमें ख़ुदा जाने कहाँ मारा गया॥

* * *

हम न कहते थे कि मत दैरो-हरम की राह चल।
अब न दावा हश्र तक शेख़ो बरहमन में रहा॥

* * *

यह भी तरफ़ः माजरा है कि उसी को चाहता हूँ।
मुझे चाहिए है जिससे बहुत एहतराज़ करना॥

* * *

बारे दुनियाँ में रहो ग़मज़दा या शाद रहो।
ऐसा कुछ करके चलो याँ कि बहुत याद रहो॥

* * *

अब पस्तो-बलन्द एक है जूँ नक़्श क़दम याँ।
पामाल हुआ ख़ूब तो हमवार हुआ मैं॥

* * *

इलाही कैसे होते हैं जिन्हें है बन्दगी .ख्वाहिश।
हमें तो शर्म दामनगीर होती है .खुदा होते॥

* * *

नै क़ाबे नै दैर के क़ाबिल।
मज़हब इनका है सैर के क़ाबिल॥

* * *

मीर जी इस तरह से आते हैं।
जैसे कंजर कहीं को जाते हैं॥

* * *

पयम्बर है शाह है कि दरवेश है।
सभों को यही राह दरपेश है॥

* * *

रफ़्ता रफ़्ता हुआ हूँ सौदाई।
दूर पहुँची है मेरी रुसवाई॥

* * *

होश जाता रहा निगाह के साथ।
सब्र रुख़सत हुआ यक आह के साथ॥

* * *

प्यार करने का जो .खूबाँ हम प रखते हैं गुनाह।
उनसे भी तो पूछिए तुम इतने क्यों प्यारे हुए॥

* * *

कहते थे कि यूँ कहते यूँ कहते अगर आता।
सब कहने की बातें हैं कुछ भी न कहा जाता॥

* * *

जिस राह से वह दिल-ज़दह दिल्ली में निकलता।
साथ उसके क़यामत का सा हंगामा रवाँ था॥

* * *

बुत परस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।
मातक़िद कौन है 'मीर' ऐसी मुसल्मानी का॥

* * *

उल्टी हो गयीं सब तदबीरें कुछ न दवा ने काम किया।
देखा इस बीमारे-दिल ने आख़िर काम तमाम किया॥
अहदे जवानी रो रो काटा पीरी में लीं आँखें मूँद।
यानी रात बहुत थे जागे सुबह हुई आराम किया॥
नाहक़ हम मजबूरों पर यह तोहमत है मुख़्तारी की।
चाहते हैं सो आप करें हैं हमको अबस बदनाम किया॥
किसका काबा कैसा क़िबला कौन हरम है क्या अहराम।
कूचे के उसके बाशिन्दों ने सबको यहीं से सलाम किया॥
याँ के सपेदो-सियह में हमको दख़ल जो है सो इतना है।
रात को रो रो सुबह किया याँ दिन को जूँ तूँ शाम किया॥
'मीर' के दीनो-मज़हब को अब पूछते क्या हो उनने तो।
क़शक़ा खींचा दैर में बैठा कबका तर्क इस्लाम किया॥

* * *

चमन में गुल ने जो कल दावए जमाल किया।
जमाले यार ने मुँह उसका ख़ूब लाल किया॥
बहारे-रफ़्ता फिर आयी तेरे तमाशे को।
चमन को यमने क़दम ने तेरे निहाल किया॥

* * *

मुँह तका ही करे है जिस तिस का।
हैरती है य आईना किस का॥
शाम से कुछ बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का॥
थे बुरे मग़बचों के तेवर लेक।
शेख़ मैख़ाने से भला खिसका॥
फ़ैज़ ऐ अब्र चश्मे-तर से उठा।
आज दामन वसीअ है इसका॥
ताब किसको जो हाले मीर सुने।
हाल ही और कुछ है मजलिस का॥

* * *

मर रहते जो गुल बन तो सारा यह ख़लल जाता।
निकला ही न जी वरना काँटा सा निकल जाता॥
मैं गिरियए ख़ूनी को रोके ही रहा वरना।
यकदम में ज़माने का याँ रङ्ग बदल जाता॥

बिन पूछे करम से वह जो बख़्श न देता तो।
पुरसिश में हमारी ही दिन हश्र का ढल जाता॥

❦ ❦ ❦

दिल से शौक़े रुख़े नकू न गया।
झाँकना ताकना कभू न गया॥
हर क़दम पर थी उसकी मंज़िल लेक।
सर से सौदाय जुस्तजू न गया॥
सब गये होशो-सब्रो-ताबो-तवाँ।
लेकिन ऐ दाग़ ! दिलसे तू न गया॥
दिल में कितने मसव्वदे थे वले।
एक पेश उसके रूबरू न गया॥
सुबह गरदाँ ही 'मीर' हम तो रहे।
दस्ते कोताह ता सबू न गया॥

❦ ❦ ❦

मेहर की तुझसे तवक्क़ा थी सितमगर निकला।
मोम समझे थे तेरे दिल को सो पत्थर निकला॥

❦ ❦ ❦

अश्क तर क़त्रए ख़ूँ लख़्ते जिगर पारए दिल।
एक से एक अदू आँख से बेहतर निकला॥
हमने जाना था लिखेगा तु कोई हर्फ़ ऐ मीर !
पर तेरा नामा तो इक शौक़ का दफ़्तर निकला॥

❦ ❦ ❦

टुक गोरे ग़रीबाँ की कर सैर कि दुनिया में।
इन ज़ुल्म-रसीदों पर क्या क्या न हुआ होगा॥

* * *

दुश्मनी हमसे की ज़माने ने।
जो जफ़ाकार तुझ सा यार किया॥
सद रगेजाँ को ताव दे बाहम।
तेरी ज़ुल्फ़ों का एक तार किया॥
हम फ़क़ीरों से वे अदाई क्या।
आन बैठे जो तुमने प्यार किया॥
सख़्त काफ़िर था जिसने पहले 'मीर'।
मज़हबे-इश्क़ इख़्तियार किया॥

* * *

दो दिन गये कि आँखें दरिया सी बहतियाँ थीं।
सूखा पड़ा है अब तो मुद्दत से यह दोआबा॥

* * *

हुआ रोने से राज़े-दोस्ती फ़ाश।
हमारा गिरिया था दुश्मन हमारा॥

* * *

हैं मुश्ते ख़ाक लेकिन जो कुछ हैं 'मीर' हम हैं।
मक़दूर से ज़यादा मक़दूर है हमारा॥

* * *

इब्तिदाये-इश्क़ है रोता है क्या ?
आगे आगे देखिए होता है क्या ?
क़ाफ़िले में सुबह के इक शोर है।
यानी ग़ाफ़िल हम चले सोता है क्या ?
सब्ज़ होती ही नहीं यह सरज़मीं।
तुख़्मे .ख़्वाहिश दिल में तू बोता है क्या ?
ग़ैरते यूसुफ़ है यह व.क़्त अज़ीज़।
'मीर' इसको रायगाँ खोता है क्या ?

* * *

अश्क आँखों में कब नहीं आता।
लहू आता है जब नहीं आता॥
होश जाता नहीं रहा लेकिन।
जब व आता है तब नहीं आता॥
सब्र था एक मूनिसे हिजराँ।
सो व मुद्दत से अब नहीं आता॥
दिलसे रुख़सत हुई कोई .ख़्वाहिश।
गिरिया कुछ बेसबब नहीं आता॥

* * *

दिल कि यक क़तरा .ख़ूँ नहीं है बेश।
एक आलम के सर बला लाया॥

दिल मुझे उस गली में ले जाकर।
और भी ख़ाक में मिला लाया॥
इब्तिदा ही में मर गये सब यार।
इश्क़ की कौन इन्तहा लाया॥
अब तो जाते हैं बुतकदे से 'मीर'।
फिर मिलेंगे अगर ख़ुदा लाया॥

❦ ❦ ❦

अपने तड़पने की मैं तद्बीर पहले कर लूं।
तब फ़िक्र मैं करूँगा ज़ख्मों के भी रफ़ू का॥
यह पेशगह नहीं है याँ रंग और कुछ है।
हर गुल है इस चमन में साग़र भरा लहू का॥
बुलबुल ग़ज़ल-सराई आगे हमारे मत कर।
सब हमसे सीखते हैं अन्दाज़ गुफ़्तगू का॥

❦ ❦ ❦

ग़म रहा जब तक कि दम में दम रहा।
दिल के जाने का निहायत ग़म रहा॥
हुस्न था तेरा बहुत आलम फ़रेब।
ख़त के आने पर भी यक आलम रहा॥
मेरे रोने की हक़ीक़त जिसमें थी।
एक मुद्दत तक व काग़ज़ नम रहा॥

सुबह पीरी शाम होने आयी 'मीर'।
तू न चेता याँ बहुत दिन कम रहा॥

हर हर्फ़े ग़म ने मेरे मजलिस के तईं रुलाया।
गोया ग़ुबार दिलका पढ़ता किताब निकला।
आया जो वाक़ई में दर पेश आलमे-मर्ग।
यह जागना हमारा देखा तो ख़्वाब निकला॥

सरसरी तुम जहान से गुज़रे।
वर्ना हर जा जहान दीगर था॥
दिल की कुछ क़द्र करते रहियो तुम।
यह हमारा भी नाज़ परवर था॥
अब ख़राबा हुआ जहाँ आबाद।
वर्ना हरयक क़दम प वाँ घर था॥
आख़िरेकार जब जहाँ से गया।
हाथ ख़ाली क़फ़स से बाहर था॥
ख़ुश रहा जब तलक रहा जीता।
'मीर' मालूम है क़लन्दर था॥

कल चमन में गुलो समन देखा।
आज देखा तो बाग़ बन देखा॥

क्या है गुलशन में जो क़फ़स में नहीं।
आशिक़ों को जिलावतन देखा॥
ज़ौक़ पैकाँ व तीर में तेरे।
मुद्दतों तक जिगर ने छन देखा॥
एक चश्मक दो सद् सनाने मज़ा।
उस नुकीले का बाँकपन देखा॥
हसरत उसकी जगह थी ख़्वाबीदः।
'मीर' का खोलकर कफ़न देखा॥

दिल इश्क़ का हमेशा हरीफ़े नबर्द था।
अब जिस जगह कि दाग़ है याँ आगे दर्द था॥

दैरो हरम में क्योंके क़दम रख सकेगा 'मीर'।
ईधर तो उससे बुत फिरे ऊधर ख़ुदा फिरा॥

क्या कहिये कि ख़ूबाँ ने अब हम में है क्या रक्खा।
उन चश्म सियाहों ने बहुतों को सुला रक्खा॥
जल्वा उसी का सब है गुलशन में ज़माने के।
गुल फूल को है उनने परवाना बना रक्खा॥
जूँ बर्गेख़िज़ाँ दीदः सब ज़र्द हुए हम तो।
गर्मी ने हमें दिलकी आख़िर को जला रक्खा॥

वसीयत 'मीर' ने मुझको यही की।
कि सब कुछ होना तो आशिक़ न होना॥

ऐ शोर क़यामत हम सोते ही न रह जायें।
इस राह से निकले तो हमको भी जगा लेना॥

आलम की सैर 'मीर' की सोहवत में हो गयी।
तालअ़ से मेरे हाथ य वे दस्तो-पा लगा॥

इश्क़ ने क्या क्या तसर्रुफ़ याँ किये हैं आजकल।
चश्म को पानी किया सब दिल को सब लोहू किया॥
काम में कुदरत के कुछ बोला नहीं जाता है हाय!
ख़ूबरू उसको किया लेकिन बहुत बद ख़ू किया॥

बे ख़ुदा ले गयी कहाँ हमको।
देर से इन्तज़ार है अपना॥
रोते फिरते हैं सारी सारी रात।
अब यही रोज़गार है अपना॥
देके दिल हम जो हो गये मजबूर।
इसमें क्या इख़्तियार है अपना॥
कुछ नहीं हम मिसाले उनक़ा लेक।
शहर शहर इश्तिहार है अपना॥

जिसको तुम आसमान कहते हो।
सो दिलों का ग़ुबार है अपना॥

❦ ❦ ❦

मक्के गया मदीने गया करबला गया।
जैसा गया था वैसा ही चल फिर के आगया॥
देखा हो कुछ उस आमदो शद में तो मैं कहूँ।
ख़ुद गुम हुआ हूँ बात की तह आप पा गया॥

❦ ❦ ❦

इश्क़ हमारे ख़याल पड़ा है ख़्वाब गया आराम गया।
जी का जाना ठहर रहा है सुबह गया या शाम गया॥
इश्क़ गया सर दीन गया ईमान गया इस्लाम गया।
दिल ने ऐसा काम किया कुछ जिससे मैं नाकाम गया॥
हाय! जवानी क्या क्या कहिए शोर सरों में रखते थे।
अब क्या है? वह अहद गया वह मौसम वह हङ्गाम गया॥

❦ ❦ ❦

वस्ल में रङ्ग उड़ गया मेरा।
क्या जुदाई को मुँह दिखाऊँगा॥

❦ ❦ ❦

या रब! किधर गये वे जो आदमी रविश थे।
ऊजड़ दिखायी दे हैं शरो दह व नगर सब॥

हरफ़ो सखुन से मुतलक़ याँ गुफ्तगू नहीं है।
प्यादे सवार हम को आये नज़र नफ़र सब॥
आलम के लोगों का है तस्वीर का सा आलम।
ज़ाहिर खुली हैं आँखें लेकिन हैं बेख़बर सब॥
'मीर' इस ख़राबे में क्या आबाद होवे कोई।
दीवारो दर गिरे हैं वीराँ पड़े हैं घर सब॥

हर जिंस के ख़्वाहाँ मिले बाज़ारे जहाँ में।
लेकिन न मिला कोई ख़रीदारे मुहब्बत॥
इस राज़ को रख जी ही में ता जी बचे तेरा।
ज़िनहार जो करता हो तो इज़हारे मुहब्बत॥

फूल गुल शम्सो क़मर सारे ही थे।
पर हमें इनमें तुम्हीं भाये बहुत॥
'मीर' से पूछा जो मैं आशिक़ हो तुम।
होक कुछ चुपके से शरमाये बहुत॥

इश्क़ में ऐ तबीब हाँ टुक सोच।
पायेजाँ दर्मियाँ है याँ टुक सोच॥
सरसरी मत जहाँ से जा ग़ाफ़िल।
पाँव तेरा पड़े जहाँ टुक सोच॥

फैल इतना पड़ा है क्यों तू याँ।
यार अगले गये कहाँ टुक सोच॥
होंठ अपना हिला न समझे बिन।
यानी जब खोले तो ज़बाँ टुक सोच॥
गुलो रङ्गो बहार परदे हैं।
हर अयाँ में है वह निहाँ टुक सोच॥
फ़ायदः सर झुके का शेब में 'मीर'।
पीरी से आगे ऐ जवाँ टुक सोच॥

मेरे संगे मज़ार पर फ़रहाद।
रखके तेशः कहे है या उस्ताद॥

ऐ बूये गुल समझ के महकियो पवन के बीच।
ज़ख्मी पड़े हैं मुर्ग़ हज़ारों चमन के बीच॥

मुन्तज़िर बरसों रहे अफ़सोस आख़िर मर गये।
दीदनी थे लोग उस ज़ालिम के बीमारों के बीच॥

जी में था उससे मिलिए तो क्या क्या न कहिए 'मीर'।
पर जब मिले तो रह गये नाचार देख कर॥

मर्ग इक माँदगी का वक़्फ़ा है।
यानी आगे चलेंगे दम ले कर॥

* * *

आखें लगीं रहेंगी बरसों वहीं सभों की।
होगा क़दम का तेरे जिस जा निशाँ ज़मीं पर॥
जो कोई याँ से गुज़रा क्या आप से न गुज़रा।
पानी रहा कब इतना हो कर रवाँ ज़मीं पर॥

* * *

ऐ सबा! गर शहर के लोगों में हो तेरा गुज़ार।
कहियो हम सहरा नवरदूं का तमामी हाले ज़ार॥
ख़ाके देहली से जुदा हमको किया यकबारगी।
आसमाँ को थी कुदूरत सो निकाला यूँ .गुबार॥
मन्सबे बुलबुल ग़ज़ल .खूनी था सो वह है असीर।
शायरी ज़ाग़ो ज़ग़न का हो न होवे अब शआर॥
तायरे .खुश ज़मज़मा कुंजे क़फ़स में है ख़मोश।
चहचहे चिड़ियाँ करे हैं सहने गुलशन में हज़ार॥
वर्गे गुल से भी किया नै एक ने टुक हमको याद।
नामा वो पैग़ामो पुरसिश बे मरातिब दर क़िनार॥
बे ख़लिश क्यों कर न हो गर्मे सखुन गुलज़ार में।
मैं क़फ़स में हूँ कि मेरा था दिलों में उनके ख़ार॥

बुलबुले .खुश लहजा की जाये पे गो ग़ौग़ाइयाँ।
तरह ग़ौग़ा की चमन में डालीं पर क्या एतबार॥
तायराने .खुश लबो लहजा नहीं रहते छुपे।
शोर से उनके भरे हैं कुरिया वो शहरो दयार॥
शहर के क्या एक दो को चूँ में थी शुहरत रही।
शहरों शहरों मुल्कों मुल्कों हीं उन्हों का इश्तहार॥
क्या कहूँ सूये चमन होता जो मैं सरगर्म गश्त।
फूल गुल जब खिलने लगते जोशज़न होती बहार॥
शोर सुन सुन कर ग़ज़ल ख़्वानी का मेरी हमसफ़ीर।
गुंचा हो आते जो होता आबो रंगे शाख़सार॥
.खुशनवाई का जिन्हें दावा था रह जाते ख़मोश।
जिनको मैं करता मुख़ातिब उनको होता इफ़्तख़ार॥
बाज़ों को इश्के क़बूले ख़ातिरो लुत्फ़े, सख़ुन।
बाज़ों का सीना फ़िगार और बाज़ों का दिल दाग़दार॥
एक के होठों के ऊपर आफ़रीं उस्ताद था।
एक कहते थे रुसूख़े दिल है अपना उस्तवार॥
रब्त का दावा था जिनको कहते थे मुख़लिस हैं हम।
जानते हैं ज़ाते सामी ही को हम सब ख़ाकसार॥
नक़ल करते क्या य सोहबत मुनअक़द जब होती बज़्म।
बैठ कर कहते थे मुँह पर मेरे वाज़े वाज़े यार॥

बन्दगी है ख़िदमते आली में हमको देर से।
कर रखो है जान अपनी हमने हज़रत पर निसार॥
सो न ख़त उनका न कोई पर्चा पहुँचा मुझ तलक।
वाहवा है रब्त यह रहमत है यह इख़लासो प्यार॥
रफ़्ता रफ़्ता हो गयी आँखें भी अब मेरी सफ़ेद।
बस कि नामे का किया यारों के मैंने इन्तज़ार॥
लिखते गर दो हर्फ़ लुत्फ़ आमेज़ बाद अज़ चन्द रोज़।
तो भी होता इस दिले बेताबो ताक़त को क़रार॥
सो तो इक बनविश्तः काग़ज़ भी न आया मेरे पास।
इन हम आवाज़ों से जिनका मैं किया रब्त आशिकार॥
ख़त किताबत से य कहते थे न भूलेंगे तुझे।
आवेंगे घर बार की तेरे ख़बर को बार बार॥
जब गया मैं याद से तब किसका घर काहे को पास।
आफ़रीं सद आफ़री पे मर्दमाने रोज़गार॥
अब बयाबाँ दरबयाबाँ है मेरा शोरो फ़ुग़ाँ।
गो चमन में ख़ुश की तुमने मेरी जाये नालादार॥
है मसल मशहूर यह उम्रे सफ़र कोताह है।
तालए बरगश्ता भी करते हैं अब इमदाद कार॥
इक पुर अफ़शानी में की है यह वतन गुलज़ार सा।
सामओं की छातियाँ नालों से होवेंगी फ़िगार॥

मुँह पर आवेंगे सखुन आलूदहे ख़ूने जिगर।
क्योंकि याराने ज़माँ से चाक है दिल जूँ अनार॥
लब से ले करता सखुन है खूंचकाँ शिकवे भरे।
लेक है इज़हार हर नाकस से अपना नङ्गो आर॥
आज से कुछ बे हिसाबी ज़ोर कुन मरदुम नहीं।
इनसे अहले दिल सदा खींचे हैं रंजे बेशुमार॥
बस क़लम रख हाथ से जाने भी दे यह हर्फ़ 'मीर'।
काह के चाहे नहीं कुहसार होते बेवक़ार॥
काम के जा लोग साहब फ़न हैं सो महसूद हैं।
वे तिही करते रहेंगे हासिदाने नावकार॥

* * *

बज़्म में मुँह उधर करें क्योंकर।
और नीची नज़र करें क्योंकर॥
यों भी मुश्किल है वों भी मुश्किल है।
सर झुकाये गुज़र करें क्योंकर॥
यह फ़लक पर है वह ज़मी पर आह!
इनको ज़ेरो ज़बर करें क्योंकर॥
दिल नहीं दर्दमन्द अपना 'मीर'।
आहो नाले असर करें क्योंकर॥

* * *

क्या कहिए क्या रखें हैं हम तुझ से यार ख़्वाहिश।
यक जाँ व सद तमन्ना यक दिल हज़ार ख़्वाहिश॥

हालाँ कि उम्र सारी मायूस गुज़री तिस पर।
क्या क्या रखें हैं उसके उम्मीदवार ख़्वाहिश॥

* * *

क्या पतंगे को शमअ राए 'मीर'।
उसकी शब को भी है सहर दरपेश॥

* * *

नज़र क्यों गयी रू व मू की तरफ़।
खिँचा जाये है दिल किसू की तरफ़॥
न देखो कभू मोतियों की लड़ी।
जो देखो मेरी गुफ़्तगू की तरफ़॥
उसे ढूँढ़ते 'मीर' खोये गये।
कोई देखे इस जुस्तजू की तरफ़॥

* * *

मीर जी ज़र्द होते जाते हो।
क्या कहीं तुम ने भी किया है इश्क़॥

* * *

बन जा कुछ बन सके जवानी में।
रात तो थोड़ी है बहुत है साँग॥
'मीर' बन्दों से काम कब निकला?
माँगना है जो कुछ ख़ुदा से माँग॥

* * *

रहे मर्ग से क्यों डराते हैं लोग।
बहुत इस तरफ़ को ता जाते हैं लोग॥

* * *

क्यों न देखूँ चमन को हसरत से।
आशियाँ था मेरा भी याँ परसाल॥

* * *

यही जाना कि कुछ न जाना हाय!
सो भी इक उम्र में हुआ मालूम॥

* * *

किस तौर कोई तुझ से मक़सूद करे हासिल।
नै रहम तेरे जी में नै दिल में तर्स ज़ालिम॥

* * *

हर हर स.ख़ुन प अब तो करते हो गुफ़्तगू तुम।
इन बदमिज़ाजियों को छोड़ोगे भी कभू तुम॥
चाहें तो तुम को चाहें देखें तो तुम को देखें।
ख़्वाहिश दिलों की तुम हो आँखों की आर.ज़ू तुम॥

* * *

मुत्तसिल रोते ही रहिए तो बुझे आतिशे दिल।
एक दो आँसू तो और आग लगा जाते हैं॥
व.क्त .ख़ुश उनका जो हमबज़्म हैं तेरे हम तो।
दरो दीवार को अहवाल सुना जाते हैं॥

एक बीमारे जुदाई हूँ मैं आप ही तिस पर।
पूछने वाले जुदा जान को खा जाते हैं॥
'मीर' साहब भी तेरे कूचे में शब आते हैं।
जैसे दर यूज़:गरी करने गदा जाते हैं॥

* * *

इसके कूचे में न कर शोरे क़यामत का ज़िकर।
शेख़ याँ ऐसे तो हंगामे हुआ करते हैं॥
बेवसी से तो तेरी वज़्म में हम वहरे बने।
नेको बद कोई कहे बैठ सुना करते हैं॥
.फुरसते ख़्वाब नहीं ।ज़क्रे बुताँ में हम को।
रातदिन राम कहानी सी कहा करते हैं॥
यह ज़माना नहीं ऐसा ।क कोई ज़ीस्त करे।
चाहते हैं जो बुरा अपना भला करते हैं॥
महज़ नाकार: ही मत जान हमें तू कि कहीं।
ऐसे नाकाम भी बेकार फिरा करते हैं॥
तुझ बिन इस जान मुसीबतज़द: ग़मदीद: प हम।
कुछ नहीं करते तो अफ़सोस किया करते हैं॥
क्या करें 'मीर जी' हम तुम से मआश अपनी अरज़।
ग़म को खाया करे हैं लोहू पिया करते हैं॥

* * *

पढ़ते फिरेंगे गलियों में इन रेख़्तों को लोग।
मुद्दत रहेंगी याद य बातें हमारियाँ॥

सैयद हो या चमार हो इस जा वफ़ा है शर्त।
क्या आशिक़ी में पूछते हैं ज़ात के तईं॥
आख़िर के यह सलूक हम अब तेरे देखकर।
करते हैं याद पहली मुलाक़ात के तईं॥

तफ़ावत कुछ नहीं शीरीं व शकर और यूसुफ़ में।
समझ माशूक़ अगर पूछे कोई मिस्री का है डाड़ियाँ॥

बज़्म में जो तेरा ज़हूर नहीं।
शमए रोशन के मुँह प नूर नहीं॥
कितनी बातें बना के लाऊँ लेक।
याद रहती तेरे हुज़ूर नहीं॥
फ़िक्र मत कर हमारे जीने का।
तेरे नज़्दीक कुछ य दूर नहीं॥
फिर जियेंगे जो तुझ सा है जाँ बख़्श।
ऐसा जीना हमें ज़रूर नहीं॥
आम है यार की तजल्ली 'मीर'।
ख़ासे मूसा व कोहे तूर नहीं॥

खोलकर दीवान मेरा देख .कुदरत मुद्दई।
गर्चे हूँ मैं नौजवाँ पर शायरों का पीर हूँ॥

* * *

कहे है कोहकन कर फ़िक्र मेरी ख़स्ते हाली में।
इलाही शुक्र करता हूँ तेरी दरगाहे आली में॥
मैं वह पज़मुर्दा सब्ज़ा हूँ कि होकर ख़ाक से सरज़द।
यकायक आ गया इस आस्माँ की पायमाली में॥

* * *

तू इक ज़बाँ प चुपकी नहीं रहती अन्दलीव।
रखता है मुँह प गुंचए गुल सौ ज़बाँ के तईं॥
हम तो हुए थे 'मीर' से उस दिन ही ना उमीद।
जिस दिन सुना कि उन ने दिया दिल बुताँ के तईं॥

* * *

मैं तो .खूबाँ को जानता ही हूँ।
पर मुझे भी ये .खूब जाने हैं॥
अब तो अफ़सरदगी ही है हर आन।
वे न हम हैं न वे ज़माने हैं॥
.कैसो फ़रहाद के व इश्क़ के शोर।
अब मेरे अहद में फ़िसाने हैं॥
मुश्को संबुल कहाँ व .ज़ुल्फ़ कहाँ।
शायरों के ये शाख़साने हैं॥

इश्क़ करते हैं उस परी-रू से।
'मीर' साहब भी क्या दिवाने हैं॥

अब के जुनूँ में फ़ासला शायद ही कुछ रहे।
दामन के चाक और गरेवाँ के चाक में॥

सुबहे चमन का जल्वा हिन्दी बुतों में देखा।
सन्दल भरी जबीं में होठों का लालियाँ हैं॥
अजमाए बुलहवास को रख रख लिया है आगे।
मत जान ऐसी भेड़ें जाँ देने वालियाँ हैं॥
इन गुलरुख़ों का क़ामत लहके है यूँ हवा में।
जिस रंग से लचकती फूलों की डालियाँ हैं॥

ज़बानें बदलते हैं हर आन ख़ूवाँ।
य सब कुछ हैं बिगड़े ज़माने की बातें॥
हमें दैरो कावे से क्या गुफ़्तगू है।
चली जाती हैं ये सयाने की बातें॥

दिल के उलझाव को क्या तुमसे कहूँ ऐ नासेह!
तू किसू ज़ुल्फ़ के फन्दे में गिरफ़्तार नहीं॥

जाये है जी नजात के ग़म में।
ऐसी जिन्नत गई जहन्नम में॥

बे .खुदी पर न 'मीर' की जाओ।
तुमने देखा है और आलम में॥

* * *

नयी गर्दिश है इसकी हर ज़माँ में।
ख़लल सा है दिमागे़ आसमाँ में॥
कहा मैं दर्द दिल या आग उगली।
फफोले पड़ गये मेरी ज़बाँ में॥
तेरी शोरिश भी बेकल है मगर 'मीर'।
मिला दी पीस कर बिजली .फुग़ाँ में॥

* * *

महबूब का विसाल न मुझको हुआ नसीब।
दिल से हज़ार ख़्वाहिशें सर को पटक गयीं॥
भर दी थी चश्म साक़ी में या रब कहाँ की मै।
मजलिस की मजलिसें नज़र इक करते छक गयीं॥

* * *

फिरा मैं सूरते अहवाल हरयक को दिखाता याँ।
मुरव्वत क़हत है आँखें नहीं कोई मिलाता याँ॥
ख़राबा देहली का दो चन्द बेहतर लखनऊ से था।
वहीं मैं काश मर जाता सरासीमा न आता याँ॥

* * *

इश्क़ करना नहीं आसान बहुत मुश्किल है।
छाती पत्थर की है उनकी जो वफ़ा करते हैं॥

❦ ❦ ❦

गो कि बुतख़ाने जा रहा हूँ मैं।
ब.ख़ुदा बा.ख़ुदा रहा हूँ मैं॥
सब गये दिल दिमाग़ ताबो तवाँ।
मैं रहा हूँ सो क्या रहा हूँ मैं॥
वक़्त तो मैं न था कि जल बुझता।
अब्रतर हूँ कि छा रहा हूँ मैं॥

❦ ❦ ❦

हुए थे जैसे मर जाते, पर अब तो स.ख़्त हसरत है।
किया दुशवार नादानी से हमने कारे आसाँ को॥
कोई काँटा सरे रह का हमारी ख़ाक पर बस है।
गुले गुलज़ार क्या दरकार है गोरे ग़रीबाँ को॥
किया सैर इस ख़राबी का बहुत अब चल के सो रहिए।
किसू दीवार के साये में मुँह पर ले के दामाँ को॥

❦ ❦ ❦

होगा किसू दीवार के साये में पड़ा 'मीर'।
क्या काम मुहब्बत से उस आराम-तलब को॥

❦ ❦ ❦

मत तुरबते 'मीर' को मिटाओ।
रहने दो ग़रीब का निशाँ तो॥

❦ ❦ ❦

खींचा है आदमी ने बहुत दूर आपको।
इस परदे में ख़याल तो कर टुक .खुदा न हो॥

❦ ❦ ❦

बारे दुनियाँ में रहो ग़मज़दः या शाद रहो।
ऐसा कुछ करके चलो याँ कि बहुत याद रहो॥
हमको दीवानगी शहरों ही में .खुश आती है।
दश्त में क़ैस रहो कोह में फ़रहाद रहो॥
'मीर' हम मिल के बहुत .खुश हुए तुमसे प्यारे।
इस ख़राबे में मेरी जान तुम आबाद रहो॥

❦ ❦ ❦

कहता है कौन 'मीर' कि बे इख़्तियार रो।
ऐसा तू रो कि रोने प तेरी हँसी न हो॥

❦ ❦ ❦

ऐ ग़ाफ़िलाने दहर यह कुछ राह की है बात।
चलने को क़ाफ़िले हैं यहाँ तुम रहे हो सो॥

❦ ❦ ❦

खिलता हूँ वहाँ सुहबते रिन्दाना जहाँ हो।
मैं .खुश हूँ उसी शहर से मैख़ाना जहाँ हो॥

रहने से मेरे पास के बदनाम हुए तुम।
अब जाके रहो वाँ कहीं रुसवा न जहाँ हो॥
इन उजड़ी हुई बस्तियों में दिल नहीं लगता।
है दिल में वहीं जा बसें वीराना जहाँ हो॥
वहशत है ख़िरदमन्दों की सुहबत से मुझे 'मीर'।
अब जा रहूँगा वाँ कोई दीवाना जहाँ हो॥

* * *

इब्तिदा ही में मर गये सब यार।
इश्क़ की पाई इन्तहा न कभू॥

* * *

मौसिमे अब्र हो सुबू भी हो।
गुल हो गुलशन हो और तू भी हो॥
हो जो तेरा सा रङ्ग गुल का है।
रीझें हम तब जब ऐसी बू भी हो॥
है ग़रज़ इश्क़ सिर्फ़ ही लेकिन।
शर्त यह है कि जुस्तजू भी हो॥
सरकशी गुल की ख़ुश नहीं आती।
नाज़ करने का वैसा रू भी हो॥
किसको बुलबुल है दमकशी का दिमाग़।
हो तो गुल ही की गुफ़्तगू भी हो॥

दिल तमन्ना कदः तो है पर 'मीर'।
हो तो उसकी ही आरज़ू भी हो॥

* * *

जो चाहे मिल किसू से या सब से तू जुदा रह।
पर हो सके तो प्यारे टुक दिल का आशना रह॥
हर मुश्त ख़ाक याँ की चाहे है यक तआम्मुल।
बिन सोचे राह मत चल हर गाम पर खड़ा रह॥
शायद कि सर बलन्दी होवे नसीब तेरे।
जूँ गर्दे राह सबके पावों से तू लगा रह॥
दौड़े बहुत व लेकिन मतलब को कौन पहुँचा।
आइन्दा तू भी हम सा होकर शिकस्त पा रह॥

* * *

क्या मुवाफ़िक हो दवा इश्क़ के बीमार के साथ।
जी ही जाते नज़र आते हैं इस आज़ार के साथ॥
रात मजलिस में तेरी हम भी खड़े थे चुपके।
जैसे तस्वीर लगा दे कोई दीवार के साथ॥

* * *

लुत्फ़ क्या हर किसू की चाह के साथ।
चाह वह है जो हो निबाह के साथ॥

* * *

खींचता है दिलों को सहरा कुछ।
है मिज़ाजों में अपने सौदा कुछ॥

वैसे ज़ाहिर का लुत्फ़ है छुपना।
कम तमाशा नहीं य परदा कुछ॥

ख़लक़ की क्या समझ में वह आया।
आप से तो गया न समझा कुछ॥

❦ ❦ ❦

यारों की आहो जारी होवे क़बूल क्योंकर।
उनकी ज़बाँ में कुछ है, दिल में है कुछ, दुआ कुछ॥

❦ ❦ ❦

ख़ाने में दिल से ज़ीनहार बचा।
कोई ऐसे मकाँ से उठता है॥
यूँ उठे आह! उस गली से हम।
जैसे कोई जहाँ से उठता है॥

❦ ❦ ❦

सरापा आरज़ू होने ने बन्दा कर दिया हमको।
वगरना हम ख़ुदा थे गर दिले बे मुद्दआ होते॥
फ़लक़ ऐ काश हमको ख़ाक ही रखता कि उसमें हम।
ग़ुबारे राह होते या किसू की ख़ाके पा होते॥
इलाहो कैसे होते हैं जिन्हें है बन्दगी ख़्वाहिश।
हमें तो शर्म दामनगीर होती है ख़ुदा होते॥

❦ ❦ ❦

उसके इअफ़ाए अहद तक न जिये।
उम्र ने हम से बे वफ़ाई की॥

वस्ल के दिन की आरज़ू ही रही।
शब न आख़िर हुई जुदाई की॥

❦ ❦ ❦

दिल की मामूरी की मत कर फ़िक्र .फ़ुरसत चाहिए।
ऐसे वीराने के अब बसने को मुद्दत चाहिए॥
आक़बत फ़रहाद मर कर काम अपना कर गया।
आदमी होवे किसी पेशे में जुरअत चाहिए॥
हो तरफ़ मुझ पहलवाँ शायर का कब आजिज़ स.ख़ुन।
सामने होने को साहबफ़न के .क़ुदरत चाहिए॥
इश्क़ में वस्लो .जुदाई से नहीं कुछ गु.फ्तगू।
क़र्बोबाद इस जा बराबर है मुहब्बत चाहिए॥

❦ ❦ ❦

कहाँ हैं आदमी आलम में पैदा।
.ख़ुदाई सिदक़े का इन्सान पर से॥

❦ ❦ ❦

शादी वो ग़म में जहाँ की एक से दस का है फ़र्क़।
ईद के दिन हँसिये तो दस दिन मुहर्रम रोइये॥

❦ ❦ ❦

अब करके फ़रामोश तो नाशाद करोगे।
पर हम जो न होंगे तो बहुत याद करोगे॥

कर देखोगे तुम तर्ज़ कलाम उसकी नजर कर।
ऐ अहले-सख़ुन 'मीर' को उस्ताद करोगे॥

❧ ❧ ❧

जब कि पहलू से यार उठता है।
दर्द बे इख़्तियार उठता है॥
अब तलक भी मज़ारे मजनूँ से।
नातवाँ इक ग़ुबार उठता है॥
है बगोला ग़ुबार किसका 'मीर'।
कि जो हो बेक़रार उठता है॥

❧ ❧ ❧

ऐ हुब्बे जाह वालो जो आज ताजवर है।
कल उसको देखियो तुम नै ताज है न सर है॥

❧ ❧ ❧

फिरते फिरते आक़बत आँखें हमारी मुँद गयीं।
सो गये बेहोश थे हम राह के हारे हुए॥
प्यार करने का जो ख़ूबाँ हम प रखते हैं गनाह।
उनसे भी तो पूछिए तुम इतने क्यों प्यारे हुए॥

❧ ❧ ❧

हो गयी शहर शहर रुसवाई।
ऐ मेरी मौत! तू भली आयी॥

'मीर' जब से गया है दिल तब से।
मैं तो कुछ हो गया हूँ सौदाई॥

❦ ❦ ❦

दिल किस तरह न खींचे अशआर रेख़ते के।
बेहतर किया है मैंने इस ऐब को हुनर से॥
अंजाम कार बुलबुल देखा हम अपनी आँखों।
आवारः थे चमन में दो चार टूटे पर से॥
बे ताक़ती ने दिल की आख़िर को मार रक्खा।
आफ़त हमारे जी की आयी हमारे घर से॥
दिलकश य मंज़िल आख़िर देखा तो राह निकली।
सब यार जा चुके थे आये जो हम सफ़र से॥

❦ ❦ ❦

'मीर' मैं जीतों में आऊँगा उसी दिन जिस दिन।
दिल न तड़पेगा मेरा चश्म न भर आयेगी॥

❦ ❦ ❦

तरफ़ होना मेरा मुश्किल है 'मीर' इस शेर के फ़न में।
युँहीं "सौदा" कभू होता है सो जाहिल है क्या जाने॥

❦ ❦ ❦

तुमने जो अपने दिल से भुलाया हमें तो क्या।
अपने तईं तो दिल से हमारे भुलाइये॥

❦ ❦ ❦

दिलो दीं होशो सवर सब ही गये।
आगे आगे तुम्हारे आने के॥

* * *

ग़फ़लत में गयी आह मेरी सारी जवानी।
ऐ उम्र गुज़श्ता मैं तेरी क़द्र न जानी॥
देखें तो सही कब तईं निभती है यह सुहवत।
हम जी से तेरे दोस्त है तू दुश्मने जानी॥
इश्क़ शख़्श मुझी सा था कि वह तुझ प था आशिक़।
वह उसकी वफ़ा पेशगी वह उसकी जवानी॥
यह कह के जो रोया तो लगा कहने न कह 'मीर'।
सुनता नहीं मैं ज़ुल्म-रसीदों की कहानी॥

* * *

फ़क़ीराना आये सदा कर चले।
मियाँ ख़ुश रहो हम दुआ कर चले॥
व क्या चीज़ है आह! जिसके लिए।
हरयक चीज़ से दिल उठाकर चले॥
कोई ना उम्मेदाना करके निगाह।
सो तुम हमसे मुँह भी छिपाकर चले॥
दिखायी दिये यूँ कि बे ख़ुद किया।
हमें आप से भी जुदा कर चले॥

जबीं सिजदे करते ही करते गयी।
हक़े बन्दगी हम अदा कर चले॥
परस्तिश की याँ तक कि ऐ बुत! तुझे।
नज़र में सभों की ख़ुदा कर चले॥
गयी उम्र दर बन्द फ़िक्रे ग़ज़ल।
सो इस फ़न को ऐसा बड़ा कर चले॥
कहें क्या जो पूछे कोई हमसे 'मीर'।
जहाँ में तुम आये थे क्या कर चले॥

* * *

जिस जगह दौरे जाम होता है।
वाँ य आज़िज़ मुदाम होता है॥
हम तो यक हर्फ़ के नहीं ममनूँ।
कैसा ख़त वो पयाम होता है॥
पूछ मत आह आशिक़ों की मआश।
रोज़ उनका भी शाम होता है॥
ज़ख्म बिन ग़म बिन और ग़ुस्से बिन।
अपना खाना हराम होता है॥
'मीर' साहब भी उसके 'हाँ थे पर।
जैसे कोई ग़ुलाम होता है॥

* * *

करो तवक्कुल कि आशिक़ी में न यूँ करोगे तो क्या करोगे ?
अलम जो यह है तो दर्दमन्दो ! कहाँ तलक तुम दवा करोगे ?
जिगर में ताक़त कहाँ है इतनी कि दर्दे हिजराँ से मरते रहिए।
हज़ारों वादे विसाल के थे कोई भी जाते वफ़ा करोगे ?
अख़ीर उल्फ़त यही नहीं है कि जल के आख़िर हुए पतंगे।
हवा जो याँ की य है तो यारो ग़ुबार होकर उड़ा करोगे॥

उम्र भर रहे हम शराबी से।
दिले पुर खूँ का इक गुलाबी से॥
खिलना कम कम कली ने सीखा है।
उसकी आँखों की नीम ख़्वाबी से॥
काम थे इश्क़ में बहुत पर 'मीर।
हम भी फ़ारिग़ हुए शिताबी से॥

हर कोई इस मुक़ाम पर दस रोज़।
अपनी नौबत बजाये जाता है॥
जाये इबरत है ख़ाकदान जहाँ।
तू कहाँ मुँह उठाये जाता है॥
देख सैलाब इस बयाबाँ का।
कैसा सर को झुकाये जाता है॥

सहल है 'मीर' का समझना क्या।
हर सुखन उसका यक मुक़ाम से है॥

❦ ❦ ❦

दिल जान है जूँ रोकर शवनम ने कहा गुल से।
अब हम तो चले याँ से रह तू जो रहा चाहे॥

❦ ❦ ❦

मिज़ाजों में यास आगयी है हमारे।
न मरने का ग़म है न जीने की शादी॥

❦ ❦ ❦

बावले से जब तलक बकते थे सब करते थे प्यार।
अक़्ल की बातें कियाँ क्या हम से नादानी हुई॥

❦ ❦ ❦

मक़दूर तक तो ज़ब्त करूँ हूँ प क्या करूँ।
मुँह से निकल ही जाती है यक बात प्यार की॥

❦ ❦ ❦

था मुल्क जिनके ज़ेर नगीं साफ़ मिट गये।
तुम इस ख़याल में हो कि नामो निशाँ रहे॥

❦ ❦ ❦

ऐ काश! कोई जाकर कह आवे यार से भी।
याँ काम जा चुका है अब इख़्तियार से भी॥
जानो जहाँ से गुज़रा मैं 'मीर' जिनकी ख़ातिर।
बचकर निकलते हैं वे मेरे मज़ार से भी॥

❦ ❦ ❦

सुनो सर गुज़श्त अब हमारी जवानी।
सुनी गरचे जाती नहीं यह कहानी॥
मिला देता है ख़ाक में आदमी को।
मुहब्बत है कोई बला आसमानी॥

आगे किसू के क्या करें दस्ते तमा दराज़।
वह हाथ सो गया है सिर्हाने धरे धरे॥

फ़रहादो कैसे गुज़रे अब शार है हमारा।
हर कोई अपनी नौबत दो दिन बजा गया है॥
पै 'मीर' शेर कहना क्या है कमाले इन्साँ!
यह भी ख़याल सा कुछ ख़ातिर में आ गया है॥
शायर नहीं जो देखा तो तू है कोई साहिर।
दो चार शेर पढ़कर सब को रिझा गया है॥

हसरतें उसकी सर पटकती हैं।
मर्गे फ़रहाद क्या किया तू ने॥

आँखों की तरफ़ गोश की दर परदः नज़र है।
कुछ यार के आने की मगर गर्म ख़बर है॥
शाने प रखा हार जो फूलों का तो लचके।
क्या साथ नज़ाकत के रगे गुल सी कमर है॥

क्या ख़ाना ख़राबी का हमें ख़ौफ़ो ख़तर है।
घर है किसू गोशे में तो मकड़ी का सा घर है॥
ऐ शमा अक़ामत कदः इस बज़्म को मत जान।
रोशन है तेरे चेहरे से तो गर्म सफ़र है॥
इस आशिक़े दीवान की मत पूछ मुईशत।
दन्दाँ बजिगर दस्त बदिल दाग़ बसर है॥
क्या आग की चिनगारियाँ सीने में भरी हैं।
जो आँसू मेरी आँख से गिरता है शरर है॥
डर जान का जिस जा है वहीं घर भी है अपना।
हम ख़ाना ख़राबों को न याँ घर है न दर है॥

* * *

आलम आलम इश्क़ जुनूँ है दुनिया दुनिया तोहमत है।
दरिया दरिया रोता हूँ मैं सहरा सहरा वहशत है।
क्या दिलकश है बज़्म जहाँ का जाते याँ से जिसे देखो।
वह ग़मदीदा रञ्जकशीदा आह सरापा हसरत है।
आबेहयात वही नः जिस पर ख़िज्रो सिकंदर मरते रहे।
ख़ाक से हमने भरा व चश्मा यह भी हमारी हिम्मत है।

* * *

गुलिस्ताँ के हैं दोनों पल्ले भरे।
बहार इस तरफ़ उस तरफ़ अब्र है॥

दरे काबा पर कुफ़ बकता है 'मीर'।
मुसल्माँ नहीं वह कहीं गब्र है॥

❦ ❦ ❦

अपने नियाज़ तुम से अब तक बुताँ रहे थे।
तुम हो .खुदाये बातिल हम बन्दे हैं तुम्हारे॥
ठहरे हैं हम तो मुजरिम टुक प्यार करके तुमको।
तुमसे भी कोई पूछे तुम क्यों हुए पियारे॥
होती है सुबह जो याँ है शाम से भी बदतर।
क्या कहिये 'मीर' .खूबी अय्याम की हमारे॥

❦ ❦ ❦

दाद फ़रियाद जा बजा करिए।
शायद उसके भी दिल में जा करिए॥
देखें कब तक रहे है यह सोहबत।
गालियाँ खाइए दुआ करिए॥
वह नहीं सर गुज़श्त सुनता 'मीर'।
यूँ कहानी सी क्या कहा करिए॥

❦ ❦ ❦

नाला जब गर्म कार होता है।
दिल कलेजे के पार होता है॥
सब मज़े दरकिनार होता है।
यार जब हम किनार होता है॥

जब्र है क़हर है क़यामत है।
दिल जो बेइख़्तियार होता है॥

मैं न आता था बाग़ में उस दिन।
मुझ को बुलबुल पुकार लाई है॥
इश्क़ दरिया है एक लङ्गर दार।
तह किसू ने भी इसकी पायी है॥
वह न शरमावे कब तलक आख़िर।
दोस्ती यारी आशनाई है॥
वे नहीं तो उन्हों का भाई और।
इश्क़ करने की क्या मनाई है॥

तेरे बन्दे हम हैं ख़ुदा जानता है।
ख़ुदा जाने तू हमको क्या जानता है॥
नहीं इश्क़ का दर्द लज़्ज़त से ख़ाली।
जिसे ज़ौक़ है वह मज़ा जानता है॥
मुझे जाने है आप सा ही फ़रेबी।
दुआ को भी मेरी दग़ा जानता है॥

फिरते हैं 'मीर' ख़्वार कोई पूछता नहीं।
इस आशिक़ी में इज़्ज़ते सादात भी गयी॥

वह दिल नहीं रहा है न वह अब दिमाग़ है।
जी तन में अपने बुझता सा कोई चिराग़ है॥
मुद्दत हुई कि ज़ानू से उठता नहीं है सर।
कुढ़ने से रात दिन के हमें कब फ़राग़ है॥
घर घर फिरे है झाँकती हर सुबह जो नसीम।
परदे में कोई है कि यह उसका सुराग़ है॥

❦ ❦ ❦

हम कभू ग़म से आह करते थे।
आस्माँ तक सियाह करते थे॥
बरसों रहते थे राह में उसकी।
तब कुछ हक़ उससे राह करते थे॥

❦ ❦ ❦

चर्ख़ पर अपना मदार देखिए कबतक रहे।
ऐसी तरह रोज़गार देखिए कबतक रहे॥
सेहरे कहाँ तक पड़ें आँसुओं के चेहरे पर।
गिरिया गले ही का हार देखिए कबतक रहे॥
रूए सुख़न सबका है मेरी ग़ज़ल की तरफ़।
शेर है मेरा शेआर देखिए कबतक रहे॥
गेसुओ रुख़सार यार आँखों ही में फिरते हैं।
'मीर' यह लैलो निहार देखिए कबतक रहे॥

❦ ❦ ❦

हैगी तलब शर्त याँ कुछ तो किया चाहिए।
बैठे नहीं बनती म्याँ कुछ तो किया चाहिए॥
इश्क में ऐ हमरहाँ कुछ तो किया चाहिए।
गिरिया वो शोरो फ़ुग़ाँ कुछ तो किया चाहिए॥
हाथ रखे हाथ पर बैठे हो क्या बेख़बर।
चलने को है कारवाँ कुछ तो किया चाहिये॥
मैं जो कहा तङ्ग हुँ मार मरूँ क्या करूँ?
वह भी लगा कहने हाँ कुछ तो किया चाहिए॥
क्या करूँ दिल खूँ करूँ शेर ही मौज़ूँ करूँ।
चलती है जब तक ज़बाँ कुछ तो किया चाहिए॥
हो न सके गर नमाज़ दिल की तरफ़ कर नियाज़।
वक्त गया फिर कहाँ कुछ तो किया चाहिए॥
चाहूँ किसूसे दुआ दिल की करूँ अब दवा।
नफ़अ हो फिर या ज़ियाँ कुछ तो किया चाहिए॥
यह तो नहीं दोस्ती हमसे जो तुमको रही।
पासे दिले दोस्तां कुछ तो किया चाहिए॥
'मीर' नहीं पीर तुम काहिली अल्लाह रे।
नामे ख़ुदा हो ज़बाँ कुछ तो किया चाहिए॥

* * *

दिल गया रुसवा हुए आख़िर को सौदा हो गया।
इस दो रोज़ः ज़ीस्त में हम पर भी क्या क्या हो गया॥

* * *

आने के वक्त तुम तो कहीं के कहीं रहे।
अब आये तुम तो फ़ायदा? हम ही नहीं रहे॥

बस न लगा चल नसीम मुझ से कि मैं।
रह गया हूँ चिराग़ सा बुझ कर॥

आख़िर को रुके रहते जुनूँ होता है।
ऐ 'मीर' कोई बात किया कर हम से॥

क्या 'मीर' तुझे जान हुई थी भारी।
जो उस बुते सङ्ग दिल से की थी यारी॥
बीमार भला क्या कोई होवे उसका।
परहेज़ करे जिससे ख़ुदाई सारी॥

कुछ ख़्वाब सी है 'मीर' यह सोहबत दारी।
उठ जायँगे यह बैठे हुए यक बारी॥
क्या आँखों को खोला है तनक गोश को खोल।
अफ़साना है पल मारते मजलिस सारी॥

मिलिए उस शख़्स से जो आदम होवे।
नाज़ उसको कमाल पर बहुत कम होवे॥

हो गर्मे सखुन तो गिर्द आवे यक ख़ल्क।
ख़ामोश रहे तो एक आलम होवे॥

❦ ❦ ❦

यह मुहलत कम कि जिसको कहते हैं उम्र।
मर मर के तमाम की है हमने॥

❦ ❦ ❦

हर सुवह मेरे सर प क़यामत गुज़री।
हर शाम नयी एक मुसीवत गुज़री॥

❦ ❦ ❦

विखरा जाता है नातवानी से जी।
आशिक़ न हुए कि यक ख़रावी आयी॥

❦ ❦ ❦

वुताँ के इश्क़ ने वेइख़्तियार कर डाला।
वह दिल कि जिसका ख़ुदाई में इख्तियार रहा॥
वह दिल कि शाम व सहर जैसे पक्का फोड़ा था।
वह दिल कि जिससे हमेशा जिगर फ़िगार रहा॥
सितम में ग़म में सरंजाम उसका क्या कहिये।
हज़ारों हसरतें थीं तिस प जी को मार रहा॥
वहा तो ख़ून हो आँखों की राह वह निकला।
रहा जो सीनए सोज़ाँ में दाग़ दार रहा॥

गली में उसके गया सो गया न बोला फिर।
मैं मीर मीर कर उसको बहुत पुकार रहा॥

मीर साहब ज़माना नाज़ुक है।
दोनों हाथों से थामिये दस्तार॥
सहल सी ज़िन्दगी प काम के तईं।
अपने ऊपर न कीजिए दुश्वार॥
चार दिन का है यह झमेला सब।
सब से रखिये सलूक ही नाचार॥

ऐ तू कि याँ से आक़बते कार जायगा।
ग़ाफ़िल न रह कि क़ाफ़िला यकबार जायगा॥
मौक़ूफ़ हश्र पर है सो आते भी वे नहीं।
कब दर्मियाँ से वादए दीदार जायगा॥
आने में उसके हाल हुआ जाय है तग़ैर।
क्या हाल होगा पास से जब यार जायगा॥

हम ख़स्ता दिल हैं तुझ से भी नाज़ुक मिज़ाज तर।
त्योरी चढ़ाई तूने कि याँ जी निकल गया॥

दिलो दिमाग़ है अब किसको ज़िन्दगानी का।
जो कोई दम है तो अफ़सोस है जवानी का॥

अगर्चें उम्र की दस दिन से लब रहे ख़ामोश।
सुख़न रहेगा सदा मेरी कम ज़बानी का॥
नमूद करके वहीं वहरे ग़म में बैठ गया।
कहे तो 'मीर' भी एक बुलबुला था पानी का॥

* * *

टुक देख आँख खोल के उस दम की हसरतें।
जिस दम य सूझेगी कि य आलम भी ख़्वाब था॥

* * *

गुल को महबूब में क़यास किया।
फ़र्क़ निकला बहुत जो बास किया॥
दिलने हमको मिसाल आईना।
एक आलम का रू शनास किया॥
कुछ नहीं सूझता हमें उस बिन।
शौक़ ने हमको बेहवास किया॥
सुबह तक शमा सर को धुनती रही।
क्या पतंगे ने इल्तमास किया॥
ऐसे वहशी कहाँ हैं ऐ ख़ूबाँ।
'मीर' को तुम अबस उदास किया॥

* * *

इस तरह दिल गया कि अबतक हम।
बैठ रोते हैं हाथ मलते हैं॥

उमड़ी आती हैं आज यूँ आँखें।
जैसे दरिया कहीं उबलते हैं॥
रहम आख़िर है बैठ जा, मत जा।
सब्र कर टुक कि हम भी चलते हैं॥
तेरे बेखुद जो हैं सो क्या चेतें।
ऐसे डूबे कहीं उछलते हैं॥

मीर के घर का हाल

क्या लिखूँ मीर अपने घर का हाल।
इस ख़राबी में मैं हुआ पामाल॥
कूचा मौज से है आँगन तङ्ग।
कोठड़ी के डुबाव के से ढङ्ग॥
चारदीवारी सौ जगह से ख़म।
तर तनक हो तो, सूखते हैं हम॥
लोनी लग लग के झड़ती है माटी।
आह क्या उम्र बेमज़ा काटी॥
झाड़ बाँधा है मेंह ने दिन रात।
घर की दीवारें हैंगी जैसे पात॥
बाउ में काँपते हैं जो थर थर।
उन प रहना रखे कोई क्यों कर॥

कहीं घूँसों ने खोद डाला है।
कहीं चूहे ने सर निकाला है॥
कहीं घर है किसू छछूँदर का।
शोर हर कोने में है मच्छर का॥
कभू कोई सँपोलिया है फिरे।
कभू छत से हज़ारपाय गिरे॥
दब के मरना हमेशा मद्दे नज़र।
घर कहाँ साफ़ मौत ही का घर॥
ईंट मिट्टी का दर के आगे ढेर।
गिरती जाती है हौले हौले मुँडेर॥
बान झींगुर तमाम चाट गये।
भीग कर बाँस फाट फाट गये॥
पूछ मत ज़िन्दगानी कैसी है।
ऐसे छप्पर की ऐसी तैसी है॥
जिंस आला कोई खटोला खाट।
पाय पट्टी रहे हैं जिनके फाट॥
खटमलों से सियाह है सो भी।
चैन पड़ता नहीं है शब को भी॥
कीड़ा इक एक फिर मकोड़ा है।
साँझ से खाने ही को दौड़ा है॥

गर्चे बहुतों को मैं मसल मारा।
पर मुझे खटमलों ने मिल मारा॥
मलते रातों को घिस गईं पोरें।
नाख़ुनों की हैं लाल सब कोरें॥
सोत तनहा न बान में खटमल।
आँख मुँह नाक कान में खटमल॥
दो तरफ़ से था कुत्तों का रस्ता।
काश जङ्गल में जाके मैं बसता॥
हो घड़ी दो घड़ी तो दुतकारूँ।
एक दो कुत्ते हों तो मैं मारूँ॥
चार जाते हैं चार आते हैं।
चार उफ़् उफ़् से मग़ज़ खाते हैं॥
दिन है धूप रात को है ओस।
ख़्वाबे राहत है याँ से सौ सौ कोस॥
मेंह में घर के पाँच छः छप्पर॥
हम ग़रीबों के होते हैं सर पर॥
टट्टियाँ थीं जो आगे छप्पर के।
बहती फिरती हैं सहन में घर के॥
ता गले सब खड़े हैं पानी में।
ख़ाक है ऐसी ज़िन्दगानी में॥

अब तो अपना भी हाल बद्तर है ।
सर प गठरी है तिस प छप्पर है ॥
चाक इस डौल से है हर दीवार ।
जैसी छाती हो आशिक़ों की फ़िगार ॥
घर की सूरत ता और रोती है ।
छत भी बेइख़्तियार रोती है ॥
मेंह एक बारगी जो टूट पड़ा ।
कड़ी तख़्ता हरेक छूट पड़ा ॥
ले गया पेचोताब पानी का ।
कोठड़ी थी हुबाब पानी का ॥
गठडी कपड़ा की मैं उठाई थी ।
सर प भाई के चारपाई थी ॥
अपना असबाब घर से हम लेकर ।
अलगनी सबके हाथ में देकर ॥
सफ़ की सफ़ निकली इस ख़राबी से ।
ताकि पहुँचे कहीं शिताबी से ॥
मीर जी इस तरह से आते हैं ।
जैसे कंजर कहीं को जाते हैं ॥

दर्द

दर्द उपनाम; ख़्वाजा मीर नाम; पिता का नाम ख़्वाजा मुहम्मद नासिर "अन्दलीब"; जन्म और मृत्यु-स्थान दिल्ली; जन्म-संवत् १७७२; मृत्यु-संवत् १८४०।

दर्द के पूर्वज बहुत पुराने समय में दिल्ली आये थे। इनका घराना दिल्ली में बहुत मान्य और प्रभावशाली माना जाता था। इन्होंने सुप्रसिद्ध मुफ़्ती दौलत से मौलाना रूम की मसनवी का पाठ लिया था। कविता में ये शाह गुलशन के शिष्य थे। ये मीर तक़ी, मीर सौदा और जानजानाँ मज़हर के समकालीन थे। मीर तक़ी ने इनको आधा कवि माना है। सौदा ने इनके विषय में एक जगह कहा है—

सौदा बदल के क़ाफ़िया तू इस ग़ज़ल का लिख।
ऐ बेअदब ! तू दर्द से बस दूबदू न हो॥

दिल्ली की तबाही के दिनों में बड़े बड़े उमराव नगर छोड़कर भाग रहे थे। उर्दू के कवि तो एक एक करके लखनऊ पहुँच रहे थे। रात दिन मराठों का भय बना रहता था। पर मीर दर्द ने ईश्वर पर भरोसा रखकर घर नहीं छोड़ा और न किसी की नौकरी की। ये जीवन के अंतिम दम तक दिल्ली में ही रहे और वहीं मरे। शहर में इनके हज़ारों मुरीद थे। इनको किसी तरह की तकलीफ़ न उठानी पड़ी। पूर्वजों को बादशाह

से कुछ थोड़ी सी जागीर मिली थी, उसकी आय और मुरी
की नज़र-भेंट से दिन कटा जाता था। गानविद्या का अच्
अभ्यास था। इससे प्रसिद्ध प्रसिद्ध गवैये, कलावंत अपनी ची
सुनाने और सुधरवाने के लिये आया करते थे। इससे भी इन
मनोरंजन हुआ करता था। ये प्रत्येक महीने की दूसरी औ
चौबीसवीं तिथियों में महफ़िल करते थे; जिसमें शहर के बड़े ब
गवैये, कलावंत, डोम आदि एकत्र होते थे और भगवद्भक्ति
सम्बंधी गान होता था। ये दो दिन दर्द के पूर्वजों के मृत्युदि
थे। मुहर्रम के महीने में मरसियों की महफ़िल लगती थी।

ये शिष्टाचार के बड़े ही पाबंद थे। चाहे कोई छोटा हो
बड़ा, ये शिष्टाचार के विरुद्ध उसकी बात सहन नहीं कर स
थे। एकबार शाहआलम बादशाह ने स्वयं इनके यहाँ आ
चाहा, इन्होंने स्वीकार न किया। पर हर महीने इनके य
उत्सव होता ही रहता था। एकबार वे बिना सूचना दिये ही
आये। संयोग से उस दिन बादशाह के पैर में पीड़ा थी
उन्होंने ने ज़रा सा पैर फैला दिया। इस अशिष्टता से दर्द
दिल में इतना दर्द हुआ कि ये कहे बिना न रहे। इन्होंने
ही डाला कि यह सभा के नियमों के विरुद्ध है। बादशाह
निवेदन किया कि क्षमा कीजिये; पैर की पीड़ा से मैंने वि
होकर ऐसा किया है। इन्होंने तत्काल उत्तर दिया—पैर में पी
थी तो आपका आने की क्या ज़रूरत थी।

दर्द की कविता में तत्कालीन अन्य उर्दू कवियों की कविता से पवित्रता अधिक है। ये स्वयं भी बहुत पवित्रता से रहते थे। इनके पिता भी कवि थे और अपना उपनाम अंदलीब रखते थे। उनकी कविताओं के संग्रह का नाम 'नालए अन्दलीब' है। इनके छोटे भाई सैयद मुहम्मद मीर "असर" भी कवि थे। उनका भी दीवान है। "ख़्वाब व ख़याल" नामकी उनकी लिखी हुई मसनवी बहुत अच्छी कही जाती है। दर्द की कविता बहुत भावपूर्ण है। छोटे छोटे पदों में इन्होंने मीर की तरह बड़े बड़े भाव भरे हैं। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। कुछ के नाम ये हैं—

दीवान उर्दू—इसमें ग़ज़लें, तरजीअबंद और रुबाइयाँ हैं। क़सीदे और मसनवी इन्होंने नहीं लिखी।

दीवान फ़ारसी—यह भी संक्षिप्त है।

रिसाला इसरारुस्सलवत—इसे पंद्रह वर्ष की अवस्था में लिखा था।

वारदाते दर्द—उन्नीस वर्ष की अवस्था में लिखा गया।

इल्मुल्किताब—इसमें १११ रिसालों का संग्रह है।

वाक़याते दर्द—यह भी रिसाला है।

दर्द की ग़ज़लों में सात या नौ शेर होते थे। छंद छोटे होते थे। भाषा मीर और सौदा की समझिये।

इन्होंने निन्दात्मक कविता एक भी नहीं लिखी।

सौदा को इनसे हार्दिक प्रेम था। सौदा जब लखनऊ च[illegible] गये, उन दिनों कोई एक सज्जन लखनऊ से दिल्ली जा र[illegible] थे। सौदा से उन्होंने पूछा कि मैं दिल्ली जा रहा हूँ, कि[illegible] मित्र को कुछ संदेशा कहना हो तो कहिये, मैं पहुँचा दूँगा।

सौदा एक आह भर कर बोले—भाई, दिल्ली में मेरा कौ[illegible] है? हाँ, ख़्वाजा मीर दर्द की तरफ़ जा निकलो तो मेरा सला[illegible] कह देना।

दिल्ली इतने बड़े नगर में सौदा को दर्द के सिवा और को[illegible] व्यक्ति याद न आया।

यहाँ दर्द की कुछ कविताएँ लिखी जाती हैं—

जग में आकर इधर उधर देखा।
तू ही आया नज़र जिधर देखा॥
जान से हो गये बदन ख़ाली।
जिस तरफ़ तू ने आँख भर देखा॥
नाला फ़रियाद आह औ ज़ारी।
आपसे हो सका सो कर देखा॥
उन लबों ने न की मसीहाई।
हमने सौ सौ तरह से मर देखा॥
ज़ोर आशिक़ मिज़ाज है कोई।
दर्द को क़िस्सा मुख़्तसर देखा॥

हमने किस रात नाला सर न किया।
पर उसे आह कुछ असर न किया॥
सबके याँ तुम हुये करम फ़रमा।
इस तरफ़ को कभी गुज़र न किया॥
देखने को रहे तरसते हम।
न किया रहम तू ने पर न किया॥
तुझ से ज़ालिम के पास में आया।
जान का मैंने कुछ ख़तर न किया॥
क्यों भवें तानते हो बन्दा नवाज़।
सीना किस वक्त में सिपर न किया॥
कितने बन्दों को जान से खाया।
कुछ ख़ुदा का भी तू ने डर न किया॥
आप से हम गुज़र गये कब के।
क्या है ज़ाहिर में गो सफ़र न किया॥
कौन सा दिल है जिसमें ख़ाना ख़राब।
ख़ाना आबाद तू ने घर न किया॥
सबके जौहर नज़र में आये 'दर्द'।
बे हुनर तू ने कुछ हुनर न किया॥

मक़दूर किसे है तेरे वस्फ़ों के रक़म का।
हक़्क़ा कि ख़ुदावन्द है तू लौह क़लम का॥

वसते हैं तेरे कूचे में सब शेख़ो बरहमन।
आवाद है तुझ से ही तो घर दैरो हरम का॥
है ख़ौफ़ अगर जी में तो है तेरे ग़ज़ब का।
और दिल में भरोसा है तो है तेरे करम का॥

* * *

ऐ आँसुओ! न आवे कुछ दिल की बात लब पर।
लड़के हो तुम कहीं मत अफ़शाय राज़ करना॥
हम जानते नहीं हैं ऐ 'दर्द' क्या है कावा।
जीधर मिले व अब्रू ऊधर नमाज़ करना॥

* * *

क़त्ले आशिक़ किसी माशूक़ से कुछ दूर न था।
पर तेरे अहद के आगे तो यह दस्तूर न था॥
रात मजलिस में तेरे हुस्न के शोले के हुज़ूर।
शमा के मुँह प जो देखा तो कहीं नूर न था॥
ज़िक्र मेरा ही वह करता था सरीहन लेकिन।
मैंने पूछा तो कहा, ख़ैर यह मज़कूर न था॥
वावजूदे कि परो बाल न थे आदम के।
वहाँ पहुँचा कि फ़रिश्ते का भी मक़दूर न था॥
परवरिश ग़म की तेरे ह्याँ तईं तो की, देखा?
कोई भी दाग़ था सीना में कि नासूर न था॥

मुहतसिब आज तो मैख़ाना में तेरे हाथों।
दिल न था कोई कि शीशा की तरह चूर न था॥
दर्द के मिलने से ऐ यार! बुरा क्यों माने।
उसको कुछ और सिवा दीद के मंज़ूर न था॥

जग में कोई न टुक हँसा होगा।
कि न हँसने में रो दिया होगा॥
उसने क़स्दन् भी मेरे नाला को।
न सुना होगा गर सुना होगा॥
देखिये ग़म से अव के जी मेरा।
न बचेगा, बचेगा क्या होगा॥
दिल ज़माना के हाथ से सालिम।
कोई होगा कि रह गया होगा॥
हाल मुझ ग़मज़दे का जिस तिस ने।
जब सुना होगा रो दिया होगा॥
दिल के फिर ज़ख़्म ताज़ा होते हैं।
कहीं ग़ुंचा कोई खिला होगा॥
यकवयक नाम ले उठा मेरा।
जी में क्या इसके आ गया होगा॥
मेरे नालों प कोई दुनिया में।
बिन किये आह कम रहा होगा॥

लेकिन उसको असर ख़ुदा जाने।
न हुआ होगा या हुआ होगा॥
क़त्ल से मेरे वह जो बाज़ रहा।
किसी बदख़्वाह ने कहा होगा॥
दिल भी ऐ दर्द क़तरए ख़ूँ था।
आँसुओं में कहीं गिरा होगा॥

* * *

है ग़लत गर गुमान में कुछ है।
तुझ सिवा भी जहान में कुछ है॥
दिल भी तेरे ही ढंग सीखा है।
आन में कुछ है आन में कुछ है॥
ले ख़बर तेग़े यार कहतो है।
बाक़ी इस नीम जान में कुछ है॥
इन दिनों कुछ अजब है मेरा हाल।
देखता कुछ हूँ ध्यान में कुछ है॥
'दर्द' तू जो करे है जी का ज़ियाँ।
फ़ायदा इस ज़ियान में कुछ है॥

* * *

तुहमते चन्द अपने ज़िम्मे धर चले।
जिस लिये आये थे सो हम कर चले॥

ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है।
हम तो इस जीने के हाथों मर चले॥
क्या हमें काम इन गुलों से ऐ सबा!
एक दम आये इधर ऊधर चले॥
दोस्तो! देखा तमाशा याँ का बस।
तुम रहो अब हम तो अपने घर चले॥
आह बस, मत जी जला, तब जानिये।
जब तेरा अफ़सूँ कोई इस पर चले॥
शमा की मानिन्द हम उस बज़्म में।
चश्मतर आये थे दामनतर चले॥
ढूँढ़ते हैं आपसे उसको परे।
शेख़ साहब छोड़ घर बाहर चले॥
हम न जाने पाये बाहर आपसे।
वह ही आड़े आ गया जीधर चले॥
हम जहाँ में आये थे तनहा वले।
साथ अपने अब उसे लेकर चले॥
जूँ शरर है हस्तिए बे बूदियाँ।
बारे हम भी अपनी बारी मर चले॥
साक़िया याँ लग रहा है चल चलाव।
जब तलक बस चल सके साग़र चले॥

'दर्द' कुछ मालूम है यह लोग सब।
किस तरफ़ से आये थे कीधर चले॥

मदरसा या दैर था या काबा या बुतख़ाना था।
हम सभी मेहमान थे तू आप ही साहब ख़ाना था॥
वाय नादानी कि वाद अज़ मर्ग यह साबित हुआ।
ख़्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफ़साना था॥

तुझी को जो याँ जलवा फरमा न देखा।
बराबर है दुनिया को देखा न देखा॥
अज़ीयत, मुसीबत, मलामत, बलायें।
तेरे इश्क़ में हमने क्या क्या न देखा॥
हिजाबे रुख़े यार भी आप हम हैं।
खुली आँख जब कोई परदा न देखा॥
यगाना है तू आह बेगानगी में।
कोई दूसरा और ऐसा न देखा॥

सीना वो दिल हसरतों से छा गया।
बस हुजूमे यास! जी घबरा गया॥
तुझ से हमने कुछ न देखा जुज़ जफ़ा।
पर व क्या कुछ है कि जी को भा गया॥

पी गई कितनों का लोहू तेरी याद ।
ग़म तेरा कितने कलेजे खा गया ॥
खुल नहीं सकती हैं अब आँखें मेरी ।
जी में यह किसका तसव्वुर आ गया ॥
मैं तो कुछ ज़ाहिर न की थी दिल की बात ।
पर मेरी नज़रों के ढब से पा गया ॥

मिस्ले नर्गीं जो हम से हुआ काम रह गया ।
हम रूसियाह जाते रहे नाम रह गया ॥
या रब य दिल है या कोई मेंहमाँ सराय है ।
ग़म रह गया कभू कभू आराम रह गया ॥
मुद्दत से वह तपाक तो मौक़ूफ़ हो गये ।
अब गाह गाह बोसा व पैग़ाम रह गया ॥
साक़ी मेरी तरफ़ भी टुक उनकी निगाह कर ।
लब तिश्ना तेरी बज़्म में यह जाम रह गया ॥

मेरा जा है जब तक तेरी जुस्तजू है ।
ज़बाँ तब तलक है यही गुफ़्तगू है ॥
.खुदा जाने क्या होगा अंजाम इसका ।
मैं बेसब्र इतना हूँ वह तुन्दख़ू है ॥

तमन्ना है तेरी अगर है तमन्ना।
तेरी आरज़ू है अगर आरज़ू है॥
किसू को किसू तरह इज़्ज़त है जग में।
मुझे अपने रोने से ही आबरू है॥
नज़र मेरे दिल की पड़ी 'दर्द' किस पर।
जिधर देखता हूँ वही रूबरू है॥

* * *

गिलीमे बख़्ते सियह सायादार रखते हैं।
यही बिसात में हम ख़ाकसार रखते हैं॥
य किस ने हमसे किया वादए हम आग़ोशी।
कि मिस्ले बहर सरासर किनार रखते हैं॥
हमेशा फ़तह नसीबी हमें नसीब रही।
जो कुछ कि उपजी है जी में सो मार रखते हैं॥
बला है नश्शए दुनिया कि ता क़यामत आह!
सब अहले क़ब्र उसी का ख़ुमार रखते हैं॥
जहाँ के बाग़ से हम दिल सिवा न फल पाया।
फ़क़त यही समरे दाग़दार रखते हैं॥
हर यक शोला ग़मे इश्क़ हमसे रोशन है।
कि बेक़रारी को हम बरक़रार रखते हैं॥
जिन्हों के दिल में जगह की है नक़्शे इबरत ने।
सदा नज़र में व लौहे मज़ार रखते हैं॥

हरेक संग में है शोखिए बुताँ पिनहाँ।
ख़ुनक यह सब है प दिल में शरार रखते हैं॥
व ज़िन्दगी की तरह एक दम नहीं रहता।
अगरचे 'दर्द' उसे हम हज़ार रखते हैं॥

❧ ❧ ❧

शेख़ काबा होके पहुँचा हम कुनिश्ते दिल में हो।
'दर्द' मंज़िल एक थी टुक राह का ही फेर था॥

❧ ❧ ❧

तू हो न अगर मिला करेगा।
आशिक़ फिर जी के क्या करेगा॥

❧ ❧ ❧

किसी से क्या बयाँ कीजे बस अपने हाल अवतर का।
दिल उसके हाथ दे बैठे जिसे जाना न पहचाना॥

❧ ❧ ❧

बे तरह कुछ उलझ गया था दिल।
बे वफ़ाई ने तेरी सुलझाया॥
हमतो कहते थे मुँह न चढ़ उसके।
'दर्द' कुछ इश्क़ में मज़ा पाया॥

❧ ❧ ❧

गुज़रूँ हूँ जिस ख़राबे प कहते हैं ह्याँ के लोग।
है कोई दिन की बात य घर था य बाग़ था॥

❧ ❧ ❧

जान पै खेला हूँ मैं मेरा जिगर देखना।
जी रहे या ना रहे मुझको उधर देखना॥
गरचे वह ख़ुरशेदरू नित है मेरे सामने।
तौ भी मुयस्सर नहीं भर के नज़र देखना॥
सो भी न तू कोई दम देख सका ऐ फ़लक !
और तो याँ कुछ न था एक मगर देखना॥
ज़िक्रे वफ़ा कीजिये उससे जो वाक़िफ़ न हो।
कहते य किससे हो तुम टुक तो इधर देखना॥
नालए दिल का असर देख लिया 'दर्द' बस।
जी में न रह जाय यह आह भी कर देखना॥

❦ ❦ ❦

बुतख़ाना बरहमन का मुक़र्रर देखा।
काबा को भी शेख़ के मैं अकसर देखा॥
दिल लगने की सूरत न कहीं देखी हाय !
जो कुछ देखा सो ख़ाक पत्थर देखा॥

❦ ❦ ❦

सैरे बाग़ो बोस्ताँ तू है मुयस्सर हर घड़ी।
आइये गाहे फ़क़ीरों के भी वीराने के बीच॥
जो मज़े हैं मर्ग में सो हमसे पूछा चाहिये।
कोई जाने आह! क्या लज़्ज़त है मर जाने के बीच॥

❦ ❦ ❦

हँस क़ब्र प मेरी खिल खिला कर।
यह फूल चढ़ा कभी तो आकर॥

दिल के तईं गिरह से कभी खोलती नहीं।
है ज़ुल्फ़ को भी अपने परेशाँ की इहतियात॥
दाग़ों की अपने क्यों न करे 'दर्द' परवरिश।
हर बाग़बाँ करे है गुलिस्ताँ की इहतियात॥

सैयाद! अब रिहाई से क्या मुझ असीर को।
है किसको ज़िन्दगी की तवक़्क़ा बहार तक॥

हमें तो बाग़ तुझ बिन ख़ानए मातम नज़र आया।
इधर गुल फाड़ते थे जेब रोती थी उधर शबनम॥

अपने मिलने से मना मत कर।
इसमें बे इख़्तियार हैं हम॥

उसने किया था याद मुझे भूल कर कहीं।
पाता नहीं हूँ तबसे मैं अपनी ख़बर कहीं।

मौत! क्या आ के फ़क़ीरों से तुझे लेना है।
मरने से आगे ही यह लोग तो मर जाते हैं॥

दर्दे दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को।
वर्ना ताअत के लिये कुछ कम न थे कुर्रो वयाँ॥

❦ ❦ ❦

हम तुझसे किस हवस की फ़लक जुस्तजू करें।
दिल ही नहीं रहा है जो कुछ आरज़ू करें॥
तर दामनी प शेख़ ! हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते वज़ू करें॥
सर ता क़दम ज़बान हैं जूँ शमा गो कि हम।
पर यह कहाँ मजाल जो कुछ गुफ़्तगू करें॥

❦ ❦ ❦

मुद्दत तलक जहान में हँसते फिरा किये।
जी में है .खूब रोइये अब बैठकर कहीं॥

❦ ❦ ❦

दाद को तो पहुँचना मालूम है।
कोई याँ फ़रियाद सुनता ही नहीं॥

❦ ❦ ❦

हर दम बुतों की सूरत रखता है दिल नज़र में।
होती है बुतपरस्ती अब तो .खुदा के घर में॥

❦ ❦ ❦

कहीं हुये हैं सवालो जवाब आँखों में।
यह बे सबब नहीं हमसे हिजाब आँखों में॥

❦ ❦ ❦

नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफ़ाई का तेरी हरगिज़।
गिला तब हो अगर तूने किसीसे भी निबाहो हो॥

अपने बंदा प जो कुछ चाहो सो बेदाद करो।
यह न आ जाय कहीं जी में कि आज़ाद करो॥

ऐ दर्द! बहुत तूने सताया हमको।
बे दर्द! बहुत तूने सताया हमको॥
जाती है मेरी जान तू राज़ी रहना॥
ले 'दर्द' बहुत तूने सताया हमको॥

'दर्द' अपने हालसे तुझे आगाह क्या करे।
जो साँस भी न ले सके वह आह क्या करे॥

हुआ जो कुछ कि होना था कहें क्या जी को रो बैठे।
बस अब इक साथ हम दोनों जहाँ से हाथ धो बैठे॥

अज़ों समा कहाँ तेरी वसअत को पा सके।
अपना हो दिल है यह कि जहाँ तू समा सके॥
गाफ़िल ख़ुदा की याद प मत भूल ज़ीनहार।
अपने तईं भुला दे अगर तू भुला सके॥

क़ासिद नहीं यह काम तेरा अपनी राह ले।
उसका पयाम दिल के सिवा कौन ला सके॥
मैं वह .फुताद: हूँ कि बग़ैर अज़ फ़ना मुझे।
नक़्शे क़दम की तरह न कोई उठा सके॥

दुश्वार होती ज़ालिम तुझको भी नींद आनी।
लेकिन सुनी न तू ने टुक भी मेरी कहानी॥

गरचे बेज़ार तो है पर उसे कुछ प्यार भी है।
साथ इन्कार के परदे में कुछ इक़रार भी है॥
दिल भला ऐसे को ऐ 'दर्द'! न क्यों कर दीजे।
एक तो यार है और तिस प तरहदार भी है॥

य क्या 'दर्द' तुझ पर मुसीबत पड़ी है।
कि दिन रात नाला है औ आह है॥

रौंदे है नक़्श पा की तरह ख़ल्क़ याँ मुझे।
ऐ उम्र! रफ़्ता छोड़ गई तू कहाँ मुझे॥

सलतनत पर नहीं है कुछ मौ.क़ूफ़।
जिसके हाथ आये जाम सो जम है॥

दर्द का हाल कुछ न पूछो तुम।
वही रोना है नित वही ग़म है॥

❦ ❦ ❦

बाहर न आ सकी तू क़ैदे .ख़ुदी से अपनी।
ऐ अक़्ल बेहक़ीक़त! देखा शऊर तेरा॥
झुकता नहीं हमारा दिल तो किसी तरफ़ हाँ।
जी में समा रहा है अज़ बस .ग़ुरूर तेरा॥

❦ ❦ ❦

इस हस्तिए ख़राब से क्या काम था हमें।
ऐ नश्शए ज़हूर! य तेरी तरङ्ग है॥

❦ ❦ ❦

जो मिलता है मिल फिर कहाँ ज़िन्दगानी।
कहाँ मैं कहाँ तू कहाँ नौजवानी॥
अजब ख़्वाब दर पेश है फिर तो सबको।
सुना लो टुक अब अपनी अपनी कहानी॥

❦ ❦ ❦

अगर वह बुत किसी सूरत से मेरा राम हो जाये।
तो पूजूँ इस यक़ीदे से कि कुफ़्र इसलाम हो जाये॥
हरेक दम साँस होकर फाँस मुझ दिल में खटकती है।
अगर जा की ख़लिश निकले तो क्या आराम हो जाये॥

तेरी तिरछी निगाहों ने रखा है नीम बिसमिल कर।
अगर फिर कर नज़र देखे तो मेरा काम हो जाये॥

* * *

तहम्मुल आतिशे ग़म में दिले बेताब क्या जाने।
ठहरना एक दम भी आग पर सीमाब क्या जाने॥
किनारे से किनारा कब मिला है बहर का यारो!
पलक लगने की लज़्ज़त दीदए पुर आब क्या जाने॥

* * *

ख़्वाबे अदम से चौंके थे हम तेरे वास्ते।
आख़िर को जाग जाग के नाचार सो गये॥

* * *

अगर यों ही यह दिल सताता रहेगा।
तो यक दिन मेरा जी ही जाता रहेगा॥
मैं जाता हूँ दिल को तेरे पास छोड़े।
मेरी याद तुझको दिलाता रहेगा॥
भला कोई तुममें से ऐ हम सफ़ीरो!
ख़बर गुल की हमको सुनाता रहेगा॥
गली से तेरे दिल को ले तो चला हूँ।
मैं पहुँचूँगा जब तक य आता रहेगा॥
ख़फ़ा हो के ऐ 'दर्द' मर तो चला तू।
कहाँ तक ग़म अपना छिपाता रहेगा॥

* * *

कहाँ का साक़ी औ मीना किधर का जामो मैख़ाना।
मिसाले ज़िन्दगी भरते हैं अपना आप पैमाना॥
क़िसी से क्या वयाँ कीजै इस अपने हाल अवतर का।
दिल उसके हाथ दे बैठ जिसे जाना न पहचाना॥

* * *

ईधर भी अहले वज़्म तवज्जुह ज़रूर है।
कुछ कुछ कहे है शमा भी अपनी ज़वान में॥

* * *

न मिलिये यार से तो दिल को कब आराम होता है।
व गर मिलिये तो मुश्किल है कि वह वदनाम होता है॥
वह हुस्नो इश्क़ मिल समझेंगे आपस में जो कुछ होगा।
पर इन दोनों के उलझेड़े में मेरा काम होता है॥

* * *

क्या फ़र्क़ दाग़ो गुल में अगर गुल में बू न हो।
किस काम का वह दिल है कि जिस दिल में तू न हो॥

* * *

यही पैग़ाम 'दर्द' का कहना।
गर कोई कूये यार में गुज़रे॥
कौन सी रात आन मिलियेगा।
दिन वहुत इन्तज़ार में गुज़रे॥

* * *

ऐ 'दर्द' ! बहुत किया परेखा हमने ।
देखा तो अजब यहाँ का लेखा हमने ॥
बीनाई न थी तो देखते थे सब कुछ ।
जब आँख खुली तो कुछ न देखा हमने ॥

* * *

पीरी चली और गई जवानी अपनी ।
ऐ 'दर्द' ! कहाँ है ज़िन्दगानी अपनी ॥
कल और कोई बयाँ करेगा उसको ।
कहते हैं हम आप कहानी अपनी ॥

——:o:——

सोज़

सोज़ उपनाम; सैयद मुहम्मद मीर नाम; बाप का नाम सैयद ज़ियाउद्दीन; जन्मस्थान दिल्ली; मृत्युस्थान लखनऊ; जन्म-संवत् १७८४; मृत्यु-संवत् १८५४ ।

सोज़ पुरानी दिल्ली में करावलपुरा महल्ले में रहते थे। इनके पूर्वज बुख़ारा से आये थे। इनके पिता तीर चलाने की कला में बड़े प्रवीण थे। सोज़ भी इस कला में प्रसिद्ध हुए। शारीरिक शक्ति इतनी अधिक थी कि इनका धनुष दूसरा चढ़ा नहीं सकता था। कसरत भी ख़ूब करते थे। सवारी और

सिपाहगरी में भी निपुण थे। सुन्दर अक्षर 'नम्तालीक़' लिखने में भी ये बहुत प्रसिद्ध थे। शाहआलम का समय था। दिल्ली उजड़ रही थी। जीविका की खोज में लोग भाग रहे थे। सोज़ भी फ़क़ीरी भेस में चल निकले। सं० १७७६ में लखनऊ पहुँचे। वहाँ कुछ क़द्र न हुई तो वहाँ से मुरशिदाबाद चले गये। वहाँ भी सौभाग्य उदय न हुआ तो फिर लखनऊ आये। अब की बार भाग्य ने पलटा खाया। सोज़ नवाब आस-.फ़ुद्दौला के गुरु हुये, और आराम से रहने लगे। पर थोड़े ही दिनों बाद नवाब भी चल बसे।

पहले ये अपना उपनाम मीर रखते थे। पर जब मीर तक़ी ने भी वही उपनाम रक्खा, तब इन्होंने बदल कर सोज़ कर लिया। एक शेर में ये दोनों उपनामों की ओर संकेत करते हैं—

कहते थे पहले 'मीर' 'मीर' तब न मुये हज़ार हैफ़।
अब जो कहे हैं सोज़ सोज़ यानी सदा जला करो॥

एक दिन इनके एक परिचित ने आकर कहा कि अमुक व्यक्ति आपके उपनाम की दिल्लगी उड़ा रहे थे कि 'यह सोज़ गोज़ क्या उपनाम रक्खा है, हमें पसन्द नहीं'। सोज़ ने कहा—कुछ परवा नहीं; अब की बार मशायरे में तुम यही प्रश्न मुझसे करना। उसने ऐसाही किया। और उच्च-स्वर से पूछा—हज़रत, आपका उपनाम क्या है? सोज़ ने कहा—इस फ़क़ीर ने उपनाम तो मीर रक्खा था। पर इसे मीर तक़ी साहब

ने पसन्द कर लिया। फ़क़ीर ने सोचा कि इनके आगे उसका नाम न चलेगा। विवश होकर सोज़ उपनाम रक्खा। (हँसी उड़ानेवाले व्यक्ति की ओर संकेत करके) पर सुनता हूँ, 'ये साहब गोज़ करते हैं।'

मशायरे में अजीब क़हक़हा उड़ा। दूर बैठने वाले न सुन सके थे। उन्होंने कई बार यही कहलवाया और सुनकर सब चहचहा उठे। मीर तक़ी और सोज़ गोज़ कहनेवाले सज्जन को सुना किये।

शेर पढ़ने का सोज़ का अजब ढङ्ग था। पढ़ते वक्त ये शेर में वर्णित भावों को प्रत्यक्ष दिखाने का भी प्रयत्न करते थे। स्वर बड़ा ही करुणाजनक था। शेर बड़ी ही कोमलता से पढ़ते थे। जब कभी शमा का मज़मून बाँधते थे, तब शेर पढ़ते समय एक हाथ में शमा उठा लेते थे और दूसरे हाथ से आड़ करके फ़ानूस का भाव दिखलाते थे। यदि क्रोध का कोई विषय होता था तो स्वयं त्योरी चढ़ा लेते थे और क्रोध की मूर्ति दिखलाई पड़ते थे। एक समय ये नीचे लिखा शेर पढ़ रहे थे—

गये घर से जो हम अपने संवेरे।
सलामुल्लाह खाँ साहब के डेरे॥
वहाँ देखे कई तिफ़्ले परीरू।
अरेरेरे ! अरेरेरे !! अरेरे !!!

चौथा मिसरा पढ़ते पढ़ते ज़मीन पर ऐसे गिर पड़े, मानो परीज़ादों को देखते ही चेतनता चली गई। और 'अरेरे, अरेरे' कहते कहते बेहोश हो गये।

एक बार इससे भी अधिक आकर्षक घटना हो गई थी। यह शेर पढ़ रहे थे—

ओ यारे सियाह ज़ुल्फ़ सच कह।
बतला दे दिल जहाँ छुपा हो॥
कुण्डली तले देखियो न होवे।
काटा न हर्फ़ी तेरा बुरा हो॥

पहले मिसरे पर डरते डरते बचकर झुके, मानों कुण्डली तले देखने को झुके हैं। और जिस समय कहा कि "काटा न हर्फ़ी" बस तत्काल ही हाथ से छाती मसोस कर ऐसे अचेत लेट गये कि मशायरे के लोग उठ खड़े हुये और कुछ लोग सँभालने के लिये आगे बढ़ आये।

सोज़ की कविता में महावरों की सफ़ाई ख़ूब है। ये प्रायः ग़ज़ल ही कहा करते थे और छोटे छोटे छन्द ही पसन्द करते थे। बातें बड़ी मीठी और साफ़ कहते थे। माशूक़ के स्थान पर ये जान या मियाँ जान का प्रयोग किया करते थे। आबे-हयात के लेखक इन्हें उर्दू ग़ज़लों का शेख सादी कहते हैं।

इनके बेटे भी कवि थे। उनका उपनाम दाग़ था। सुन्दर

थे और सौन्दर्योपासक थे। जवानी में ही वे इश्क़ के पीछे
चल बसे।

सोज़ के शागिर्दों में नवाज़िश एक ऐसे शागिर्द थे, जो इनके
स्वर के अन्दाज़ में ग़ज़ल पढ़ा करते थे। प्रसिद्ध पुस्तक
फ़िसाना अजायब के लेखक मिर्ज़ा रजब अली, 'सुरूर' सोज़ के
शिष्य थे।

सोज़ का दीवान ३०० पृष्ठों का है। २८८ पृष्ठों में ग़ज़लें
१२ पृष्ठों में मसनवियाँ, रुबाइयाँ, मुख़म्मस आदि हैं।

यहाँ इनकी कुछ कविताएँ दी जाती हैं—

भल्ला रे इश्क़ तेरी शौक़तो शाँ।
भाई, मेरे तो उड़ गये औसाँ॥
एक डर था कि जी बचे न बचे।
दूसरे ग़म ने खाई मेरी जाँ॥
बस ग़मे यार एक दिन दो दिन।
इससे ज़्यादा न हूजिये मेहमाँ॥
न कि बैठे हो पाँव फैलाकर।
अपने घर जाव खाना आबादाँ॥
आरज़ी हुस्न पर न हो मग़रूर।
मेरे प्यारे य गौ है यह मैदाँ॥
फिर है नै ज़ुल्फ़ो ख़ाल ज़ेरे ज़ुल्फ़।
चार दिन तू भी खेल ले चौगाँ॥

और तो और कहके दो बातें।
'सोज़' कहलाया साहबे दीवाँ॥

अहले ईमाँ सोज़ को कहते हैं काफ़िर हो गया।
आह या रब राज़े दिल उनपर भी ज़ाहिर हो गया॥
दर्द से महरूम हूँ दरमाँ से मुझको काम क्या।
यारे ख़ातिर था सो मेरा बारे शातिर हो गया॥
मैंने जाना था सहीफ़ा इश्क़ का है मेरे नाम।
वाह यह दीवान भी नक़ले दफ़ातिर हो गया॥
क्या मसीहाई है तेरे लाल लब में ऐ सनम!
बात के कहते ही देखो 'सोज़' शाइर हो गया॥

मेरा जान जाता है यारो बचालो।
कलेजा में काँटा गड़ा है निकालो॥
न भाई मुझे जिंदगानी न भाई।
मुझे मार डालो मुझे मार डालो॥
ख़ुदा के लिये मेरे ऐ हमनशीनो!
व बाँका जो जाता है उसको बुलालो।
अगर वह ख़फ़ा हो के कुछ गालियाँ दे।
तो दम खा रहो कुछ न बोलो न चालो॥
न आवे अगर वह तुम्हारे कहे से।
तो मिन्नत करो घेरे घेरे मना लो॥

कहो एक बंदा तुम्हारा मरे है।
उसे जान कुन्दन से चलकर बचालो॥
जलों की बुरी आह होती है प्यारे।
तुम उस 'सोज़' की अपने हक़ में दुआ लो॥

❦ ❦ ❦

देख दिल का छेड़ मत ज़ालिम कहीं दुख जायगा।
हाँ, बग़ैर अज़ क़तरए खूँ और तू क्या पायगा॥
क़त्ल की नीयत तू कर आया है तो क्या देर है।
पर मुझे तू मार कर ज़ालिम बहुत पछतायगा॥
फिर भी कहता हूँ तुझे आ 'सोज़' को यों मत सता।
मत सता ज़ालिम कहीं तू भी सताया जायगा॥

❦ ❦ ❦

मुँदी गर चश्म ज़ाहिर दीदए बेदार हो पैदा।
दरो दीवार से शक्ले जमाले यार हो पैदा॥
तड़पती क्यों है ऐ बुलबुल कमाल इतना तो पैदाकर।
कि तेरा अश्क जिस जागह पड़े गुलज़ार हो पैदा॥
यहाँ तक कुफ़्र पूरा चाहिये गर ख़ाक गुलशन हो।
बजाए हर रगे गुल रिश्तए ज़ुन्नार हो पैदा॥
क़तीले ख़ंजरे मिज़गाँ हूँ क्या यह भी तअज्जुब है॥
कि मेरी ख़ाक से सब्ज़े की जागह ख़ार हो पैदा॥

मसीहाई है तेरी तेग़ में क्या 'सोज़' को डर है।
जो लाखों बार होवे क़त्ल लाखों बार हो पैदा॥

❧ ❧ ❧

हुआ दिल को मैं कहता कहता दिवाना।
पर इस बेख़बर ने कहा कुछ न माना॥
कोई दम तो बैठ रहो पास मेरे।
मियाँ मैं भी चलता हूँ टुक रह के जाना॥
मुझे तो तुम्हारी ख़ुशी चाहिये है।
तुम्हें गो हो मंज़ूर मेरा कुढ़ाना॥
गया एक दिन उसके कूचे में नागाह।
लगा कहने चल भाग रे फिर न आना॥
कहाँ ढूँढूँ है है किधर जाऊँ या रब!
कहीं जाँ का पाता नहीं मैं ठिकाना॥

❧ ❧ ❧

दिलके हाथों बहुत ख़राब हुआ।
जल गया बल गया कबाब हुआ॥
अश्क आँखों से पल नहीं थमता।
क्या बला दिल है दिल में आब हुआ।
जिनको नित देखते थे अब उनका।
देखना भी ख़यालो ख़्वाब हुआ॥

यार अग़यार हो गया है हाय !
क्या ज़माने का इन्क़िलाब हुआ॥
सारा दीवाने ज़िन्दगी देखा।
एक मिसरा न इन्तख़ाब हुआ॥
'सोज़' बेहोश हो गया जब से।
तेरी सुहबत से बार याब हुआ॥

* * *

जी नाक में आया बुते गुलफ़ाम न आया।
जीना तो इलाही मेरे कुछ काम न आया॥
दुनिया में यही दोस्ती होती है मेरी जाँ!
जब तक न लिया दिल तुझे आराम न आया॥
आलम की तमन्ना में तेरी जाँ बलब आया।
रहमत है ख़ुदा की तू लबे बाम न आया॥
क़ासिद से तो पूछा था कि क़ासिद है तू किसका।
दहशत से उसे याद मेरा नाम न आया॥
था नज़अ की हालत में यही 'सोज़' के लब पर।
जी नाक में आया बुते गुलफ़ाम न आया॥

* * *

खड़े रहने वालो मगर 'सोज़' है यह।
भला इसके दिल का तो अरमान निकला॥

मेरा कुश्ता ऐसा तो है जिसकी ख़ातिर।
य खुरशेद फाड़े गरेबान निकला॥

आशिक़ हुआ असीर हुआ मुबतिला हुआ।
क्या जानिये कि देखते ही दिल को क्या हुआ॥
सर मश्क़े ज़ुल्म तू ने किया मुझको वाहवा!
तकसीर यह हुई कि तेरा आशना हुआ॥
दिल था विसात में सो कोई इसको ले गया।
अब क्या- करूँगा ऐ मेरे अल्लाह क्या हुआ॥
पाता नहीं सुराग़ करूँ किस तरफ़ तलाश।
दीवाना दिल किधर को गया आह क्या हुआ॥
सुनते ही 'सोज़' की ख़बरे मर्ग ख़ुश हुआ।
कहने लगा कि पिंड तो छूटा भला हुआ॥

अब्र के क़तरे से हो जाते हैं मोती नासहा।
क्या हमें रोने से अपने कुछ न हासिल होयगा॥

अपने रोने से गर असर होता।
क़तरए अश्क भी गुहर होता॥
जिनके नामे पहुँचते हैं तुझ तक।
काश मैं उनका नामावर होता॥

फिर न करता सितम किसी प अगर।
हाल मेरे से बाख़बर होता॥
ख़ूने उश्शाक़ करते क्यों नाहक़।
गर बुतों को ख़ुदा का डर होता॥
'सोज़' को शौक़ काबा जाने का।
है बहुत पर ज़ियादातर होता॥

* * *

अगर मैं जानता है इश्क़ में धड़का जुदाई का।
तो महशर तक न लेता नाम हरगिज़ आशनाई का॥
न पहुँचे आहो नाला गोश तक उसके कभू अपना।
वयाँ हम क्या करें ताला की अपने ना रसाई का॥
ख़ुदाया किसके हम वंदे कहावें सख़्त मुश्किल है।
रखे है हर सनम इस दहर में दावा ख़ुदाई का॥
ख़ुदा का वंदगी का 'सोज़' है दावा तो ख़िलक़त को।
घले देखा जिसे बन्दा है अपनी ख़ुदनुमाई का॥

* * *

आज इस राह दिलरुबा गुज़रा।
जी प क्या जानिये कि क्या गुज़रा॥
आह ज़ालिम ने कुछ न मानी बात।
मैं तो अपना सा जी चला गुज़रा॥

अब तो आ यार बस ख़ुदा को मान।
पिछला शिकवा था सो गया गुज़रा॥
रात को नींद है न दिन को चैन।
ऐसे जीने से ऐ ख़ुदा गुज़रा॥
'सोज़' के क़त्ल पर कमर मत बाँध।
ऐसा जाना है क्या गया गुज़रा॥

* * *

यार गर साहबे वफ़ा होता।
क्यों मियाँ जान! क्या मज़ा होता॥
ज़ब्त से मेरे थम रहा है सरश्क।
वरना अब तक तो बह गया होता॥
जान के क्या करूँ बयाँ एहसान।
यह न होता तो मर गया होता॥
रूठना तब तुझे मुनासिब था।
जो तुझे मैंने कुछ कहा होता।
हाँ मियाँ! जानता तू मेरी क़द्र।
जो कहीं तेरा दिल लगा होता॥

* * *

बुलबुल कहीं न जाइयो ज़िनहार देखना।
अपने ही बन में फूलेगी गुलज़ार देखना॥

ना.ज़ुक है दिल न ठेस लगाना उसे कहीं।
ग़मसे भरा है ऐ मेरे ग़मख़्वार देखना॥
शिकवा अबस है यार के जौरों का हर घड़ी।
ग़ैरों के साथ शौक़ से दीदार देखना॥
सौदा की बात भूल गई 'सोज़' तुझको हैफ़!
जो कुछ ख़ुदा दिखावे सो लाचार देखना॥

* * *

यार आता है तेरे यार की ऐसी तैसी।
आज़माता है तेरे प्यार की ऐसी तैसी॥

* * *

क़ाज़ी हज़ार तरह के क़िस्सों में आ सका।
लेकिन न हुस्नो इश्क़ का झगड़ा चुका सका॥
क़ासिद हो तिफ़्ल अश्क गये बारहा वले।
दिल की ख़बर न कोई तेरी कू से ला सका॥
क्या फ़ायदा है रोने से ऐ चश्मेज़ार बस।
कब अश्क दिल की आग लगी को बुझा सका॥
रुस्तम ने गो पहाड़ उठाया तो क्या हुआ।
उसको सराहिये जो तेरा नाज़ उठा सका॥
ऐ 'सोज़' अज़्म कूचए क़ातिल न कर अबस।
तू एक भी बता दे कि वाँ जा के आ सका॥

* * *

ख़तरा नहीं है मुझको ऐ इश्क़ अपने जी का।
तू ने ख़िताब बख़्शा जबसे बहादुरी का॥
हर सुबह मुँह चढ़े है उस तुन्द ख़ू के उठकर।
क्या आहिनी कलेजा देखो है आरसी का॥
कहता न था मैं ऐ दिल इस काम से तू बाज़ आ।
देखा मज़ा न तू ने नादान आशिक़ी का॥
आरिज़ को तेरे पहुँचे अब उसकी डहडहाहट।
प्यारे हज़ार हों तो है गुलका रंग फ़ीका॥
रुस्तम तो आज तू है मैदान के सुख़न का।
ऐ 'सोज़'! किसको दावा है तुझसे हमसरी का॥

* * *

तुझ प क़ुरबान मेरी जान दिलो दीं मेरा।
एक बारी तो सुन अफ़सानए रंगीं मेरा॥
बूए गुल शाख़ हवा में से भी लेता है पहन।
किस क़दर शोख़ है अल्लाह य गुलचीं मेरा॥

* * *

ज़ुल्फ़ों का अगर मुझको सरोकार न होता।
याँ तक तो परेशाँ य दिले ज़ार न होता॥
गर आँख अटकती न किसी शोख़ से जाकर।
तो दिल भी कहीं शोख़ गिरफ़्तार न होता॥

* * *

बुलबुल ने जिसका जलवा आकर चमन में देखा।
दो आँख मूँद हमने वह मनहीं मन में देखा॥
यों देखने से मेरे क्या फ़ायदा किसी को।
देखा उन्हींने मुझको जिनने सुख़न में देखा॥

* * *

इस सिवा खोज न पाया तेरे दीवाने का।
क़तरए खूँ है मगर ख़ारे बयावाँ में लगा॥

——:o:——

जुरअत

जुरअत उपनाम; शेख़ कलन्दर बख़्श प्रसिद्ध नाम; असल नाम यहिया अमान; पिता का नाम हाफ़िज़ अमान; स्थान दिल्ली; जन्म-संवत् का ठीक ठीक पता नहीं; मृत्यु संवत् १८६६। .ख़ुमख़ानए जावेद में इनका मृत्यु-संवत १८... लिखा है।

इनके पूर्वज राय अमान मुहम्मद शाही शासन में दरबार... थे। उनके नाम से दिल्ली में घंटाघर के पास राय अमान का कूचा अब तक प्रसिद्ध है। नादिरशाह ने जब दिल्ली पर चढ़ाई की थी, तो उसने अपने सिपाहियों का सामना करने के अपराध में राय अमान को भी मृत्युदंड दिया था। राय अमान

गला घोंट कर मार डाले गये। अमान की उपाधि इनके कुल को अकबर के समय में मिली थी।

जुरअत जाफ़र अली हसरत के शिष्य थे। हसरत भी अच्छे कवि थे। जुरअत कविता के अतिरिक्त ज्योतिष और गानविद्या के भी पण्डित थे। सितार बहुत अच्छा बजाना जानते थे।

दुःख की बात है कि ये भरी जवानी में अन्धे हो गये। इन्होंने एक बार अंधे होने का स्वाँग रचा था। होते-होते स्वाँग सच्चा होके रहा। बात यह थी कि ये बड़े सौन्दर्योपासक थे। सुन्दरी स्त्रियों को आँख भर के देखने का इन्हें बहुत शौक़ था। पर, परदे के कारण वह शौक़ पूरा नहीं होता था। ये चुटकुले ख़ूब कहते थे। मसख़रे भी थे और दिन रात हँसना हँसाना ही एक काम था। उस समय के अमीर उमरावों को हँसी मसख़री से अधिक ज़रूरी कोई काम भी न था। चारों—ओर से जुरअत की माँग रहा करती थी। आज एक अमीर के यहाँ हैं; कल दूसरे के; परसों तीसरे के। अमीरों का हँसाते और ख़ुश रखते थे और ऐश-आराम में अपने दिन काटते थे। दिन रात क़हक़हे और चहचहे की ज़िन्दगी थी। एक दिन एक बेगम साहबा ने जुरअत के क़हक़हे चहचहे सुने। वे मुग्ध हो गईं। नवाब साहब से उन्होंने कहा कि हम

भी बातें सुना करेंगी, इन्हें घर में लाकर खाना खिलाओ। बस, फिर क्या था। जुरअत के दिन फिरे। परदे की आड़ में एक ओर बेगम बैठ जाती थीं, दूसरी ओर जुरअत। वे हँसी-मज़ाक़ की बातें सुनकर ख़ूब ख़ुश हुआ करती थीं। होते होते नाममात्र का परदा रह गया। धीरे धीरे वह परदा भी जाता रहा। ये घर में नाना, मामा, चाचा और दादा बने जाने लगे। ख़ूब हेलमेल बढ़ा। कुछ दिनों के बाद इन्होंने यह बहाना किया कि आँखें दृष्टिहीन हो गई हैं। इस बहाने का कारण यह था कि जिससे स्वच्छन्दता से सुन्दरियों का रूप देखकर आँखें सुख पायें। अब तो बेखटके घरों में आने और जाने लगे। परदे की आवश्यकता ही न रही। प्रायः यह देखा गया है कि मालिक मालकिन किसी अतिथि का अधिक सत्कार करें तो नौकर उससे जलने लगते हैं। एक दिन दोपहर को ये सोकर उठे। इन्होंने लौंड़ी से कहा कि बंधे आफ़ताबे में पानी भर ला। लौंड़ी न बोली। इन्होंने फिर पुकारा। उसने कहा कि बीबी जाज़रूर (पाख़ाने) गई हैं। इनके मुँह से निकल गया—पागल हुई है, सामने तो रक्खा है, देती क्यों नहीं ? बीबी दूसरे दालान में थीं। लौंडी दौड़ी हुई बीबी के पास गई और कहने लगी—यह मुवा कहता है कि मैं अंधा हूँ। इसको तो सब सूझता है। यहाँ तो यह भंडा फूटा। पर ईश्वर ने सचमुच इन्हें अंधा ही कर दिया।

पहले ये नवाब मुहब्बत खाँ बरेली की सरकार में नौकर हुए। मीर इंशा अल्ला ख़ाँ और इनकी ख़ूब पटती थी। सं० १८५६ में ये लखनऊ पहुँचे, और मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के नौकर हुए। एक बार वेतन देर से मिला, तब आपने यह शेर कहा—

जुरअत अब बन्द है तनख़्वाह तो कहते हैं य हम।
कि ख़ुदा देवे न जब तक तो सुलेमाँ कब दे॥

नवाब शुज़ाउद्दौला के यहाँ करेला नाम का एक भाँड़ था। वह दिल्ली से उनके साथ आया था। एक दिन महफ़िल में उसने एक नक़ल की। एक हाथ में एक लकड़ी लेकर और दूसरे हाथ से टटोलता हुआ वह फिरने और कहने लगा—हुज़ूर! शायर भी अंधा शेर भी अंधा—

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहाँ है किस तरफ़ को है किधर है॥

जुरअत भी वहाँ उपस्थित थे। अपने ऊपर उसका यह आक्रमण समझकर ये बहुत झुँझलाये। घर आकर इन्होंने भाँड की निन्दा लिखी और ख़ूब धूल उड़ाई। उसे सुनकर करेला और कड़वाया। दूसरे जलसे में उसने फिर अंधे की नक़ल की और वह लाठी लेकर फिरने लगा। जुरअत का एक शेर है—

इमशब तेरी ज़ुल्फ़ों की हिकायात है वल्लाह।
क्या रात है, क्या रात है, क्या रात है वल्लाह॥

क्या रात है, क्या रात है, कहकर वह लाठी टेकता चलता था। सारी ग़ज़ल उसने इसी मज़ाक़ के साथ पढ़ी। जुरअत बहुत बिगड़े। घर आकर इन्होंने उसकी निन्दा लिखी—

अगला भूले बगला झूले सावन मास करेला फूले।

करेले को भी समाचार मिला। उसने अगली बार एक गर्भिणी का स्वाँग भरा और कहने लगा कि इसके पेट में भुतना घुस गया है। वह स्वयं सयाना बनकर बैठा। जैसे भूतों और सयानों में झगड़ा होता है, उसी तरह लड़ते-झगड़ते उसने कहा—अंधे नीच, क्यों ग़रीब माँ का प्राण लेना चाहता है। जुरअत हो तो बाहर निकल आ, अभी जलाकर भस्म कर दूँगा।

इस पर जुरअत और भी बिगड़े। अबकी बार इन्होंने उस करेले की ऐसी ख़बर ली कि वह क्षमा-प्रार्थना के लिये इनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उसने कहा—मैं चाहे आकाश के तारे तोड़ लाऊँ, तौभी उसकी चर्चा महफ़िल की सीमा के भीतर ही रहेगी। पर आप का एक एक शब्द, जो मेरे विरुद्ध कहा जायगा, प्रलय तक लोगों की ज़बान पर रहेगा और सारे संसार में प्रसिद्ध हो जायगा।

पता नहीं, यह किम्वदंती कहाँ तक सच है। जुरअत ने अं

निन्दात्मक कविता लिखी है, वह इतनी ज़ोरदार तो नहीं है कि एक भाँड उससे परास्त हो सके।

एक दिन इन्शा जुरअत से भेंट करने आये। उस वक्त जुरअत सिर झुकाये बैठे हुये कुछ सोच रहे थे। इन्शा ने पूछा—किस चिन्ता में बैठे हो? जुरअत ने कहा कि एक मिसरा ध्यान में आया है। इसे मतला करना चाहता हूँ। इन्शा ने पूछा—सुनाइये तो सही। जुरअत ने कहा—नहीं पूरा होने पर ही सुनाऊँगा।

बहुत आग्रह करने पर इन्होंने सुनाया—

उस ज़ुल्फ़ प फबती शबे दैजूर की सूझी।

इन्शा ने तत्काल दूसरा मिसरा कहा—

अंधे को अंधेरे में बहुत दूर की सूझी।

जरअत हँस पड़े और अपनी लकड़ी उठाकर इन्शा को मारने दौड़े। इन्शा बचते फिरते थे और ये पीछे पीछे टटोलते थे। क्या बेफ़िकरी का समय था! ज़ुरअत कोई अच्छे पढ़े-लिखे न थे। अरबी तो बिलकुल नहीं जानते थे। पर कविता की प्रतिभा स्वाभाविक थी। इश्क के गली-कूचे से ख़ूब जानकार थे। तबीअत में जब उमंग आती थी तो उर्दू के ऊँचे कवियों के जोड़ के शेर कह डालते थे। जुरअत का दीवान मिलता है। उसमें हर तरह की ग़ज़लें हैं। रुबाइयाँ, मुख़म्मस, वासोख़्त, हजो और तारीखें भी हैं। इन्होंने मीर का ही रास्ता पकड़ा है।

एक दिन एक मुशायरे में, जिसमें मीर भी मौजूद थे, इनकी एक ग़ज़ल की बड़ी वाहवाही हुई। ये छेड़ने के लिये या प्रशंसा से कुछ अभिमान में आकर एक शिष्य का सहारा लेकर मीर के पास जा बैठे और मीर से कहने लगे कि आपके सामने ग़ज़ल पढ़नी तो गुस्ताख़ी है। पर कहिये, आज की ग़ज़ल कैसी रही? पहले तो मीर की तेवरी पर बल आ गये। जब जुरअत ने फिर पूछा, तब भी वे टाल-टूल गये। तीसरी बार पूछे जाने पर मीर ने निधड़क कह दिया—"तुम शेर तो कहना जानते नहीं हो, अपनी चूमाचाटी कह लिया करो।" बस मीर के इस वाक्य में ही जुरअत की कविता का सारा रहस्य है। सचमुच उसमें चूमाचाटी ही है। पर जो कुछ है, वह अपने ढंग का निराला ही है। इनके पढ़ने का ढंग भी बड़ा प्रभावशाली था। इनके शेर तो यों ही चुहचुहाते होते थे। इनके पढ़ने के ढंग से वे और भी रसीले हो जाते थे और ख़ूब दाद मिलती थी। इन्होंने सौदा और मीर की ग़ज़लों पर भी ग़ज़लें लिखी हैं और अच्छी लिखी हैं। कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

मीर— बुरक़ा को उठा चेहरे से वह बुत अगर आये।
अल्लाह की क़ुदरत का तमाशा नज़र आये॥

सौदा— इस दिल की तुफ़्फ़े आह से कब शोला बर आये।
बिजली को दमे सर्द से जिसके हज़र आये॥

मसहफ़ी—हरगिज़ न मेरा दिल दिले माशूक़ वर आये।
या रव न शवे वस्ल के पीछे सहर आये॥

जुरअत—उस परदानशीं से कोई किस तरह वर आये।
जो ख़्वाब में भी आये तो मुँह ढाँक कर आये॥

मीर— अब करके फ़रामोश तो नाशाद करोगे।
पर हम जो न होंगे तो वहुत याद करोगे॥

सौदा— जिस रोज़ किसी और प वेदाद करोगे।
यह याद रहे हमको वहुत याद करोगे॥

जुरअत— है किसका जिगर जिस प यह वेदाद करोगे।
लो हम तुम्हें दिल देते हैं क्या याद करोगे॥

मीर— हमारे आगे तेरा जव किसी ने नाम लिया।
दिले सितमज़दह को हमने थाम थाम लिया॥

सौदा— चमन में सुवह जो उस जंगजू का नाम लिया।
सवा ने तेग़ का मौजे रवाँ से काम लिया॥

जुरअत—पास जा बैठा जो मैं कल इक तेरे हमनाम के।
रह गया वस नाम सुनतेही कलेजा थाम के॥

मीर— चमन में गुल ने कल जो दावए जमाल किया।
जमाले यार ने मुँह उसका ख़ूब लाल किया॥

सौदा— वरावरी का तेरी गुल ने जव ख़याल किया।
सवा ने मार थपेड़ा मुँह उसका लाल किया॥

जुरअत—जो तेग़े यार ने ख़ूँ रेज़ी का ख़याल किया।
तो आशिक़ों ने भी मुँह उसका ख़ूब लाल किया॥

इस प्रकार जुरअत ने बड़े बड़े कवियों से टक्कर लेने की बड़ी जुरअत की है। अब इनकी चुनी हुई ग़ज़लें सुनिये—

लगजा गले से ताब अब ऐ नाज़नीं नहीं।
है, है ख़ुदा के वास्ते मत कर नहीं, नहीं॥
पहलू में क्या कहँ जिगर व दिल का क्या है रंग।
किस रोज़ अश्क ख़ूनी से तर आसतीं नहीं॥
फ़ुरसत जो पाके कहिये कभू दर्द दिल तो हाय।
वह बदगुमाँ कहे है कि हमको यक़ीं नहीं॥
उस बिन जहान कुछ नज़र आता है और ही।
गोया व आसमान नहीं वह ज़मीं नहीं॥
आँखों की राह निकले है क्या हसरतों से जी।
वह रूबरू जो अपने दमे वापसीं नहीं॥
हैरत है मुझको क्यों कि वह 'जुरअत' है चैन से।
जिस बिन क़रार जी को हमारे कहीं नहीं॥

* * *

शमा साँ किसने मुझे फूलते फलते देखा
हूँ मैं वह नख़्ल कि देखा भी तो जलते देखा॥
तुझको हम इसलिये कहते थे कोई दम मत जा।
चल बसे हम न तेरे चलते ही चलते देखा॥

इसका बीमार न निकला कभी घर से 'जुरअत'।
घर से ताबूत ही आख़िर को निकलते देखा॥

❦ ❦ ❦

जुस्तजू में दिलके बहलाने की जो खोना पड़ा।
जो हँसी की बात थी उसका हमें रोना पड़ा॥
कोई दिल माँगे था तो कहते थे हम मुँह धो रखो।
सो यह कहते कहते अब अश्कों से मुँह धोना पड़ा॥

❦ ❦ ❦

पूछो न कुछ सबब मेरे हाले तबाह का।
उल्फ़त का है समर य नतीजा है चाह का॥
तेरे मरीज़े ग़म की ज़बाँ पर नहीं कुछ और।
यक तार बँध गया है मगर आह आह का॥
तशबीह किस मज़े से मैं लज़्ज़त को उसकी दूँ।
कुछ दिल ही जानता है मज़ा दिल की चाह का॥

❦ ❦ ❦

रात क्या क्या मुझे मलाल न था।
ख़्वाब का तो कहीं ख़याल न था॥

❦ ❦ ❦

बज़्म में कल निगाहे मस्त से उसकी यारो!
कौन ऐसा नज़र आया कि जो मदहोश न था॥

❦ ❦ ❦

चैन क्या हो ख़ानए हस्ती में ख़ाक।
जो यहाँ आया मुकद्दर ही गया॥

❦ ❦ ❦

मर गया कल ही जुरअते बीमार।
तू अयादत को उसकी आज आया॥

❦ ❦ ❦

लगती नहीं पलक से पलक वस्ल में भी आह!
आँखों को पड़ गया है मज़ा इन्तज़ार का॥

❦ ❦ ❦

अजल गर अपनी ख़याले जमाले यार में आये।
तो फिर वजाय फ़रिश्ता परी मज़ार में आये॥
भला फिर उसके उठाने में क्यों न देर लगे।
क़िसी की मौत क़िसी के जो इन्तज़ार में आये॥
ख़राब क्योंके न हो शहर दिल की आबादी।
हमेशा लूटनेवाले ही इस द्यार में आये॥
न पूछ मुझ से वह आलम कि सुबह नींद से उठ।
जब अँखड़ियों को वह मलते हुये ख़ुमार में आये॥
उठे जहाँ से न जुरअत उठा के दर्दे फ़िराक़।
इलाही मौत भी आये तो वस्ले यार में आये॥

❦ ❦ ❦

याद आता है तो क्या फिरता हूँ घबराया हुआ।
चम्पई रँग उसका औ जोबन व गदराया हुआ॥

बात ही अव्वल तो वह करता नहीं मुझ से कभी।
औ जो बोले भी है कुछ मुँह से तो शरमाया हुआ॥
जाके फिर आऊँ न जाऊँ उस गली में दौड़ दौड़।
पर करूँ क्या मैं नहीं फिरता है दिल आया हुआ॥
नोक मिज़गाँ पर दिले पज़मुर्दा है यूँ सर नगूँ।
शाख़ पर झुक आय है जूँ फूल मुरझाया हुआ॥
तेरी दूरी से य हालत होगई अपनी कि आह।
अनक़रीबे मर्ग हरयक अपना हमसाया हुआ॥
क्या कहूँ अब रश्क़ क्या क्या हमसे करता है सलूक।
दिल प बेताबी का इक पुतला है बिठलाया हुआ॥
है क़लक़ से दिल की यह हालत मेरी अब तो कि मैं।
चार सू फिरता हूँ अपने घर में घबराया हुआ॥
हुक्म बारे मजलिस अब 'जुरअत' को भी हो जायगी।
यह बेचारा कब से दरवाज़े प है आया हुआ॥

* * *

इस ढब से किया कीजै मुलाक़ात कहीं और।
दिन को तो मिलो हम से रहो रात कहीं और॥
क्या बात कोई उस बुते ऐयार की समझे।
बोले है जो हम से तो इशारात कहीं और॥
जिस रंग मेरी चश्म से बरसे है पड़ा ख़ूँ।
उस रंग की देखी नहीं बरसात कहीं और॥

घर उस को बुला नज़र किया दिल तो वह 'जुरअत'।
बोला कि यह बस काजै मदारात कहीं और॥

❦ ❦ ❦

फ़स्ले गुल गरचे हज़ार आई प अपना 'जुरअत'।
दिल पज़मुर्दा न जूँ ग़ुंचए तसवीर खिला॥

❦ ❦ ❦

किस घड़ी से वह हमें दर प नज़र आया था।
सर पटकते हैं पड़े हम पसे दीवार अपना॥

❦ ❦ ❦

कैसा पैग़ाम आके य तू ने सबा दिया।
मिस्ले चिराग़े सुबह जो दिल को बुझा दिया॥

❦ ❦ ❦

यही कहता हूँ जब ऐसे 'जुरअत'।
कूचए यार मुझ से छूट गया॥
किस बयाबाँ में आह लाये नसीब।
गुलो गुलज़ार मुझ से छूट गया॥

❦ ❦ ❦

चैन इस दिल को न इक आन तेरे बिन आया।
दिन गया रात हुई रात गई दिन आया॥

❦ ❦ ❦

और तो क्या मशग़ले हैं हिज्र में तेरे मगर।
दिल की बेताबी से सौ सौ बार उठना बैठना॥

उसकी इक आवाज़ तो सुन लेवें उठते बैठते।
गर मुयस्सर हो पसे दीवार उठना बैठना॥

❦ ❦ ❦

जामे मै की नहीं अब हमको तलब ऐ साक़ी !
बस, तेरी आँख दिखाने ही ने बेहोश किया॥
क्यों हो हैरान से क्या आइना देखा प्यारे !
कुछ तो बोलो कि य किसने तुम्हें ख़ामोश किया॥

❦ ❦ ❦

भरी है हसरते दीदार दिल में दम है आँखों में।
ख़ुदा के वास्ते जल्दी अब ऐ बेदादगर ! आना॥
गये वह दिन कि वाँ जाते थे औ परदा उठाते थे।
मुयस्सर अब नहीं चोरी छुपे भी बात कर आना॥

❦ ❦ ❦

कौन देखेगा भला इसमें है रुसवाई क्या ?
ख़्वाब में आने की भी तुमने क़सम खाई क्या ?

❦ ❦ ❦

कोई ऐसी न शब गुज़री जो टूटे तार रोने का।
हुआ है शमा साँ जब से मुझे आज़ार रोने का॥

❦ ❦ ❦

यही रोना है गर मंज़ूर 'जुरअत'!
तो बीनाई से तू माज़ूर होगा॥

❦ ❦ ❦

या वहीं का हो रहेगा या अदम को जायगा।
फिर नहीं फिरने का इस कूचे में अब जो जायगा॥
गुलशने गीती में जो आवेगा क्या पावेगा याँ।
ग़ुंचा साँ कुछ और अपनी गाँठ का खो जायगा॥

❦ ❦ ❦

गर करे परवाज़ औजे अर्श पर 'जुरअत' तो क्या।
ख़ाक में मिल जायगा आख़िर य पुतला ख़ाक का॥

❦ ❦ ❦

सुबह होते ही जो वह ग़ायब हुआ महताब सा।
वस्ल की यह रात थी या हमने देखा ख़्वाब सा॥

❦ ❦ ❦

दिल जो ग़म खाया किया वह ग़म मुझे खाता रहा।
जब तलक जाता रहा मैं दिल से दुख पाता रहा॥

❦ ❦ ❦

शमा साँ जिसने की ज़बान दराज़।
उसका क़िस्सा ही मुख़्तसर देखा॥

❦ ❦ ❦

हम असीराने क़फ़स क्या कहें ख़ामोश हैं क्यों?
राह लग अपनी चल ऐ बादे सबा तुझको क्या॥

❦ ❦ ❦

तेरे बीमार सा बीमार न होगा कोई।
जिसको ज़ाहिर में जो देखा तो कुछ आज़ार नहीं॥

❦ ❦ ❦

जिसके ग़म में आह हम आराम से वाक़िफ़ नहीं ।
क्या ग़ज़ब है वह हमारे नाम से वाक़िफ़ नहीं ॥
रो के मैं पूछा कि मक़सद जानते हो तुम मेरा ।
हँस के बोला मैं किसी के काम से वाक़िफ़ नहीं ॥

❦ ❦ ❦

किया क़तले दो आलम तू ने जुम्बिश से इक अब्रू की ।
अगर यह झूट हो तो तेग़ पर हम हाथ धरते हैं ॥
बरंगे तायरे तसवीर हैं हम बाग़े हैरत में ।
कब अपने आशियाँ से सहन गुलशन में उतरते हैं ॥

❦ ❦ ❦

ऐ सितम ईजाद कबतक यह सितम देखा करें ।
तू करे ग़ैरों से बातें और हम देखा करें ॥
कुछ तो निकले आरज़ू दुश्नाम दे तलवार खींच ।
चश्म हसरत से कहाँ तक दम बदम देखा करें ॥

❦ ❦ ❦

कहते हैं आपस में हमसाया मेरी फ़रियाद से ।
मसलहत यह है कि इसके पास से घर छोड़ दो ॥
क्या किया मैंने गुनह जो अपने लोगों से य तुम ।
कहते हो जा कर उसे बस्ती के बाहर छोड़ दो ॥

❦ ❦ ❦

उसके आने में अब जो देर है कुछ।
यह भी क़िस्मत का हेर-फेर है कुछ॥
था वह 'जुरअत' ही उसके कूचे में।
वह जो इक ख़ाक सा ढेर है कुछ॥

❦ ❦ ❦

जाते हैं उसके दर से प जाना मुहाल है।
जिस जा क़दम पड़े है उठाना मुहाल है॥
रोने में और आतिशे उल्फ़त भड़क उठी।
अब इस लगी का दिल से बुझाना मुहाल है॥
क्या क़हर है कि बज़्म में उस शोख़ की मुझे।
सब कहते हैं कि तुझ को बिठाना मुहाल है॥
जा बैठते थे दर प जो उसके व दिन गये।
ऊधर को अब तो आँख उठाना मुहाल है॥

❦ ❦ ❦

ग़म बहुत दुनिया में है पर इश्क़ का ग़म और है।
है इसी आलम में लेकिन उसका आलम और है॥

❦ ❦ ❦

शब को टुक ख़्वाब जो आता है तो टुक उसका ख़याल।
आँख लगने नहीं पाती कि जगा देता है॥
लख़्ते दिल की मेरे यह अश्के रवाँ में है बहार।
बर्ग गुल जूँ कोई दरिया में बहा देता है॥

घर से वह जावे ज़हाँ मैं भी वहीं हूँ मौजूद ।
नहीं मालूम मुझे कौन बता देता है ॥

रहने की जा जहान में हम ख़ूब पा गये।
जूँ दर्द अहले दर्द के दिल में समा गये ॥
हम गुलशने जहान में जूँ आतशीं अनार।
इक दम की ज़िन्दगी का तमाशा दिखा गये ॥

अज़ीज़ो वस्ल में भी हम जो रो रो के न सोते थे।
सो अन्देशा था रोज़े हिज्र का उस दिन को रोते थे ॥

कुछ हम तो न समझे कि शबे वस्ल किधर थी।
टुक ज़ुल्फ़ से जो रुख़ प नज़र की तो सहर थी ॥

वही समझेगा मेरे ज़ख्मे दिल को।
जिगर पर जिसके इक नासूर होगा ॥

हस्ती है जूँ हुबाब य हम ग़ाफ़िलों को आह !
कितना कुछ एतबार है बे एतबार का ॥
आवारा यों हुआ कि सबा औ नसीम ने।
पाया कहीं न खोज हमारे ग़ुबार का ॥

'जुरअत' अब उसके आने से बिल्कुल हुई जो यास।
अहवाल क्या कहूँ दिले उम्मीद्वार का॥

❦ ❦ ❦

सोज़े दिल से हाल यह था शब तेरे ग़मनाक का।
सुबह बिस्तर पर जो देखा ढेर था इक ख़ाक का॥

❦ ❦ ❦

नज़अ में भी तेरी सूरत को न देखा अफ़सोस!
मरते मरते भी न अरमान नज़र का निकला॥

❦ ❦ ❦

उधड़ जाते हैं टाँके बख़ियए ज़ख़्मे जिगर के सब।
तसव्वुर जब कि गुज़रे है किसी के मुसकुराने का॥

❦ ❦ ❦

न आया इस फ़लक को और कुछ आया तो यह आया।
घटाना वस्ल की शब का बढ़ाना रोज़े हिजराँ का॥
अज़ीज़ो क्या हक़ीक़त पूछते तुम होगे 'जुरअत' की।
अजब अहवाल देखा हमने कल इस ख़ाने वीराँ का॥
कभी उठ दौड़ता था गाह काँटों पर व लोटे था।
न था कुछ होश उस वहशी को अपने जिस्म औ जाँ का॥
कुछ ऐसा कर गया बेहोश जाना मुझ को जानाँ का।
न जी को होश है दिल का न दिल को होश है जाँ का॥

❦ ❦ ❦

बुलबुल सुने न क्योंके क़फ़स में चमन की बात।
आवारए वतन को लगे ख़ुश वतन की बात॥
सर दीजे राहे इश्क़ में पर मुँह न मोड़िये।
पत्थर की सी लकीर है यह कोहकन की बात॥

चली आती है नादाँ! सुबह पीरा।
जवानी की गँवा मत बेख़बर रात॥

मरहम पज़ीर कौन सा है घाव जो नहीं।
पर एक ज़ख़्मे तेग़े ज़बाँ का नहीं इलाज॥

यह सोज़े इश्क़ से है तपिश अपनी जान पर।
इक आह की तो पड़ गये छाले ज़बान पर॥

गया वह दिल भी पहलू से कि जिसको।
कभी रोते थे छाती से लगा कर॥

नातवानी पर कुछ अपना ज़ोर चलता ही नहीं।
दिल प सौ सदमे हैं लेकिन दम निकलता ही नहीं॥

उसके ग़म्मे हुस्न से दिल था मुनव्वर अब तो आह!
एक मुद्दत से चिराग़ इस घर में जलता ही नहीं॥

दिल ही उस क़ाफ़िर का पत्थर हो तो कोई क्या करे।
वरना ऐसी आहे सोज़ाँ बे असर मेरी नहीं॥

* * *

क़ैसो फ़रहाद की थी एक ही मंज़िल लेकिन।
वह बयावाँ को गया राह वह कुहसार की राह॥

* * *

जब चले हसरत भरे कूचे से हम दिलदार के।
रोये हम क्या क्या गले मिलकर दरोदीवार के॥

* * *

न हमदम कोई है न अब हमनशीं है।
बुरे वक़्त का कोई साथी नहीं है॥
नहीं अहो ज़ारी य बे वजह 'जुरअत'।
गिरफ़्तार शायद तेरा दिल कहीं है॥

* * *

हम भी इस बाग़े जहाँमें शब की शब मेहमान हैं।
मिस्ले शबनम सुबह को गिरिया कुनाँ उठ जायँगे॥

* * *

वस्ल की रात मेरा जी ही निकल जाता है।
जब कि आवाज़ यह आती है कि अब रात नहीं॥

हसन

हसन उपनाम; मीर ग़ुलाम हसन नाम; पिता का नाम मीर ग़ुलाम हुसेन 'ज़ाहक'; जन्मस्थान दिल्ली; जन्म-संवत् लगभग १७९२; मृत्यु-संवत् १८४२।

इनके पूर्वज हिरात के रहने वाले थे। जीविका की खोज में वे दिल्ली आये और यहीं बस गये। मीर हसन का रंग भूरा, और क़द लम्बा था। ये दाढ़ी मुँड़वाते थे। पगड़ी पुराने ढंग की बाँधते और पोशाक अपने बाप की सी पहनते थे। पर लखनऊ जाने पर इनके वेश-भूषे में बहुत अंतर आ गया। ये सिर पर बाँकी टोपी, बदन में तनज़ेब का चुस्त आस्तीन का अंगरखा और कमर में दुपट्टा बाँधने लगे थे।

मीरहसन को फ़ारसी की अच्छी शिक्षा मिली थी। प्रारंभ में इनके कविता-गुरु ख़्वाजा मीर दर्द थे। युवावस्था में इन्हें अपने पिता के साथ अवध जाना पड़ा। अवध में ये अपनी कविता मीर ज़ियाउद्दीन 'ज़िया' को दिखाने लगे। मिर्ज़ा रफ़ी 'सौदा' से भी ये इसलाह लिया करते थे। होते होते ये लखनऊ के उच्च श्रेणी के कवियों में गिने जाने लगे। कविता के अच्छे मर्मज्ञ होने पर भी इन्होंने किसी को अपना शिष्य नहीं बनाया। यहाँ तक कि अपने पुत्र मीर ख़लीक़ को भी इसलाह न दी और उसे 'मसहफ़ी' के सुपुर्द कर दिया। पर इनके पोते

अनीस, मूनिस और उन्स ऐसे मरसिया-गो हुये कि उर्दू भा
में उनके कारण भी हसन के वंश का नाम अमर होगया।

मीर हसन के चार बेटे थे। उन में तीन—ख़लीक़, ख़ु
और मुहसिन—कवि थे।

मीर हसन अपने पिता के साथ दिल्ली से पहले पह
फ़ैज़ाबाद आये, और नवाव सरफ़राज़जंग की सरकार
नौकर हुये। वहाँ से थोड़े दिन बाद लखनऊ आगये, औ
नवाव सालारजंग की मुसाहिवत में सम्मान के साथ रह
लगे।

मीर हसन ने वेनज़ीर और वद्रमुनीर की कथा पद्य
अद्वितीय लिखी है। इस मसनवी का नाम इन्होंने 'सहरुलबया
रक्खा है। आवेहयात के लेखक इसके विषय में कहते हैं—

"इसकी सफ़ाइए वयान और लुत्फ़े महावरा और शोखि
मज़मून और तर्ज़ अदा की नज़ाकत और जवाब व सवाल
नोंकझोंक हद्दे तौसीफ़ से वाहर है। वावजूद इसके कि सह
लवयान की तसनीफ़ के ज़माने को १२५ वरस से ज़ियादह गुज़
गये, लेकिन उसकी ज़वान क़रीव क़रीव वही है जो आजक
मुरव्वज है। उसकी फ़साहत के कानों में क़ुदरत ने कैस
सुनावट रक्खी थी! क्या उसे सौ वरस आगे वालों की बा
सुनाई देती थीं!"

उर्दू में और भी कवियों ने मसनवियाँ लिखी हैं, पर जनता की कसौटी पर दो ही खरी उतरीं। एक गुलज़ार नसीम और दूसरी सहरुलबयान। गुलज़ार नसीम पंडित दयाशंकर 'नसीम' की लेखनी का चमत्कार है।

वद्रमुनीर के सिवाय मीरहसन ने एक मसनवी और लिखी थी, जिसमें शाहमदार की छड़ियों के साथ इनके एक सफ़र का ज़िक्र है और फ़ैज़ाबाद की प्रशंसा और लखनऊ की निंदा है। उस मसनवी से उस समय की स्त्रियों की पोशाक और बहुत से रस्म-रिवाजों का पता चलता है। तीसरी मसनवी इन्होंने एक और लिखी थी, पर वद्रमुनीर की सूर्यप्रभा में इनका और कोई सितारा न चमका।

मीरहसन स्वाभाविक कवि थे। भाषा पर इनका अधिकार था। बोलचाल के महावरों और लोकोक्तियों से ये ख़ूब वाक़िफ़ थे। वर्णनशैली इनकी ऐसी अच्छी है कि घटना का चित्र आँखों के सामनेआ जाता है। इनकी ग़ज़लें इनकी मनसवी के जोड़ की न हुईं। फिर भी वे सरसता और लालित्य से राहत नहीं हैं।

आबेहयात के लेखक को मुश्किल से इनकी पाँच ग़ज़लें मिलीं थीं, पर अब इनका दीवान नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में छप गया है और मेरे पास है।

यहाँ मीरहसन की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

गर इश्क़ से कुछ मुझको सरोकार न होता।
तो ख़्वाबे अदम से कभी बेदार न होता॥
या रब! मैं कहाँ रखता तेरा दाग़े मुहब्बत।
पहलू में अगर मेरे दिलेज़ार न होता॥
दुनियाँ में तो देखा न सिवाये ग़मो अन्दोह।
मैं काश के इस बज़्म में हुशियार न होता॥
वल्लाह कि मैं भर के नज़र देख न सकता।
तू ही अगर आँखों में मेरी धार न होता॥
करता मैं 'हसन' .कुदूस के आलम ही में परवाज़।
हस्ती का अगर अपनी गिरफ़्तार न होता॥

* * *

वह जबतक कि .ज़ुल्फ़ें सँवारा किया।
खड़ा उस प मैं जान वारा किया॥
अभी दिल को लेकर गया मेरे आह!
वह चलता रहा मैं पुकारा किया॥
क़िमारे मुहब्बत में बाज़ी सदा।
व जीता किया औ मैं हारा किया॥
किया क़त्ल औ जान बख़्शी भी की।
'हसन' उसने यहसाँ दुबारा किया॥

इश्क़ का राज़ गर न खुल जाता।
इस क़दर तो न हमसे शरमाता॥
आके तब बैठता है वह हम पास।
आप में जब हमें नहीं पाता॥
ज़िन्दगी ने वफ़ा न की वरना।
मैं तमाशा वफ़ा का दिखलाता॥
मर गये हम तो कहते कहते हाल।
कुछ तो तू भी ज़बाँ से फ़रमाता॥
मैं न सुनता किसी की बात 'हसन'।
दिल जो बातें न मुझको सुनवाता॥

❦ ❦ ❦

सैरे गुलशन करें हम उस बिन क्या?
अब न वह दिल न वह दिमाग़ रहा॥

❦ ❦ ❦

ख़ार से फूटे फफोले पाँवों के।
दर्द ही आख़िर मेरा दरमाँ हुआ॥

❦ ❦ ❦

कैसी वफ़ा? कहाँ की मुहब्बत? किधर की मेहर?
वाक़िफ़ ही तू नहीं है कि होता है प्यार क्या?

❦ ❦ ❦

नहीं मुझको दुश्मन से शिकवा 'हसन'।
मेरा दोस्त मुझको सताने लगा॥

इस इश्क़ में जो क़दम धरेगा।
जीता न बचेगा वह मरेगा॥
अव्वल से यही है मुझको रोना।
आख़िर को यह दर्द क्या करेगा॥

हम न हँसते हैं औ न रोते हैं।
उम्र हैरत में अपनी खोते हैं॥
वस्ल होता है जिनको दुनिया में।
या रब! ऐसे भी लोग होते हैं॥
कोस रिहलत है जुम्बिशे हरदम।
आह तिस पर भी यार सोते हैं॥
याद आती हैं उसकी जब बातें।
दिल 'हसन' दोनों मिलके रोते हैं॥

मर गये यों ही तेरे हम ग़म में।
हसरतें कितनी रह गईं हम में॥
ख़ञ्जरे यार टुक तो लग ले गले।
फिर तो मर जायँगे कोई दम में॥

कौन गाड़ा है नीम बिसमिल याँ।
ज़लज़ला जो उठे है आलम में॥
जी दिया किस पतङ्ग ने अपना।
शमा रोती है किसके मातम में॥
दूने जलने लगे य ज़ख़्म जिगर।
क्या नमक था ऐ सुबह मरहम में॥
क़तरए .खूँ 'हसन' तू उसको न जान।
दिल य आया है दीदए नम में॥

* * *

य जो खटके है दिल में काँटा सा।
मज़ा है नोके ख़ार है क्या है?
चश्मे बद दूर तेरी आँखों में।
नशा है या .खुमार है क्या है?

* * *

मैंने तो भर नज़र तुझे देखा नहीं अभी।
रखियो हिसाब में न मुलाक़ात आज की॥

* * *

मज़े न देखे कभी हमने ज़िन्दगानी के।
यों ही गुज़र गये अफ़सोस दिन जवानी के॥
सुना न एक भी शब उसने हाले दिल मेरा।
नसीब जागे न अफ़सोस इस कहानी के॥

हमें ग़ज़ब से तू अपने तो मत डराया कर।
हम आशना हैं फ़क़त तेरी मेहरबानी के॥
सबातें हस्ती को टुक भी हुआ न अपनी हसन।
मिसालें वर्क़ गये रोज़ शादमानी के॥

जब तक जिये मुसीबत ग़म की न सर से सरकी।
सर से गुज़र के आख़िर हमने मुहिम य सर की॥
इक दाग़ हो गया औ इक टुकड़े हो के निकला।
यह कुछ तो हमने देखी सूरत दिलो जिगर की॥

क़ैसो फ़रहाद के रोने की जब आती है लहर।
कोहो सहरा में घटा जा के बरस आती है॥
ज़िंदगी है तो ख़िज़ाँ के भी गुज़र जायँगे दिन।
फ़स्ले गुल जीतों को फिर अगले बरस आती है॥

क्या हँसे अब कोई औ क्या रो सके।
दिल ठिकाने हो तो सब कुछ हो सके॥

लगाते ही लब लब से बस जी दिया।
हसन और लेने के देने पड़े॥

हसन देता है तू क्यों जी बुतों पर।
मिला देंगे तुझे यह क्या .ख़ुदा से?

था हिज्र ही भला कि हमें थी उमीदे वस्ल।
फिर हिज्र का ख़याल बँधा वस्ले यार में॥
दीवाने गाह रुख़ के रहे गाह .ज़ुल्फ़ के।
यह उम्र कट गई इसी लैलो निहार में॥

ग़ैरों की बात क्या कहूँ उसकी तो याद में।
अपना भी मुझको ध्यान कभी है कभी नहीं॥

चल दिल उसकी गली में रो आवें।
कुछ तो दिलका .ग़ुबार धो आवें॥
गो अभी आये हैं य है जी में।
फिर भी टुक उसके पास हो आवें॥
दिल को खोया है कल जहाँ जाकर।
जी में है आज जी भी खो आवें॥
गो ख़फ़ा सब हुआ करें पर हम।
इक ज़रा उसको देख तो आवें॥
कब तलक इस गली में रोज़ 'हसन'।
सुबह को जावें शाम को आवें॥

मैं हश्र में क्या रोऊँ कि उठ जाते ही तेरे।
बरपा हुई इक मुझ प क़यामत तो यहीं और॥

* * *

इज़हारे ख़ामुशी में है सौ तरह की फ़रियाद।
ज़ाहिर का यह परदा है कि मैं कह नहीं सकता॥
क्या पूछे है मुझसे मेरी ख़ामोशी का बायस।
कुछ तो सबब ऐसा है कि मैं कह नहीं सकता॥

* * *

इश्क़ कबतक आग सीने में मेरे भड़कायगा।
राख तो मैं हो चुका हूँ ख़ाक अब सुलगायगा॥
कर चुके सहरा में वहशत फिर चुके गलियों में हम।
देखिये अब काम हम को इश्क़ क्या फ़रमायगा॥
नौ गिरफ़्तारी के बायस मुज़तरिब सैयाद हों।
लगते लगते जी क़फ़स में भी मेरा लग जायगा॥

* * *

गुल है ज़ख़्मी बहार के हाथों।
दिल है सद चाक यार के हाथों॥
दम बदम क़ता होती जाती है।
उम्र लैलो निहार के हाथों॥
जाँ बलब हो रहा हूँ मिस्ले हुबाब।
मैं तेरे इन्तज़ार के हाथों॥

इक शिगूफ़ा उठे है रोज़ नया।
इस दिले दाग़दार के हाथों॥

❦ ❦ ❦

न बर्ग हूँ मैं गुल का न लाले का शजर हूँ।
मैं लख़्ते दिले रीश हूँ औ दाग़े जिगर हूँ॥
ख़ाली नहीं है मुझसे हरमो दैरो दिलो चश्म।
मैं मज़हरे हक़ हूँ कि जिधर देखो तिधर हूँ॥
पाता है नहीं राह किसी दिल में इलाही।
मैं किस दिले नाकाम की आहों का असर हूँ॥
नै शीशए मै हूँ न 'हसन' साग़िरे लबरेज़।
मैं इक दिले पुर दर्द हूँ औ दीदए तर हूँ॥

❦ ❦ ❦

जी निकलता है इधर औ वह गुज़र करता नहीं।
मरते हैं हम औ उसे कोई ख़बर करता नहीं॥
ताक़तो सब्रो क़रारो होश सब जाते रहे।
आह पर दिल से किसी का ग़म सफ़र करता नहीं॥
कौन सी वह रात जाती है कि जिसमें तेरे बिन।
शाम से जूँ शमा रो रो मैं सहर करता नहीं॥
हो गया ख़म आसमाँ औ बैठ गई डर से ज़मीं।
पर मेरे नाले से इक तू कुछ हज़र करता नहीं॥

अपनी अपनी सब हिकायत कह चुके क्या है 'हसन'।
तू जो क़िस्सा ग़म का अपने मुख़्तसर करता नहीं॥

❦ ❦ ❦

मज़ा बेहोशिये उल्फ़त का हुशियारों से मत पूछो।
अज़ीज़ाँ ख़्वाब की लज़्ज़त को बेदारों से मत पूछो॥
गुलों को कब ख़बर है हाल ज़ारे अन्दलीबों से॥
हक़ीक़त मुफ़लिसों की आह ज़रदारों से मत पूछो॥
व दिल रखते हैं अपना पास अपने बल्कि ग़ैरों का।
हक़ीक़त बेदिलों की आह दिलदारों से मत पूछो॥
ख़बर दिल की अगर चाहो मेरे अश्कों से तुम सुन लो।
य वाक़िफ़ ख़ूब हैं इस घरसे हरकारों से मत पूछो॥
हुआ है इन दिनों वह आशनाओं से भी बेगाना।
ख़राबी को 'हसन' की आजकल यारों से मत पूछो॥

❦ ❦ ❦

मुँह देखते ही उसका आँसू मेरा बहाना।
रोने का या रब! अपने अब क्या करूँ बहाना।
तू हो चुका है मेरा जी दे के तुझको लूँगा।
दिल दे रखा है तुझको आगे ही मैं बयाना॥

❦ ❦ ❦

देखेंगे फिर इन आँखों से हम रूप यार भी।
होवेगा यह तमाम कभी इन्तज़ार भी॥

आईना ही को कब तलक दिखलावगे जमाल।
बाहर खड़े हैं कितने और उमीदवार भी॥
गुज़री तमाम उम्र इसी आरज़ू में हाय!
दो चार बातें तुमने न की एक बार भी॥
गर तू नहीं तो जाके करें क्या चमन में हम।
तुझ बिन हमें ख़िज़ाँ से है बदतर बहार भी॥
इक जाने नातवान ही शिकवा 'हसन' नहीं।
ठहरा न अपने पास दिले बेक़रार भी॥

* * *

फिर अगर दिल य मेरा नाला को बुनियाद करे।
आह सर पर मेरे सद महशरे बेदाद करे॥
याँ तो सुनता ही नहीं बात किसी की कोई।
दिल मेरा मिस्ल जरस कब तईं फ़रियाद करे॥
बाद मरने के भी उल्फ़त है चमन से या रब!
मुश्त पर मेरे सबा वाँ से न बरबाद करे॥
वस्ल में भी न गई छेड़ यही कहता रहा।
कि तुझे ऐसा भुला दूँ कि बहुत याद करे॥
नाम आज़ादों का तब लेवे कोई दुनिया में।
क़ैदे हस्ती से जब अपने तईं आज़ाद करे॥

शेर कहने से य हासिल है कि शायद कोई।
बाद मरने के 'हसन' अपने तईं याद करे॥

कोई नहीं कि यार की लादे ख़बर मुझे।
ऐ सैले अश्क तू ही बहादे उधर मुझे॥
क्या जाऊँ जाऊँ करता है जानाँ तू बैठ जा।
मैं देखूँ तुझको और तू देख इक नज़र मुझे॥
रोना जो कभी आँखों भी देखा न था 'हसन'।
सो अब फ़लक ने दिल का किया नौहगर मुझे॥

न हम होश में मै परस्ती से गुज़रे।
हुये जब कि बेहोश मस्ती से गुज़रे॥
न ठहरो ज़रा क़ाफ़िला इस सरा में।
लिये हसरतें याँ की बस्ती से गुज़रे॥
रहे जिसमें ख़तरा सदा नेस्ती का।
बस ऐ ज़िन्दगी ! ऐसी हस्ती से गुज़रे॥
हुआ कुछ न ख़तरा हमें मिस्ल साया।
अगरचे बलन्दी व पस्ती से गुज़रे॥
चली अब जवानी कहो टुक 'हसन' से।
ख़ुदा के लिये बुतपरस्ती से गुज़रे॥

इन्शा

इन्शा उपनाम; सैयद इन्शा अल्ला ख़ाँ नाम; पिता का नाम हकीम मीर माशा अल्ला ख़ाँ; जन्मस्थान दिल्ली; जन्मसंवत् का ठीक पता नहीं; मृत्यु-संवत् १८७३।

इन्शा के पूर्वज भारत में समरक़न्द से आये थे। पहले वे कश्मीर में बसे और फिर कश्मीर से दिल्ली आये। इन्शा के पिता माशा अल्ला खाँ शाही दरबार में हकीम थे, और दरबारी मुसाहबों और उमरावों में उनकी अच्छी पैठ थी। उनका घराना दिल्ली और लखनऊ में बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। और उनके घराने की रहन-सहन अनुकरणीय मानी जाती थी। कौटुम्बिक नियमों की पाबंदी इतनी कड़ी थी कि उनके घर की स्त्रियों के वस्त्र धोबी को नहीं दिये जाते थे। या तो घर में ही साफ़ कर लिये जाते थे या जला दिये जाते थे। दिल्ली में मुसलमानी राज्य के पतन के समय मीर माशा अल्ला भी उसे छोड़कर मुरशिदाबाद चले गये। इन्शा अल्ला ख़ाँ को उन्होंने बड़ी ही तत्परता और सावधानी से शिक्षा दिलाई। बचपन से ही इन्शा बड़े मेधावी, चंचल और प्रतिभावान् थे। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि उर्दू कवियों में इतना अच्छा दिमाग़ किसी का नहीं था। इन्शा यदि कवि न हुये होते और इन्हें अनुकूलता मिली होती तो ये भारत के एक बहुत

बड़े पुरुष हुये होते। सब विषयों की ओर इनकी स्वाभाविक रुचि थी, और प्रतिभा ऐसी थी कि जिस विषय में ध्यान देते थे, उसमें शीघ्र ही विज्ञता प्राप्त कर लेते थे।

पढ़ने के दिनों में इन्हें गाने का भी शौक़ था। क़ाफ़िया भी जोड़ने लग गये थे, सितार बजाना भी सीख गये थे। शिक्षा समाप्त करने पर इनकी रुचि का झुकाव कविता की ओर हुआ, और इन्होंने अपना जीवन ही उस पर न्योछावर कर दिया।

इन्शा जन्म-कवि थे। इन्होंने किसी से इसलाह नहीं ली। पहले कुछ दिनों तक अपनी कविता अपने पिता को दिखला लिया करते थे, पर पीछे दिखलाने की आवश्यकता ही नहीं हुई।

मुरशिदाबाद में ये बहुत दिन नहीं टिके। भारत के राजनीतिक गगन में बड़ी उथल-पुथल हो रही थी। इन्शा को दिल्ली आना पड़ा। उस समय दिल्ली का शाही दरबार बड़ी टूटी फूटी दशा में था। फिर भी शाहआलम बादशाह ने—चाहे कविता के प्रेम से, चाहे बादशाही शान-शौकत के ख़याल से—इन्शा को खिलअत दी और इन्हें बड़े सम्मान से अपने पास रक्खा। इन्शा ने अपने गुणों से, मधुर भाषण, हाज़िर जवाबी, चुटकुलों

और कविता से दरबार पर ऐसा प्रभाव जमा लिया कि शाहआलम को इन्शा के बिना चैन ही न पड़ती थी।

दिल्ली में उस समय सौदा और मीर न थे। हाँ, सौदा, मीर और दर्द के कुछ शागिर्द अवश्य थे जो बुड्ढे हो चले थे और नये बाँकपन से भड़कते थे। उन्होंने इन्शा का मुक़ाबला किया। इन्शा कविता के रग रग से वाक़िफ़ थे। इन्होंने उन बुड्ढे शायरों को एक मुशायरे में ऐसा लथाड़ा कि सब के दाँत खट्टे हो गये। उन्होंने भी इन्शा के विरुद्ध अपने जी का ज्वर ख़ूब निकाला। पर इन्शा के आगे उनकी कुछ दाल न गली।

मशायरे में बादशाह भी अपनी ग़ज़लें भेजते थे। इन्शा ने निवेदन किया कि अमुक अमुक व्यक्ति बादशाह की ग़ज़ल की हँसी उड़ाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि बादशाह ने ग़ज़ल भेजना ही बंद कर दिया। जब इन्शा के विरोधियों को यह समाचार मिला तब वे बहुत झुँझलाये। अगले मशायरे में वे लोग अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर आये। इन्शा ने इस मशायरे में ऐसी ज़ोरदार ग़ज़ल पढ़ी कि सब के छक्के छूट गये। ग़ज़ल यह थी—

यक तिफ़्ल दबिस्ताँ है फ़लातूँ मेरे आगे।
क्या मू है अरस्तू जो करे चूँ मेरे आगे॥

क्या माल भला क़सरे फ़रीदूँ मेरे आगे।
काँपे है पड़ा गुम्बदे गरदूँ मेरे आगे॥
मुरग़ाने ओली अजनहे मानिन्दे कबूतर।
करते हैं सदा इजज़ से .गूँ .गूँ मेरे आगे॥
मुँह देख तो नक़्क़ारचीए पीले फ़लक भी।
नक़्क़ारे बजा कर कहे दूँ दूँ मेरे आगे॥
हूँ वह जबरउती कि गरोहे हुक्मा सब।
चिड़ियों की तरह करते हैं चूँ चूँ मेरे आगे॥
बोले है यही खामा कि किस किस को मैं बाँधूँ।
बादल से चले आते हैं मज़मूँ मेरे आगे॥
मुजरे को मेरे खुसरो व परवेज़ हो हाज़िर।
शीरीं भी कहे आके बला लूँ मेरे आगे॥
क्या आके डरावे मुझे जुल्फ़े शबे यलदा।
है देव सफ़ेदे सहरी जूँ मेरे आगे॥
वह मारे फ़लक काहकशाँ नाम है जिसका।
क्या दख़ल जो बल खा के करे फ़ूँ मेरे आगे॥

इस के बाद मीर .क़ुदरतुल्ला खाँ क़ासिम के सामने शमा आई। वे शेर पढ़ना शुरू करना ही चाहते थे कि मशायरे के प्रधान को यह संदेह हुआ कि ये इन्शा की निन्दा करेंगे। उन्होंने दोनों में सुलह करा दी। इन्शा ने बहुत नम्रता से

अपने स्वभाव की सरलता का परिचय दिया। विरोधियों के गले मिले और कहा—आप सुशिक्षित और कवि हैं। भला मैं आप को व्यंग कैसे बोल सकता हूँ। हाँ, मिर्ज़ा अज़ीम वेग से मेरी शिकायत अवश्य है कि वे ख़्वामख़्वा वदंदिमाग़ी करते हैं। दाद देनी तो दूर किनार, शेर पर सिर तक नहीं हिलाते। आख़िर किस विरते पर ?

अंत में सब में सुलह हो गई। उन दिनों शाही दरवार की वड़ी दीनदशा थी। वादशाह नाम को था, फ़क़ीर कहना चाहिये। इन्शा को वड़ी मुश्किलों से धन मिलता था। रोज़ इन्हें वादशाह के जेव से पैसे निकालने के लिये कुछ न कुछ नई तरकीवें करनी पड़ती थीं। मान लीजिये कि जुमेरात (वृहस्पति) का दिन है। इन्शा वातें करते करते यकायक चुप हो जाते और फिर थोड़ा ठहर कर कहते—

इन्शा—पीरो मुरशिद ! ग़ुलाम को इजाज़त है ?

वादशाह—ख़ैर वाशद। कहाँ ? कहाँ ?

इन्शा—हुज़ूर, आज जुमेरात है। ग़ुलाम वनीकरीम जाय, शाहे दीन व दुनिया के दरवार में कुछ अर्ज़ करे।

वादशाह—(अदव से) हाँ, हाँ, भई, ज़रूर चाहिये। इन्शा ! हमारे लिये भी कुछ अर्ज़ करना।

इन्शा—ग़ुलाम को और आरज़ू कौन सी है ? यही दीन की आरज़ू, यही दुनिया की मुराद।

यह कह कर फिर ख़ामोश हो जाते। बादशाह कुछ और बातें करने लगते। एक लमहे के बाद फिर यह कहते—

पीरो मुरशिद ! फिर ग़ुलाम को इजाज़त हो।

बादशाह—ऐ ! ऐ ! भाई इन्शा ! अभी तुम गये नहीं ?

इन्शा—हुज़ूर बादशाह आलीजाह के दरबार से ग़ुलाम ख़ाली हाथ क्योंकर जाये ? कुछ नज़र व नमाज़, कुछ चिराग़ी की तो मरहमत हो।

बादशाह—हाँ भई, दुरुस्त, दुरुस्त। मुझे तो ख़याल ही नहीं रहा।

बादशाह जेब में हाथ डालते और कुछ रुपये निकालकर इन्शा के हाथ पर रख देते। इन्शा कुछ आशीर्वाद के वाक्य कह कर फिर कहते—

हज़ूर, दूसरी जेब में दस्त मुबारक जाय तो फ़िद्वी का काम चले। क्योंकि वहाँ से फिरकर भी तो आना है।

बादशाह—हाँ, हाँ, भई, सच है, सच है। भला वहाँ से दो दो खजूरें तो किसी को लाकर दो। बाल-बच्चे क्या जानेंगे कि आज तुम कहाँ गये थे ?

यह एक दिन का हाल है। इसी तरह प्रतिदिन इंशा को

बादशाह की जेब से अपने खाने भर के लिये धन निकालना पड़ता था। इस तरह से कै दिन चल सकता था। अंत में इंशा को दिल्ली छोड़नी पड़ी। लखनऊ में आसफ़ुद्दौला के दान-दाक्षिण्य की बड़ी प्रशंसा फैल रही थी। दिल्ली से जो वहाँ गया, वह फिर लौट कर नहीं आया। इंशा ने भी वहीं की राह पकड़ी।

लखनऊ में सैयद इंशा के पहुँचने से कुल मशायरे गूँज उठे। वहाँ पहले ये सुलेमान शिकोह के यहाँ नौकर हुये। वहाँ से इनके गुणों की प्रशंसा सुनकर सआदत अली खाँ ने इन्हें अपने पास बुला लिया। तब से ये, जब तक रहे, उन्हीं का सरकार में रहे। वहाँ से हटे तो घर में ऐसे बैठे कि मर ही कर उठे।

इन्शा यद्यपि सुशिक्षित थे, पर थे बड़ी ही स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य। जब जो जी में आया कह डाला; जब जो जी में आया कर डाला।

दरबार में जाते तो एक ओर किसी को अदब से सलाम करते, किसी को देखकर मुसकिरा देते, किसी को मुँह चिढ़ा देते, और किसी को आँखें मटका देते। कभी दिल्ली के बाँके बने हैं तो कभी लखनऊ के छैले, कभी आधी दाढ़ी मुँड़ा दी तो कभी भौंवे सफाचट करा दी। मसहफ़ी से इनकी चोंचें चल जाया करती थीं। मसहफ़ी ने कहा है—

वल्लाह कि शायर नहीं तू भाँड़ है भड़वे।

एक दिन इन्शा नवाब साहब के साथ बैठे खाना खा रहे थे। गरमी से घबरा कर पगड़ी उतार कर रख दी। सिर मुँड़ा हुआ देखकर नवाब को कुछ दिल्लगी सूझी। उन्होंने चुपके से पीछे से, एक चपत जमा दी। इन्शा ने टोपी सिर पर रखकर वैसे ही खाते खाते कहा—सच है, बड़े बूढ़े बचपन में कहा करते थे कि नंगे सिर खाना खाने से शैतान चपतें मारा करता है। सो आज सच साबित हुआ।

एक दिन नवाब ने रोज़ा रक्खा और हुक्म दिया कि कोई आने न पावे। इंशा को कोई ज़रूरी काम था। ये पहुँचे। पहरेदार ने कहा कि आज हुक्म नहीं है, आगे आप मालिक हैं। इंशा कुछ देर तक वहीं खड़े रहे। नवाब से आंतरिक प्रेम होते हुए भी ये सावधान रहा करते थे। इन्होंने कमर खोली, अँगरखा उतार डाला, और स्त्रियों की तरह दुपट्टा ओढ़कर बड़े हाव-भाव से नवाब के समाने जा खड़े हुये। नवाब की दृष्टि पड़ते ही आप नाक पर उँगली रखकर बोले—

मैं तेरे सिद्क़े न रख मेरी प्यारी रोज़ा।
वन्दी रख लेगी तेरे बदले हज़ारों रोज़ा॥

नवाब खिलखिला कर हँस पड़े। इन्हें जो कुछ कहना सुनना था, कह सुनकर हँसते खेलते चले आये।

लखनऊ में मीर अली नाम के एक मरसिया कहने वाले

और गान-विद्या में प्रसिद्ध व्यक्ति थे। वे अपने घर ही में मजलिस करके पढ़ते थे। किसी के यहाँ जाकर न पढ़ते थे। उन्हें नवाब ने कई बार बुलवाया, पर वे न गये। नवाब का इस व्यवहार से रुष्ट होना स्वाभाविक था। जब नवाब की नाराज़ी का समाचार मीर अली को मिला, तब वे बहुत आगा-पीछा सोचकर दक्खिन जाने की तैयारी करने लगे। शाम को इंशा घर आये। कमर खोल ही रहे थे कि देखा कि यात्रा की तैयारी हो रही है। पूछने पर मालूम हुआ कि मीर अली साहब दक्खिन जा रहे हैं। जाने का कारण पूछने पर मालूम हुआ कि वही मामला है। संभव है, नवाब का कोप कुछ रंग लाये। इन्शा ने उसी वक़् कमर बाँधी। नवाब के पास पहुँचे। नवाब ने आश्चर्य करके पूछा कि कुशल तो है? तुम फिर क्यों आये?
इन्होंने पहले एक शेर पढ़ा—

दौलत बनी है और सआदतअली बना।
या रब बना बनी में हमेशा बनी रहा॥

फिर कहा—हज़ूर इस वक़् रुख़सत होकर चला तो मन में आया कि एक बार अपने दुल्हा की दुलहिन राज्य-लक्ष्मी का तो दर्शन कर लें। सचमुच राज्य-लक्ष्मी बारह आभरण और सोलह श्रृङ्गार से सजी थीं। सिर पर झूमर, वह कौन? मौलवी दिलदार अली साहब। क़ानों में झुमके, वह कौन?

दोनों साहवज़ादे। गले में नौलखाहार, वह कौन? ख़ान अल्लामा। पर जो ग़ौर करता हूँ तो नाक में नथ नहीं।

नवाव ने पूछा—वह कौन?

इन्शा ने कहा—मीर अली साहव।

इसके बाद इन्शा ने मीर अली काकुल दास्तान सुनाया। नवाव ने कहा—उन्होंने जो भविष्य का भय सोचा है, यह अनुचित है। मैं तो उनको लखनऊ का गौरव समझता हूँ।

इस प्रकार दोनों ओर का संदेह मिटा कर इन्शा तरक़्क़ी का परवाना और ५००) पुरस्कार-स्वरूप लेकर लौटे।

उस समय अवध का रेज़ीडेन्ट जान बेली साहव था। इन्शा की प्रसिद्धि वे सुन चुके थे, पर कभी मिलने का संयोग न हुआ था। एक दिन बेली साहव नवाब से मिलने आये। नवाव ने पहले ही कह रक्खा था कि इन्शा! आज तुम को साहव से मिलायेंगे। साहब आया। नवाव और वह कुरसियों पर आमने सामने बैठे। इन्शा नवाव के पीछे खड़े होकर रुमाल हिला रहे थे। बातें करते करते साहव ने इन्शा की ओर देखा। इन्होंने मुँह बना लिया। उसने आँखें नीची कर ली। वह मन में सोचने लगा कि इस आदमी की कैसी सूरत है? यह ध्यान में आते ही उसने फिर इनकी ओर देखा। इन्होंने अब की बार और भी मुँह बिगाड़ लिया। वह शरमा कर दूसरी ओर देखने

लगा। उसने जो फिर देखा तो इन्होंने ऐसा मुँह बनाया कि पहले से भी अद्भुत। उसने नवाब से पूछा कि यह मुसाहिब आपके पास कब से मुलाज़िम है? नवाब ने कहा—हाँ, आपने नहीं देखा? सैयद इन्शा अल्ला खाँ यही तो हैं। साहब ख़ूब हँसा। फिर तो दोनों में ख़ूब बातें हुईं। इन्शा की वाक्शक्ति ने उस पर कुछ ऐसा असर डाला कि जब वह कभी आता तो पहले इन्शा को पूछता। साहब के साथ रेज़ीडेंटी के मीर मुंशी अली नक़ी खाँ भी आया करते थे। उनसे इनकी बड़ी मनोरंजक चोटें हो जाया करती थीं। जब वे रुख़सत होते तो इन्शा कहा करते कि 'मीर मुंशी साहब का अल्लाह बेली'।

मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह का मकान नदी के कंठ पर ही था। एक बार वहाँ स्नान का एक मेला लगा। इन्शा रंग के गोरे और सुन्दर थे। कश्मीरी पंडित का भेस बनाकर, ये बड़े सवेरे घाट पर जा बैठे, और ज़ोर ज़ोर से श्लोक पाठ करने लगे। लोग स्नान के लिये आते थे। सब स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान, बुड्ढे इनकी ओर आकर्षित होते थे। ये उन्हें पूजा करवाते और तिलक लगा देते थे। कुछ मित्रों से इन्होंने अपना भेद कह दिया था। उन्होंने सुलेमान शिकोह को ख़बर दी।

वे देखने आये। देखा तो इन्शा के आगे नाज, आटा, पैसा, कौड़ी का ढेर लगा है और इतना कि घाट वाले दूसरे पण्डितों से कहीं अधिक। वे ख़ूब हँसे।

फ़ायक़ नाम के एक कवि थे। न जाने क्यों वे इन्शा पर ख़फ़ा हो गये थे। उन्होंने इन्शा के सम्बन्ध में एक निन्दात्मक कविता लिखी और स्वयं लाकर सुनाई। इन्शा बहुत ख़ुश हुये। बहुत उछले कूदे। ख़ूब प्रशंसा की और पाँच रुपये भी दिये। जब वह चलने लगे तो ये बोले कि ज़रा ठहरिये। अभी आपका कुछ और हक़ बाक़ी है। क़लम उठाकर इन्होंने यह लिखकर उनके हवाले किया—

फ़ायक़े बेहया चु हजूमे गुफ़्त।
दिले मन सोख़्ता सोख़्ता सोख़्ता बा॥
सिला अश पंज रुपया दादम।
दहने सग बलुक़मए दोख़्ता बा॥

दिल्ली में हाफ़िज़ अहमद यार एक प्रसिद्ध मौलवी थे। इन्शा से उनकी ख़ूब पटती थी। एक दिन हाफ़िज साहब इन्शा से मिलने आये। रास्ते में पानी आ गया और इन्शा के घर पहुँचते पहुँचते मूसलाधार बरसने लगा। वह जा कर बैठे ही थे कि इन्शा नङ्ग धड़ङ्ग एक खारुयें की लुंगी बाँधे दौड़ कर आये और उन्हें देखते ही उछलने लगे। हाथ फैला फैला कर उनके चारों ओर घूमते थे और यह कहते जाते थे—

भर भर छाजों बरसत नूर।
रद्द बलैयाँ दुश्मन दूर॥

इन सब क़िस्सों के लिखने का हमारा तात्पर्य यह है कि इनसे इन्शा की चुलबुली तबीयत का पता चलता है। खेद है कि एक घटना ऐसा हो गई, जिससे यह चहकता हुआ बुलबुल एकान्त कमरे में क़ैद हो गया और वहीं मर गया।

नवाब सआदत अली खाँ राजसी प्रकृति के मनुष्य थे। स्वच्छता और शिष्टता का वे अपने प्रत्येक काम में ध्यान रखते थे। इन्शा ने अपनी लच्छेदार बातों से उन्हें परचा लिया था। पर दोनों के स्वभाव में बड़ा अन्तर था।

इन्शा मेलों-ठेलों में जाने के बड़े शौक़ीन थे। पर नवाब की प्रकृति इसके बिलकुल विपरीत थी। कोई मेला-ठेला होता तो इन्शा बातें बना कर, हठ करके, नवाब की इच्छा न रहते हुये भी, चले ही जाते थे। मुँहलग हो जाने के कारण दो एक बार इन्शा के मुँह से ऐसी बातें भी निकल गईं, जिनसे नवाब ने अपना अपमान समझा। इन्हीं कारणों से ये नवाब के चित्त से उतरते गये। वे भी इन्शा को पराजित करने का मार्ग ढूँढ़ने लगे। एक दिन ये घर पर नहीं थे। सआदत अली खाँ ने इन्हें बुला भेजा। चोबदार ने वापस जाकर इनकी अनुपस्थिति का समाचार कहा। नवाब ने अप्रसन्न होकर आज्ञा दी कि हमारे सिवा और किसी के यहाँ न जाया करो। यह क़ैद इनको बहुत अखरी। उसी अवसर में इनका नौजवान बेटा तालाअल्ला खाँ

मर गया। दिल पर इसकी गहरी चोट लगी। मस्तिष्क भी कुछ विक्षिप्त सा हो गया। एक दिन सआदत अली खाँ की सवारी इनके मकान की ओर से निकली। शोक और क्रोध से पीड़ित इन्शा ने बीच राह में खड़े होकर उनकी ख़ूब भर्त्सना की। परिणाम यह हुआ कि नवाब ने वेतन भी बन्द कर दिया। अब उन्मत्त होने में क्या कसर थी ?

दिल्ली के सआदत यार ख़ाँ "रङ्गीं" इन्शा के पगड़ी-बदल भाई थे। इन्शा ने एक शेर में कहा है—

अजब रङ्गीनियाँ होती हैं कुछ बातों में ऐ इन्शा !
बहम मिल बैठते हैं जब सआदत यार खाँ औ हम॥

अब आगे इन्शा का हाल इनके मित्र सआदत यार खाँ की ही ज़बानी सुनिये—

"मैंने लखनऊ में सैयद इन्शा के वह वह रङ्ग देखे, जिनका ख़याल करके दुनिया से जो बेज़ार होता है। एक तो वह औज का ज़माना था कि सआदत अली खाँ को नाक के बाल थे। दरवाज़े पर घोड़े, हाथी, पालकी, नालकी के हुजूम से रस्ता न मिलता था। दूसरी वह हालत कि फिर जो मैं लखनऊ गया तो देखा कि ज़ाहिर दुरुस्त था। अगर दरख़्ते इक़बाल की जड़ को दीमक लग गई थी। मैं एक शख़्स की मुलाक़ात को गया। वह अस्नाय गुफ़्तगू में दोस्ताने-दुनिया की ना आश्नाई और

बेवफ़ाई की शिकायत करने लगे। मैंने कहा कि अलबत्ता ऐसा है। मगर फिर भी ज़माना ख़ाली नहीं। उन्होंने ज़ियादा मुबालग़ा किया। मैंने कहा कि एक हमारा दोस्त इन्शा है कि दोस्त के नाम पर जान देने को मौजूद है। वह ख़ामोश हुये और कहा कि अच्छा; ज़ियादा नहीं, आज आप उनके पास जाइये और कहिये, हमें एक तरबूज़ ख़ुद बाज़ार से लाकर खिला दो। मौसम का मेवा है, कुछ बुरी बात भी नहीं है। मैंने कहा—भला यह भी कुछ फ़रमाइश है। वह बोले कि बस, यही फ़रमाइश है। मगर शर्त यह है कि वह ख़ुद लाकर खिलायें। बल्कि चार आने के पैसे भी आप मुझसे ले जाँय। मैं उसी वक़्त उठ कर पहुँचा। इन्शा आदते क़दीम के बमूजिब देखते ही दौड़े। सिदक़े कुरबान गये। बलायें लेने लगे। मैंने कहा—यह नाज़ अन्दाज़ ज़रा ताक में रक्खो। पहले एक तरबूज़ तो लाकर खिलाओ। गरमी ने मुझे जला दिया। उन्होंने आदमी को पुकारा। मैंने कहा कि आदमी की सही नहीं। तुम आप जाओ और एक अच्छा सा शहीदी तरबूज़ देखकर लाओ। उन्होंने कहा कि नहीं आदमी माक़ूल है, अच्छा ही लायेगा। मैंने कहा—नहीं; खाऊँगा तो तुम्हारा ही लाया हुआ खाऊँगा। उन्होंने कहा—तू दीवाना हुआ है? यह बात क्या है?

तब मैंने दास्तान सुनाई। उस वक़्त उन्होंने एक ठण्डी साँस भरी और कहा कि भाई, वह शख़्स सच्चा और हम तुम दोनों झूठे। क्या करूँ? ज़ालिम की क़ैद में हूँ। सिवा दरबार के घर से निकलने को हुक्म नहीं।

तीसरा रङ्ग—मैं सौदागरी के लिये घोड़े लेकर लखनऊ गया और सराय में उतरा। शाम हुई तो मालूम हुआ कि क़रीब ही मशायरा होता है। खाना खाकर मैं भी जलसे में पहुँचा। अभी दो तीन सौ आदमी आये थे। लोग बैठे बातें करते और हुक़्के पी रहे थे। मैं भी बैठा हूँ। देखता हूँ कि एक शख़्स मैली कुचैली रुईदार मिरज़ई पहने, सर पर एक मैला सा फेंटा, पाँव में घुटन्ना, गले में तोवड़ा डाले, एक हुक़्क़ा हाथ में लिये आया और सलाम अलैक कर बैठ गया। किसी ने उससे मिज़ाज़ पुरसी भी की। उसने अपने तोवड़े में हाथ डालकर तम्बाकू निकाला और अपनी चिलम पर सुलफ़ा जमा कर कहा—भई, ज़रा सी आग हो तो इस पर रख देना। उसी वक़्त आवाज़ें बलन्द हुईं, और गुड़गुड़ी, सटक, पेचवाँ से लोग तवाज़ा करने लगे। वह बेदिमाग़ हो कर बोला—साहब, हमें हमारे चाल पर रहने दीजिये। नहीं तो हम जाते हैं। सबने उसकी बात के लिये तसलीम और तामील थी। दम भर के बाद फिर बोला—

क्यों साहब ! अभी मशायरा शुरू नहीं हुआ ? लोगों ने कहा—जनाब, लोग जमा होते जाते हैं। सब साहब आ जाँय तो शुरू हो। वह बोला—साहब, हम तो अपनी ग़ज़ल पढ़ देते हैं। यह कहकर तोबड़े में से काग़ज़ निकाला और ग़ज़ल पढ़नी शुरू कर दी—

कमर बाँधे हुये चलने को याँ सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं॥
न छेड़ ऐ नगहते बादे बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं॥
तसव्वुर अर्श पर है और सर है पाय साक़ी पर।
ग़रज़ कुछ ओर धुन में इस घड़ी मैख़्वार बैठे हैं॥
बसाने नक़्श पाये रहरवाँ कूए तमन्ना में।
नहीं उठने की ताक़त क्या करें लाचार बैठे हैं॥
य अपनी चाल है उफ़तादग़ी से अब कि पहरों तक।
नज़र आया जहाँ पर सायए दीवार बैठे हैं॥
कहाँ सब्रो तहम्मुल, आह नङ्गो नाम क्या शै है।
मियाँ रो पीटकर इन सबको हम यकबार बैठे हैं॥
नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो।
जहाँ पूछो यही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं॥
भला गर्दिश फ़लक की चैन देती है किसे 'इन्शा'।
ग़नीमत है कि हम सूरत यहाँ दो चार बैठे हैं॥

वह तो ग़ज़ल पढ़, कागज फेंक, सलाम आलेक कहकर चले गये। मगर ज़मीन व आसमान में सन्नाटा हो गया। और देर तक दिलों पर एक आलम रहा। जिसकी कैफ़ियत बयान नहीं हो सकती। ग़ज़ल पढ़ते में मैंने भी पहचाना। हाल मालूम किया तो वहुत रंज हुआ। और घर पर जाकर फिर मुलाक़ात की।

चौथी दफ़ा जा लखनऊ गया तो पूछता हुआ घर पहुँचा। अफ़सोस, जिस दरवाज़े पर हाथी झूमते थे, वहाँ देखा कि ख़ाक उड़ती है और कुत्ते लोटते हैं। ड्योढ़ी पर दस्तक दी। अन्दर से किसी वुढ़िया ने पूछा कि कौन है भाई? वह उनकी वीवी थीं। मैंने कहा—सआदत यार खाँ देहली से आया है। चूँकि सैयद इन्शा से इन्तहा दरजे का इत्तहाद था। उस अफ़ीफ़ा ने पहचाना। दरवाज़े पर आकर वहुत रोईं, और कहा कि भया! उनकी तो अजव हालत है। ऐ, लो, मैं हट जाती हूँ। तुम अन्दर आओ और देख लो।

मैं अन्दर गया। देखा कि एक कोने में बैठे हैं। तन बरहना है। दोनों ज़ानुओं पर सर धरा है। आगे राख के ढेर हैं। एक टूटा सा हुक़्क़ा पास रक्खा है। या तो वह शान व शौकत के जमघट देखते थे। वह गरमजोशी और चुहलों की मुलाक़ातें होती थीं या यह हालत देखी। बेइख़्तियार दिल

भर आया। मैं भी वहीं ज़मीन पर बैठ गया, और देर तक रोया। जब जी हलका हुआ तो मैंने पुकारा कि सैयद इन्शा! सर उठाकर उस नज़रे हसरत से देखा जो कहती थी कि क्या करूँ, आँख में आँसू नहीं। मैंने कहा—क्या हाल है? एक ठंडी साँस भरकर कहा—शुक्र है। फिर इस तरह सर को घुटनों पर रख लिया कि न उठाया।"

यह एक कवि का जीवन-वृत्तान्त है। इसे पढ़कर आँखों में आँसू आये विना नहीं रहते। इन्शा ने एक ही जीवन में सुख दुःख दोनों देखे। दुःख की घड़ियाँ भी उन्होंने सुख से काट दीं।

अब इन्शा की कविता पर विचार कीजिए—

इन्शा की कविताओं का एक कुल्लियात (संग्रह) है। उसमें इतनी चीज़ें हैं—

१—उर्दू ग़ज़लों का दीवान।

२—दीवान रेख़्ती, पहेलियाँ, तिलिस्मात के नुस्ख़े और क़वायद फ़रतो।

३—उर्दू के क़सीदे।

४—फ़ारसी के क़सीदे।

५—दीवान फ़ारसी।

६—मसनवी शेरबिरंज।

७—मसनवी फ़ारसी बेनुक्त़ ।

८—शिकार नामा (फ़ारसी) ।

९—निन्दात्मक पद्य—गरमी, भिड़ों, खटमलों, मक्खियों, पिस्सुओं आदि और भिन्न भिन्न व्यक्तियों की निन्दाएँ।

१०—मसनवी आशिक़ाना ।

११—हाथी और चंचल प्यारी हथिनी की शादी ।

१२—फुटकर शेर ।

१३—दीवान बेनुक्त़ ।

१४—मातए आमिल (फ़ारसी)

१५—मुर्ग़ नामा (उर्दू)

इस कुल्लियात के सिवा दो पुस्तकें इनकी और हैं—

१—दरियाय लताफ़त—क़वायद उर्दू, मन्तिक़, मानी, बयान आदि के सम्बन्ध में ।

२—रानी केतकी की कहानी ।

ग़ज़लों के दीवान का क्या कहना है ! एक एक शेर आशिक़-माशूक़ के चोचलों से भरे हैं । एक मशायरे में जुरअत और मसहफी तक मौजूद थे । इन्शा ने एक ग़ज़ल पढ़ी । जिसका पहला शेर यह है—

लगाके वर्फ़ में साक़ी सुराहिये मै ला ।
जिगर की आग बुझे जल्द जिससे वह शै ला ॥

कुल पाँच शेर की ग़ज़ल थी। इसे सुनकर सब ने अपनी अपनी ग़ज़लें रखदीं और कहा—अब पढ़ना व्यर्थ है।

रेख़्ती सआदत यार खाँ रंगीं की ईजाद है। पर इन्शा ने उस पर और रंग चढ़ा दिया। पीछे से लखनऊ के जान साहब ने उसमें जान ही डाल दी।

इन्शा भारत की बहुत सी भाषायें जानते थे। कभी पंजाब की बातें करते करते पूरब की बोली बोलने लगते थे। कभी ब्रजवासी बनकर ब्रजभाषा बोलने लगते थे। कभी मराठी, कभी कश्मीरी, कभी अफ़ग़ानी, कभी कुछ, कभी कुछ। मतलब यह कि ये बहु भाषा-विज्ञ और बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। पूरबी बोली में उनका एक शेर सुनिये—

मुतफ़िक्करी में फ़िक्र भई मुफ़्त आइके।
झाऊ मियाँ को भौं प जो पटकेसि घुमाइ के॥
इन्शालखाँ मियाँ बड़े फाजिल जहीन हैं।
सदरह पढ़े हैं जिन सेती तलबिल्म आइके॥

ये अरबी फ़ारसी और तुर्की भी जानते थे। उर्दू ग़ज़लों में फ़ारसी और अरबी के मिसरे भी ये जोड़ दिया करते थे। फ़ारसी में तो इनकी अद्भुत योग्यता थी। गद्य और पद्य दोनों बहुत अच्छा लिखते थे। भारतवर्ष के लिये भिन्न भिन्न प्रान्तों के रस्मरिवाज तथा क़िस्से कहानियों की भी जानकारी इनको थी। कुछ ग़ज़लें सुनिये—

सनम ख़ाने में जब देखा बुतो नाक़ूस का जोड़ा।
लगा ठाकुर के आगे नाचने ताऊस का जोड़ा॥

* * *

मिले पारे से जो हरताल करके राखका जोड़ा।
तो ताम्बेसुरजी उगलैं कोई नव्वे लाख का जोड़ा॥
नहीं कुछ भेद से ख़ाली य तुलसीदास जी साहब।
लगाया है जो यक भौंरे से तुमने आँख का जोड़ा॥
लपट कर कृश्न जी से राधिका हँसकर लगीं कहने।
मिला है चाँद से ए लो अँधेरे पाख का जोड़ा॥
य सच समझो कि इन्शा है जगत् सेठ इस ज़माने का।
नहीं शेरो स.ख़ुन में कोई उसके साख का जोड़ा॥

* * *

ऐ इश्क़ जी ! आओ महाराजों के राजा
दंडोत है तुमको।
कर बैठे हो तुम लाखों करोड़ों ही के सर चट
इक आन में चटपट॥
है नूरे बसर मर्दुमके दीदे में पिनहाँ।
मानिन्द कन्हैया।
सो अश्क के क़तरों से पड़ा खेले है झुरमुट
औ आँखें हैं पनघट॥

* * *

दिले सितम ज़दह बेताबियों ने लूट लिया।
हमारे क़िब्ला को वहहाबियों ने लूट लिया॥
सुनाया रात को क़िस्सा जो हीर राँझे का।
तो अहले दर्द को पंजाबियों ने लूट लिया॥

* * *

फबन, अकड़, छब, निगाह, सजधज,
जमाल, तर्ज़ें ख़िराम आठों।
न होवें उस बुत के गर पुजारी
तो क्यों हो मेले का नाम आठों॥

* * *

लिया गर अ.क़्ल ने मुँह में दिले बेताब का गुटका।
तो जोगी जी धरा रह जायगा सीमाब का गुटका॥

इन्शा ने अरबी और तुर्की में भी शेर कहे हैं, और फ़ारसी में तो बुलबुल की तरह चहके हैं।

दरियाय लताफ़त उर्दू का पहला व्याकरण है। उसमें पहले तो उर्दू बोलने वालों के भिन्न भिन्न समूहों की भाषाओं के नमूने हैं। फिर व्याकरण के नियम हैं। शिष्ट से लेकर अश्लील भाषा तक के नियम उसमें लिखे हैं।

उन दिनों उर्दू हिन्दी का कोई झगड़ा नहीं था। इसलिये फ़ारसी पिंगल के मफ़ऊल मफ़ाईलन मफ़ऊल मफ़ाईलन के स्थान पर उर्दू में

वी जान परीखानम वी जान परीखानम

और फ़ायलुन मफ़ाईलुन फ़ायलुन मफ़ाईलन के स्थान पर

चितलगन परीख़ानम चितलगन परीख़ानम

का नवाविष्कार उन्होंने किया था।

यही नहीं, छंदों के नाम भी हिन्दी रक्खे हैं। जैसे मुसल्लस का नाम तिकड़ा और मुरब्बा का नाम चौकड़ा।

इन्शा आशुकवि थे। संयोग से ही ये नवाब सआदत अली खाँ ऐसे राजनीति-प्रिय व्यक्ति के पास पड़ गये थे। किसी साहित्य-रसिक आश्रयदाता की संगति में पड़ते तो आज इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का हम सौगुना अधिक प्रकाश देखते।

एक दिन नवाब सआदत अली खाँ इन्शा की गोद में सिर रखकर लेटे हुये बजरे में नदी की सैर करते हुये चले जा रहे थे। नदी के कंठ पर एक हवेली थी। उस पर लिखा था—

हवेली अली नक़ी बहादुर की।

नवाब ने कहा—इन्शा, देखो यह पद्य न हो सका। इसे तुम पद्य कर दो। इन्शा ने उसी समय कहा—

न अरबी न फ़ारसी न तुरकी।
न सम की न ताल की न सुर की॥
यह तारीख़ कही है किसी लुरकी।
हवेली अली नक़ी खाँ बहादुर की॥

जब शाह नसीर देहलवी लखनऊ गये तो वे इन्शा से भी मिले और कहा कि भई ! मैं तो तुम से ही मिलने आया हूँ। नहीं तो मेरा यहाँ और कौन है। इन्शा ने कहा—शाह साहब, यहाँ के दरबार की हवा कुछ और है। क्या कहूँ, लोग जानते हैं कि मैं शायरी करके नौकरी बजा लाता हूँ; पर मैं स्वयं नहीं जानता कि क्या कर रहा हूँ। देखो, आज सवेरे का गया शाम को आया। कमर खोल रहा था, चोबदार आया कि जनाब आली फिर याद फ़रमा रहे हैं। गया तो देखता हूँ कि कोठे पर फ़र्श है। चाँदनी रात है। पहियेदार छपरखट में आप बैठे हैं। फूलों का गहना सामने धरा है। एक गजरा हाथ में है। उसे उछालते हैं और पाँव के इशारे से छपरखट आगे बढ़ता जाता है। मैं ने सलाम किया। हुक्म हुआ—इन्शा, कोई शेर तो पढ़ो। अब फ़रमाइये कि ऐसी हालत में कि अपना ही क़ाफ़िया तंग हो, शेर क्या ख़ाक याद आये। ख़ैर; उस वक़ यही समझ में आया। वहीं कहकर पढ़ दिया—

लगा छपरखट में चार पहिये उछाला तू ने जो ले के गजरा।
तो मौज दरियाय चाँदनी में वह ऐसा चलता था जैसे बजरा॥

यही मतला सुनकर ख़ुश हो गये। फ़रमाइये, इसे शायरी कहते है ?

सैयद इन्शा यदि कवि न हुये होते तो वे अधिक काम के

आदमी होते। कविता ने उन्हें डुबोया और उनकी कविता को सआदत अली खाँ को मुसाहबत ने।

इन्शा ने शुद्ध हिन्दी बोलचाल में रानी केतकी की कहानी लिखी है। उसमें अरबी फ़ारसी का एक भी शब्द नहीं आने पाया है।

पाठकों के मनोरंजनार्थ उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनाने वाले के साम्हने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया जिसका भेद किसी ने न पाया।"

* * *

"अब यहाँ से कहने वाला यों कहता है एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी, कोई कहानी ऐसी कहिये जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोली की पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप खिले, बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई पढ़े लिखे पुराने धुराने डाग बड़े घाग यह खटराग लाये सिर हिलाकर मुँह ठठियाकर नाक भौं चढ़ाकर आँखें पथराकर कहने लगे यह बात होती दिखाई नहीं देती। हिन्दवी पन भी न निकले और भाखापन भी न ठुस जाय, जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं ज्यों का त्यों

वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न पड़े। यह नहीं होने का।"

* * *

"सुखपाल और चंडोलों पर और रथों पर जितनी रानियाँ और महारानी लक्ष्मी वास पीछे चली आती थीं सब को गुदगुदियाँ सी होने लगीं। उसमें कहीं भरथरी का स्वाँग आया, कहीं जोगी जैपाल आ खड़े हुये, कहीं महादेव और पारवती दिखाई पड़े, कहीं गोरख जागे, कहीं मछन्दरनाथ भागे, कहीं कच्छ मच्छ बाराह सन्मुख हुये, कहीं बामन रूप, कहीं हरना-कुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता साम्हने आये, कहीं रावन और लङ्का का बखेड़ा सारे का सारा दिखाई देने लगा। कहीं कन्हैया जी का जन्माष्टमी में होना, और बसुदेव का गोकुल में ले जाना, और उनका उस रूप से बढ़ चलना और गायें चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका का रस और कुबजा का बस कर लेना, कहा बनसी बट चीर घाट वृन्दाबन करील की कुंज बरसाने में कहना और उस कन्हैया से जो कुछ हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों आना और द्वारका में जाना और वहीं सोने के घर बनाना और फिर ब्रज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना साम्हने आ गया।"

कहानी भर में आदि से अंत तक 'कि' का प्रयोग नहीं

हुआ। इन्शा ने इसे विदेशी शब्द समझ कर छोड़ दिया। पर 'कि' संस्कृत के 'किम्' का प्राकृत रूप है। जिसे आज हम खड़ी-बोली कहते हैं, इन्शा ने उस के शुद्ध रूप में यह कहानी लिखने का प्रयत्न किया था। शब्द तो अरबी फ़ारसी के नहीं आये, पर विदेशी मुहावरों से वह नहीं बच सके।

अब हम इन्शा की जीवन-कथा यहीं समाप्त करते हैं और इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत करते हैं—

झिड़की सही अदा सही चीने जबीं सही।
यह सब सही पर एक नहीं की नहीं सही॥
मरना मेरा जो चाहे तो लग जा गले से टुक।
अब का ही दम य मेरा दमे वापसीं सही॥
गर नाज़नों के कहने से माना बुरा हो कुछ।
मेरी तरफ़ तो देखिये मैं नाज़नीं सही॥
आगे बढ़े जो जाते हो क्यों कौन है यहाँ।
जो बात हमको कहनी है तुमसे नहीं सही॥
मंज़ूर दोस्ती जो तुम्हें है हरेक से।
अच्छा तो क्या मुज़ायक़ा 'इंशा' से भी सही॥

* * *

यह नहीं बर्क़ इक फिरंगी है।
राद वाराँ .कुशूने जंगी है॥

कोई दुनिया से क्या भला माँगे।
वह तो बेचारी आप नंगी है॥
वाह दिल्ली की मसजिदे जामा।
जिसमें वरीक़ फ़र्शे संगी है॥
हौसला है फ़राख़ रिन्दों का।
ख़र्च की पर बहुत सी तंगी है॥
लग गये ऐब सारे उसके साथ।
यों कहा जिसको मर्दे वंगी है॥
डरो वहशत की धूमधाम से तुम।
वह तो इक देवनी दवंगी है॥
जोगी जी साहब आपकी भी वाह।
धरम मूरत अजब कुढंगी है॥
आपही आप है पुकार उठता।
दिल भी जैसे घड़ी फिरंगी है॥
चश्म बद दूर शेख़ जी साहब!
क्या इज़ार आपकी उटंगी है॥
शेख सादीए वक़्त है 'इंशा'।
तू अबू बक्र साद ज़ंगी है॥

* * *

जिगर की आग बुझे जिससे जल्द वह शै ला।
लगा के बर्फ़ में साक़ी सुराहिए मै ला॥

क़दम को हाथ लगाता हूँ उठ कहीं घर चल।
ख़ुदा के वास्ते इतने तो पाँव मत फैला॥
निकल के वादिए वहशत से देख ऐ मजनू!
कि ज़ोर धूम से आता है नाक़ए लैला॥
गिरा जो हाथ से फ़रहाद के कहीं तैशा।
दरूने कोह से निकली सदाए वावैला॥
नज़ाक़त उस गुले राना की देखियो 'इंशा'।
नसीमे सुबह जो छू जाय रंग हो मैला॥

* * *

बर्क़ चशमक ज़न है साक़ी अब्र है आया हुआ।
जामे मै दे तू किधर जाता है मचलाया हुआ॥

* * *

दीवार फाँदने में देखोगे काम मेरा।
जब धम से आ कहूँगा साहब सलाम मेरा॥
हमसाया आपके मैं लेता हूँ इक हवेली।
इस शहर में हुआ गर चंदे मुक़ाम मेरा॥
जो कुछ कि अर्ज़ की है सो कर दिखाऊँगा मैं।
वाही न आप समझें योंही कलाम मेरा॥
अच्छा मुझे सताओ जितना कि चाहो मैं भी।
समझूँगा गर है 'इन्शा' अल्लाह नाम मेरा॥

मैं ग़श हुआ कहा जो साक़ी ने मुझसे हँसकर।
यह सब्ज़ जाम तेरा और सुर्ख़ जाम मेरा॥
पूछा किसी ने मुझको उनसे कि कौन है यह।
तो बोले हँस के यह भी है इक ग़ुलाम मेरा॥
महशर की तिशनगी से क्या ख़ौफ़ सैद 'इंशा'।
कौसर का जाम देगा मुझको इमाम मेरा॥

❦ ❦ ❦

यह जो महंत बैठे हैं राधा के कुंड पर।
अवतार वन के गिरते हैं परियों के झुंड पर॥
ऐ मौसिमे ख़िज़ाँ लगे आने को तेरे आग।
बुलबुल उदास बैठी है इक सूखे डुंड पर॥
शिव के गले से पारवती जी लिपट गईं।
क्या ही वहार आज है वरम्हा के रुंड पर॥
राजा जी एक जोगी के चेले प ग़श हैं आप।
आशिक़ हुये हैं वाह अजव लुंड मुंड पर॥
'इंशा' ने सुन के क़िस्सए फ़रहाद यों कहा।
करता है इश्क़ चोट तो ऐसे ही मुंड पर॥

❦ ❦ ❦

✓ है ज़ोरे हुस्न से वह निहायत घमंड पर।
नामे ख़ुदा निगाह पड़े क्यों न हंड पर॥

तावीज़े लाल है कि न फिरिये घमंड पर।
इक नीला डोरा बाँधिये इस गोरे डंड पर॥
या रब सदा सुहाग की मेहँदी रचा करे।
पत्ते नुचे खुचे रहे आफ़त अरंड पर॥
यह वाड़ मेरी काट के दी किसने इस क़दर।
जो तुम रगड़ रहे हो सिरोही करंड पर॥
दो तीन दिन तो हो चुके अब फिर चलो वहीं।
फ़ीरोज़ शह की लाट के उस चौथे खंड पर॥
वह पहलवान सा व लवे जौ प डंड पेल।
बोला कि कोई ग़श हो तो ऐसे भुसंड पर॥
गुलबर्ग तर समझ के लगा बैठी एक चोंच।
बुलबुल हमारे ज़ख़्म जिगर के खुरंड पर॥
'इंशा' बदल के क़ाफ़िये रख छेड़-छाड़ के।
चढ़ बैठ एक और बखेड़े अकंड पर॥

* * *

मिला फिर आज हमको वह अजब अठखेलियों वाला।
भबूका बर्क़ शोला नूर का आतिश का परकाला॥

* * *

दिल में सौ लाख चुटकियाँ लीं।
देखा बस हमने प्यार तेरा॥

'इंशा' से न रूठ मत ख़फ़ा हो।
है वन्दए जाँ निसार तेरा॥

* * *

सुबह रुख़सार उसके नीले थे।
शव जो गुज़रा ख़याल बोसे का॥
गालियाँ आप शौक़ से दीजै।
रफ़ा कीजै मलाल बोसे का॥

* * *

ख़राबात की जब से लज़्ज़त पड़ी है।
छुटा बैठना मसजिदो खानक़ा का॥

* * *

रखते हैं कहीं पाँव तो पड़ता है कहीं और।
साक़ी तू ज़रा हाथ तो ले थाम हमारा॥
ऐ बादे सहर महफ़िले अहबाव में कहियो।
देखा है जो कुछ हाल तहे दाम हमारा॥

* * *

क्या ख़ुदा से इश्क़ की मैं रू नुमाई माँगता।
माँगता भी उससे तो सारी ख़ुदाई माँगता॥

* * *

ख़याल कीजिये क्या आज काम मैंने किया।
जब उनने दी मुझे गाली सलाम मैंने किया॥

जुनूँ यह आपकी दौलत हुआ नसीब मुझे।
कि नंगो नाम को छोड़ा य नाम मैंने किया॥
झिड़क के कहने लगे लग चले बहुत अब तुम।
कभी जो भूल के उनसे कलाम मैंने किया॥
किया ज़बानिप दिल गर बयाँ कि कहता है।
सनम को अपने ग़रज़ अब तो राम मैंने किया॥
तुम्हारे वास्ते तुम अपने दिल में ग़ौर करो।
कभी किसी से न हो जो मुदाम मैंने किया॥
मुक़ीमे कावए दिल जब हुआ तो ज़ाहिद को।
रवाना जानिबे बैतुलहराम मैंने किया॥
हवस यह रह गई साहब ने पर कभी न कहा।
कि आज से तुझे 'इंशा' .गुलाम मैंने किया॥

* * *

शफ़क़त से हाथ तो धर टुक दिल प मेरे ता हो।
यह आग सा दहकता सीने का दाग़ ठंडा॥

* * *

मिल गया सीने से सीना फिर यह कैसा इज़्तराब।
मर मिटे पर भी गया अपने न दिलका इज़्तराब॥
इश्क़ वह फल है कि जिसके तुख़्म हैं यह अश्क सुर्ख़।
बे .खुदी है मग़ज़ उसका और छिलका इज़्तराब॥

* * *

आये न रात आप जो अपने क़रार पर।
गुज़री क़यामत इस दिले उम्मीदवार पर॥

खिलवत में यों जो चाहिये कह लीजिये मुझे।
लोगों में लेकिन आपकी मेरी हँसी नहीं॥

हैफ़! पैयाम जवानी के चले जाते हैं।
हर घड़ी दिन की तरह हम तो ढले जाते हैं॥

है निहाँ लुत्फ़ो करम चीने जबीं की तह में।
हाँ छुपी साफ़ है इक उनकी नहीं की तह में॥

गर यार मै पिलाये तो फिर क्यों न पीजिये।
ज़ाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, मैं वली नहीं॥

क्या हँसी आती है मुझको हज़रते इन्सान पर।
फ़ेल बद तो ख़ुद करें लानत करें शैतान पर॥

दिल को ले भागी किधर हाथ से तेरे 'इंशा'।
कोई खिड़की भी तो इस गुम्बदे बे दर में नहीं॥

शेख़ो बरहमन दैरो हरम में ढूँढ़ते हो क्या ला हासिल।
मूँद के आँखें देखो तो है सारी ख़ुदाई सीने में॥

* * *

जी में क्या आ गया 'इन्शा' के य बैठ बैठे।
कि पसंद उसने किया आलमे तनहाई को॥

* * *

छेड़ने का तो मज़ा तब है कहो और सुनो।
बात में तुमतो ख़फ़ा हो गये तो और सुनो॥

* * *

हुये हैं ख़ाक सरेराह उसके हम 'इन्शा'।
बड़ा ग़ज़ब है जो यह भी फ़लक न देख सके॥

* * *

गालियाँ सुनके जी में आता है।
लीजे तेरी ज़बान में चुटकी॥

* * *

सतर मंसूर के लोहों से हुई यह तहरीर।
यानी सरदार नहीं वह जो सरेदार नहीं॥

* * *

नियाज़ो नाज़ के आलम में शब उनके कड़े बोले।
कि पाँवों पड़ के छूटोगे अगर तुम याँ कड़े बोले॥

मसहफ़ी

मसहफ़ी उपनाम; ग़ुलाम हमदानी नाम; पिता का नाम वली मुहम्मद; जन्म-स्थान अमरोहा; जन्म-संवत् लगभग १८००; मृत्यु-संवत् १८८० । लखनऊ में क़ब्रवासी हुये ।

मसहफ़ी ने कहाँ और किससे शिक्षा पाई ? यह अज्ञात है। कोई कोई कहते हैं कि ये अमानी के शागिर्द थे । इनके दीवानों से यह पता चलता है कि ये फ़ारसी भाषा के अच्छे जानकार थे और साहित्य का अध्ययन इन्होंने अच्छा किया था।

मसहफ़ी अमरोहा से दिल्ली आये। पर दिल्ली को लोग छोड़ छोड़ कर भाग रहे थे। ये भी वहाँ बहुत दिन नहीं टिक सके और सं० १८४२ में लखनऊ पहुँचे। लखनऊ में सुलेमान शिकोह का दरबार ही दिल्ली से भागे हुओं के लिये शरण का स्थान था। ये भी वहीं जा नौकर हुये। पहले कुछ दिनों तक ये सुलेमान शिकोह की ग़ज़लें दुरुस्त किया करते थे। जब इन्शा वहाँ पहुँचे, तब उनकी प्रतिभा के आगे इनकी प्रभा मंद पड़ गई। सुलेमान शिकोह इन्शा को अपनी ग़ज़लें दिखाने लगे। इनका मासिक वेतन भी घटा दिया गया।

इन्शा से इनकी ख़ूब चोंचें चला करती थीं। दोनों ने एक दूसरे पर गंदी गंदी गालियों की बौछार की है। लखनऊ में इनके सैकड़ों शागिर्द थे। वे भी उस्ताद का पक्ष लेकर इन्शा का

मज़ाक़ उड़ाया करते थे। पर इन्शा तो एक छँटे थे। इन्होंने मसहफ़ी की ऐसी ख़बर ली कि उनका सब रंग फीका पड़ गया।

एक दिन मसहफ़ी के शागिर्दों ने एक दल तैयार किया। दल इन्शा की निन्दात्मक कविताएँ पढ़ता हुआ शहर में निकला। इन्शा को एक दिन पहले से ही ख़बर हो चुकी थी। इन्शा तो एक चलते पुर्ज़े; उन्होंने उनके स्वागत की ख़ूब तैयारियाँ कीं। मिठाई, शरबत, पान, हार आदि मँगाकर वे तैयार थे। जब दल उनके मकान के पास आया, तब वे अपने मित्रों को साथ लेकर अगवानी को गये। सब को बड़े आदर से अपने मकान पर लाकर उन्होंने बड़ा स्वागत किया। इत्र लगाया। मिठाई, शरबत, पान और हार से सत्कार किया। अपनी निन्दा की ग़ज़लें सुनीं और वाह वाह कहकर ख़ूब उछले कूदे। जो बहुत ही अश्लील ग़ज़लें थीं, उन्हें दो दो बार सुना। मतलब यह कि ख़ूब ख़ातिर करके उस दल को विदा किया। दूसरे दिन इन्शा ने भी एक दल निकाला। कुछ लोग हाथी पर बैठे थे। कुछ अन्य सवारियों पर थे। सब मसहफ़ी की निन्दा के शेर पढ़ रहे थे। लड़के आसमान सिर पर उठाये फिरते थे। यह मसहफ़ी के शागिर्दों के दल का जवाब था। इससे मसहफ़ी की सारे शहर में बड़ी दिल्लगी हुई। दोनों ओर से इसी तरह की नोंक-झोंक होती रहती थी।

इन्शा गले में दुपट्टा रक्खा करते थे। जिसका एक छोर आगे लटकता था, दूसरा पीछे। इसको लक्ष्य करके महसफ़ी के एक शागिर्द 'मुन्तज़िर' ने यह मिसरा कहा—

बाँधी दुमे लंगूर में लंगूर की गरदन।

इन्शा भला कब चुप रहने वाले थे। उसी वक़्त उन्हों ने मसहफ़ी के सिर के सफ़ेद बाल और बुढ़ापे के गोरे रंग की ओर लक्ष्य करके कहा—

सफ़रः प ज़राफ़त के ज़रा शेख को देखो।
सर लून का मुँह प्याज का अमचूर की गरदन॥

मसहफ़ी के कुछ दाँत टूट गये थे। उन्होंने बुढ़ापे में शादी की थी। इसलिये दाँतों में मिस्सी लगाना अनिवार्य था। उनके मुंह को लक्ष्य करके इन्शा कहते हैं—

यों ख़ातिरे शरीफ़ में गुज़रा कि बज़्म में।
कुचला हुआ शरीफ़ा ग़ज़ल को बनाइये॥
ऐसे नजिस कसीफ़ क़वाफ़ी से नज़्म में।
दन्दाने रेख़्ता प फँफूँदी जमाइये॥
गर्दन का दख़ल क्या है सक़नक़ूर में भला।
साँडे की तरह आप न गरदन हिलाइये॥

इसी तरह के ख़ुराफ़ात दोनों ओर से बके जाते थे। मसहफ़ी बेचारे ग़ज़लें बेंचा भी करते थे। दो तीन तख़-

तियाँ पास धरी रहती थीं। मशायरे की तरह में ग़ज़लें लिख रखते थे। मशायरे के दिन लोग आते और आठ आने से एक रुपये तक देकर ग़ज़लें ले जाया करते थे और अपने नाम से पढ़ते थे। मसहफ़ी उनके नाम का मक़ता भी कर देते थे। इन्हों ने बुढ़ापे में शादी की थी। इनके एक साला था। वह ग़ज़लें उठा ले जाता और बेंच आता था। जो शेर बच रहते, उनमें से कुछ साला अपने लिये लेकर बाक़ी इन्हें लौटा जाता था। ये उन्हीं शेरों को स्वयं मशायरे में पढ़ते थे। अच्छे अच्छे शेर तो बिक जाते थे। बाक़ी नीरस रह जाते, जिन्हें सुनकर मशायरे में कोई दाद भी न देता था। एक मशायरे में तो मसहफ़ी ने दाद न मिलने से झुँझलाकर ग़ज़ल का काग़ज़ जमीन पर पटक दिया था।

एक मशायरे में मीर तक़ी भी मौजूद थे। मसहफ़ी ने एक ग़ज़ल पढ़ी। जिसके दो शेर ये हैं—

तनहा न व हाथों की हिना ले गई दिलको।
मुखड़े को छुपाने की अदा ले गई दिलको॥
याँ लाल .फुसूँ साज़ ने बातों में लगाया।
दे पेच उधर .ज़ुल्फ़ उड़ा ले गई दिलको॥

आख़िरी शेर सुनकर मीर तक़ी ने फ़रमाया—भई, ज़रा फिर तो पढ़ना। उनका इतना कहना हज़ार प्रशंसाओं से कम नहीं

था। मसहफ़ी ने मीर के इस अनुरोध को अपने लिये बड़ा गौरव समझा और कई बार उठ उठ कर सलाम किया।

मसहफ़ी के उर्दू में छः दीवान हैं। उनमें हज़ारों ग़ज़लें, क़सीदे, रुबाइयाँ और मसनवियाँ हैं। आवेहयात के लेखक के पास इनके सातवें और दो दीवान और थे, उनमें एक पर दीवान हफ़्तुम लिखा था। दूसरे दीवान में इंशा की निन्दा में लिखी गईं ग़ज़लों का संग्रह था। इनके सिवा मसहफ़ी की लिखी तीन पुस्तकें और भी हैं—तज़किरा शुअराय उर्दू, तज़किरा शुअराय फ़ारसी और दीवान फ़ारसी।

ये वृद्धावस्था में बहरे भी हो गये थे। इनके समकालीन इंशा, जुरअत और मीर हसन आदि थे। मसहफ़ी की अच्छी ग़ज़लें तो बिक गईं। जो छँटीछटाई थर्ड क्लास बाक़ी रहीं, वे मसहफ़ी की उस्तादी के उपयुक्त नहीं। यहाँ उनकी उन्हीं बची-खुची, रूखी-सूखी, तलछट ग़ज़लों के दीवान से कुछ अशआर उद्धृत किये जाते हैं—

दिन जवानी के गये मौसमे पीरी आया।
आबरू ख़्वाब है अब वक़्त, हक़ीरी आया॥
तावो ताक़त रहे क्या ख़ाक कि पेंज़ा के तईं।
हाकिमे ज़ोफ़ से फ़रमाने तग़ीरी आया॥

सबक़े नाला तो बुलबुल ने पढ़ा मुझ से वले।
न उसे क़ायदए ताज़ा सफ़ीरी आया॥
शायरी पर कभी अपनी जो गई अपनी नज़र।
ए ज़मीर अपने में उस वक़्त ज़मीरी आया॥
से सुलेमाँ! हो मुबारक तुझे य शाही व तख़्त।
तेरा आसफ़ भी बसामाने वज़ीरी आया॥
चश्म कम से न नज़र 'मसहफ़ी' ए ख़स्ता प कर।
वह अगर आया तो मजलिस में नज़ीरी आया॥

* * *

पीरी से हो गया यूँ इस दिल का दाग़ ठंडा।
जिस तरह सुबह होते कर दें चिराग़ ठंडा॥
सरगर्म सैरे गुलशन क्या ख़ाक हो कि अपना।
नज़ला से हो रहा है आपी दिमाग़ ठंडा॥
बुलबुल के गर्म नाला जब से सुने हैं उसने।
दीवारे गुलिस्ताँ पर बोले है ज़ाग़ ठंडा॥
सरसर से कम नहीं कुछ वह तेग़े तेज़ जिसने।
लाखों का कर दिया है दम में चिराग़ ठंडा॥
गर्मी की रुत है साक़ी और अश्के बुलबुलों ने।
छिड़काव से किया है सब सहने बाग़ ठंडा॥

क्या हम टुकड़ गदा हैं जो 'मसहफ़ी' य सोचें।
है गर्म उसका चूल्हा उसका उजाग़ ठंडा॥

सरे शाम उसने मुँह से जो रुखे नक़ाव उलटा।
न ग़रूव होने पाया वहीं आफ़ताव उलटा॥
मैं हिसाबे बोसा जी में कहीं अपने कर रहा था।
वह लगा मुझी से करने तलव और हिसाव उलटा॥
जो ख़फ़ा हुआ मैं जी में किसी बात पर शवे वस्ल।
सहर उठके मेरे आगे वही उसने ख़्वाव उलटा॥
व सवाले बोसा उसने मुझे रुक के दी जो गाली।
मैं अदव के मारे उसको न दिया जवाव उलटा॥
किसी मस्त की लगी है मगर उसके सर को ठोकर।
जो पड़ा है मैकदे में य ख़ुमे शराव उलटा॥

जो फिरा के उसने मुँह को वक़ज़ा नक़ाव उलटा।
इधर आसमान उलटा उधर आफ़ताव उलटा॥
जो ख़याल में किसू के शवे हिज्र सो गया हो।
न हो सुवह को इलाही कभी उसका ख़्वाव उलटा॥

साफ़ चोली से अयाँ है वदने सुर्ख़ तेरा।
नहीं छिपता तहे शवनम चमने सुर्ख़ तेरा॥

यही आलम है अगर उसका तो दिखला देगा।
बारिशे खूँ का समाँ पैरहने सुर्ख़ तेरा॥
ता कमर .खून शहीदों के बहे गलियों में।
जबसे पाजामा बना गुलबदने सुर्ख़ तेरा॥
'मसहफ़ी' .खुश हो कि माँगेगा तेरे क़ातिल से।
खूँ बहा रोज़े क़यामत कफ़ने सुर्ख़ तेरा॥

* * *

जो गुस्ताख़ाना कुछ उससे मैं बोला।
तो बस अब्रू ने तेग़ा वहीं तोला॥
चुने आशिक़ न क्यों उसके ममोले।
कि चश्मे शोख है उसकी ममोला॥
न मारे दस्तो पा ता उसका बिसमिल।
इलाही मार जावे उसको झोला॥
लब उस गुल के हैं जामे बादए लाल।
किसी ने उनमें आकर ज़हर घोला॥
य वह गुलशन है जिसमें ग़म के मारे।
तबस्सुम से कली ने मुँह न खोला॥
कहीं मिलते हैं ऐसे 'मसहफ़ी' यार।
न आवे दिल के मरने का मलोला॥

* * *

निगाहे लुत्फ़ के करते ही रंगे अंजुमन विगड़ा।
मुहब्बत में तेरी हमसे हरेक अहले वतन विगड़ा॥
कुछ उसकी वजा विगड़ी कुछ है वह पैमाँ शिकन विगड़ा।
य सजधज है तो देखोगे ज़माने का चलन विगड़ा॥
,खुदा कहता था रोज़े हश्र मैं तुझ से समझ लूँगा।
तेरे तैशा से गर शीरीं का नक़्श पे कोहकन विगड़ा॥
तेरी मिज़गाँ की रावत चढ़ गई जव उन प लड़ने को।
पड़ी पूना के अन्दर खलवली सारा दकन विगड़ा॥
वुरी सूरत से रहना नंग है दुनिया में इंसाँ को।
व गड़ जाता है ,खुद जीता जो कोढ़ी का वदन विगड़ा॥
नहीं तक़सीर कुछ दरज़ी की इसमें 'मसहफ़ी' हरगिज़।
हमारी ना दुरुस्ती से वदन की पैरहन विगड़ा॥

न गया कोई अदम को दिले शादाँ लेकर।
याँ से क्या क्या न गये हसरतो आरमाँ लेकर॥
वाग़ वह दश्ते जुनूँ था कि कभी जिसमें से।
लालवो गुल गये सावित न गरेवाँ लेकर॥
अब्र की तरह से कर देवेंगे आलम को निहाल।
हम जिधर जावेंगे यह दीदए गिरियाँ लेकर॥
रंज पर रंज जो देने की है ,खू क़ातिल को।
साथ आया है वहम तेग़ो नमकदाँ लेकर॥

आँख सीधी नहीं करता कि मुक़ाबिल हो निगाह।
आरसी नाज़ से वह देखे है शरमाये हुये॥
उसके कूचे से जो उठ आते हैं हम दीवाने।
फिर उन्हीं पाँवों चले जाते हैं बौराये हुये॥

❦ ❦ ❦

पीरी में और भी हुये ग़ाफ़िल हज़ार हैफ़!
वे इख़्तियार ले गई हमको य ख़्वाब सुबह॥

❦ ❦ ❦

एक दिन रो के निकाली थी वहाँ कुलफ़ते दिल।
अब तलक दामने सहरा है ग़ुबार आलूदह॥

❦ ❦ ❦

जब से आईना रू है तिफ़्ले हज्जाम।
नहीं बिन देखे उसके दिल को आराम॥

❦ ❦ ❦

जो देखी उँगलियाँ वह गोरी गोरी।
बना ख़ुरशेद पानी की कटोरी॥

नज़ीर

मियाँ नज़ीर आगरा (अकबराबाद) के ताजगंज महल्ले के रहनेवाले थे। इनका जन्म सं० १७९७ के आसपास हुआ। सं० १८७७ के लगभग इनका देहान्त हुआ और ये अपने महल्ले ताजगंज में ही गाड़े गये।

मियाँ नज़ीर मकतब में लड़के पढ़ाया करते थे। पेशवा जब आगरे में नज़रबंद थे, तब बहुत दिनों तक नज़ीर उनके लड़कों को पढ़ाने जाया करते थे। आगरे के माईथान मुहल्ले में ये सेठों और महाजनों के लड़कों को भी पढ़ाने जाया करते थे। उसीसे इनकी जीविका चलती थी। कहते हैं कि पेशवा ने नज़ीर को एक छोटी सी घोड़ी दी थी। उसी घोड़ी पर चढ़-कर नज़ीर लड़कों को पढ़ाने, मित्रों से भेंट मुलाकात करने और सौदा-सुलुफ़ ख़रीदने बाज़ार जाया करते थे। शहर के लड़कों से इनकी ख़ूब बनती थी। जब ये घर से निकलते तो लड़कों का झुंड इनके साथ लग जाता था। लड़कों के लिये ये छोटी छोटी और सरल कविताएँ रच देते थे। जिसे लड़के गली-कूचे में गाते फिरते थे। आगरे में ये इतने लोकप्रिय थे कि हर साल होली के अवसर पर इनकी क़ब्र पर मेला लगा करता था। लोग वहाँ जाते, जलसे में शरीक होते और रतजगा

करके इनकी कविता का पारायण किया करते थे। आजकल वह मेला बंद हो गया है।

नज़ीर वेदान्ती थे। सूफ़ी धर्म के अनुयायी थे। मुसलमान होकर भी इन्होंने हिन्दू देवी देवताओं की प्रशंसा में कविताएँ लिखी हैं।

नज़ीर जनता के कवि थे। इन्होंने किसी बादशाह या राजा रईस की प्रशंसा में एक पंक्ति भी नहीं लिखी। न ये लोभी थे, न ख़ुशामदी। बल्कि अपनी अवक़ात के मुक़ाबले में ये एक दानवीर थे। एक दिन मकतब से मासिक वेतन लेकर घर लौट रहे थे। किसी ने अपनी कन्या के विवाह के लिये धन की सहायता माँगी। नज़ीर ने, जो कुछ पास था, सब दे डाला। आगरे के लोग इनको साधु के समान मानते थे। इनकी कविताएँ हिन्दू और मुसलमान दोनों बड़े चाव से पढ़ते हैं। ऐसा प्रायः देखा गया है कि मुसलमान फ़क़ीर जब किसी हिन्दू को देखते हैं, तब नज़ीर का यह पद्य गाने लगते हैं—

क्या क्या कहूँ मैं कृश्न कन्हैया का बालपन।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥

और जब किसी मुसलमान को देखते हैं, तब नज़ीर का का यह पद्य गाने लगते हैं—

गर दिल की सफ़ा चाहे तो कलमे को पढ़ा कर।
यह कलमा वह कलमा है कि दिन रात ज़पा कर॥

शाहबाज़ साहब औरंगाबादी ने अपने दबिस्ताने नज़ीर की भूमिका में लिखा है—

"यह तो मशहूर है कि नज़ीर मुल्ला थे और मकतब पढ़ाया करते थे। नज़ीर गो देखने में बहुत मुनकसिर और मुतवाज़अ थे और ख़ाकसारी सिवा ज़मीन के आसमान की तरफ़ नज़र उठाकर भी न देखते थे, लेकिन उनके ख़यालात हमेशा अर्श ही पर रहते थे। हरचन्द उनके मकतब में मामूली लड़के होते थे। मगर अपनी बलन्द ख़याली से उनको आलमे कुदूस के तलाज़मे दिनरात दस्तबस्ता नज़र आते थे।"

"नज़ीर हक़ीक़त में अपने वक्त़ के रिफ़ार्मर थे और सैयद मग़रबी से कहीं बढ़कर थे। गो उन्होंने सदरूस्सदूरी नहीं की, इब्तदा से इन्तहा तक महवे इसलाह ज़रूर रहे। गो अलीगढ़ कालिज की तरह उन्होंने बज़ाहिर कोई क़ौमी मदरसा क़ायम नहीं किया, मगर मानियन उनका दबिस्तान रफ़ीउश्शान ज़रूर था और हनोज़ है। अलीगढ़ कालिज मुमकिन है ज़माने के इनक़िलाब से मादूम हो जावे, मगर दबिस्ताने नज़ीर जब तक ज़बाने उर्दू बाक़ी है, दुनिया से मादूम नहीं हो सकता। यह वह कालिज है, जिसका बुनियादी पत्थर नज़ीर के हकी-

माना दिल ने रक्खा, जिसका मसाला नज़ीर के शायराना दस्तों ने फ़राहम किया, जिसकी तामीर शोहरते आम ने की, और जिसकी मरम्मत मक़बूलिये अवाम के ज़रिये से बराबर क़यामत तक रहेगी। यह वह कालिज है जिसकी क्लासें दिन रात खुली हैं; जिसके प्रोफ़ेसर हर वक्त अपनी ड्यूटी पर हाज़िर हैं। जहाँ लेकचरों का सिलसिला कभी मुनक़िता नहीं होता और सब से बड़ी बात यह कि जहाँ तालिबइल्म हर मज़हब व मिल्लत के बिला फ़र्क़ तालीम पाते हैं। मुबारक हैं वह लोग जो इस कालिज का कोर्स पूरा करके इख़लाकी युनिवर्सिटी का सब से आला और बकारआमद पास हासिल करते हैं"।

फ़ैलन साहब का मत है कि—

"योरपीय दृष्टि से हिन्दुस्तानी में नज़ीर ही एकमात्र कवि कहे जा सकते हैं। नज़ीर में वह सब गुण थे जो किसी प्रतिभाशाली पुरुष में होते हैं। उनका काव्य ही उनका जीवन-चरित्र है। वह वास्तव में बड़े स्वतन्त्र थे और भाग्य के भले या बुरे किसी चक्र की परवा न करते थे। उन्होंने कभी अपनी रचनाओं के संग्रह करने की परवा न की। जिस किसी ने माँगा, चाहे वह मित्र हो या शिष्य, आपने उसे दे डाला। यही एकमात्र कवि थे, जिन्होंने बच्चों की ममता पर कविता की है और दीन हीन अभागे और पीड़ित लोगों के साथ सहानुभूति

प्रकट की है। नज़ीर ने मातृभाषा की वह सेवा की, जो अंग्रेज़ी में शेक्सपियर और चासर ही कर सके।"

एक अंग्रेज़ की तो यह राय है, दूसरे अंग्रेज़ सर जार्ज ग्रियर्सन का कहना है कि—

"यद्यपि नज़ीर की रचना एक विशेष प्रकार की रुचि वाले पाठकों में आदरणीय है, पर तुलसी, सूर, और जायसी तथा उसी समय के अन्य धुरंधर कवियों की कविताओं की तरह सर्वसाधारण में ग्राह्य नहीं। साधारण बोल-चाल में होने पर भी उनकी कविता ऐसी अश्लील है कि उसको अंग्रेज़ी के शिष्ट और शिक्षाप्राप्त लोग पढ़ने के योग्य भी नहीं समझते।"

दोनों अंग्रेज़ों की रायें किसी हद तक सही हैं। पर दोनों ने अपने अपने कथन में अत्युक्ति से काम लिया है। नज़ीर की मातृभाषा की सेवा शेक्सपियर और चासर के जोड़ की नहीं कही जा सकती। उसी तरह उनकी रचना का अधिकांश ऐसा है जो शिष्ट और शिक्षा प्राप्त सज्जनों के सर्वथा पढ़ने योग्य है। हाँ, कहीं कहीं इतना अश्लील भी है, जो नज़ीर के कीर्ति-चन्द्र का कलंक है। रागसागरोद्भव और रागकल्पद्रुम में नज़ीर की कविता का जो अंश छपा है वह पुस्तक प्रेणता की रुचि-विशेष का द्योतक है, न कि नज़ीर की कविता का दिग्द

र्शन। उर्दू कवियों में तो प्रायः सब ने बेहद खुली हुई अश्लील बातें कही हैं। नज़ीर में भी उनकी कुछ बू आ गई है।

नज़ीर ने हिन्दुओं के प्रति जो सद्भाव प्रदर्शन किया है, वह उर्दू-साहित्य में एक दम नई बात है। नज़ीर के न पहले और न पीछे, किसी मुसलमान कवि ने हिन्दुओं के देवी देवताओं, त्योहारों और मेलों ठेलों के सम्बन्ध में ऐसी ललित सर्वप्रिय रचना की जिनसे दोनों जातियों में सद्भाव बढ़ता। नज़ीर का यह प्रयत्न बहुत प्रशंसनीय था, जिसकी ओर अंग्रेज़ समालोचकों का ध्यान सबसे पहले जाना चाहिये था।

नज़ीर ने सब रसों में कविताएँ की हैं। उर्दू के अन्य प्रसिद्ध कवियों ने फ़ारसी कवियों का अनुसरण किया है। पर नज़ीर ने अपना रास्ता स्वयं चुना और वे किसी के पीछे न लगे। आश्चर्य इस बात का है कि आवेहयात के विद्वान् लेखक प्रोफ़ेसर आज़ाद ने भी नज़ीर की जीवनी अपनी पुस्तक में नहीं दी। क्या इसका कारण यह तो नहीं कि नज़ीर ने "कृष्ण कन्हैया का बालपन" लिखा था? या उन्होंने आशिक़ माशूक़ों की आह-ऊह और चुलबुलाहट की कविता कम की है?

जो हो, नज़ीर अपने ढंग के उर्दू के एक ही कवि थे। हम उर्दू कवियों में इनका होना ग़नीमत समझते हैं। नज़ीर ने अपने समय के प्रायः प्रत्येक विषय पर कविताएँ लिखी हैं। इनकी

कविताएँ अलग अलग छोटी छोटी पुस्तकों के आकार में आदमी नामा, रोटी नामा, हंस नामा, जोगी नामा आदि नामों से बाज़ार में बिकती हैं।

यहाँ नज़ीर की कुछ कविताएँ संक्षिप्त रूप में, नमूने के तौर पर दी जाती हैं—

श्रीकृष्ण की बाल-लीला

यारो सुनो य दधि के लुटैया का बालपन।
औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन।
मोहन सरूप नृत्य करैया का बालपन।
बन बन के ग्वाल गौवें चरैया का बालपन।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ १॥

ज़ाहिर में सुत वो नन्द जसोदा के आप थे।
वरना वो आपी माई थे और आपी बाप थे।
परदे में बालपन के ये उनके मिलाप थे।
जोती-सरूप कहिए जिन्हें सो वो आप थे।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ २॥

उनको तो बालपन से न था काम कुछ ज़रा।
संसार की जो रीत थी उसको रखा बजा।
मालिक थे वह तो आपी उन्हें बालपन से क्या।
वाँ बालपन जवानी बुढ़ापा सब एक था।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ ३॥

बाले हो बिर्जराज जो दुनियाँ में आगये।
लीला के लाख रङ्ग तमाशे दिखा गये।
इस बालपन के रूप में कितनों को भा गये।
यक यह भी लहर थी जो जहाँ को जता गये।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ ४॥

सब मिलके यारो कृष्ण मुरारी की बोलो जै।
गोविन्द छैल कुञ्जबिहारी की बोलो जै।
दधि चोर गोपीनाथ बिहारी की बोलो जै।
तुम भी नज़ीर कृष्ण मुरारी की बोलो जै।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कहैन्या का बालपन॥ ५॥

काली-मर्दन

तारीफ़ करूँ मैं अब क्या क्या उस मुरली-धुन के बजैया की।
नित सेवा-कुञ्ज फिरैया की औ वन-वन गऊ चरैया की।
गोपाल विहारी बनवारी दुख-हरना मेहर-करैया की।
गिरिधारी सुन्दर श्यामवरन औ पंदड़ जोगी भैया की।
यह लीला है उस नन्दललन मनमोहन जसुमत छैया की॥
रख ध्यान सुनो दण्डवत करो जै बोलो कृष्ण कन्हैया की॥१॥

यक रोज़ खुशी से गेंद तड़ीकी मोहन जमुना तीर गये।
वाँखेलन लागे हँस हँस के यह कह कर ग्वाल औ बालन से।
"जो गेंद तड़ी जा जमुना में फिर जाकर लावे जो फेंके"।
वह आपी अन्तरजामी थे क्या उनका भेद कोई जाने।
यह लीला है उस नन्दललन मनमोहन जसुमत छैया की॥
रख ध्यान सुनो दण्डवत करो जै बोलो कृष्ण कन्हैया की॥२॥

वाँ कृष्ण मदनमोहन ने जब सब ग्वालन से यह बात कही।
औ आपी ने झट गेंद उड़ा उस कालीदह में फैंक दई।
फिर आपी झट से कूद पड़े औ जमुनाजी में डुबकी ली।
सब ग्वाल सखा हैरान रहे फिर भेद न समझे इक रत्ती।
यह लीला है उस नन्दललन मनमोहन जसुमत छैया का॥
रख ध्यान सुनो दण्डवत करो जै बोलो कृष्ण कन्हैया की॥३॥

जिस दह में कूदे मनमोहन वाँ आन छिपा था यक काली।
सर पाँव से उनके आ लिपटा उस दह के भीतर देखते ही।
फ़न मारे पहुँचा ज़ोर किये औ पहरों तक वाँ कुश्ती की।
फुंकारें लीं बल पेंच किये पर कृष्ण रहे वाँ हँसते ही।
यह लीला है उस नन्दललन मनमोहन जसुमत छैया की॥
रख ध्यान सुनो दण्डवत करो जै बोलो कृष्ण कन्हैया की॥४॥
उस दह में सुन्दर श्याम वरन उस काली को जब नाथ चुके।
ले नाथ को इसकी हाथ अपने हरि फन के ऊपर बैठ गए।
कर अपने बस में काली को मुसक्याने मुरली धरे धरे।
जब बाहर आये मनमोहन सब ख़ुश हो जै जै बोले उठे।
यह लीला है उस नन्दललन मनमोहन जसुमत छैया की।
रख ध्यान सुनो दण्डवत करो जै बोलो कृष्ण कन्हैया की॥५॥

———:o:———

रुक्मिणी-हरण-लीला

सुकदेव ने कथा य परीछत से है कही।
उसने सुनी तो उसका हुआ दिल बहुत ख़ुशी।
फिर भीषम एक राजा मुदर की जो मुंदरी।
थे पाँच बेटे उसके बहुत सुन्दर औ बली।
घर बार उसका दौलतो हशमत से था भरा॥१॥

बेटा बड़ा था उसका सो उसका रुकम था नाम।
औ रुक्मिनी थी बेटी बहुत ख़ूब .ख़ुश ख़िराम।
रूप औ सरूप उसमें थे सर पाँव से तमाम।
सखियों सहेलियों में व रहती थी .ख़ुश ख़िराम।
गहना लिबास तन पै रहा था झमक रहा॥२॥

नारद मुन यक दिन आये जहाँ पर थी रुक्मिनी।
औ उससे बात उन्होंने वो श्रीकृष्ण की कही।
लीला सुनाई वह सभी रूप औ सरूप की।
जब रुक्मिनी ने ख़ूबी वो श्रीकृष्ण की सुनी।
सुनते ही उनके हो गई जी जान से फ़िदा॥३॥

छिपती नहीं छिपाये से सूरत जो चाह की।
सखियाँ सहेलियाँ जो थीं औ लड़कियाँ सभी।
माँ बाप रुक्मिनी के भी औ चारों भाई भी।
बर रुक्मिनी के हों वही थे चाहते यही।
पर वह रुकम जो था सो पसन्द उसका यह न था॥४॥

रखता था नाम उसका जो जदुवंस है जनम।
काँधे प उसके कामरी रहती है दम-ब-दम।
गौवें चराता फिरता है बन बन में रख क़दम।
दौलत में और ज़ात में उससे बड़े हैं हम।
सिसुपाल चंदेरी का जा बर हो तो है भला॥५॥

यह बातें वाँ रुकम से जो सुनती थी रुक्मिनी।
बेकल बहुत वो होती थी और दिल में कुढ़ती थी।
जब बेकली बहुत हुई और रह सका न जी।
एक चिट्ठी अपने हाल की हरि के तईं लिखी।
बाह्मन के हाथ द्वारका में दी वहीं भिजा॥६॥

"ए बिर्जराज कृष्ण मनोहर मदनगोपाल!
मैं दरशनों की आप के मुश्ताक़ हूँ कमाल।
दिन रात तुमसे मिलने को रहती हूँ मैं निढाल।
दरशन से अपने मुझको भी आकर करो निहाल।
सब ध्यान में तुम्हारे ही रहता है मन लगा॥७॥

"ए कृष्ण जी तुम आओ कि अब वक्त है यही।
अपने चरन से लाज रखो मेरी इस घड़ी"।
हरि ने वो चिट्ठी पढ़ के मँगा रथ वो जगमगी।
होकर सवार जल्द चले वाँ से कृष्ण जी।
बाम्हन भी अपने साथ वां रथ में लिया बिठा॥८॥

ज्यूँ ज्यूँ वो हरि के आने में वाँ देर होती थी।
कोठे प अपने रुक्मिनी वाँ चढ़ के रोती थी।
तकती थी हरि की राह न खाती न सोती थी।
बेकल की तरह फिरती थी औ होश खोती थी।
कुछ रुक्मिनी से रोने सिवा बन न आता था॥९॥

इसमें मुकन्दपुर के जो हरि आये अनक़रीब।
झलके कलस वो रथ के हुई रोशनी अजीब।
.खुश रुक्मिनी का जी हुआ ज्यूँ गुल से अंदलीव।
बोली .खुशी हो मन में कि "जागे मेरे नसीब"।
बाम्हन ने भी वो आने को हर के दिया बता ॥ १० ॥

बन ठन के वह .खुशी से जो पूजा के तईं चली।
साथ उसके नारियाँ चलीं गाती बहुत .खुशी।
सुन्दर की जाती पाँवों की पायल जो बाजती।
रूप औ सरूप उसका बयाँ क्या करे कोई।
पहुँची .खुशी से वाँ जहाँ थी पूजने की जा ॥ ११ ॥

भीषम जो हरि के लेने को आया बहुत .खुशी।
दरशन जो हरि के पाए तो बिनती बहुत सी की।
इतने में रुक्मिनी जो थी हरि के लिए खड़ी।
दरशन जो पाए आ गया बस उसके जी में जी।
हरि ने पकड़ के हाथ लिया रथ में वाँ बिठा॥ १२ ॥

सिसुपाल अपनी लेके कटक आ गया वहाँ।
बान उसके हरि ने काट भगाया उसे निदाँ।
आया रुकम जो बान धनुक लेके औ सिनाँ।
उसको भी हरि ने बाँध लिया काट उसके बाँ।
बिनती से रुक्मिनी के दिया उसका जी छुड़ा॥ १३ ॥

सिसुपाल औ रुकम का हुआ जब ये हाल वाँ।
बलदेव जी ने उनके कटक सब भगाए वाँ।
ले रुकमिनी को हरि हुए फिर द्वारका रवाँ।
जब आन पहुँचे .खुश हुए सब नर औ नारियाँ।
देखा जमाल उनका तो पाया बहुत भला ॥ १४॥

होली

जब फागुन रङ्ग झमकते हों तब देख बहारैं होली की।
और डफ़ के शोर खड़कते हों तब देख बहारैं होली की।
परियों के रङ्ग दमकते हों तब देख बहारैं होली की।
.खुम शीशे जाम झलकते हों तब देख बहारैं होली की।
महबूब नशे में झुकते हों तब देख बहारैं होली की ॥१॥

हो नाच रङ्गीली परियों का बैठे हों गुलरू रङ्ग भरे।
कुछ भीगी तालैं होली की कुछ नाज़ अदा के ढङ्ग भरे।
दिल भूले देख बहारों को और कानों में आहङ्ग भरे।
कुछ तबले खड़कें रङ्ग भरे कुछ ऐश के दम मुँहचंग भरे।
कुछ घुँघरू ताल झनकते हों तब देख बहारैं होली की ॥२॥

औ एक तरफ़ दिल लेने को महबूब गवैयों के लड़के।
हर आन घड़ी गत भरते हों कुछ घट बढ़ के कुछ बढ़ बढ़ के।
कुछ नाज़ जतावें लड़ लड़के कुछ होली गावें अड़ अड़ के।
कुछ लचके शोख़ कमर पतली कुछ हाथ चले कुछ तन फड़के।

कुछ काफ़िर नैन मटकते हों तब देख बहारें होली की ॥३॥
सामान जहाँ तक होता है इस इशरत के मतलूबों का।
वह सब सामान मुहैया हो औ बाग़ खिला हो ख़ूबों का।
हर आन शराबें ढलती हों और ठठ्ठ हो रङ्ग के डूबों का।
इस ऐश मज़े के आलम में एक ग़ोल खड़ा महबूबों का।
कपड़ों पर रङ्ग छिड़कते हों तब देख बहारें होली की ॥४॥
गुलज़ार खिले हों परियों के और मजलिस की तैयारी हो।
कपड़ों पर रङ्ग के छींटों से .ख़ुश रंग अजब गुलकारी हो।
मुँह लाल गुलाबी आँखें हों और हाथों में पिचकारी हो।
उस रंग भरी पिचकारी को अँगिया पर तक कर मारी हो।
सीनों से रंग ढलकते हों तब देख बहारें होली की ॥५॥

ब्रह्मानन्द

हैं आशिक़ औ माशूक़ जहाँ वाँ शाह वज़ीरी है बाबा।
नै रोना है नै धोना है नै दर्दे असीरी है बाबा॥
दिन रात बहारें चुहलें हैं और ऐश सफ़ीरी हैं बाबा।
जो आशिक़ हुए सो जानें हैं यह भेद फ़क़ीरी है बाबा॥
हर आन हँसी हर आन .ख़ुशी हर वक्त़ अमीरी है बाबा।
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥१॥
कुछ .ज़ुल्म नहीं कुछ ज़ोर नहीं कुछ दाद नहीं फ़रियाद नहीं।
कुछ क़ैद नहीं कुछ बन्द नहीं कुछ जब्र नहीं आज़ाद नहीं।

शागिर्द नहीं उस्ताद नहीं वीरान नहीं आबाद नहीं।
हैं जितनी बातें दुनियाँ की सब भूल गये कुछ याद नहीं॥
हर आन हँसी हर आन .खुशी हर वक़ अमीरी है बाबा॥
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥२॥

जिस सिम्त नज़र कर देखे हैं उस दिलवर की फुलवारी है।
कहीं सब्ज़ी की हरियाली है कहीं फूलों की गुलकारी है।
दिन रात मगन .खुश बैठे हैं और आस उसी की भारी है।
बस आप ही वह दातारी है और आप ही वह भण्डारी है।
हर आन हँसी हर आन .खुशी हर वक़्त अमीरी है बाबा॥
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥३॥

हम चाकर जिसके हुस्न के हैं वह दिलवर सब से आला है।
उसने ही हमको जी बख़्शा उसने ही हमको पाला है॥
दिल अपना भोला भाला है औ इश्क़ बड़ा मतवाला है।
क्या कहिये और नज़ीर आगे अब कौन समझने वाला है॥
हर आन हँसी हर आन .खुशी हर वक़्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए तब क्या दिलगीरी है बाबा॥४॥

बंजारा नामा

टुक हिर्स हवा को छोड़ मियाँ मत देस बिदेस फिरे मारा।
क़ज़्ज़ाक़ अजल का लूटे है दिन रात बजाकर नक़्क़ारा॥

क्या बधिया भैंसा बैल शुतर क्या गोनी पल्ला सर भारा।
क्या गेहूँ चावल माठ मटर क्या आग धुआँ औ अङ्गारा॥
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा॥१॥

गर तू है लक्खी बञ्जारा औ खेप भी तेरा भारी है।
ऐ ग़ाफ़िल तुझसे भी चढ़ता यक और बड़ा व्यापारी है॥
क्या शक्कर मिसरी क़न्द गरी क्या साँभर मीठा खारी है।
क्या दाख मुनक़्क़ा सोंठ मिरिच क्या केसर लौंग सुपारी है॥
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा॥२॥

जब चलते चलते रस्ते में यह गौन तेरी ढल जाएगी।
यक बधिया तेरी मिट्टी पर फिर घास न चरने पाएगी॥
यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सों में बट जाएगी।
धी पूत जमाई बेटा क्या बञ्जारन पास न आएगी॥
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा॥३॥

क्या जी पर बोझ उठाता है इन गोनों भारी भारी के।
जब मौत का डेरा आन पड़ा फिर दोनों हैं व्यापारी के॥
क्या साज़ जड़ाऊ ज़र ज़ेवर क्या गोटे थान किनारी के।
क्या घोड़े ज़ीन सुनहरी के क्या हाथी लाल अमारी के॥
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा॥४॥

मग़रूर न हो तलवारों पर मत भूल भरोसे ढालों के।
सब पट्टा तोड़ के भागेंगे मुँह देख अजल के भालों के॥

क्या डिब्बे मोती हीरों के क्या ढेर ख़ज़ाने मालों के।
क्या बकचे ताश मुशज़्जर के क्या तख़्ते शाल दुशालों के॥
सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बञ्जारा॥५॥

जोगी

रात दिन हिज्र में जोगी सा बना फिरता हूँ।
बेक़रारी से तेरे नामकी जपता सुमरन॥
दोश पर बारे अलम कानों में ग़म के मुँदरे।
अश्कों के तार गले में पड़े सीली के नमन॥
दम अदम आह की पोंगी से बजाना य सदा।
देखिए कौन से दिन हर हमें देंगे दरशन॥
कोई कहता है कि जोगी जी किधर को आये।
सच कहो कौन सी नगरी में तुम्हारा है वतन॥
तुम तो आते हो नज़र हमको नये से जोगी।
सच कहो जोग लिया तुमने य किसके कारन॥
गर गुरू हुक्म हो बनवादें तुम्हारा अस्थल।
शहर में बाग़ में या बर लबे दरियाए जुमन॥
या कि मथुरा जो पसंद आए तो वाँ जगह लें।
या खदिर बन में महाबन में हो या वृन्दावन॥
तब तो सुन सुन के कहा मैंने य उससे बाबा।
तुझको क्या काम फ़क़ीरों से य करना अनबन॥

औ वतन पूँछ हमारा तो य सुन रख बावा।
या गली दोस्त की या यार के घर का आँगन॥
उस के कूचे में सदा मस्त रहा करते हैं।
वही बस्ती वही नगरी वही जंगल वही बन॥
जब से उस शोख़ के फन्दे में फँसे टूट गए।
जितने थे मज़हबो मिल्लत के जहाँ में बन्धन॥
नाम को पूँछो तो है नाम हमारा आशिक़।
सब से आज़ाद हुए यार का लेकर दामन॥
पंथ को पूछे तो जोगी न जनम के न अतीत।
इश्क़ के मेल में हम प्रेम का रखते हैं बरन॥
गर रहें जीते तो जीने की नहीं फ़िक्र हमें।
और मर जायँ तो हरगिज़ नहीं परवाय कफ़न॥
हम में औ जोगी की सूरत में बड़ा फ़र्क़ है जान।
कहाँ जोगी की अदा औ कहाँ आशिक की फबन॥
ख़ाक है यार के कूचे की भभूत अब हर आन।
हमने भी राख बनाई है जला कर तन मन॥
और अस्थल के बनाने की कही तू ने जा बात।
यह बखेड़ा वो करे जिसके कने हो कुछ धन॥
हम फ़क़ीरों को भला काम है क्या अस्थल से।
वही अस्थल है जहाँ मार के बैठे आसन॥

जा पड़ें याद में उस शोख़ की जिस बस्ती में।
वही गोकुल है हमें और वही वृन्दावन॥

कलजुग

दुनिया अजब बाज़ार है, कुछ जिंस याँ की साथ ले।
नेकी का बदला नेक है, बद से बदी की बात ले॥
मेवा खिला मेवा मिले, फल फूल दे फल पात ले।
आराम दे आराम ले, दुख दर्द दे आफ़ात ले॥
कलजुग नहीं करजुग है यह, याँ दिन को दे औ रात ले।
यह ख़ूब सौदा नक़्द है, इस हाथ दे उस हाथ ले॥१॥
काँटा किसी को मत लगा, गो मिस्ले गुल फूला है तू।
वह तेरे हक़ में तीर है, किस बात पर भूला है तू॥
मत आग में डाल और को यक घास का पूला है तू।
सुन रख ये नुक़ता बे ख़बर, किस बात पर भूला है तू॥
कलज़ुग नहीं करज़ुग है यह, याँ दिन को दे और रात ले।
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है, इस हाथ दे उस हाथ ले॥२॥
याँ ज़हर दे तो ज़हर ले, शक्कर में शक्कर देख ले।
नेकों को नेकी का मज़ा, मूज़ी को टक्कर देख ले॥
मोती दिये मोती मिले, पत्थर में पत्थर देख ले।
गर तुझ को यह बावर नहीं, तो तू भी गिर कर देख ले॥
कलज़ुग नहीं करज़ुग है यह, याँ दिन को दे औ रात ले।
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है इस हाथ दे उस हाथ ले॥३॥

अपने नफ़े के वास्ते मत और का नुक़सान कर।
तेरा भी नुक़साँ होएगा, इस बात ऊपर ध्यान कर॥
खाना जो खा तो देखकर, पानी जो पी तो छान कर।
याँ पाँव को रख फूँक कर और ख़ौफ़ से गुज़रान कर।
कलजुग नहीं करजुग है यह,याँ दिन को दे और रात ले॥
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है, इस हाथ दे उस हाथ ले॥४॥

बरसात

बादल हवा के ऊपर हो मस्त छा रहे हैं।
झड़ियों की मस्तियों से धूमें मचा रहे हैं।
पड़ते हैं पानी हरजा जल थल बना रहे हैं।
गुलज़ार भीगते हैं सब्ज़े नहा रहे हैं।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें॥२॥

सब्ज़ोंकी लहलहाहट कुछ अब्र की सियाही।
और छा रही घटाएँ सुर्ख़ और सफ़ेद काही।
सब भीगते हैं घर घर ले माहताब माही।
यह रङ्ग कौन रङ्गे तेरे सिवा इलाही।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें॥३॥

जो ख़ुश हैं वह ख़ुशी में काटे हैं रात सारी।
जो ग़म में हैं उन्हीं पर गुज़रे है रात भारी।

सीनों से लग रही हैं जो हैं पिया की प्यारी।
छाती फटे है उनकी जो हैं विरह की मारी।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥४॥

गाती हैं गीत कोई झूले पै करके फेरा।
"मारूजी आज कीजै याँ रैन का बसेरा" ॥
हैं ख़ुश किसी को आकर है दर्दो ग़म ने घेरा।
मुँह ज़र्द बाल बिखरे और आँखों में अँधेरा।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥५॥

छत गिरने का किसी जा ग़ुल शोर हो रहा है।
दीवार का भी धड़का कुछ होश खो रहा है॥
दर दर हवेली वाला हर आन रो रहा है।
मुफ़लिस सो झोंपड़े में दिल शाद सो रहा है॥
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥६॥

मुद्दत से हो रहा है जिनका मकाँ पुराना।
उठके है उनको मेंह में हर आन छत पै जाना।
कोई पुकारता है "टुक मोरी खोल आना।"
कोई कहे है "चल भी क्यों हो गया दिवाना।"
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥७॥

कोई पुकारता है "लो यह मकान टपका।
गिरती है छत की मिट्टी और सायबान टपका।

छलनी हुई अटारी कोठा निदान टपका।
बाक़ी था एक ओसारा सो वह भी आन टपका।"
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥८॥

फुन्सी किसी के तन में सर पर किसी के फोड़े।
छाती पै गरमी दाने और पीठ में ददोड़े।
खा पूरियाँ किसी को हैं लग रहे मड़ोड़े।
आते हैं दस्त जैसे दौड़ें इराक़ी घोड़े।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥९॥

कोई तो झूलने में झूले की डोर छोड़े।
या साथियों में अपने पाँवों से पाँव जोड़े।
बादल खड़े हैं सर पर बरसे हैं थोड़े थोड़े।
बूँदों से भीगते हैं लाल और गुलाबी जोड़े।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥१०॥

हैं जिनके तन मुलायम मैदे की जैसे लोई।
वह इस हवा में ख़ासी ओढ़े फिरे हैं लोई।
और जिनकी मुफ़लिसी ने शर्मो हया है खोई।
है उनके सर पै सिरका या बोरिये की खोई।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥११॥

कितने ख़ुशी से बैठे खाते हैं ख़ुश महल में।
कितने चले हैं लेने बनिये से क़र्ज़ पल में।

काँधे पै दाल आटा हल्दी गिरह ने मल में।
हाथों में घी की प्याली और लकड़ियाँ बग़ल में।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥१२॥
कीचड़ से हो रही है जिस जा ज़मीं फिसलनी।
मुशकिल हुई है वाँ से हर यक को राह चलनी।
फिसला जो पाँव पगड़ी मुशकिल है फिर सँभलनी।
जूती गिरी तो वाँ से क्या बात फिर निकलनी।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥१३॥
गिर कर किसी के कपड़े दलदल में हैं मोअत्तर।
फिसला कोई किसी का कीचड़ में मुँह गया भर।
एक दो नहीं फिसलते कुछ बसमें आन अक्सर।
होते हैं सैकड़ों के सर नीचे पाँव ऊपर।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥१४॥
यह ऋतु वो है कि जिसमें ख़ुर्दो कबीर ख़ुश हैं।
अदना ग़रीब मुफ़लिस शाहो वज़ीर ख़ुश हैं।
माशूक शाद ख़ुर्रम आशिक असीर ख़ुश हैं।
जितने हैं अब जहाँ में सब पै 'नज़ीर' ख़ुश हैं।
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें ॥१५॥

मनुष्य

दुनिया में बादशा है सो है वह भी आदमी।
और मुफ़लिसो गदा है सो है वह भी आदमी।

ज़रदार बेनवा है सो है वह भी आदमी।
नेमत जो खा रहा है सो है वह भी आदमी।
टुकड़े जो माँगता है सो है वह भी आदमी ॥१॥

मसजिद भी आदमी ने बनाई है याँ मियाँ।
बनते हैं आदमी ही इमाम और ख़ुतबा-ख्वाँ।
पढ़ते है आदमी ही क़ुराँ और निमाज़ याँ।
और आदमी ही उनकी चुराते है जूतियाँ।
जो उनको ताड़ता है सो है वह भी आदमी ॥२॥

याँ आदमी पै जान को वारे है आदमी।
और आदमी ही तेग़ से मारे है आदमी।
पगड़ी भी आदमी की उतारे है आदमी।
चिल्ला के आदमी को पुकारे है आदमी।
और सुन के दौड़ता है सो है वह भी आदमी ॥३॥

नाचे है आदमी ही बजा तालियों को यार।
और आदमी ही डाले है अपनी इज़ार उतार।
नंगा खड़ा उछलता है होकर ज़लील ख़्वार।
सब आदमी ही हँसते हैं देख उसको बार बार।
और वह जो मसखरा है सो है वह भी आदमी ॥४॥

याँ आदमी ही क़हर से लड़ते हैं घूर घूर।
और आदमी ही देख उन्हें भागते हैं दूर।

चाकर ,गुलाम आदमी और आदमी मजूर।
याँ तक कि आदमी ही उठाते हैं जाज़रूर।
और जिसने वह फिरा है सो है वह भी आदमी ॥५॥
तबले मजीरे दायरे सारंगियाँ बजा।
गाते हैं आदमी ही हर इक तरह जाबजा।
रंडी भी आदमी ही नचाते हैं गत लगा।
वह आदमी ही नाचै हैं और देखो यह मज़ा।
जो नाच देखता है सो है वह भी आदमी ॥६॥
एक ऐसे हैं कि जिनके बिछे हैं नये पलंग।
फूलों की सेज उनपै झमकता है ताज़ा रंग।
सोते हैं लिपटे छाती से माशूक़ शोख़ संग।
सौ सौ तरह से ऐश के करते हैं रंग ढंग।
और ख़ाक में पड़ा है सो है वह भी आदमी ॥७॥
अशराफ़ और कमीने से ले शाह ता वज़ीर।
हैं आदमी ही साहबे-इज़्ज़त भी और हक़ीर।
याँ आदमी मुरीद हैं और आदमी ही पीर।
अच्छा भी आदमी ही कहाता है ऐ 'नज़ीर'।
और सब से जो बुरा है सो है वह भी आदमी ॥८॥

रोटियाँ

जब आदमी के पेट में आती हैं रोटियाँ।
फूली नहीं बदन में समाती हैं रोटियाँ॥

आँखें परी-रुख़ों से लड़ाती हैं रोटियाँ।
सीने उपर भी हाथ चलाती है रोटियाँ॥
जितने मज़े हैं सब ये दिखाती हैं रोटियाँ॥१॥

जिस जा पै हाँडी चूल्हा तवा औ तनूर है।
ख़ालिक़ की क़ुदरतों का उसी जा ज़हूर है॥
चूल्हे के आगे आँच जो जलती हुज़ूर है।
जितने हैं नूर सब में यही ख़ास नूर है॥
इस नूर के सबब नज़र आती हैं रोटियाँ॥२॥

आवे तवे तनूर का जिस जा ज़बाँ पै नाम।
या चक्की चूल्हे का जहाँ गुलज़ार हो तमाम॥
वाँ सर झुका के कीजिये दण्डौत औ सलाम।
इस वास्ते कि ख़ास ये रोटी के हैं मुक़ाम॥
पहले इन्हीं मकानों में आती हैं रोटियाँ॥३॥

रोटी न पेट में हो तो फिर कुछ जतन न हो।
मेले की सैर ख़्वाहिशे बाग़ो चमन न हो॥
भूखे ग़रीब दिल की ख़ुदा से लगन न हो।
सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न हो॥
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ॥४॥

रोटी से नाचे प्यादा क़वायद दिखा दिखा।
असवार नाचे घोड़े को कावा लगा लगा॥

घुँघरू को बाँधे पैक भी फिरता है जाबजा।
और इस सिवा जो ग़ौर से देखा तो जाबजा॥
सौ सौ तरह के नाच दिखाती हैं रोटियाँ॥५॥

रोटी के नाच तो हैं सभी ख़ल्क़ में बड़े।
कुछ भाँड़ भीगते ये नहीं फिरते नाचते॥
यह रंडिया जो नाचे हैं घूँघट को मुँह पै ले।
घूँघट न जानो दोस्तो तुम ज़ीनहार इसे॥
इस परदे में ये अपनी कमाती हैं रोटियाँ॥६॥

दुनिया में अब बदी न कहीं और निकोइ है।
ना दुशमनी न दोस्ती ना तुन्दख़ूइ है॥
कोई किसी का और किसी का न कोई है।
सब कोई है उसी का कि जिस हाथ डोइ है॥
नौकर नफ़र गुलाम बनाती हैं रोटियाँ॥७॥

रोटी का अब अज़ल से हमारा ता है ख़मीर।
रूखी भी रोटी हक़ में हमारे है शहद शीर॥
या पतली होवे मोटी ख़मीरी हो या फ़तीर।
गेहूँ की ज्वार बाजरे की जैसी हो 'नज़ीर'॥
हमको तो सब तरह की .ख़ुश आती हैं रोटियाँ॥८॥

ककड़ी

पहुँचे न उसका हरगिज़ काबुल दरे की ककड़ी।
नै पूरबो न पच्छुम .ख़ूबी भरे का ककड़ी॥

नै चीन के परे की औ नै दरे की ककड़ी।
दक्खिन की औ न हरगिज़ उससे परे की ककड़ी॥
क्या ख़ूब नर्म नाज़क इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें ख़ास काफ़िर इस्कंदरे की ककड़ी॥"
क्या प्यारी प्यारी मीठी औ पतली पतलियाँ हैं।
गन्ने की पोरियाँ हैं रेशम की तकलियाँ हैं॥
फ़रहाद की निगाहें शीरीं की हँसलियाँ हैं।
मजनूँ की सर्द आहें लैला की उँगलियाँ हैं॥
क्या ख़ूब नर्म नाज़ुक इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें ख़ास काफ़िर इसकंदरे की ककड़ी॥

बिरह दुःख

मुझे ऐ दोस्त तेरा हिज्र अब ऐसा सताता है।
कि दुशमन भी मेरे अहवाल पर आँसू बहाता है॥
य बेताबी य बेख़्वाबी य बेचैनी दिखाता है।
न दिल लगता है घर में औ न सहरा मुझको भाता है॥
अगर कुछ मुँह से बोलूँ तो मज़ा उलफ़त का जाता है।
वगर चुपका हूँ रहता तो कलेजा मुँह को आता है॥
मरा दरदेस्त अन्दर दिल अगर गोयम ज़बाँ सोज़द।
वगर दम दर कशम तरसम कि मग़्ज़े उस्तख़्वाँ सोज़द॥

कूक करूँ तो जग हँसे, औ चुपके लागे घाव।
ऐसो कठिन सनेह का, किस बिधि करूँ उपाय॥१॥

कभी होकर ग़रेवाँ चाक सहरा को निकलता हूँ।
कभी घबरा के फिर घर की तरफ़ नाचार चलता हूँ॥
लगी है आग दिल में शमा साँ जलकर पिघलता हूँ।
धुआँ उठता है आहों का बरंगे मोम गलता हूँ॥
बदन में देखकर शोला भड़कते हाथ मलता हूँ।
भभूके तन से उठते हैं सती की तरह जलता हूँ॥
ज़े ताबे आतिशे दूरी कि मी सोज़द दिलो जाँरा।
नमूदा नब्ज़े मन पुर आबला दस्ते तबीबाँरा॥
बिरह आग तन में लगी, जरन लगे सब गात।
नारी छूअत बैद के, पड़े फफोला हात॥२॥

कहाँ तक खाइये ग़म अब तो ग़म खाया नहीं जाता।
दिले-बेताब को बातों से बहलाया नहीं जाता॥
क़दम रखता हूँ जिस जा वाँ से सरकाया नहीं जाता।
ये पत्थर हाथ से तिल भर भी उसकाया नहीं जाता॥
पड़ा हूँ दश्त में रस्ता कहीं पाया नहीं जाता।
जो चाहूँ भाग जाऊँ भाग भी जाया नहीं जाता॥
मकाने यार दूर अज़ मन न पर दारम न पा ए दिल।
अजब दर मुशकिल उफ़्तादम चसाँ तै साज़म ईं मंज़िल॥

ना मेरे पंख न पाँव बल, मैं अपंख पिय दूर॥
उड़ न सकूँ गिर गिर पड़ूँ, रहूँ बिसूर बिसूर॥३॥

उधर दिल मुझसे कहता है कि तू चल यार के डेरे।
इधर तन मुझसे कहता है कि तू मत मुझको दुख दे रे।
जो कहना दिल का करता हूँ तो रहता है वो घर मेरे।
वगर तनकी सुनूँ तो और दुख पड़ते हैं बहुतेरे।
न दिल माने न तन माने हर इक अपनी तरफ़ फेरे।
करूँ मैं क्या 'नज़ीर' ऐसी जो मुश्किल आनकर घेरे।
दिलम दिलदार मी जोयद तनम आराम मी ख़्वाहद।
अजायब कशमकश दारम कि जानम मुफ़्त मी काहद।
दिल चाहै दिलदार को, तन चाहै आराम॥
दुबधा में दोनों गये, माया मिली न राम॥४॥

गजलें

वो मुझको देख कुछ इस ढब से शर्मसार हुआ।
कि मैं हया ही पर उसकी फ़क़त निसार हुआ॥१॥

सभों को हँस के दिये बोसे औ हमें गाली।
हज़ार शुक्र भला इस क़द्र तो प्यार हुआ॥२॥

हमारे मरने को हाँ तुम तो झूठ समझे थे।
कहा रक़ीब ने लो अब तो एतबार हुआ॥३॥

क़रार करके न आया वो संग-दिल काफ़िर।
पड़ें क़रार पै पत्थर ये कुछ क़रार हुआ ॥४॥
गले का हार जो उस गुल-बदन के टूट गया।
तो डर नज़र का वहीं उसको एक बार हुआ ॥५॥
किसी से और तो कुछ बस चला न उसका 'नज़ीर'।
निदान मेरे ही आकर गले का हार हुआ ॥६॥

नज़र पड़ा एक बुते परीवश निराली सजधज नई अदा का।
जो उम्र देखो तो दस बरस की प क़हर आफ़त ग़ज़ब ख़ुदा का॥
जो शक्ल देखो तो भोली भाली जो बातें सुनिये तो मीठी मीठी।
प दिल वो पत्थर कि सर उड़ा दे जो नाम लीजे कभी वफ़ा का॥
जो घर से निकले तो यह क़यामत कि चलते चलते क़दम क़दम पर।
किसी को ठोकर किसी को झिड़की किसी को गाली निपट लड़ाका॥
य राह चलते में चुलबुलाहट कि दिल कहीं है नज़र कहीं है।
कहाँ का ऊँचा कहाँ का नीचा ख़याल किस को क़दम की जा का॥
लड़ावे आँखें वह बेहिजाबी कि फिर पलक से पलक न मारे।
नज़र जो नीचे करे तो गोया खिला सरापा चमन हया का॥
य चंचलाहट य चुलबुलाहट ख़बर न सर की न तन की सुधबुध।
जो चीरा बिखरा बला से बिखरा न बन्द बाँधा कभू क़बा का॥
गले लिपटने में यों शिताबी कि मिस्ल बिजली के इज़तिराबी।
कहीं जो चमका चमक चमक कर कहीं जो लपका तो फिर झपाका॥

न वह सँभाला किसी का सँभले न वह मनाए मने किसी के।
जो क़त्ले आशिक़ प आके मचले तो ग़ैर का फिर न आशना का॥
'नज़ीर' हट जा परे सरक जा बदल ले सूरत छिपा ले मुँह को।
जो देख लेवेगा वह सितमगर तो यार होगा अभी झड़ाका॥

✿ ✿ ✿

जब मैं सुना कि यार का दिल मुझ से हट गया।
सुनते ही इसके मेरा कलेजा उलट गया॥ १॥
छीना था दिल को चश्म ने लेकिन मैं क्या करूँ।
ऊपर ही ऊपर उस सफ़े मिज़गाँ में बँट गया॥ २॥
क्या खेलता है नट की कला आँखों-आँखों में।
दिल साफ़ ले लिया है जो पूँछा तो नट गया॥ ३॥
आँखों में मेरे सुब्ह क़यामत गयी झमक।
सीने से उस परी के जो परदा उलट गया॥ ४॥
आँखें तुम्हारी क्या फिरीं इस वक़् मेरी जान!
सच पूँछिये तो मुझ से ज़माना उलट गया॥ ५॥

✿ ✿ ✿

सहर जो निकला मैं अपने घर से तो देखा यक शोख़ हुस्न वाला।
झलक वो मुखड़े में उस सनम के कि जैसे सूरज में हो उजाला॥१॥
बहुत य मैंने तो चाहा पूँछूँ मैं नाम उसका वले वो गुलरू।
न मुझसे बोला न की इशारत न दी तसल्ली न कुछ सँभाला॥२॥

तिहारी आसा लगी है निस दिन तिहारे दरसन को तरसै नैना।
दुलारे सुन्दर अनूठे अवरन हठीले मोहन अनोखे लाला ॥३॥
आगन बरत है हिया में मोरे विरह में तोरे ए मनमोहनवाँ!
तोरे जो नैना ने मोहा मुहिको न जीव तनिकौ भवा दुखाला ॥४॥
कभी तो हँसकर शिताबी आ जा 'नज़ीर' की भी तरफ़ टुक पै जाँ!
बना के सजधज फिरा के दामन लगाके ठोकर हिलाके बाला ॥५॥

❦ ❦ ❦

मर मर मुझे कहता था सो मरता हूँ मैं यारो।
अब लाओ कहाँ है वो मेरा कोसनेवाला ॥ १ ॥
क़ासिद तू मेरा नाम तो लीजो न व लेकिन।
कहना कोई मरता है तेरा चाहनेवाला ॥ २ ॥
जङ्गल में मेरे हाल पै कोई भी न रोया।
गर फूट के रोया तो मेरे पाँव का छाला ॥ ३ ॥
औरों को जो गिरते हुए देखा तो लिया थाम।
हम गिर भी पड़े तो भी न ज़ालिम ने सँभाला ॥ ४ ॥

❦ ❦ ❦

बोसे की तलब की तो कहा नाज़ से चल दूर।
और दिल को कहा ले तो वहीं हँस के कहा ला ॥ १ ॥
मुझ जुल्फ़ के मारे को न ज़ञ्जीर पिन्हाओ।
काफ़ी है मेरे क़ैद को एक मकड़ी का जाला ॥ २ ॥

वह आप से रूठा नहीं मनने का 'नज़ीर' आह।
क्या देखे है चल पाँव पड़ और उसका मना ला ॥ ३ ॥

* * *

दूर से आये थे साक़ी सुनके मैख़ाने को हम।
बस तरसते ही चले अफ़सोस पैमाने को हम ॥१॥
मै भी है मीना भी है साग़िर भी है साक़ी नहीं।
दिलमें आता है लगा दें आग मैख़ाने को हम ॥२॥
बाग़ मे लगता नहीं सहरा से घबराता है दिल।
अब कहाँ ले जाके बैठें ऐसे दीवाने को हम ॥३॥
क्या हुई तक़सीर हम से तू बतादे ऐ नज़ीर!
ताकि शादी मर्ग समझें ऐसे मरजाने को हम ॥४॥

* * *

पलकों की झपक पुतली की फिरत सुरमे की लगावट वैसी ही।
ऐयार नज़र मक्कार अदा त्योरी की चढ़ावट वैसी ही ॥१॥
वह अँखियाँ मस्त नशीली सीं कुछ काली सीं कुछ पीली सीं।
चितवन की दग़ा नज़रों की कपट सैनों की लड़ावट वैसी ही ॥२॥
वह रात अंधेरी बालों सी वह माँग चमकती बिजली सी।
ज़ुल्फ़ों की खुलत पट्टी की जमत चोटी की गुन्धावट वैसी ही ॥३॥
वह छोटी छोटी सख़्त कुचैं वह कच्चे कच्चे सेब ग़ज़ब।
अँगियाँ की भड़क गोटों की चमक बन्दों की कसावट वैसी ही ॥४॥

वह चञ्चल चाल जवानी की ऊँची ऐड़ी नीचे पञ्जे।
कफ़्शों की खटक दामन की झटक ठोकर की लगावट वैसी ही ॥५॥
कुछ हाथ हिलें कुछ पाँव हिलें फड़कें बाज़ू थिरकें सब तन।
गाली वो बला ताली वो सितम उँगली की नचावट वैसी ही ॥६॥
चञ्चल अचपल मटके चटके सर खोले ढाँके हँस हँस के।
क़हक़ह की हँसावट और ग़ज़ब ठट्ठों की उड़ावट वैसी ही ॥७॥
हर वक्त, फ़बन हर आन सजैं दम दम में बदलें लाख सजैं।
बाहों की झपक घूँघट की अदा जोबन की दिखावट वैसी ही ॥८॥

* * *

न था मालूम उलफ़त में इक ग़म खाना भी होता है।
जिगर की बेकली औ दिल का घबराना भी होता है॥
सिसकना आह करना अश्क भर लाना भी होता है।
तड़पना लोटना बेताब हो जाना भी होता है॥
कफ़े अफ़सोस को मलमल के पछताना भी होता है।
किये पर अपने फिर आपी ही दुख पाना भी होता है॥
अगर दानिस्तम् अज़ रोज़े अज़ल दाग़े जुदाई रा।
न मी करदम बदिल रोशन चिराग़े आशनाई रा॥
जो मैं ऐसो जानती, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढँढोरा पीटती, प्रीति न कीजो कोय॥

* * *

मेरे बग़ल में जो वह गुलाज़ार होता था।
निहाल ऐश के दिल के चमन में बोता था॥
तमाम रात थी औ कुहनियाँ व लातै थीं।
न सोने देता था मुझको न आप सोता था॥
जो बात हिज्र की आती तो अपने दामन से।
व आँसू पोंछता जाता था औ मैं रोता था॥
मसकती चोली तो लोगों से छिपके सीने को।
वह तागे बटता था और मैं सुई पिरोता था॥
हुआ न तुझको .खुमार आख़िर उन शराबों का।
'नज़ीर' आह इसी रोज़ को मैं रोता था॥

❦ ❦ ❦

सुबह जब बोल उठा मुर्ग़—सहर कुकुड़ू कूँ।
उठ गये पास से वह रह गया मैं टुटरू टूँ॥

❦ ❦ ❦

आदम यक दमड़ी की हुक़िया को रहे आजिज़ सदा।
हमको क्या क्या पेचवाँ औ गुड़गुड़ी पर नाज़ है॥
ग़ैर से देखा तो अब यह वह मसल है ऐ 'नज़ीर'।
बाप ने पिद्‌ड़ी न मारी बेटा तीरन्दाज़ है॥

❦ ❦ ❦

पुकारा क़ासिदे अश्क आज फ़ौजे ग़म के हाथों से।
हुआ ताराज़ पहले शहरे जाँ दिल का नगर पीछे॥

सुनो मैं ख़ूँ को अपने साथ ले आया हूँ औ बाक़ी।
चले आते हैं उठते बैठते लख़्ते जिगर पीछे॥

❦ ❦ ❦

हमने चाहा था कि हाकिम से करेंगे फ़रियाद।
वह तो कमबख़्त तेरा चाहनेवाला निकला॥

❦ ❦ ❦

न गुल अपना न ख़ार अपना न ज़ालिम बाग़वाँ अपना।
बनाया आह किस गुलशन में हमने आशियाँ अपना॥

❦ ❦ ❦

कहा था कि हम रात आवैंगे आह !
रहे साथ ग़ैरों के ता सुबहगाह॥
पटक सर को हम रह गये देख राह।
बड़े तुम भी हो झूठों के बादशाह॥
मियाँ वाह वा, वाह वा, वाह वाह॥

❦ ❦ ❦

यारो मैं चुप रहूँ भला ताकै।
मक्खियाँ तो बहुत हुईं दर पैं॥
चले आते हैं ग़ोल पैं दर पैं।
शोर है गुल है भिनभिनाहट है॥
कोई थूकै कोई करै है क़ै।
इस क़दर धूम मक्खियों की है॥

कपड़ा जिनका फटा पुराना है।
वह तो कुल मक्खियों ने खाना है॥
पायजामा तमाम छाना है।
बाक़ी अन्दर का बैठ जाना है॥
वह भी मंज़िल को अब करेंगी ते।
इस क़द्र धूम मक्खियों की है॥

तेरे जमाल की सूरत झलक न देख सका।
खुली नक़ाब रही जब तलक न देख सका॥

तनहा न उसे अपने दिले तङ्ग में पहिचान।
हर बाग़ में हर दश्त में हर सङ्ग में पहिचान॥
बेरङ्ग में बारङ्ग में नैरङ्ग में पहिचान।
मंज़िल में मुक़ामात में फ़रसङ्ग में पहिचान॥
नित रूम में औ हिन्द में औ जङ्ग में पहिचान।
हर राह में हर साथ में हर सङ्ग में पहिचान॥
हर अज़्म इरादे में हर आहङ्ग में पहिचान।
हर धूम में हर सुलह में हर जंग में पहिचान॥
हर आन में हर बात में हर ढङ्ग में पहिचान।
आशिक़ है तो दिलबर को हर रङ्ग में पहिचान॥

विलफ़र्ज़ अगर हम हुए हव्वा के शिकम से।
आदम के तईं पूँछिये वह किसका जना है॥
हिकमत का उलट-फेर नहीं जिसकी नज़र में।
वह कहते हैं ग़ाफ़िल ये बक़ा है ये फ़ना है॥
यक उसकी दवा समझी नहीं जाती 'नज़ीर' आह।
कुछ और ही माजून का नुसख़ा ये बना है॥

* * *

ऐश कर ख़ूवाँ में ऐ दिल, शादमानी फिर कहाँ।
शादमानी गर रही तो ज़िन्दगानी फिर कहाँ॥
लज़्ज़तें जन्नत के मेवों की बहुत होंगी वहाँ।
पर ये मीठी गालियाँ ख़ूवाँ की खानी फिर कहाँ॥

* * *

कल जो टुक रोया किसी की याद में वह गुलबदन।
अश्क थे आँखों में या मोती कुचल कर भर दिये॥

* * *

कल शबे वस्ल में क्या जल्द कटी थीं घड़ियाँ।
आज क्या मर गये घड़ियाल बजाने वाले॥

* * *

उस शोख़ की तरफ़ मैं रक़ीबों के ख़ौफ़ से।
देखूँ भी हूँ तो ख़ूब नज़र करके आस पास॥

* * *

रोऊँगा आके तेरी गली में अगर मैं यार।
पानी ही पानी होगा हरेक घर के आसपास॥

❦ ❦ ❦

इतना तुनक सफ़ा है कि पाये निगाह का।
हलका सा यक ग़ुबार है चेहरे के रंग पर॥

❦ ❦ ❦

बाम पर नंगे न तुम आओ शबे महताब में।
चाँदनी पड़ जायगी मैला बदन हो जायगा॥

❦ ❦ ❦

पेश जाती नहीं हरगिज़ कोई तदबीर 'नज़ीर'।
काम जब आनके पड़ता है ज़बरदस्तों से॥

❦ ❦ ❦

जिन्नत के लिये शेख़ जो करता है इबादत।
की ग़ौर जो ज़ाहिर में तो मज़दूर की सूझी॥

❦ ❦ ❦

झगड़ा न करे मिल्लतो मज़हब का कोई याँ।
जिस राह में जो आन पड़े ख़ुश रहे हर आँ॥
ज़ुन्नार गले या कि बग़ल बीच हो क़ुरआँ।
आशिक़ तो क़लन्दर हैं न हिन्दू न मुसलमाँ॥
काफ़िर न कोई साहबे इसलाम रहेगा।
आख़िर वही अल्लाह का यक नाम रहेगा॥

❦ ❦ ❦

दोहे

भेंट भई जाने कहीं, नैनन आँसू लाय।
है कोई ऐसा मीत जो, पीतम मँदिर बताय॥
प्रीतम या मन मोहि के, कीन्हों मान गुमान।
बिन देखे वा रूप के, मेरे कलपत प्रान॥
कूक करूँ तो जग हँसे, औ चुपके लागे घाव।
ऐसे कठिन सनेह का, किस विध करूँ उपाव॥
आह दई कैसी भई, अनचाहत को संग।
दीपक के भावें नहीं, जल जल मरत पतंग॥
बिरह आग तन में लगी, जरन लगे सब गात।
नारी छूवत वैद के, पड़े फफोले हाथ॥
ना मेरे पंख न पाँव बल, मैं अपंख पिय दूर।
उड़ न सकूँ गिर गिर पड़ूँ, रहूँ बिसूर बिसूर॥

नासिख़
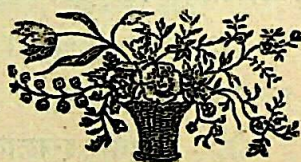
नासिख़ उपनाम; इमामबख़्श नाम; पिता का नाम ख़ुदा बख़्श; स्थान लखनऊ; जन्म-संवत् अनिश्चित; सं० १८९४ में ६४, ६५ वर्ष की अवस्था में देहान्त हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि ये लगभग सौ वर्ष तक जीवित थे।

कुछ लोग कहते हैं कि ये ख़ुदाबख़्श की गोद आये थे। ख़ुदाबख़्श इनके असली पिता न थे। वे लहौर में रहते थे और कश्मीर और क़ाबुल आदि स्थानों से केसर बनफशा आदि का व्यापार करते थे। उनके पास क़ाफ़ी धन था। इनके असली बाप ग़रीबी के कारण पश्चिम से पूर्व को आये। फ़ैज़ाबाद में नासिख़ का जन्म हुआ। ख़ुदाबख़्श ने नासिख़ के ग़रीब बाप से इन्हें गोद लिया। उसने इन्हें अच्छी शिक्षा दिलाई, जिससे ये बड़े होकर इतने गौरवान्वित हुये।

ख़ुदाबख़्श के मरने के बाद उसके भाइयों ने उसकी दौलत पर दावा किया। नासिख़ ने कहा—मुझे उनके धन दौलत से कुछ वास्ता नहीं। जैसे मैं उन्हें बाप समझता था, वैसे आपको समझता हूँ। इतना निवेदन अवश्य है कि उनकी तरह आप भी मेरी आवश्यकताएँ पूरी करते रहें। उन्होंने स्वीकार किया।

पर नासिख़ उनकी आँखों में खटकते ही रहे। चचा को संदेह था कि कभी ये चाहेंगे तो पिता की कुल सम्पत्ति के अधिकारी

बन जायँगे। अतएव वे इनको मारने की चिन्ता करने लगे। इनको उन दिनों रक्तविकार का रोग हो रहा था। इससे ये बेसनी रोटी घी में चूर कर खाया करते थे। निर्दयी चचा ने उस में विष मिला दिया। इन्हें किसी तरह मालूम हो गया। लोग कहते हैं, एक जिन से इनकी दोस्ती थी, उसी ने इन्हें बता दिया। जो हो, उसी वक़्त इन्हों ने दो चार दोस्तों को बुलाकर उनके सामने रोटी का टुकड़ा कुत्ते के सामने डाला। विष प्रमाणित हो गया। कुछ दिनों के बाद उत्तराधिकार का झगड़ा चला। मामला शाही अदालत तक पहुँचा। फ़ैसला नासिख़ के अनुकूल हुआ और ये एक अच्छी सम्पत्ति के अधिकारी हुये। उस समय इन्होंने जी की जलन मिटाने के लिये कई रुबाइयाँ लिखी थीं। उन में से दो यह हैं—

मशहूर है गरचे दफ़्तराय अमाम।
पर करते नहीं ग़ौर ख़वास और अवाम॥
वारिस होना दलील फ़रज़ंदी है।
मीरास न पासका कभी कोई ग़ुलाम॥
कहते रहे अमामे अदावत से ग़ुलाम।
मीरासे पिदर पाई मगर मैंने तमाम॥
इस दावए बातिल से सितमगारों को।
हासिल यह हुआ कर गये मुझको बदनाम॥

अस्तु; अब इनके दिन पहले से भी अधिक बेफ़िकरी के साथ बीतने लगे। लखनऊ के राजधानी हो जाने पर ये फ़ैज़ाबाद से लखनऊ चले आये और वहीं आजीवन रहे। लखनऊ के टकसाली महल्ले में इनका घर था।

ये बड़े कसरती जवान थे। छोटी उम्र से ही इन्हें कसरत का शौक़ लग गया था। ये ख़ुद भी कसरत करते थे और अपने परिचितों को भी कसरत के लिये उत्साहित करते थे। इनको ख़ासा तगड़ा शरीर मिला था। रोज़ ये १२९७ डँड़ लगाते थे। ऋतु अच्छी हुई तो यह संख्या बढ़ ही जाती थी, घटती कभी न थी। इनका क़द लंबा और छाती चौड़ी थी। सिर मुँड़ाये रहते थे और ख़ारुँवें की लुँगी पहन कर शेर की तरह बैठा करते थे। जाड़े में भी तंज़ेब का कुरता पहनते थे। कभी बहुत ज़रूरत हुई तो लखनऊ की छींट का दोहरा कुरता पहिन लेते थे। किसी पर क्रुद्ध होते तो "बेअदब ग़ुस्ताख़ दुम कटा भैंसा" कहा करते थे।

दिन रात में एक ही बार खाना खाते थे। और खाते थे कितना? पूरे पाँच सेर। जब किसी मौसिम का कोई ख़ास फल पसंद आ जाता था तो उस दिन अन्न का आहार न करके वह फल ही खाते थे। आम पर जी ललचाया तो टोकरे के टोकरे ख़ाली कर दिये। जामन पर जो चला तो एक ढेर उसका भी

चट कर गये। नाँद में पानी भरवाकर फल उसमें डलवा देते थे। पास बैठ जाते थे। फिर नाँद खाली करके उठ खड़े होते थे। कभी भुट्टे खाने बैठते तो नमक मिर्च और नींबू के साथ उसका भी वारा न्यारा कर डालते थे। प्रत्येक ऋतु में दो तीन बार इस प्रकार के फलाहार होते थे।

इनके भोजन का समय सबको मालूम था। ये भोजन एकान्त में करते थे। भोजन का इनका तरीक़ा अंग्रेज़ों से मिलता जुलता था। ये कई चीज़ों को एक साथ सान कर नहीं खाते थे। एक प्याला नौकर ने सामने किया, पहले उसे इच्छानुसार खा लिया। फिर दूसरा आया। उसे साफ़ किया। फिर तीसरा आया। उसे ख़ाली किया। ये कहते थे कि मिलाकर भोजन करने से उसका असली स्वाद जाता रहता है। जब ये भोजन कर चुकते थे तो सामने ख़ाली बरतनों का एक पहाड़ सा लग जाता था। इनका आकार देखने से जान पड़ता था कि चार पाँच सेर खाना इनके उपयुक्त ही था।

आग़ा कलब हुसेन खाँ इनके दोस्त थे। वे भी अच्छे कसरती, शहसवार और बलवान व्यक्ति थे। उन्हें कविता का भी शौक़ था। ये उनके यहाँ महीनों रहा करते थे। एक बार जब वे सोराँव के तहसीलदार थे, उन्होंने इनको जंगल की हरियाली की सैर के लिये बुलाया। एक दिन इनके लिये ख़ास ख़ास स्वादिष्ट खाने बनवाये गये। पर ज़रा देर हो गई। उसी समय

कुछ नौकर अपना अपना खाना लेकर ड्योढ़ी से निकले। इन्होंने सबको बुलाकर पूछा कि यह किसके लिये है? उत्तर मिला—हम लोगों का खाना है। इन्होंने सब के खाने रखवा लिये। चाट पोंछ कर ख़ाली बरतन उनके हवाले कर दिये। और कहा कि हमारा खाना तुम लोग खा लेना। आग़ा साहब को समाचार मिलते ही वे दौड़े आये, पर यहाँ तो कांड समाप्त हो चुका था।

इनका यह नियम था कि पहर रात रहे ये कसरत प्रारंभ करते थे। सवेरा होते होते उससे निपट लेते थे। बाल-बच्चे थे ही नहीं। शायद शादी भी नहीं की थी। कसरत के बाद सुस्ताते, फिर नहाते और फिर कभी सहन में और कभी भीतर फ़र्श पर बैठ जाते थे। सवेरे से ही शागिर्दों का आना जाना शुरू हो जाता था। दोपहर को सब चले जाते थे, तब ये द्वार बंद करके भोजन पर बैठ जाते थे। भोजन के भारी बोझ को उठा-कर आराम करते थे। तीसरे पहर उठते थे। शागिर्द फिर आते थे। शाम को सब को विदा करके ये नौकर को भी बाहर कर देते थे और भीतर से ताला जड़कर कोठे पर एक एकान्त कमरे में चले जाते थे। वहाँ थोड़ी देर आराम करके फिर काव्य-चर्चा में लग जाते थे। शागिर्दों की ग़ज़लें एक खारुँवें की थैली में बंद करके नौकर बग़ल में रख जाता था। ये उन्हें भी शुद्ध करते

थे और तबीअत उमंग पर आती थी तो स्वयं भी कुछ लिखते थे। रात का तीसरा पहर होते ही काग़ज़ तह करके रख देते थे और फिर कसरत में लग जाते थे।

हुक्के का बड़ा शौक़ था। तरह तरह के छोटे बड़े अच्छे से अच्छे हुक्के मँगाते थे। कुछ भेंट में पा जाते थे। उन्हें सजाते थे। कलियों, गुड़गुड़ियों, सटक, पेंचवाँ, चौगानी और मदरियों से एक कोठड़ी भरी थी। जलसों में प्रत्येक मेहमान के सामने एक एक हुक्का रखा जाता था। ऐसा नहीं था कि एक ही हुक्का सब का मुँह चूमता फिरे।

लोग कहते थे कि इनको एक जिन से दोस्ती थी। एक दिन ये मुगदर हिला रहे थे। सामने देखा तो एक व्यक्ति और भी खड़ा हुआ मुगदर हिला रहा है। जवानी के जोश में ये उससे लिपट गये। थोड़ी देर तक ज़ोर होता रहा। फिर इन्होंने पूछा कि तू कौन है? उसने कहा—मैं जिन हूँ। तुम्हारी कसरत का ढंग मुझे पसंद है, इसीलिये कभी कभी इधर भी आ निकलता हूँ। तुम्हारे खाने में भी शरीक हो जाता हूँ। मगर परिचय के बिना प्रेम का आनन्द नहीं। इसलिये आज अपने को प्रकट करता हूँ। उसी दिन से दोनों में जान पहचान हो गई। उसी जिन ने विष से भी इन्हें आगाह किया था। जिन से परिचित होने से पहले जब ये खाने बैठते तो कभी कभी इनके आगे से

रोटियाँ ग़ायब हो जाती थीं। एक साहब फ़रमाते हैं कि ये कभी कभी खाते खाते कोई कोई चीज़ अकारण ही खिड़की से बाहर भी फेंक दिया करते थे। यह क़िस्सा मनगढ़ंत जान पड़ता है। पाँच सेर खाने वाले के लिये इस तरह के अनोखे क़िस्से गढ़े जाने ही चाहिये।

जन्म भर इन्होंने किसी की नौकरी नहीं की। धन भी था, सम्मान भी था, शौक़ीन मिज़ाजों की सुहबत भी थी, तो फिर और क्या चाहिये था। पहली बार प्रयाग आये हुये थे। हैदराबाद से राजा चंदूलाल ने १२ हज़ार रुपये भेजकर इन्हें बुला भेजा। इन्होंने उत्तर लिख भेजा कि यहाँ से जाऊँगा तो अब लखनऊ ही जाऊँगा। राजा ने १५ हज़ार भेजवा कर बड़े आग्रह के साथ इन्हें फिर बुलाया और लिखा कि यहाँ आइयेगा तो राजकवि की उपाधि दिलवाऊँगा; दरबार की हाज़िरी का कोई बंधन न रहेगा। मुलाक़ात आपकी ख़ुशी पर रहेगी। पर ये न गये। रुपये अपने मित्र के पास रखवा लिये और आवश्यकतानुसार ख़र्च करते रहे।

जीवन भर में ये फ़ैज़ाबाद, लखनऊ, प्रयाग, काशी, अज़ीमाबाद और पटने से आगे नहीं गये। लखनऊ से बाहर होते ही छटपटाने लगते थे। एक बार कहा था—

दश्त से कब वतन को लौटूँगा।
कि छठा अब तो साल आ पहुँचा॥

स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। कभी कभी नवाब से नहीं पटती थी तो लखनऊ से कुछ दिनों के लिये बाहर चले जाते थे।

एक दिन एक साहब मुलाक़ात के लिये आये। उस समय ये कुछ मित्रों के साथ आँगन में कुर्सियों पर बैठे थे। वे भी वहीं बैठ गये। उनके हाथ में एक छड़ी थी। सामने एक ढेला पड़ा था। वे छड़ी से ढेले को धीरे धीरे तोड़ने लगे। प्रायः लोगों की ऐसी आदत होती है कि बेकारी में या तो पैर हिलाने लगते हैं या मिट्टी कुरेदने लगते हैं, या तिनके तोड़ने लगते हैं। नासिख़ का धैर्य अंत में जाता रहा। इन्होंने नौकर को पुकारा। वह सामने आया। उसे हुक्म हुआ कि एक टोकरा मिट्टी लाकर इनके सामने रख दो, जिससे ये अच्छी तरह अपना शौक़ पूरा करें।

इनके शागिर्दों में प्रायः सब अमीरज़ादे ही थे। एक दिन शाह ग़ुलाम आज़म सेवा में उपस्थित हुये। नासिख़ तख़्ते पर शीतल पाटी बिछाकर बैठे थे। वे भी उसी पर बैठ गये। अपनी आदत के अनुसार वे शीतल पाटी का एक तिनका तोड़कर नह से नोचने लगे। इन्होंने नौकर से झाड़ू मँगाकर उनके सामने रखदी और कहा—लीजिये, जी भर कर इसे

तोड़िये, शीतलपाटी नोच डालियेगा तो फिर यहाँ यह कहाँ मिलेगी। वे बेचारे लजाकर रह गये।

ऐसे ही एक अमीरज़ादे एक दिन आकर इनके पास बैठ गये। पास ही ताक़ में शीशे के दो चमचे रक्खे थे, जो बहुत सुन्दर और नयी चीज़ थे। उन्होंने उनमें से एक को उठा लिया, उसकी तारीफ़ की और फिर बातें प्रारंभ की। हाथ में लेकर उस चम्मच से वे खुटखुटाते भी रहे। शीशे की चीज़, एक ठेस लगी, झट से दो टुकड़े हो गये। नासिख़ ने दूसरा चमचा उनके आगे रख दिया और कहा—अब इससे काम लीजिये।

एक दिन नासिख़ अपने बाग़ के बँगले में बैठे थे और शेर बनाने की धुन में थे। एक साहब आकर बैठ गये। ये बहुत विकल हुये। उठकर टहलने लगे। फिर बैठे। पर वे हज़रत टस से मस न हुये। सभ्यता के ख़याल से ये उन्हें उठ जाने के लिये कहना भी नहीं चाहते थे और तबीअत ऐसी उभार पर आई थी कि कविता का लोभ अलग सता रहा था। ये फिर उठे-बैठे, पर वे न समझे। तब इन्हों ने चिलम से आग लेकर बँगले की टट्टी पर रख दी और स्वयं बैठकर लिखने लगे। अब तो उन हज़रत का भी शरीर हिला। वे उठ खड़े हुये और कहने लगे—शेख साहब, यह क्या हो रहा है! देखते

हैं ! शेख साहब ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—जाते कहाँ हो ? अब तो हम दोनों यहीं जलकर राख होंगे। तुमने मेरे मज़मून को ख़ाक में मिला दिया; मेरे दिल को जलाकर राख कर दिया; भला, अब मैं तुम्हें जाने दूँगा ?

इसी तरह एक दिन एक व्यक्ति और आये। वे भी ऐसे जमकर बैठे कि ये उकता गये। नौकर को बुलाकर कहा—भाई, मज़दूरों को बुलाकर सामान उठवाओ। वे बेचारे मुँह ताकने लगे। इन्होंने कहा—मुँह क्या ताकते हो ? घर पर तो आपने क़ब्ज़ा कर ही लिया। ऐसा न हो कि सामान भी हाथ से जाता रहे।

इन कहानियों से मालूम होता है कि इनकी तबीअत में वह चुलबुलापन, जो उर्दू-कवियों की ख़ास चीज़ है, नहीं था। पर कविता एक ऐसी चीज़ है, जो अपना रंग लाये बिना नहीं रहती। मीर घसीटा नाम के एक व्यक्ति मर गये, तब नासिख़ ने ये शेर लिखे—

जब मीर घसीटा मर गये हाय !
हर एक ने अपने मुँह को पीटा॥
नासिख़ ने कही यह सुनके तारीख़।
अफ़सोस कि मौत ने घसीटा॥

प्रयाग में एक दिन ये एक मशायरे में शामिल हुये । इन्होंने जो ग़ज़ल पढ़ी, उसका मतला यह था—

दिल अब मह्वेतर सा हुआ चाहता है ।
य काबा कलीसा हुआ चाहता है ॥

एक भोले-भाले लड़के ने भी उसी तरह पर अपनी ग़ज़ल पढ़ी। जिसका पहला ही मतला यह था—

दिल उस बुत प शैदा हुआ चाहता है ।
ख़ुदा जाने अब क्या हुआ चाहता है ॥

महफ़िल में धूम मच गई । सब वाह वाह करने लगे । नासिख़ बड़े न्यायप्रिय थे । इन्होंने भी लड़के की पीठ ठोंकी और कहा—तुम्हारा मतला मतलों में सूर्य है । मैं अपना पहला मिसरा ग़ज़ल में से निकाल डालूँगा ।

एक दिन ये किसी सौदागर की कोठी में गये । उसका लड़का, जो बहुत सुन्दर था, सामने लेटा हुआ सो रहा था । आँखें अधखुली थीं । ये देखकर मुग्ध हो गये । मुँह से आधा मिसरा निकल पड़ा—

है चश्म नीम बाज़ अजब ख़्वाबे नाज़ है

पर दूसरा मिसरा बैठता न था । घर आने पर भी ये उसी की चिन्ता में लगे रहे । इनके एक शागिर्द वज़ीर मिलने आये । चुप्पी का कारण जानने पर उन्होंने दूसरा मिसरा लगा दिया, जिससे ये बड़े ख़ुश हुये । पूरा शेर यों हुआ—

है चश्म नीम वाज़ अजब ख़्वाबे नाज़ है।
फ़ितना तो सो रहा है दरे फ़ितना वाज़ है॥

एक दिन वज़ीर ने अपना एक शेर सुनाया—

वो .ज़ुल्फ़ लेती है तावो दिलों तवाँ अपना।
अँधेरी रात में लुटता है कारवाँ अपना॥

ये बड़े प्रसन्न हुये और उन्हें पुरस्कृत किया। ये वज़ीर को अपने अन्य शागिर्दों से अधिक प्यार भी करते थे। वज़ीर पहले आतिश के शागिर्द थे, पीछे नासिख़ के हो गये।

नासिख़ शायरी में किसी के शागिर्द न थे। फ़ारसी की शिक्षा इनको हाफ़िज़ वारिस अली लखनवी से मिली थी। अरबी का ज्ञान भी किसी क़द्र अच्छा था। लड़कपन में ये ग़ज़लें बनाया करते थे, पर संकोच-वश किसी को दिखाते न थे। एक बार मीर तक़ी के पास ले गये। मीर ने इसलाह न दी। ये लौट आये। इन्होंने सोचा—मीर भी तो आख़िर आदमी ही हैं, काई देवता तो हैं नहीं। तब से ये स्वयं अपने मार्गप्रदर्शक बने। ग़ज़लें बनाकर रख लेते, कुछ दिनों के बाद उसे फिर पढ़ते और आवश्यक काट-छाँट करके फिर उसे रख छोड़ते; कुछ दिन बीत जाने पर उसे फिर पढ़ते और कुछ फेर-फार करते। इस तरह करते-करते ये अपना संशोधन आप ही कर लेने लगे। जब तक पूरी दिलजमई न हुई, इन्होंने न किसी को अपनी ग़ज़ल सुनाई

और न मशायरे में पढ़ी। मिर्ज़ा हाजी साहब के मकान पर मशायरा होता था। इंशा, जुरअत, मसहफ़ी आदि जमा होते थे। ये भी वहाँ जाते, पर सुना करते थे, कहते कुछ न थे। उन कवियों की आपस में ख़ूब चोंचें चलती थीं। इन पर भी रंग चढ़ता जाता था। जब उन कवियों ने मैदान छोड़ा, तब नासिख़ मैदान में आये। मिर्ज़ा हाजी और क़तील आदि ने इन्हें ख़ूब उत्साहित किया। ये बढ़ के हाथ मारने लगे। उन्हीं दिनों आतिश भी चमकने लगे थे। एक बार वे कई महीने बाद फ़ैज़ाबाद से आये। मशायरे में उन्होंने नासिख़ की ग़ज़लें सुनीं। ईर्ष्या से वे तड़प कर रह गये। मशायरे में उन्होंने इतने जोश में आकर ग़ज़ल पढ़ी कि छाती से रक्त निकलने लगा। बस, उसी दिन से दोनों में बिगाड़ हुआ। दोनों की आपस में सदा चख़चख़ रही और लखनऊ वालों ने दोनों ओर होकर ख़ूब तमाशे देखे।

नासिख़ के तीन दीवान हैं। पर दो प्रसिद्ध हैं। एक प्रयाग में संगृहीत हुआ था। परेशानी के ज़माने में वह तैयार हुआ था। इसलिये उसका नाम 'दफ़्तरे परेशान' रक्खा गया। दीवानों के सिवाय एक मसनवी 'नज़्म सिराज' और एक 'मौलूद शरीफ़' भी इनका लिखा हुआ है। नज़्म सिराज की कविता बहुत लचर है।

नासिख़ तारीख़ें बहुत लिखा करते थे। जहाँ कोई घटना हुई, मामूली बुख़ार भी आया, तो उसकी भी तारीख़ लिख दी।

इनकी ग़ज़लों में नाजुक ख़याली बहुत है। अत्युक्ति कहने में उर्दू के मुख्य कवियों में ये एक हैं। इनकी कविता में शब्दों का संगठन, बयान की सफ़ाई तथा मुहावरों का उचित प्रयोग ख़ूब है।

जब कोई अपरिचित कविता-प्रेमी इनके पास आता और कविता सुनने की इच्छा प्रकट करता, तब उसकी परीक्षा के लिये ये कुछ अटपटे शेर रख छोड़ते थे। उसे सुनाते। यदि वह सुनते ही बेतहाशा तारीफ़ करने लगता तो ये उससे विरक्त सा होकर दो एक शेर पढ़ने के बाद चुप हो जाते थे। यदि वह शेर सुन कर चुप रह जाता और सोच में पड़ जाता, तब ये समझते कि हाँ! यह कोई समझदार व्यक्ति है। तब ये उसे अच्छी-अच्छी ग़ज़लें सुनाते थे। इनके अटपटे शेरों में से नमूने का एक शेर यह है—

आदमी मख़मल में देखे मोरचे बादाम में।
टूटी दरिया का कलाई ज़ुल्फ़ उलझी दाम में॥

प्रायः ये अपने मुँह से शेर सुनाते भी कम थे। जब कोई सुनने की इच्छा प्रकट करता तो ये दीवान उसके आगे रखकर कहते कि इसमें से जो पसंद हो, पढ़ लीजिए।

बाहर रहने पर लखनऊ का वियोग इनके लिये असह्य हो जाता था। प्रयाग में इन्होंने एक शेर में अपनी क्या मर्मव्यथा प्रकट की है—

एक तिरबेनी है दो आँखें मेरी।
अब इलाहाबाद भी पंजाब है॥

नासिख़ पहले सुन्नत जमात के थे, फिर शिया हो गये। ये बहुत सरल और मिलनसार स्वभाव के थे। पर रात दिन अपने ख़यालात में ऐसे डूबे रहते थे कि लोग इन्हें अभिमानी और रूखी तबीअत का आदमी समझते थे। एक बात ज़रूर थी कि ये शिष्टाचार के नियमों की पाबंदी में बड़े सख़्त थे; जैसा कि पहले लिखी हुई घटनाओं से प्रकट है; पर शिष्ट पुरुषों की सुहबत से ये बड़े प्रसन्न होते थे।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं—

दिल उसको दिया हमने तक़सीर इसे कहते हैं।
मारा ग़मे .फ़ुरक़त ने ताज़ीर इसे कहते हैं॥
हम ख़्वाब में वाँ पहुँचे तद्बीर इसे कहते हैं।
वह नींद से चौंक उट्ठे तक़्दीर इसे कहते हैं॥
जो मुझ से गुरेज़ाँ था कल उसको मैं घर अपने।
बातों में लगा लाया तक़रीर इसे कहते हैं॥
मैं ख़ाक हुआ मर कर वह फ़ातिहे को आया।
अकसीर इसे कहते हैं तस्ख़ीर इसे कहते हैं॥
दीवानी सी जंगल में फिरती है पड़ी लैली।
जज़्बे दिले आशिक़ की तासीर इसे कहते हैं॥

पी जब कि शराब उसने कुन्दन सा बदन उसका।
सोना इसे कहते हैं अकसीर इसे कहते हैं॥
शक्ल उसकी तसव्वर ने खींची वरक़े दिल पर।
नक़्क़ाश इसे कहते हैं तस्वीर इसे कहते हैं॥
बेजुर्म किया बिस्मिल लाखोंही जवानों को।
सफ़्फ़ाक़ इसे कहते हैं बेपीर इसे कहते हैं॥
महफ़िल से उठाने का जब क़स्द किया उसने।
दानिस्तः मैं ग़श लाया तदबीर इसे कहते हैं॥
सौ क़त्ल किये ,ख़ूँ है अबरू में न मिज़गाँ में।
शमशीर इसे कहते हैं और तीर इसे कहते हैं॥
राजतना वह गुरेज़ाँ है दर पै दिले नालाँ है।
सैयाद इसे कहते हैं नख़्चीर इसे कहते हैं॥
अंजाम को कुछ सोचो क्या क़िस्र बनाते हो।
आबाद करो दिल को तासीर इसे कहते हैं॥
हैं पेशेनज़र अपने हर वक़्त तसव्वर में।
परियों की बस ऐ 'नासिख़' तसख़ीर इसे कहते हैं॥

* * *

धूप बेहतर है शबे ,फ़ुरक़त की बदतर चाँदनी।
सायके की तौर से पड़ती है मुझ पर चाँदनी॥
,ख़ूब रोऊँ ऐ शबे ग़म है मुक़द्दर चाँदनी।
बाद बारिश साफ़ हो जाती है अक्सर चाँदनी॥

हो गया हूँ नातवाँ ऐसा शबे फ़ुरक़त में मैं।
जिस्मे लाग़र पर है मिस्ले संगमरमर चाँदनी ॥
धूप आती है नज़र तारीक साये की तरह ।
मेरे घर में है अँधेरे के बराबर चाँदनी ॥
मेरे घर की राह कतरा कर निकल जाता है चाँद।
रहती है फ़ुरक़त की शब बाहरही बाहरचाँदनी ॥
ख़ाकसारी भी न छोड़े दे ख़ुदा जिसको उरूज।
आसमाँ पर माहेताबाँ है ज़मीं पर चाँदनी ॥
भूल कर ओ चाँद के टुकड़े इधर आजा कभी।
मेरे वीराने में भी होजाय दम भर चाँदनी ॥
क्या शबे महताब में बे यार जाऊँ बाग़ को।
सारे पत्तों को बना देती है ख़ञ्जर चाँदनी ॥
नुक़रई सूबाफ़ उस काफ़िर की चोटी में नहीं।
यह वो शब है जिसने कर ली है मसख़्ख़र चाँदनी ॥
ग़ैर तारीकी शबे फ़ुरक़त में ऐ 'नासिख़' नहीं।
हाँ अगर ज़ख़्मी हूँ तो निकले मुकर्रर चाँदनी ॥

आवाज़ है मानिन्द मज़ामीर गले में।
गोया तेरी तहरीर है तक़रीर गले में ॥
लिपटी है जो वाँ ज़ुल्फ़े गिरहगीर गले में।
याँ भी तो कई मनकी है ज़ंजीर गले में ॥

दीवाना किया है तेरी सूरत ने परीरू।
हो तौक़ के बदले तेरी तसवीर गले में॥
आवाज़ सुना कर मुझे बेहोश बनाया।
कब शीशए मय की है य तासीर गले में॥
ऐ जान कोई अपना गला काट मरेगा।
लटकाओ न यों नाज़ से शमशीर गले में॥
जुज़ ख़ाक दरे यार दवा दो न तबीबो।
वल्लाह अटक जायगी अकसीर गले में॥
सर कटने से हम मस्त न चुप हों कि है साक़ी।
शीशे की तरह क़ुव्वते तक़रीर गले में॥
अहबाब से माँगूँ मैं अगर नज़अ में पानी।
टपकायें न आबे दमे शमशीर गले में॥
किस दरजा सुनहरी तेरी रंगत है परीरू।
रस्सी हुई कुन्दन की भी ज़ंजीर गले में॥
ये यार जो की बाद:कशी ज़िबह हुआ मैं।
हर मौजे मयनाब है शमशीर गले में॥
है मल्के निसारा में तमन्ना यही 'नासिख़'।
फाँसी हो वही ज़ुल्फ़े गिरहगीर गले में।

* * *

लगादे शोलए आरिज़ से गर वह आग गुलशन को।
बाकबो सीख़ समझें बुलबुलें शाख़े नशेमन को॥

पस अज़ मुर्दन तो मुश्ते ख़ाक छू ले तेरे दामन को।
क़दम रखता है क्या ज़ालिम बचा कर मेरे मदफ़न को॥
वह अकसीर आतिशे ग़म है कि अपनी आहे सोज़ाँ ने।
तिलाई एक दम में कर दिया ज़ंजीरे आहन को॥
चढ़ाए नाफ़ए मुश्कीं समझ कर कुश्तए काकुल।
ग़िज़ालाने वियावाँ ने जो देखा मेरे मदफ़न को॥
चबाकर पान ज़ालिम ने किये गुलगूँ लबो दन्दाँ।
बनाया माद्ने या.कूत क्या हीरे के मादन को॥
लटक आई जो बाज़ू पर कोई लट .ज़ुल्फ़े पेचाँ की।
किया सोना सुगंध उसने तेरे सोने के जौशन को॥
गरेबाने सहर है जैसे हो रंगे शफ़क़ लाज़िम।
न छोड़ेगा लहू मेरा कभी क़ातिल के दामन को॥
मसायब नज़्म करता हूँ शबे तारीक हिजराँ के।
बनाया शमए बज़्मे फ़िक्र मैंने तबए रौशन को॥
छुरी देखी जो उस रश्के चमन के दस्त ना.ज़ुक में।
भुलाया बुलबुलाने बाग़ ने शाख़े नशेमन को॥
समाये गो न हम उसकी नज़र में एक दिन लेकिन।
.ग़ुबार अपना पस अज़ मुरद्न है सुरमा चश्मे दुशमन को॥
भला ग़ैर अज़ ग़ज़ल ख़्वानी हो मुझसे काम क्या 'नासिख़'॥
बजुज़ नाला नहीं आता है कुछ मुर्गे़ नवाज़न को॥

दम बुलबुले असीर का तन से निकल गया।
झोंका नसीम का जोंही सन से निकल गया॥
लाया व साथ ग़ैर को मेरे जनाज़े पर।
शोला सा एक जेब कफ़न से निकल गया॥
अब के बहार में य हुआ जोशए जुनूँ।
सारा लहू हमारे बदन से निकल गया॥
उस इश्क़े गुलके जाते ही बस आ गई ख़िज़ाँ।
हर गुल भी साथ बू के चमन से निकल गया॥
सुनसान मिस्ल वादिये ग़ुरबत है लखनऊ।
शायद कि 'नासिख़' आज वतन से निकल गया॥

❦ ❦ ❦

ख़ाक में मिल जाइये ऐसा अखाड़ा चाहिये।
लड़के कुश्ती देवे हस्ती को पछाड़ा चाहिये॥
और तख़्तों की हमारी क़ब्र में हाजत नहीं।
ख़ानए महबूब का कोई किवाड़ा चाहिये॥
इन्तहाए लाग़री से जब नज़र आया न मैं।
हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये॥
आँसुओं से हिज्र में बरसात रखिये साल भर।
हमको गरमी चाहिये हरगिज़ न जाड़ा चाहिये॥
मर गया हूँ हसरते नज़्ज़ारए अब्रू में मैं।
ऐन काबे में मेरे लाशे को गाड़ा चाहिये॥
लड़ते हैं परियों से कुश्ती पहलवाने इश्क़ हैं।
हमको 'नासिख़' राजा इन्दर का अखाड़ा चाहिये॥

❦ ❦ ❦

पोंछता अश्क अगर गोशए दामाँ होता।
चाक करता मैं जुनूँ में जा गरेबाँ होता॥
माल मिलता जो फ़लक से ज़रे जाँ होता।
सर न होता जो मयस्सर मुझे सामाँ होता॥
उसतरा मुँह प जो फिरने नहीं देता है वज़ा।
मह्वे दीदार से क्योंकर ख़ते .कुरआँ होता॥
अपने होठों से जो इकबार लगा लेता वह।
है यक़ीं सागिरे मै चश्मए हैवाँ होता॥
संग चक़माक़ भी बनता तो मेरा ज़ब्त य है।
न मेरी क़ब्र का पत्थर शरर अफ़शाँ होता॥
हूँ व वहशत कि अगर दश्त में फिरता शब को।
आगे मशआलची वही ग़ोले बयाबाँ होता॥
एक दम यार को बोसों से न मिलती .फ़ुरसत।
गर दहन दीदए आलम से न पिनहाँ होता॥
ख़ूँ रूलाता वहीं नासूर बनाकर गर्दन।
जख़्म भी गर मेरे तन पर कभी ख़ंदाँ होता॥
ऐ अजल ! एक दिन आख़िर मुझे आना है वले।
आज आती शबे .फ़ुरक़त में तो एहसाँ होता॥
ऐ बुतो ! होती अगर मेहरो मुहब्बत तुम में।
कोई काफ़िर भी न वल्लाह मुसलमाँ होता॥

हसरते दिल नहीं देता है निकलने 'नासिख़'।
हाथ सल होते मुयस्सर जो गरेबाँ होता॥

* * *

जो उस परी से शबे वस्ल में रुकावट हो।
मुझे भी एक जनाज़ा हो या छपरखट हो॥
मजाल क्या कि तेरे घर में पाँव मैं रक्खूँ।
यह आरज़ू है मेरा सर हो तेरी चौखट हो॥
हुजूम रखते हैं जाँबाज़ यूँ तेरे आगे।
जुआरियों का दिवाली को जैसे जमघट हो॥
लिपट के यार से सोता हूँ माँगता हूँ दुआ।
तमाम उम्र बसर या रब एक करवट हो॥
जलाओ ग़ैरों को मुझ से जो गरमियाँ करके।
तुम्हारे कूचे में तैयार एक मरघट हो॥
व मुँह छुपाते हैं जब तक हिजाब से शबे वस्ल।
इज़ारे सुबह से शब का न दूर घूँघट हो॥
मैं जाँ बलब हूँ गला काटो या गले से लगो।
जो इस में आप को मंज़ूर हो सो झटपट हो॥
करे वह ज़िक्र ख़ुदा पे सनम भला किस वक़्त।
जिसे कि आठ पहर तेरे नाम की रट हो॥

जो दिल को देते हो 'नासिख़' तो कुछ समझकर दो।
कहीं य मुफ़्त में देखो न माल तलपट हो॥

* * *

तेरे जाते ही हवा रंगे चमन हो जायगा।
वर्ग गुल जो है व वर्गे यासमन हो जायगा॥
बाम पर नंगे न आओ तुम शबे महताब में।
चाँदनी पड़ जायगी मैला बदन हो जायगा॥
फ़िक्र उरयानी नहीं मुझ नातवाने इश्क़ को।
पोस्त ढीला होके तन पर पैरहन हो जायगा॥
गर उठाकर शहर से सहरा में बिठलाओगे तुम।
बस वहीं मिस्ले दरख़्त अपना वतन हो जायगा॥
क्यों अचंभा है तुझे 'नासिख़' फ़िराक़े यार का।
एक दिन नादाँ फ़िराक़े रूहो तन हो जायगा॥

* * *

चोट दिल को जो लगे आहे रसा पैदा हो।
सदमा शीशे को जो पहुँचे तो सदा पैदा हो॥
हम हैं बीमारे मुहब्बत य दुआ माँगते हैं।
मिस्ल अक्सीर न दुनिया में दवा पैदा हो॥
कह रहा है जरसे क़लब व आवाज़ बलंद।
गुम हो रहबर तो अभी राहे ख़ुदा पैदा हो॥

मिल गया ख़ाक में पिस पिस के हसीनों पर मैं।
क़ब्र पर बोएँ कोई चीज़ हिना पैदा हो॥
अश्क थम जायँ जो .फ़ुरक़त में तो आहें निकलें।
.ख़ुश्क हो जाय जो पानी तो हवा पैदा हो॥
य कुछ असबाब के हम बंदे ही मुहताज नहीं।
न ज़बाँ हो तो कहाँ नामे .ख़ुदा पैदा हो॥
अभी .ख़ुरशीद जो छुप जाय तो ज़र्रात कहाँ।
तू ही पिनहाँ हो तो फिर कौन भला पैदा हो॥
क्या मुबारक है मेरा दश्ते जुनूँ ए 'नासिख़'।
बैज़ए बूम भी टूटे तो हुमा पैदा हो॥

* * *

फिर बहार आई चमन में ज़ख़्म दिल आले हुये।
फिर मेरे दाग़े जिगर आतिश के परकाले हुये॥
किस तरह छोड़ूँ यकायक उसकी .ज़ुल्फ़ों का ख़याल।
एक मुद्दत से य काले नाग हैं पाले हुये॥
याद जब आया चमन में वह निहाले बाग़ हुस्न।
यक क़लम लबरेज़ अश्कों से मेरे थाले हुये॥
वह परी पैकर कहा करता है अक्सर फ़ख़, से।
अब तो 'नासिख़' भी हमारे चाहने वाले हुये॥

* * *

आतिशे इश्क़ वह है जिसमें समुन्दर जल जाय।
इक शरर जाय जो पत्थर में तो पत्थर जल जाय॥
तन बदन फूँक दिया है शबे फ़ुरक़त ने मेरा।
क्या अजब है जो मेरे जिस्म से बिस्तर जल जाय॥
दोस्त कहते हैं उसे साथ जो दे आफ़त में।
शमा के जलने से परवाना न क्योंकर जल जाय॥
है व परकालए आफ़त क़दे मौज़ूँ तेरा।
दीजिए उससे जो तशबीह सनोबर जल जाय॥
आतशीं चेहरा है हर शाहिदे मज़मूँ नासिख़।
क्या अजब है मेरे अशआर का दफ़्तर जल जाय॥

❦ ❦ ❦

है अजब तरह की वहशत तेरे दीवाने में।
जी न आबादी में लगता है न वीराने में॥
आफ़ताब उस में अगर आवे तवा बन जावे।
नूर का दख़्ल नहीं मेरे सियह खाने में॥
नाज़की से हुआ क़ातिल मेरी हालत का शरीक।
याँ लगा ज़ख़्म तो वाँ दर्द उठा शाने में॥
नोश कर शौक़ से दिल खोल के सर्फ़ः क्या है।
ख़ौफ़ बदहज़मी का 'नासिख़' नहीं ग़म खाने में॥

❦ ❦ ❦

माहे नौ है मिस्ल अब्रू लेकिन उसका रू नहीं।
माहे कामिल सूरते रू है मगर अब्रू नहीं॥
कौन सा तन है कि मिस्ले रूह जिसमें तू नहीं।
कौन गुल है जो तेरा मरकून वरंगे बू नहीं॥
जामे नरगिस में कहाँ शबनम जा निकले आफ़ताब।
यार के आगे मेरी आँखों में इक आँसू नहीं॥
जिस्म ऐसा घुल गया है मुझ मरीज़े इश्क़ का।
देखकर कहते हैं सब तावीज़ है बाज़ू नहीं॥

वायज़ा मसजिद से अब जाते हैं मैख़ाने को हम।
फेंक कर ज़र्फ़े वज़ू लेते हैं पैमाने को हम॥
क्या मगस बैठे भला उस शोला रू के जिस्म पर।
अपने दाग़ों से जला देते हैं परवाने को हम॥
तेरे आगे कहते हैं गुल खोलकर बाज़ूए बर्ग।
गुलशने आलम से हैं तैयार उड़ जाने को हम॥
कौन करता है बुतों के आगे सिजदा ज़ाहिदा।
सर को दे दे मार के तोड़ेंगे बुतख़ाने को हम॥
बोसए ख़ाले ज़नख़दाँ से शफ़ा होगी हमें।
क्या करेंगे ऐ तबीब इस तेरे बुहदाने को हम॥
बाँधते हैं अपने दिल में ज़ुल्फ़े जानाँ का ख़याल।
इस तरह ज़ंजीर पहनाते हैं दीवाने को हम॥

अक़्ल खोदी थी जो ऐ 'नासिख़' जुनूने इश्क़ ने।
आशना समझा किये इक उम्र बेगाने को हम॥

* * *

साथ लाये हैं अज़ल से दीद का आज़ार हम।
गुलशने आलम में क्या हैं नरगिसे बीमार हम॥
बह गये हैं बायज़ा गिर्दाबे दौरे जाम में।
ज़ीस्त भर होंगे न इस दरियाए मै से पार हम॥
गर नज़र आता नहीं इक लमहा वह नूरे निगाह।
करते हैं अपनी नज़र से आँसुओं का तार हम॥
हैं जो ग़ाफ़िल उनको सूली पर भी आ जाती है नींद।
पेस्वए तोशक प हैं मंसूर से हुशियार हम॥
उम्र गुज़री इक बुते क़ाफिर नज़र आता नहीं।
हश्र में क्योंकर .ख़ुदा का पायँगे दीदार हम॥
हो व काफ़िर जिसको दीदारे .ख़ुदा की हो हवस।
ओ बुते काफ़िर तेरे हैं तालिबे दीदार हम॥

* * *

जीते जी जाऊँ मैं क्योंकर कूए जानाँ छोड़ कर।
बुलबुले नालाँ कहाँ जावें गुलिस्ताँ छोड़ कर॥
चाहिये वहशत में जामा चाक होना रूह का।
दामने क़ातिल का यों अपना गरेबाँ छोड़ कर॥

वस्ले जानाँ में नज़र आया महे शावाँ मुझे।
सब्ज़ा क्या देखूँ ख़ते रुख़सारे जानाँ छोड़ कर॥
वस्ले जानाँ किसकी क़िस्मत में हमेशा है दिला।
जाती है इक रोज़ आख़िर जिस्म को जाँ छोड़ कर॥
मैं ने जब आँखों के मज़मूँ का पढ़ा वहशत में शेर।
कूए जानाँ को चले आहू बयावाँ छोड़ कर॥
हूर है साक़ी मेरा क्योंकर हो मै मुझपर हराम।
वायज़ा करता है क्या बातें तू ईमाँ छोड़ कर॥
हा इलाही वस्ल जिन्नत में भी मुझको यार का।
कब व इंसाँ है जो माँगे हूर इन्साँ छोड़ कर॥
रोशनी का सैर जब मैंने शबे .फुरक़त में की।
शोले आ लपटे मुझे सबे चिराग़ाँ छोड़ कर॥
हो वतन में ख़ाक मेरे गौहरे मज़मूँ की क़द्र।
लाल क़ीमत को पहुँचता है बदख़्शाँ छोड़ कर॥
मर गया क्या नासिख़े मैकश जो सारे मैफ़रोश।
मसजिदों में बैठे अपनी अपनी दूकाँ छोड़ कर॥

* * *

तेरे कूचे में खड़ा रहता हूँ मैं ऐ यार! चुप।
रात दिन जिस शक्ल से हो सूरते दीवार चुप॥
क़ीमत इस शीरीं ज़बानी से बयाँ यूसुफ़ ने की।
रह गया हैरत से सारा मिश्र का बाज़ार चुप॥

फ़ाश होते हैं कमाले इश्क़ में इसरारे इश्क़।
जोशे मस्ती में नहीं मुमकिन कि हो मैख़्वार चुप॥
हैं य बुत वल्लाह बेदर्द इनको है किसका ख़याल।
समझ सेहत मर के हो जावे अगर बीमार चुप॥
तेरे कूचे में जो करता हूँ फ़ुग़ाँ माज़ूर हूँ।
किस तरह गुलज़ार में हो बुलबुले गुलज़ार चुप॥
है क़यामत सुहबते अरबाबे ग़फ़लत का असर।
पास होता है जो कोई रहते हैं वेदार चुप॥
ख़्वाब में भी यार के शिकवे का आया गर ख़याल।
बोल उट्ठा पास अदब हाँ पे लबे इज़हार चुप॥
रौंदने वाले न हरगिज़ दूर से हो नाराज़न।
सब्र से गर पायमाली से न हो हर ख़ार चुप॥
क्यों नहीं देता किसी को तू जवाब ऐ संगदिल!
सुन के जब आवाज़ को रहते नहीं कुहसार चुप॥
लाल होती हैं ज़बानें नासिख़ अपने सामने।
बुग़ज़ से दुश्मन रहें बस सुनके यह अशआर चुप॥

मेरा सीना है मशरिक़ आफ़तावे दाग़े हिजराँ का।
तुलूए सुबहे महशर चाक है मेरे गरेबाँ का॥
कोई मज़मूँ अगर लिखता मैं इस हाले परेशाँ का।
कभी बँधता न शीराज़ा मेरे औराक़ दीवाँ का॥

कफ़न की जब सफ़ेदी देखता हूँ कुंजे मरक़द में।
तो आलम याद आता है शबे महतावे हिजराँ का॥
किसी .खुरशीद रू के जज़्ब दिल ने आज खींचा है।
कि नूरे सुबह सादिक़ है .गुवार अपने बयावाँ का॥
य इश्क़ ऐसी बलाये बद है जिसके नाम की दौलत।
दरख़्तों को सुखाता है लपटना इश्क़ पेचाँ का॥
व शोख़े फ़ितना अंगेज़ अपनी ख़ातिर में समाया है।
कि इक़ गोशा है सहराई क़यामत जिसके दामाँ का॥
तहे शमशीर क़ातिल किस क़दर बश्शाश था 'नासिख़'।
कि आलम हर दहाने ज़ख़्मपुर है रूए ख़न्दाँ का॥

* * *

आज मुझ को दश्ते वहशत में वतन याद आ गया।
बूए गुल को याद बरबादी चमन याद आ गया॥
हूँ वो वहशी ज़ीस्त भर भूला रहा पोशाक को।
जब कफ़न पहना तो मुझ को पैरहन याद आ गया॥
तंग मुझ पर हो गया अय्यामे .फ़ुरक़त में जहाँ।
ऐ परीरू क्या मुझे तेरा दहन याद आ गया॥
जब नहाया मैं तो आया .गुस्ले मय्यत का ख़्याल।
क़ता जब होने लगे कपड़े कफ़न याद आ गया॥
ए अज़ीज़ो आज मेरा जी न डूबा जाय क्यों।
अपने यूसुफ़ का मुझे चाहे .ज़क़न याद आ गया॥

हूँ जो यूँ ख़ामोश ऐ हमदम नहीं तुझ से ख़फ़ा।
आज मुझ को वो हसीने कम सुख़न याद आ गया॥
अपने सर को फोड़ कर अब जान शीरीं क्यों न दूँ।
बस्तियों पर मुझ को 'नासिख़' कोहकन याद आ गया॥

❦ ❦ ❦

यों नज़ाकत से गिराँ सुर्मा है चश्मे यार को।
जिस तरह हो रात भारी मर्दुमे बीमार को॥

❦ ❦ ❦

सियह बख़्ती में कोई कब किसी का साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा होता है इन्साँ से॥

❦ ❦ ❦

ख़त जो हम कर चुके तहरीर तो पहुँचाने को।
आशियानों से निकल आये कबूतर बाहर॥

❦ ❦ ❦

मरतबा कम हिर्से रिफ़अत से हमारा हो गया।
आफ़ताब इतना हुआ ऊँचा कि तारा हो गया॥

❦ ❦ ❦

क्यों नहीं होता मुझे ग़म आशिक़े जाँबाज़ का।
देख रोती है बरूए लाशा परवाना शमा॥

❦ ❦ ❦

सरे उश्शाक़ यहाँ बिकते हैं माशूक़ वहाँ।
कूए क़ातिल है जुदा मिस्र का बाज़ार जुदा॥

❦ ❦ ❦

अयाँ है मेहरो मह का फ़र्क़ तुझ में और यूसुफ़ में।
भला सोने के आगे ख़ाक हो तौक़ीर चाँदी की॥

* * *

है सितारा ज़ू ज़नब या रुख़ है जुल्फ़े यार में।
ख़ाल है ख़ुरशीद में या तिल है यह रुख़सार में॥

* * *

गुलेज़ारों की जो महफ़िल में गया वह गुलेतर।
हो गये ज़र्द जो दो चार तो दो चार सफ़ेद॥

* * *

वस्ल में था सुबह से बेज़ार मैं।
हिज्र की शब मुझ से है बेज़ारे सुबह॥

* * *

भेजना ख़त का किया उस बुत ने बंद।
अब ख़ुदाया मौत का पैग़ाम भेज॥

* * *

दे घटा को न मेरे दीदएतर से निस्बत।
आबरू मेरी न हमचश्मों में ऐ यार! घटा॥

* * *

यों न बातें चबा चबा के करो।
मेहरबाँ बात है नबात नहीं॥

* * *

इस क़द्र खाया तेरी .फ़ुरक़त में ग़म।
दिल हमारा ज़िन्दगी से सेर है॥

❦ ❦ ❦

जान बचने की कोई सूरत नज़र आती नहीं।
ले चली फ़िरदौस को .फ़ुरक़त मुझे इक हूर की॥

❦ ❦ ❦

मुतज़र्रिर न हो दिमाग़ कभी।
गुल न हो अक़्ल का चिराग़ कभी॥

❦ ❦ ❦

उसके हाँ आफ़ताब आरिज़ है।
दिन ही आठों पहर है रात नहीं॥

❦ ❦ ❦

जी में है रख के सर मैं सो जाऊँ।
तकिया मख़मल का है तुम्हारा पेट॥

❦ ❦ ❦

बदन शराब कशो से .ख़ुमे शराब बना।
है अपनी रूह बदन में बरंग बूए शराब॥

❦ ❦ ❦

कहरुबा में है कशिश आहनरुबा में जज़्ब है॥
दिल बचे क्योंकर हमारा दिलरुबा के सामने॥

❦ ❦ ❦

तमन्ना है साक़ी कभी बज़्मे मै में।
वो सरशार हो और हुशियार मैं हूँ॥

❦ ❦ ❦

सिवाय मक्र ज़माने में रस्मोराह नहीं।
वह कौन जा है जहाँ चाह ज़ेर काह नहीं॥

❦ ❦ ❦

तायरे रूह को कर देते हैं क्योंकर बिसमिल।
तीर रखते हैं परीरू न कमाँ रखते हैं॥

❦ ❦ ❦

वह हमी हैं इश्क़ से लड़ते हैं जो ख़म ठोंक कर।
वर्ना 'नासिख़' इस क़दर किस पहलवाँ में ज़ोर है॥

❦ ❦ ❦

हर फिर के दायरे ही में रखता हूँ मैं क़दम।
आई कहाँ से गरदिशे परकार पाँव में॥

❦ ❦ ❦

मैं गो कि हुस्न से ज़ाहिर में मिस्ले माह नहीं।
हज़ार शुक्र कि बातिन मेरा सियाह नहीं॥

❦ ❦ ❦

मेरी आँखों ने मुझे देखके वह कुछ देखा।
कि ज़बाने मज़ः पर शिकवा है बीनाई का॥

❦ ❦ ❦

की .ख़ुदा ने काफ़िरों पर ऐ सनम जिन्नत हराम।
वर्ना किसकी आँख पड़ती तेरे होते हूर पर॥

❦ ❦ ❦

वो आफ़ताब न हो किस तरह से बे साया।
हुआ न सर से कभी सायए सहाब जुदा॥

❦ ❦ ❦

है य व राह कि ता अर्श पहुँचता है बशर।
दिल में दरवाज़ा है इस गुम्बदे मीनाई का॥

❦ ❦ ❦

मिसी आलूदः लब पर रंग पाँ है।
तमाशा है तहे आतिश धुँवाँ है॥

❦ ❦ ❦

सैकड़ों आहें करूँ पर दख़्ल क्या आवाज़ का।
तीर जो देवे सदा है नुक़्स तीरन्दाज का॥

❦ ❦ ❦

तिरछी नज़रों से न देखो आशिक़े दिलगीर को।
कैसे तीरन्दाज़ हो सीधा तो कर लो तीर को॥

आतिश

आतिश उपनाम; ख़्वाजा हैदर अली नाम; पिता का नाम ख़्वाजा अली बख़्श; स्थान लखनऊ; जन्म-संवत् अनिश्चित; मरण-संवत् १९०२ ।

आतिश के पिता दिल्ली के रहने वाले थे, पर लखनऊ में आ बसे थे। आतिश का जन्म लखनऊ में हुआ। ये ख़्वाजा-ज़ादों के ख़ान्दान से थे और पीरी मुरीदी का फ़क़ीरी सिल-सिला भी क़ायम था। पर इन्होंने शायरी का हाथ पकड़ा और परम्परा की वृत्ति को त्याग दिया। हाँ, उसमें से स्वच्छन्दता और संतोष को अवश्य साथ ले लिया था। पद्य-रचना का शौक़ इन्हें बचपन से ही था। इससे ये पर्याप्त शिक्षा प्राप्त न कर सके। पर प्रतिभावान् बड़े थे। प्रतिभा ने इनकी शिक्षा की कमी को पूरा कर दिया। फ़ारसी के सिवा अरबी में भी इन्होंने योग्यता प्राप्त कर ली, और अपने समय के ये उस्ताद कहलाये। इनके सैकड़ों शागिर्द थे।

ये मसहफ़ी के शागिर्द थे। इनकी कविता ने इनके साथ ही इनके उस्ताद के भी नाम को चमका दिया। इनको और मसहफ़ी की कविता में उजाले और अंधेरे का अन्तर है।

ये बड़े सीधे-सादे और भोले-भाले थे। पर ठाट सिपाहि-याना रखते थे और मस्त और निश्चिन्त थे। रहन-सहन में

कुछ फ़क़ीरी को भी गंध रहता थो। बुढ़ापे तक तलवार बाँधते रहे। सिर पर कभी ज़ुल्फ़, कभी हैदरी चोटी; उसी में सब्ज़ी का एक तुर्रा लगाये रहते थे। एक बाँकी टोपी भौं पर धरे बाँके तिर्छे बने जिधर चाहते थे, चले जाते थे। बालो खाँ की सराय में एक पुराने मकान में रहते थे। उस महल्ले के एक तरफ़ जंगल था। ये प्रायः उजाड़ जंगल में फिरते रहते थे।

लखनऊ दरबार से इनको अस्सी रुपये महीने मिलते थे। उनमें से १५ रुपये घर में दे देते थे। बाक़ी ग़रीबों को, या जिसे ज़रूरत होती थी, बाँट देते थे। महीने से पहले ही हाथ ख़ाली करके बैठ जाते थे। कभी कभी उपवास भी हो जाता था। पर दरवाज़े पर एक घोड़ा ज़रूर बँधा रहता था। शागिर्दों में कुछ ऐसे थे जो इनकी खोज-ख़बर लिया करते थे और खाने-पीने में तकलीफ़ न होने देते थे। प्रायः मीर दोस्त अली ख़लील को इनकी सेवा का सौभाग्य मिलता रहता था। कई शागिर्दों के यहाँ से भी कुछ मासिक बँधा था।

आतिश बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। ये दरबार में भी नहीं जाते थे और न कभी इन्होंने किसी अमीर उमराव की प्रशंसा ही में कुछ कहा। अपने टूटे-फूटे घर में छप्पर की छाया में बोरिया बिछाकर बैठ रहते थे, और फ़क़ीर की तरह जीवन बिताते थे। अमीरों की अपेक्षा ग़रीबों का अधिक चाहते

थे। जब कोई ग़रीब आता तो उससे बड़े प्रेम से बातें करते, पर कोई अमीर आता तो दुत्कार देते थे। कभी कोई अमीर सलाम करके बैठने के लिये आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहता तो ये कहते कि, हूँ, क्यों साहब! बोरिये को देखते हो? कपड़े बिगड़ जायँगे? यह तो फ़क़ीर का तकिया है, यहाँ मसनद तकिया कहाँ? परिणाम यह हुआ कि ग़रीब से अमीर तक सब उसी तकिये में आकर सलाम कर गये और ये अपनी आन-बान को निभा ले गये।

एक दिन भले चंगे बैठे थे कि मृत्यु का ऐसा झोंका आया कि दीपक की तरह बुझ गये। आतिश के घर में राख के सिवा और क्या होता? ख़लील ने मृत्यु की सब रस्में पूरी कीं। बीबी, एक लड़का और एक लड़की छोड़ मरे थे। उनका भी भरण पोषण ख़लील ने ही किया।

नासिख़ और ये समकालीन थे। दोनों में बड़ी नोक-झोंक रहती थी। मशायरे में और घर में बैठे भी दोनों एक दूसरे पर चोट करते रहते थे। एक बार नवाब आग़ा मीर के यहाँ मशायरा था। वे नासिख़ के तरफ़दार थे। उनका इरादा मशायरे में सब के सामने नासिख़ को ख़िलअत देने का था। यार लोगों ने आतिश के पास तरह का मिसरा उस समय भेजा जब मशायरा एक दिन बाक़ी रह गया।

उनका अभिप्राय यह था कि आतिश को समय कम मिले और ये ग़ज़लें न कह सकें। इस व्यवहार से आतिश बहुत जले। कहने लगे—लखनऊ अब रहने योग्य नहीं रहा। हम न रहेंगे। शागिर्दों ने जमा होकर मनाया चुनाया और तसल्ली दी कि परवा मत कीजिये, हम लोग दो दो शेर कहेंगे तो सैकड़ों हो जायँगे। आतिश झुँझला कर शहर के बाहर चले गये। फिरते-फिरते एक मसजिद में जा बैठे। वहाँ ग़ज़ल तैयार की और मशायरे में गये। जाते समय एक कड़ाबीन भी भर कर लेते गये थे और ऐसे स्थान पर बैठे थे जहाँ से नासिख़ का ठीक सामना पड़ता था। ये कड़ाबीन के साथ ख़ुद भी भरे बैठे थे। बार-बार उसे उठाते थे और रख देते थे। पहले नासिख़ ने ग़ज़ल पढ़ी जिसका मतला यह था—

मिस्सी आलूदः लब पर रंग पाँ है।
तमाशा है तहे आतिश धुँवाँ है॥

आतिश का शब्द सुनते ही आतिश आग-बबूला हो गये। जब इनके सामने शमा आई, तब इन्हों ने यह मतला पढ़ा—

यह किस रश्के मसीहा का मकाँ है।
ज़मीं जिसकी चहारुम आसमाँ है॥

नवाब साहब डरे कि कहीं यह कड़ाबीन न चला दें। उन्हों ने चुपके से दारोग़ा को इशारा करके एक और ख़िलअत मँगाई और दोनों उस्तादों को सम्मानित किया।

नासिख़ से इतना विरोध होने पर भी आतिश ने उनकी मृत्यु पर बहुत शोक प्रकट किया और उस दिन से शेर कहना ही छोड़ दिया। नासिख़ आतिश से नौ वर्ष पहले मरे थे।

एक शागिर्द निठल्ले बैठे रहने से घबरा कर बाहर जाने का इरादा कर रहे थे। आतिश ने कहा—क्यों, कहाँ जाओगे। जो ख़ुदा दे उसी पर संतोष करो। एक दिन वे विदा लेने आये और पूछने पर कहा कि कल बनारस जा रहा हूँ। कोई चीज़ चाहिये तो आज्ञा दीजियेगा। आतिश ने हँसकर कहा—इतना काम करना कि वहाँ के ख़ुदा को ज़रा हमारा भी सलाम कह देना। शागिर्द ने हैरान होकर पूछा—हज़रत ! यहाँ के ख़ुदा से वहाँ का ख़ुदा क्या जुदा है ? आतिश ने कहा—शायद यहाँ का ख़ुदा कंजूस है, वहाँ का ख़ुदा दाता होगा। वे बेचारे समझ गये और बाहर जाने का इरादा छोड़कर घर बैठ रहे।

एक दिन आतिश को नमाज़ का ध्यान आया। किसी शागिर्द से कहा—भई, हमें नमाज़ तो सिखाओ। शागिर्द था सुन्नी। उसने सुन्नत जमात की नमाज़ सिखा दी और यह भी कह दिया कि, उस्ताद ! ख़ुदा की इबादत जितनी ही छिप कर की जाय, उतनी ही सफल होती है। भोले-भाले आतिश दरवाज़ा बंद करके उसी तरह नमाज़ पढ़ा करते। ख़लील इनके ख़ास शागिर्द थे। उनसे बाहर भीतर कहीं कुछ छिपाव न था।

एक दिन उन्हों ने इनकी नमाज़ देख ली। वे हैरान होकर कहने लगे—उस्ताद, आप का मज़हब क्या है? इन्हों ने कहा—शिया। ख़लील ने कहा—आप नमाज़ तो पढ़ते हैं सुन्नियों की। उन्हों ने कहा—भई, मैं क्या जानूं। अमुक व्यक्ति ने जैसा सिखाया, मैं वैसा करता हूँ। मुझे क्या मालूम कि एक ख़ुदा की दो दो नमाज़ें हैं। उस दिन से ये शियों की सी नमाज़ पढ़ने लगे।

आतिश के जितने शागिर्द थे, उतने किसी उस्ताद को नसीब नहीं हुये। इनके शागिर्दों में रिन्द, सबा, ख़लील, जलील, बिसमिल और 'गुलज़ार नसीम' के कर्त्ता पंडित दया शंकर 'नसीम' बहुत प्रसिद्ध हैं।

आतिश का एक दीवान है जो उनके सामने ही छप गया था और उसकी बड़ी क़द्र हो चली थी। अब भी आतिश की ग़ज़लें महफ़िलों में बड़े शौक़ से गाई जाती हैं और गाने वालों में उनका ख़ूब प्रचार है। आतिश की भाषा बामुहावरे और ज़ोरदार है। लखनऊ की बोलचाल का वह एक अच्छा नमूना है।

यहाँ आतिश की कुछ चुनी हुई ग़ज़ल और शेर दिये जाते हैं—

दहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे।
कलाम आए हैं दरमियाँ कैसे कैसे॥

ज़मीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या।
वदलता है रंग आसमाँ कैसे कैसे॥
तुम्हारे शहीदों में दाख़िल हुए हैं।
गुलो लाल:ओ अरगवाँ कैसे कैसे॥
वहार आई है नश्शे में झूमते हैं।
मुरीदाने पीरे मुग़ाँ कैसे कैसे॥
अजव क्या छुटा रूह से जामए तन।
लुटे राह में कारवाँ कैसे कैसे॥
तबे हिज्र की काहिशों ने किये हैं।
जुदा पोश्त से उस्तख़्वाँ कैसे कैसे॥
न मुड़ कर भी वेदर्द क़ातिल ने देखा।
तड़पते रहे नीमजाँ कैसे कैसे॥
न गोरे सिकन्दर न है क़ब्रे दारा।
मिटे नामियों के निशाँ कैसे कैसे॥
वहारे गुलिस्ताँ की है आमद आमद।
.ख़ुशी फिरते हैं वाग़वाँ कैसे कैसे॥
तवज्जह ने तेरी हमारे मसीहा।
तवानाँ किये नातवाँ कैसे कैसे॥
दिले दीदये अह्ले आलम में घर है।
तुम्हारे लिये हैं मकाँ कैसे कैसे॥

ग़मो .गुस्सः वो रंजोअन्दोहो हिरमाँ ।
हमारे भी हैं मेहवाँ कैसे कैसे ॥
तेरे क़ल्क़ .कुद्रत को .कुरवान आँखें ।
दिखाये हैं .खुशरू जवाँ कैसे कैसे ॥
करे जिस क़द्र शुक्रे नेअ़मत वो कम है ।
मज़े लूटती है ज़वाँ कैसे कैसे ॥

* * *

अदम से जानिबे हस्ती तलाशे यार में आये ।
हवाए गुल में हम किस वादिये पुरख़ार में आये ॥
न चीन ऐ तुर्क बेरह्म अवरूए ख़मदार में आए ।
लगा ख़ामी का धब्बा वल जहाँ तल्वार में आये ॥
उठाए वारे इश्क़ इस आलमे ग़द्दार में आये ।
कहाँ से हम कहाँ पकड़े हुए वेगार में आये ॥
इशारा है यही उनके लवे शीरीं के ख़ालों का ।
मिलाने को नमक हम शरवते दीदार में आये ॥
न दी वू एक ने ऐ गुलवदन तेरे पसीने की ।
हज़ारों इत्र खिंच कर तवलए अत्तार में आये ॥
ख़रीदारों में आशिक़ अपने नामों को हैं लिखवाते ।
तमाशा है वो यूसुफ़ बनके हैं बाज़ार में आये ॥
रहा ऐ बादशाहे हुस्न तू किस क़स्रे आली में ।
हुमा बहरे सआदत सायए दीवार में आये ॥

वज़ू होते हैं मय से ख़िश्ते ख़ुम पर शुक्र के सिजदे।
नमाज़ी लोग भी हैं ख़ानए ख़ुम्मार में आये॥
किया है हुस्न ने सुल्ताने ख़ूबाँ चाहिये तुमको।
मिले दाद उनको फ़रयादी जो हैं सरकार में आये॥
उड़े होश अपने नज़्ज़ारे में ऐ कल तेरी सूरत के।
ग़श आया जब मक़ामे नरगिसे बीमार में आये॥
जवानी है कहाँ अब यार की वह सूरते तिफ़्ली।
हुए ढंग और ही रंग और ही रुख़सार में आये॥
बजा करते हैं नहवी एहतिमाले सिद्क़ कज़्ब आतिश।
बहुत से मुख़्तलिफ़ अहवाल भी अख़बार में आये॥

* * *

निकलती किस तरह है जाने मुज़तर देखते जाओ।
हमारे पास से जाओ तो फिर कर देखते जाओ॥
नसीमे नौबहारी की तरह आये हो गुलशन में।
तमाशाए गुलो सर्वो सनोबर देखते जाओ॥
जिधर जाते हो हर घर में से यह आवाज़ आतीहै।
मसीहा हो जो बीमारों को दम भर देखते जाओ॥
क़दम अन्दाज़ से बाहर हुए जाते हैं साहब के।
सितम रफ़्तार में करती है ठोकर देखते जाओ॥
मिले वह राह में अबकी तो कहता हूँ जो हो सो हो।
दिखादो घर मुझे अपना मेरा घर देखते जाओ॥

ख़िरामे नाज़ में आशिक़ से हो इस्का इशारा भी।
कुछ अपनी तेग़े अबरू का भी जौहर देखते जाओ॥
रविश मस्ताना चलतेहो क़दम मस्ताना पड़ते हैं।
ख़ुदा के वास्ते बहरे पयम्बर देखते जाओ॥
कोई उन से कहे मुँह फेर कर जो क़त्ल करते हो।
तड़फता है तुम्हारा कुश्ता क्यों कर देखते जाओ॥
निगाहे लुत्फ़ का शायक़ है तहतो फ़ौक़ का आलम।
कभी नीचे नज़र हो गाह ऊपर देखते जाओ॥
कभी हिल जाती है अबरू कभी जुम्बिश है मिज़गाँ को।
दिखाते हो हमें शमशीरो खंजर देखते जाओ॥
नक़ाब यकदिन पलटकर तुमने यह मुँह से न फ़रमाया।
जमाले आफ़ताबे ज़र्रः परवर देखते जाओ॥
न फेरो उससे मुँह आतिश जो कुछ दरपेश आ जावे।
दिखाता है जो आँखों को मुक़द्दर देखते जाओ॥

लगाती आग बिजली की चमक है ख़ानए तन में।
बरसता मिंह नहीं बे यार ख़ाक उड़ती है सावन में॥
बहारे लालः ओ गुल से लगी है आग गुलशन में।
गरेबाँ फाड़ कर चल बैठिये सहरा के दामन में॥
यः सौदाई शहादत है हमारे सरको ऐ क़ातिल।
तेरी तलवार का दम भरती है जो रग है गरदन में॥

नहीं रोज़न जो क़सरे यार में परवा नहीं हमको।
निगाहे शौक़ रख़ना करती है दीवारे आहन में॥
जुनूं के जोश में यकजा नहीं दम भर क़रार आता।
कभी गुलशन से सहरा में कभी सहरा से गुलशन में॥
शरीफ़े काबा को काबा मुबारक हमतो पे 'आतिश'॥
बुतों को घूरने को जाते हैं दैरे बरहमन में।

* * *

मेरे सनम का किसी को मकाँ नहीं मालूम।
ख़ुदा का नाम सुना है निशाँ नहीं मालूम॥
अख़ीर होगये ग़फ़लत में दिन जवानी के।
बहारे उम्र हुई कब ख़िज़ाँ नहीं मालूम॥
मेरी तरह तो नहीं इसको इश्क़ का आज़ार।
यह ज़र्द रहती है क्यों ज़ाफ़राँ नहीं मालूम॥
जहाँ वो कारे जहाँ से हूँ बेख़बर बदमस्त।
किधर ज़मीं है किधर आसमाँ नहीं मालूम॥
मेरी तुम्हारी मुहब्बत है शुहरए आफ़ाक़।
किसे हक़ीक़तो माहो कितौँ नहीं मालूम॥
मिला था ख़िज्र का किस तरह चश्मए हैवाँ।
हमें तो यार का अपने दहाँ नहीं मालूम॥

छुटेंगे ज़ीस्त के फंदे से कौन दिन 'आतिश'।
जनाज़ा होगा कब अपना रवाँ नहीं मालूम ॥

* * *

यार को मैंने मुझे यार ने सोने न दिया।
रातभर नालए बेदार ने सोने न दिया ॥
एक शब बुलबुले बेताब के जागे न नसीब।
पहलुए गुल में कभी ख़ार ने सोने न दिया ॥
सैल गिरिया से मेरी नींद उड़ी मर्दुम की।
ज़िक्रे बामो दरो दीवार ने सोने न दिया ॥
शाम से वस्ल की शब आँख न झपकी मेरी।
शादिये दौलते दीदार ने सोने न दिया ॥
सच है ग़मख़्वारिए बीमार अज़ाबे जाँ है।
तादमे मर्ग दिले ज़ार ने सोने न दिया ॥
दर्दे सर शाम से उस .ज़ुल्फ़ के सौदे में रहा।
सुबह तक मुझको शबे तार ने सोने न दिया ॥
तकिया तक पहलू में उस गुल ने न रक्खा 'आतिश'।
ग़ैर को साथ कभी यार ने सोने न दिया ॥

* * *

हवाए दौर मेरा .ख़ुश गवार राह में है।
ख़िज़ाँ चमन से है रुख़सत बहार राह में है ॥

गर्दानवाज़ कोई शहस्वार राह में है।
बलन्द आज निहायत .गुबार राह में है॥
शबाब तक नहीं पहुँचा है आलमे तिफ़्ली।
हिनोज़ हुस्न जवानीए यार राह में है॥
अदम के कूच की लाज़िम है फ़िक्र हस्ती में।
न कोई शहर न कोई दयार राह में है॥
तरीक़े इश्क़ में ऐ दिल असाए आह है शर्त।
कहीं चढ़ाव किसी जा उतार राह में है॥
सबीले इश्क़ का सालिक है वाअज़ों की न सुन।
ठगों के कहने का क्या एतबार राह में है॥
जगह है रहम की यार एक ठोकर इसको भी।
शहीदे नाज़ का तेरे मज़ार राह में है॥
न बदरक़ा है न कोई रफ़ीक़ साथ अपने।
फ़क़त इनायते परवर्दिगार राह में है॥
न जाएँ आप अभी दोपहर है गर्मी की।
बहुत सी गई बहुत सा .गुबार राह में है॥
सफ़र है शर्त मुसाफ़िर नवाज़ बहतेरे।
हज़ारहा शजरे सायादार राह में है॥
मुक़ाम तक भी हम अपने पहुँच ही जाएँगे।
.खुदा तो दोस्त है दुश्मन हज़ार राह में है॥

पता य कूचए क़ातिल का सुन रख ऐ क़ासिद !
बजाए संग निशाँ इक मज़ार राह में है॥
पयादे पा हूँ रवाँ सूए कूचए क़ातिल।
अजल मेरी मेरे सर पर सवार राह में है॥
थके जो पाँव तो चल सर के बल न ठहर 'आतिश'।
गुले मुराद है मंज़िल में ख़ार राह में है॥

* * *

मगर इसको फ़रेबे नरगिसे मस्ताना आता है।
उलटती हैं सफ़ें गर्दिश में जब पैमाना आता है॥
निहायत दिल को है मरग़ूब बोसा ख़ाले मुश्कीं का।
दहन तक अपने कल तक देखिए यह दाना आता है॥
तलब दीनार करके ज़न मुरीदी हो नहीं सकती।
ख़याले आबरूए हिम्मते मर्दाना आता है॥
ज़ियारत होगी काबे की यही ताबीर है इसकी।
कई शब से हमारे ख़्वाब में बुतख़ाना आता है॥
फँसा देता है मुर्ग़े दिल को दामे ज़ुल्फ़े पेचाँ में।
तुम्हारे ख़ाले रुख़ को भी फ़रेबे दाना आता है॥
अताबो लुत्फ़ जो फ़रमाओ हर सूरत से राज़ी हैं।
शिकायत से नहीं वाक़िफ़ हमें शुकराना आता है॥

.खुदा का घर है बुतख़ाना हमारा दिल नहीं 'आतिश'।
मुक़ामे आशना है याँ नहीं बेगाना आता है॥

❦ ❦ ❦

मुलाक़ात इसलिए तुझसे बुते बे पीर कम कर दी।
कि तूने ग़ैर के आगे मेरी तौक़ीर कम कर दी॥
तुम्हारे अपने बेगाने मेरे सब ख़त पकड़ते हैं।
इसी से अपने हाले दिलकी बस तहरीर कम कर दी॥
ज़रा भूले से जो मेरे जनाज़े पर वो आ निकले।
नमाज़ी इस क़दर भूले कि यक तकबीर कम कर दी॥
परेशाँ क्यों न हो दिल मेरा क़ाकुल के कतरने से।
कि तूने क़ैदियों की तौल में ज़ंजीर कम कर दी॥
अज़ीज़ों की दवा से जब मरज़ बढ़ता नज़र आया।
मुझे तक़दीर पर छोड़ा मेरी तदबीर कम कर दी॥
बचाने के लिए 'आतिश' से दोज़ख़ के फ़रिश्तों को।
हमारी आह की अल्लाह ने तासीर कम कर दी॥

❦ ❦ ❦

य किस रश्के मसीहा का मकाँ है।
ज़मीं जिसकी चहारुम आसमाँ है।
.खुदा पिनहाँ है आलम आशकारा,
निहाँ है गंज वीराना अयाँ है।

दिले रोशन है रोशनगर की मंज़िल।
य आईना सिकंदर का मकाँ है॥
तकल्लुफ़ से बरी है हुस्ने ज़ाती।
क़बाए गुल में गुल बूटा कहाँ है॥
पसीजेगा कभी तो दिल किसी का।
हमेशा अपनी आँखों का धुआँ है॥
बरंगे बू हूँ गुलशन में मैं बुलबुल।
बग़ल .ग़ुंचे की मेरा आशियाँ है।
शिगुफ़्ता रहती है ख़ातिर हमेशा।
क़नाअत भी बहारे बे ख़िज़ाँ है॥
चमन की सैर पर होता है झगड़ा।
कमर मेरी है दस्ते बाग़बाँ है॥
बहुत आता है याद ऐ सब्र मस्कन।
.ख़ुदा .ख़ुश रक्खे तुझ को तू जहाँ है॥
इलाही एक दिल किस किस को दूँ मैं।
हज़ारों बुत हैं याँ हिन्दोस्ताँ है॥
यक़ीं होता है .ख़ुशबू ही से उसकी।
किसी गुलरू का .ग़ुंचा इत्रदाँ है॥
वतन में अपने अहले शोख़ की तरह।
सफ़र में राज़ो शब रेगे रवाँ है॥

सहर होवे कहीं शबनम करे कूच।
गुलो बुलबुल के दरियां दर्मियाँ है॥
सआदत मंद क़िस्मत पर है शाकिर!
हुमा को मग़ज़े बादाम इस्तख़्वाँ है॥
दिले बेताब जो इसमें गिरे है।
दफ़न जानाँ का पारे का कुआँ है॥
जरस के साथ दिल रहते हैं नालाँ।
मेरे यूसुफ़ का आशिक़ कारवाँ है॥
न कह रिन्दों को हर्फ़ सख़्त वाअज़।
दुरुस्त अहले जहन्नम की ज़ुबाँ है॥
क़दे महबूब को शायर कहें सरो।
क़यामत का य तो 'आतिश' निशाँ है॥

तड़पते हैं न रोते हैं न हम फ़रियाद करते हैं।
सनम की याद में हरदम ख़ुदा को याद करते हैं॥
उन्हीं के इश्क़ में हम नालए फ़रियाद करते हैं।
इलाही देखिये किस दिन हमें वे याद करते हैं॥
शबे फ़ुरक़त में क्या क्या साँप लहराते हैं सीने पर।
तुम्हारी काकुले पेचाँ को जब हम याद करते हैं॥
नया यह जज़्बए दिल औ नई तासीर उल्फ़त से।
हमें वह भूले बैठे हैं जिन्हें हम याद करते हैं॥

गेसुए मुश्कीं रुख़े महबूब तक आने लगे।
चश्मए .ख़ुरशेद में भी साँप लहराने लगे॥
आँख फेरी तू ने जिससे दम फ़ना उसका हुआ।
मुर्दों के आसार ज़िन्दों में नज़र आने लगे॥
मुश्क की बू सूँघकर यक बद्दिमाग़ी सी हुई।
याद ज़ुल्फ़े यार आई सर को टकराने लगे॥
दम फ़ना करने लगी तेरी कमर की जुस्तजू।
आशिक़े जाँबाज़ हस्ती से अदम जाने लगे॥
मर भी जाऊँ तो न 'आतिश' गोर पर आये व गुल।
कारे तमकीं को .ग़ुरूरे हुस्न फ़रमाने लगे॥

* * *

फ़रेबे हुस्न से गब्रो मुसल्माँ का चलन बिगड़ा।
.ख़ुदा की याद भूला शेख़ बुत से बरहमन बिगड़ा॥
तकल्लुफ़ क्या जो खोई जानें शीरीं फोड़कर सर को।
जो ग़ैरत थी तो फिर .ख़ुसरो से होता कोहकन बिगड़ा॥
किसी की जब कोई तकलीद करता है मैं रोता हूँ।
हँसा गुल की तरह .ग़ुंचा जहाँ उसका दहन बिगड़ा॥
तवंगर था बनी थी जब तक उस महबूब आलम से।
मैं मुफ़लिस हो गया जिस रोज़ से वह सीमतन बिगड़ा॥
लगे मुँह भी चिढ़ाने देते देते गालियाँ साहब।
ज़बाँ बिगड़ी तो बिगड़ी थी ख़बर लीजै दहन बिगड़ा॥

बनावट कैफ़ मै से .खुल गई उस शोख की 'आतिश'।
लगाकर मुँह से पैमाना को वह पैमाँ शिकन बिगड़ा॥

* * *

बाग़बाँ इन्साफ़ पर बुलबुल के आया चाहिये।
पैंजनी इस को ज़रे गुल की पिन्हाया चाहिये॥
फ़र्शे गुल बुलबुल की नीयत से बिछाया चाहिये।
शमा परवानों की ख़ातिर से जलाया चाहिये॥
पान भी खाओ जमाई है जो मिस्सी की धड़ी।
शाम तो देखो शफ़क़ को भी दिखाया चाहिये॥
बोसा इस लब का है क़ूवते बख़्श रूहे नातवाँ।
ऐसी थाक़ती मुअस्सर हो तो खाया चाहिए॥
इश्क़ में हद्दे अदब से आगे रहता है क़दम।
शाखे गुल बन पर से बुलबुल को उड़ाया चाहिये॥
हाले दिल कुछ कुछ कहा मैंने तो बोला सुन के यार।
बस इबारत हो चुकी मतलब प आया चाहिये॥
रंग ज़र्दो चश्मतर से कीजिए दावाए इश्क़।
दो गवाहे हाल इस कज़िये के लाया चाहिये॥
ख़ातिरे 'आतिश' से कहिये चन्द जुज़ शेर और भी।
बे निशाँ का नाम बाक़ी छोड़ जाया चाहिये॥

* * *

ख़ाना ख़राब नालों की वलवें शरारतें।
बहती हैं पानी हो हो के संगीं इमारतें॥
सर कौन सा है जिसमें कि सौदा नहीं तेरा।
होती हैं तेरे नक़्शे क़दम की ज़ियारतें॥
ख़ाना है गंजफ़ा का हरेक क़स्बे शहरे इश्क़।
घर घर हैं बादशाहियाँ घर घर वज़ारतें॥
दीदारे यार वर्क़ तजल्ली से कम नहीं।
बंद आँखें होंगी देंगी दुआएँ बसारतें॥
आँखों में अपनी दौलते बेदार है वो ख़्वाब।
होती हैं तेरे वस्ल की जिनमें बशारतें॥
कहते हैं मादरो पिदरे मेहरबाँ को बद।
करते हैं वह जो अज़ों समा की हिक़ारतें॥
गोया ज़बान हो तो करे शुक्र आदमी।
समझे जो तू तो करते हैं यह गुंग इशारतें॥
ज़ेरे ज़मीं भी याद हैं हफ़्त आसमाँ के ज़ुल्म।
भूला नहीं मैं संगदिलों की शरारतें॥
ख़िज़्रो मसीह काटते हैं रश्क से गला।
तू भी तो कर शहादों की अपनी ज़ियारतें॥
आलम को लूट खाया है इक पेट के लिये।
इस ग़ार में गई हैं हज़ारों ही ग़ारतें॥

बाक़ी रहेगा नाम हमारा निशाँ के साथ।
अपनी भी चन्द बैतें हैं अपनी इमारतें॥
अहले जहाँ का हाल है क्या हम से क्या कहें।
बद्‌गोइयाँ हैं पीछे तो मुँह पर इशारतें॥
आशिक़ हैं हम को मद्दे नज़र कूए यार है।
काबा के हाजियों को मुबारक ज़ियारतें॥
✓ऐसी ख़िलाफ़ हम से हुई है हवाए दहर।
काफ़ूर खाइये तो हो पैदा हरारतें॥

* * *

सुन तो सही जहाँ में है तेरा फ़िसाना क्या?
कहती है तुझको ख़ल्के ख़ुदा ग़ायबाना क्या?
क्या क्या है उलझता तेरी ज़ुल्फ़ों के तार से।
बख़ियातलब है सीनए सद चाक शाना क्या?
ज़ेरे ज़मीं से आता है जो गुल सो ज़र ब कफ़।
क़ारूँ ने रास्ते में लुटाया ख़ज़ाना क्या?
उड़ता है शौक़े राहते मंज़िल से अस्पे उम्र।
महमेज़ किसको कहते हैं औ ताज़ियाना क्या?
ज़ीना सबा का ढूँढ़ती है अपनी मुश्ते ख़ाक।
बामे बलन्द यार का है आस्ताना क्या?
चारों तरफ़ से सूरते जानाँ हो जलवागर।
दिल साफ़ हो तेरा तो है आईना ख़ाना क्या?

सैयाद असीरे दामे रगे गुल है अन्दलीब।
दिखला रहा है छुप के उसे आबोदाना क्या?
तवलो अलम ही पास है अपने न मुल्को माल।
हमसे ख़िलाफ़ होके करेगा ज़माना क्या?
आती है किस तरह से मेरी क़ब्ज़े रूह को।
देखूँ तो मौत ढूँढ़ रही है बहाना क्या?
होता है ज़र्द सुन के जो नामर्द मुद्दई।
रुस्तम की दास्ताँ है हमारा फ़िसाना क्या?
सैयादे गुलअज़ार दिखाता है सैरे बाग़।
बुलबुल क़फ़स में याद करे आशियाना क्या?
तिर्छी नज़र से तायरे दिल हो चुका शिकार।
जब तीर कज पड़ेगा उड़ेगा निशाना क्या?
बेताब है कमाल हमारा दिले हज़ीं।
मेहमाँ सराय जिस्म का होगा रवाना क्या?
याँ मुद्दई हसद से न दे दाद तो न दे।
'आतिश' ग़ज़ल य तूने लिखी आशिक़ाना क्या?

* * *

ख़ुदा ने बर्क़ तज़ली तुझे जमाल दिया।
हमारी आँखों को दीदार का ख़याल दिया॥
किसी को मुल्क दिया है किसी को माल दिया।
फ़क़ीर हूँ मुझे अल्लाह ने य हाल दिया॥

शरफ़ से दस्तख़ते यार के फिरा महरूम।
जवाव साफ़ मिला लिख के जव सवाल दिया॥
शवे विशाल में उस चेहरए मुनौवर से।
हटा के ज़ुल्फ़ को 'आतिश' वला को टाल दिया॥

* * *

'आतिश' यही दुआ है ख़ुदाए करीम से।
मुहताज ऐ करीम न कीजो वख़ील का॥

* * *

चाल है मुझ नातवाँ की मुर्ग़ विसमिल की तड़प।
हर क़दम पर है यक़ीं ह्याँ रह गया व्हाँ रह गया॥

* * *

आये भी लोग वैठे भी उठ भी खड़े हुये।
मैं जा ही ढूँढ़ता तेरी महफ़िल में रह गया॥

* * *

बड़ा शोर सुनते थे पहलू में दिल का।
जो चीरा तो यक क़तरए ख़ूँ न निकला॥

* * *

दो न्यामतें हैं मेरी हैं मैं हूँ फ़क़ीर मस्त।
यक नान ख़ुश्क एक पियाला शराव का॥

* * *

बाग़े आलम का हरेक गुल है ख़ुदा की सूरत।
बाग़वाँ कौन है इसका य चमन है किसका?

* * *

ख़ुदा सर दे तो सौदा दे तेरी ज़ुल्फ़े परीशाँ का।
जो आँखें हों तो नज़्ज़ारः हो ऐसे सम्बुलिस्ताँ का॥
सुना करता हूँ इनको छेड़ कर पाँवों से मैं मजनूँ।
मेरी जञ्जीर का नाला है अफ़साना बयाबाँ का॥

मुश्ताक़ दर्दे इश्क़ जिगर भी है दिल भी है।
खाऊँ किधर की चोट बचाऊँ किधर की चोट॥

ता चंद करूँ सीने में मैं आहो फ़ुग़ाँ बन्द।
कब तक रहे इस घर में इलाही य धुँआँ बन्द॥

कूचे से यार के न सबा दूर फेंक इसे।
मुद्दत के बाद आई है ख़ाक अपनी राह पर॥

वहशी थे बूए गुल की तरह से जहाँ में हम।
निकले तो फिर के आये न अपने मकाँ में हम॥

बराबर जान के रक्खा है उसको मरते मरते तक।
हमारी क़ब्र पर रोया करेगी आरज़ू बरसों॥

दीवानगी ने क्या क्या आलम दिखा दिये हैं।
परियों ने खिड़कियों के परदे उठा दिये हैं॥

बाज़िए इश्क़ जुज़ अन्दोह ग़मो रंज नहीं।
खेल ले हर कोई जिसको य वो शतरंज नहीं॥

बदन सा शहर नहीं दिल सा बादशाह नहीं।
हवास ख़म्सा से बेहतर कोई सिपाह नहीं॥

जामे शराबे इश्क़ से दोनों हैं बेख़बर।
बुलबुल चमन में मस्त है हम कूए यार में॥

मुहब्बत से बना लेते हैं अपना दोस्त दुश्मन को।
झुकाती है हमारी आजिज़ी सरकश की गरदन को॥

तेग़ में जौहर कहाँ वह अब्रुए ख़मदार के।
ज़ख़्म दिखलाई नहीं देते हैं इस तलवार के॥

तुम सैर करके क्या फिरे अंधेर हो गया।
बाज़ार आके रौनक़े बाज़ार ले चले॥
बाज़ारे दहर में न रही जिन्स दिल पसंद।
सौदा जो था वो तेरे ख़रीदार ले चले॥

ख़ुदा याद आ गया मुझको बुतों की बेनियाज़ी से।
मिला बामे हक़ीक़त ज़ीनए इश्क़े मजाज़ी से॥

हिज्र में वस्ल का मिलता है मज़ा आशिक़ को।
शौक़ का मरतबा जब हद से गुज़र लेता है॥

आँखें नहीं हैं चेहरे पर तेरे फ़क़ीर के।
दो ठीकरें हैं भीख के दीदार के लिये॥

मेरी ईज़ा के लिये मुर्दे में जाँ आती है।
काटने दौड़ती है माहिए बे आब मुझे॥

जो चलन चाहे चलें आतिश बुताने बे वफ़ा।
हुस्न जब पैदा हुआ सब ऐब पिनहाँ हो गये॥

रात भर आँखों को इस उम्मीद पर रखता हूँ बंद।
ख़्वाब में शायद कि देखूँ तालए बेदार को॥

ज़ार हूँ ऐसा किसी को मैं नज़र आता नहीं।
इश्क़ में घुल कर कमर का यार की मू हो गया॥

कूचए महबूब में मैं ख़ानए काबा में शेख़।
बुतकदे में बरहमन आतिश करे में गब्र है॥

जब सँभाला उस परी पैकर ने कुछ हुस्नो शबाब।
शीया सुन्नी हो गये हिन्दू मुसल्माँ हो गये॥

वरंगे शमा हम दिल सोख़्तों ने बज़्मे आलम में।
ज़वाँ खोली न लेकिन बात करने का महल पाया॥

❦ ❦ ❦

य ख़ुश असलूब जिस्म उस नौजवाँ का है कि जो नाएं।
बराबर निकले डोरा उस कमर का और गर्दन का॥

❦ ❦ ❦

नालए बुलबुले शैदा में अगर है तासीर।
दस्ते सैयाद में गुलचीं का गरेबाँ होगा॥

❦ ❦ ❦

काम हिम्मत से जवाँमर्द अगर लेता है।
साँप को मार के गंजीनए ज़र लेता है॥

❦ ❦ ❦

हज़ारों हसरतें जायँगी मेरे साथ दुनिया से।
शरारो वर्क़ से भी अर्सए हस्ती को कम पाया॥

ज़ौक़

ज़ौक़ उपनाम; शेख़ मुहम्मद इब्राहीम नाम; ख़ाक़ानिए हिन्द उपाधि; पिता का नाम शेख़ मुहम्मद रमज़ान; स्थान दिल्ली; जन्म-संवत् १८४३; मरण-संवत् १९१०।

ज़ौक़ के पिता एक साधारण सिपाही थे। वे दिल्ली में क़ाबुली दरवाज़े के पास रहते थे। जब बालक इब्राहीम पढ़ने योग्य हुये, तब अनुभवी पिता ने इन्हें महल्ले के एक हाफ़िज़ के पास बिठा दिया। हाफ़िज़ का नाम ग़ुलामरसूल था। वे कवि थे। शौक़ उपनाम रखते थे। उन्होंने इब्राहीम को धार्मिक शिक्षा के साथ फ़ारसी और साहित्य की अच्छी शिक्षा दी। उनकी देखा-देखी इब्राहीम भी शेर कहने लगे। शौक़ साहब इनके शेरों को देख दिया करते थे और उत्साहित भी करते थे। शौक़ किस ढाँचे के शायर थे, यह उनके इस शेर से मालूम हो सकता है—

शेख़ बघारे शेख़ी अपनी मुफ़ के लुक़में खाता है।
दूध मलीदा खाते हैं याँ मस्त कलन्दर घी खिचड़ी॥

इब्राहीम के एक सहपाठी काज़िम हुसेन थे। उन्हें भी शेर बनाने का शौक़ था। एक दिन उन्होंने अपनी एक ग़ज़ल सुनाई। इब्राहीम ने पूछा—यह ग़ज़ल कब कही? काज़िम ने कहा—हम तो शाह नसीर के शागिर्द हो गये। इब्राहीम को भी

शाह नसीर से मिलने का शौक़ हुआ। ये भी गये और उनके शागिर्द हो गये। इन्होंने अपना उपनाम ज़ौक़ रक्खा। इनकी लड़कपन की शायरी का एक नमूना यह है—

माथे प तेरे झमके है झूमर का पड़ा चाँद।
ला बोसा चढ़े चाँद का वादा था चढ़ा चाँद॥

शाह नसीर के साथ ज़ौक़ भी मशायरे में जाने और ग़ज़लें पढ़ने लगे। ये कविता की शिक्षा शाह साहब से और अरबी फ़ारसी की शिक्षा उस समय के सब से बड़े विद्वान अब्दुल रज़्ज़ाक़ से पाते थे। वहीं इनकी मित्रता स्व० प्रोफ़ेसर आज़ाद के पिता से हुई। वे भी वहीं पढ़ने जाया करते थे।

शाह साहब के शाहज़ादे मियाँ मुनीर भी कविता करते थे। उनको अपनी कविता का घमंड भी बहुत था। शाह साहब भी अपने पुत्र की कविता बड़े ध्यान से सुधारते थे। बल्कि ज़ौक़ की उपेक्षा भी कर जाते थे। इससे ज़ौक़ का चित्त उस्ताद से खट्टा होता गया। उस्ताद अपने पुत्र को बढ़ाने के लिये ज़ौक़ को निरुत्साहित भी करने लगे। इससे ज़ौक़ ने उनके पास जाना आना छोड़ दिया।

ज़ौक़ की प्रतिभा बड़ी उच्च कोटि की थी। ये अपने ही पैरों अपनी उन्नति का मार्ग तै करने लगे। एक दिन एक जगह मशायरा था। ज़ौक़ ने भी ग़ज़ल कही थी। पर बिना सुधरवाये

हुई ग़ज़ल को मशायरे में पढ़ने का साहस इनको न होता था। थे बेचैन होकर घर से निकले। शाम होते-होते जामे मसजिद तक जा पहुँचे। संयोग से वहाँ मीर कल्लू हक़ीर बैठे मिले। जान पहचान पहले से थी। मियाँ हक़ीर ने देखते ही पूछा—क्यों भई, उदास क्यों हो? कुशल तो है? ज़ौक़ ने अपनी मानसिक वेदना कह सुनाई। मीर साहब ने कहा—ज़रा मुझे भी तो अपनी ग़ज़ल सुनाओ। ज़ौक़ ने ग़ज़ल कही। हक़ीर साहब ने ग़ज़ल को पसंद करके कहा—जाओ, निर्भय होकर मशायरे में ग़ज़ल पढ़ो। कोई कुछ एतराज़ करेगा तो मैं निपट लूँगा। ज़ौक़ को बड़ा प्रोत्साहन मिला। इन्होंने मशायरे में जाकर ग़ज़ल पढ़ी। वहाँ इनकी बड़ी तारीफ़ हुई। उसी दिन से इनका हौसला दिनोदिन बढ़ने लगा।

उन दिनों अकबरशाह दिल्ली के बादशाह थे। उन्हें तो शेर आदि का कुछ शौक़ था नहीं। हाँ, उनके साहबज़ादे मिर्ज़ा अबूज़फ़र, जो उन दिनों युवराज थे और पीछे बहादुरशाह के नाम से बादशाह हुये, कविता के अच्छे शौक़ीन थे। वे स्वयं भी ग़ज़लें बनाते थे और 'ज़फ़र' अपना उपनाम रखते थे। उनके पास तत्कालीन कवियों का अच्छा जमघट रहता था। जिनमें फ़िराक़, सैद, एहसान, ज़ार, क़ासिम, इश्क़, अज़ीम और ममनूँ आदि मुख्य थे। ज़ौक़ का भी दिल उस मंडली में

पहुँचने को बहुत लालायित हो रहा था। ये थे एक ग़रीब सिपाही के लड़के। इनको क़िले में किसी अमीर उमराव की ज़मानत और सिफ़ारिश के बिना कौन घुसने देता। पर इन को वहाँ पहुँचने की पक्की लगन थी। इनका भावी सौभाग्य ही इनका मार्ग-प्रदर्शक हुआ। मीर काज़िम हुसेन ने इन्हें युवराज के दरबार में पहुँचा दिया।

युवराज की ग़ज़लें पहले शाह नसीर देख दिया करते थे। पर उन दिनों वे दक्खिन चले गये थे, इससे मीर काज़िम हुसेन उनका काम चलाते रहे। पर वे भी युवराज की सिफ़ारिश से ज्ञान अलफिन्सन साहब के मीर मुंशी होकर चले गये। इस लिये युवराज की ग़ज़लें बनाने वाला अब कोई न रहा।

एक दिन युवराज तीर चला रहे थे। ज़ौक़ भी वहाँ पहुँच गये। युवराज ने देखते ही कहा—भई इब्राहीम, उस्ताद दक्खिन चले गये, काज़िम हुसेन उधर चले गये, तुमने भी हमें छोड़ दिया? उसी वक्त, उन्होंने एक ग़ज़ल जेब से निकाल कर दी और कहा कि इसे ठीक कर दो। ज़ौक़ ने वहीं बैठकर ग़ज़ल ठीक कर दी और युवराज को ग़ज़ल सुनाई। युवराज को ग़ज़ल बहुत पसंद आई। उन्होंने कहा—भई, कभी कभी आकर मेरी ग़ज़लें बना जाया करो। कुछ दिनों के बाद ज़ौक़ युवराज के काव्य-गुरु हो गये।

उन दिनों अकबरशाह और युवराज में बनती न थी। अकबरशाह युवराज को अपना बेटा मानते ही न थे। वे अपने दूसरे लड़कों में से कभी किसी को, कभी किसी को युवराज बनाने की कोशिश में थे। इससे युवराज का मासिक वेतन भी ५०००) मासिक से घटकर ५००) मासिक हो गया था। इसी ग़रीबी में ज़ौक़ भी जा पहुँचे। चार रुपये महीना इनका वेतन नियत हुआ। बाप ने बहुत चाहा कि बेटा इस छोटे वेतन को स्वीकार न करे। पर भाग्य ने जो चाहा, वही हुआ।

दिल्ली में नवाब इलाही बख़्श 'मारूफ़' एक प्रसिद्ध रईस थे। वे भी कविता के प्रेमी थे। ज़ौक़ की प्रशंसा सुनकर उन्होंने बड़े प्रेम से बुलाया और अपनी ग़ज़ल सुधारने को दी। उस समय ज़ौक़ की उम्र १९,२० वर्ष की थी। चढ़ती जवानी थी। उधर नवाब साहब भी, यद्यपि बुड्ढे हो चले थे, पर तबीअत-दारी में नौजवानों के कान काटते थे। दोनों में ख़ूब पटी। उनके मन के अनुसार ही ज़ौक़ उनकी ग़ज़ल बना दिया करते थे। पहली स्वरचित ग़ज़ल जो ज़ौक़ ने उन्हें सुनाकर उनका मन मोह लिया था, उसका मतला यह था—

निगह का वार था दिल पर फड़कने जान लगा।
चली थी बर्छी किसी पर किसी के आन लगी॥

नवाब साहब फड़क उठे। उसी समय ज़ौक़ के काव्य-गुरु

शौक़ भी वहाँ आ पहुँचे। ज़ौक़ ने उठकर उनको बड़े अदब से सलाम किया। वे ज़ौक़ से इस लिये रुष्ट थे कि ज़ौक़ उनके शागिर्द होकर भी दूसरों को ग़ज़लें क्यों दिखाते हैं और मशायरे में उनके साथ क्यों नहीं चलते। पर ज़ौक़ एक नेक शागिर्द की तरह सदा उनका सम्मान करते थे। आते ही शौक़ साहब ने नवाब साहब को अपनी ग़ज़लें सुनानी शुरू कीं। ज़ौक़, जो नवाब की बग़ल में ही बैठे थे, उठकर जाने लगे तो नवाब ने धीरे से कान में कहा—"कान बदमज़ा हो गये, तुम अपना कोई शेर सुनाते जाओ"। ज़ौक़ ने एक ग़ज़ल, जो उन्हीं दिनों लिखी थी, नवाब को सुनाई, जिसके दो मतले ये हैं—

जीना नज़र अपना हमें असला नहीं आता।
गर आज भी वह रश्के मसीहा नहीं आता॥
मज़कूर तेरी बज़्म में किसका नहीं आता।
पर ज़िक्र हमारा नहीं आता नहीं आता॥

नवाब के पास ज़ौक़ हफ़्ते में दो बार जाया करते और उनकी ग़ज़लें बना आया करते थे। नवाब साहब बड़े दानी पुरुष थे। ज़ौक़ अपने जीवन भर में बार बार उन्हें बड़े सम्मान से याद किया करते थे।

कई वर्ष के बाद शाह नसीर दक्खिन से लौट आये। उन्होंने

फिर मशायरे जारी किये। ज़ौक़ भी जाने लगे। एक दिन शाह नसीर ने एक ग़ज़ल पढ़ी। जिसकी तरह थी—आतिशो आबो ख़ाको बाद। उन्होंने कहा—इस ज़मीन पर जो चलेगा उसे मैं भी उस्ताद मानूँगा। ज़ौक़ ने दूसरे मशायरे में उस तरह पर एक ग़ज़ल पढ़ी। शाह साहब ने उस पर बहुत से तर्क वितर्क किये, पर ज़ौक़ ने प्रमाण दे दे कर अपना पक्ष बड़ी ख़ूबी से समर्थन किया।

ज़ौक़ ने उसी छंद और क़ाफ़िये में एक ग़ज़ल और लिखी, जिसका पहला शेर यह है—

सरसरी कोह में हों गर आतिशो आबो ख़ाको बाद।
आज न चल सकेंगे पर आतिशो आबो ख़ाको बाद॥

इस पर शाह नसीर की ओर से यह आक्षेप हुआ कि पत्थर में आग की गति का क्या प्रमाण है? ज़ौक़ ने कहा—जब पहाड़ में बढ़ने के कारण गति है तो उसके भीतर की अग्नि में भी गति होनी चाहिये। विरोधी ने पत्थर में अग्नि के होने का प्रमाण माँगा। ज़ौक़ ने कहा—यह तो प्रत्यक्ष ही है। इसमें प्रमाण की क्या आवश्यकता? विरोधी ने किसी कवि का प्रमाण माँगा। ज़ौक़ ने एक फ़ारसी का और एक सौदा का यह शेर सुनाया—

हर संग में शरार है तेरे ज़हूर का।

इस विवाद से लोगों का बड़ा मनोरंजन हुआ। ज़ौक़ विजयी हुये। उस दिन से ये पुराने कवियों के काव्यग्रंथों को और भी ध्यान से अध्ययन करने लगे।

अकबरशाह ने इनकी कविता से प्रसन्न होकर इन को ख़ाक़ानिए हिन्द की उपाधि दी। उस समय इनकी अवस्था १९ वर्ष की थी। ख़ाक़ानिए हिन्द की उपाधि अनेक वृद्ध और प्रशंसित कवियों को छोड़कर एक युवक को मिली, इस पर लोगों ने चर्चा की। एक सभा में भी इस पर कुछ बातें हो रही थीं। मियाँ कल्लू हक़ीर भी मौजूद थे। उन्होंने कहा—भई, कवि की आयु न देखकर उसकी कविता देखिये। कविता, जिस पर उपाधि मिली थी, वहाँ पढ़ी गई। फिर किसी को यह कहने का साहस न हुआ कि बादशाह ने अनुचित किया। सच है—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः

जब ज़फ़र बादशाह हुये और बहादुरशाह नाम से प्रसिद्ध हुये, तब इनका मासिक वेतन सात रुपये से २०) मासिक कर दिया गया। पर इन्होंने कभी अपने वेतन के सम्बंध में एक शब्द भी किसी से नहीं कहा। जब कभी अपनी आर्थिक स्थिति पर दुःख होता था तो यह शेर पढ़ा करते थे—

यों फिरें अहले कमाल आशुफ़्तः हाल अफ़सोस है।
ऐ कमाल अफ़सोस है तुझ पर कमाल अफ़सोस है॥

मिर्ज़ा मुग़लबेग वज़ीर थे, तब इन्हें बहुत अर्थकष्ट था। मुग़लबेग का मंत्रित्व समाप्त हो गया, तब नवाब हामिद अली ख़ाँ का ज़माना आया। इनके समय में इनका वेतन १००) मासिक हो गया। एक बार बहादुरशाह बीमारी से उठे, तब ज़ौक़ ने उसकी ख़ुशी में एक क़सीदा कहा। जिसपर इन्हें ख़ान बहादुर की उपाधि और हौदे आदि से सुसज्जित हाथी इनाम में मिला। फिर एक बड़े ज़ोर शोर का क़सीदा कहा, जिस पर एक गाँव मिला। अब इन्हें अर्थकष्ट नहीं रह गया।

ज़ौक़ का क़द छोटा और रंग साँवला था। चेहरे पर माताके दाग़ थे। इनको नौ बार माता निकली थीं। बदन ख़ासा तगड़ा था। आँखें बड़ी तेज़ थीं। प्रायः सफ़ेद कपड़े पहनते थे जो उनपर अच्छे खिलते थे। स्वर बड़ा मधुर था। मशायरे में जब ग़ज़ल पढ़ते तो सुनने वाले लहालोट हो जाते थे। अपनी ग़ज़ल ये स्वयं पढ़ते थे, किसी और से न पढ़वाते थे। इनकी स्मरण-शक्ति इतनी अच्छी थी कि जिस पुस्तक को एक बार पढ़ लेते थे, फिर चाहे वर्षों बीत जाय उसकी छोटी से छोटी बात भी याद रहती थी। जब इनकी अवस्था एक वर्ष की भी नहीं थी, तब की एक घटना इन्हें याद थी।

ज़ौक हृदय के बड़े दयालु थे। उम्र भर कभी इन्होंने अपने हाथ से किसी पशु का वध नहीं किया। नौजवानी में एक दिन साथियों ने कहीं से ताक़त का एक नुस्ख़ा प्राप्त किया।

उसकी प्रत्येक चीज़ का एकत्र करना एक एक व्यक्ति के ज़िम्मे कर दिया गया। चालीस चिड़ियों का मग्ज़ जमा करने का काम इन्हें मिला। ये घर आये। जाल फैला दिया। तीन चिड़ फँसे। वे पिंजड़े मे बंद किये गये। ज़ौक़ ने जब उनका कूदना और फुदकना देखा तब यकायक इनके मन में यह विचार उठा कि ये भी तो प्राण रखते हैं। हमारी ही तरह इनको भी सुख दुःख का अनुभव होता होगा। ज़रा सी देर के सुख के लिये इनका प्राण लेना बड़ी बइन्साफ़ी होगी। यह विचार मन में आते ही इन्होंने पिंजड़े को खोल दिया। जाल का तोड़ फोड़ डाला। तीनों पक्षी उड़ गये। इन्होंने मित्रों से जाकर कह दिया कि हम तुम्हारे नुस्ख़े में शामिल नहीं।

ये प्रायः टहला करते थे। मकान के सामने एक लम्बी सा गली थी। उसी में फिरा करते थे। एक बार रात के वक़्त टहलते टहलते आये और कहने लगे—अभी एक साँप गली में चला जाता था। एक शागिर्द ने पूछा—तो हज़रत, आपने उसे मारा नहीं ? किसी को पुकारा होता। ज़ौक़ ने कहा—भई, आख़िर वह भी तो जान रखता है।

एक बार का ज़िक्र है कि ये एक कविता लिखने में तन्मय हो रहे थे। चिड़ियाँ बरामदे में घोंसला बना रही थीं। उनके तिनके जो गिरते थे, उन्हें लेने को वे बार बार ज़मीन पर आतीं और

इधर उधर बैठा करती थीं। एक बार एक चिड़िया इनके सिर पर आ बैठी। इन्होंने उड़ा दी। वह फिर आ बैठी। इन्होंने फिर उसे उड़ा दी। इसी तरह वह बार बार आकर बैठने लगी और ये उड़ाते रहे। अंत में हँसकर इन्होंने कहा—मालूम होता है, चिड़ियों ने मेरे सिर को कबूतर का अड्डा समझ लिया है। उस समय इनके सुप्रसिद्ध शिष्य प्रो० आज़ाद और चक्षुहीन कवि वीरान भी वहाँ बैठे थे। वीरान ने ज़ौक़ की बात का अभिप्राय नहीं समझा। उन्हों ने आज़ाद से पूछा। जब उन्हें सब बातें मालूम हुईं तो वे बोले—हमारे सिर पर तो नहीं बैठती। ज़ौक़ ने मुसकुराते हुये कहा—बैठे क्यों कर? जानती है कि यह मुल्ला है, आलिम है, हाफ़िज़ है, अभी कल्मा पढ़कर 'बिस्मिल्लाह अल्लाहो अकबर' कर देगा। दिवानी है जो तुम्हारे सिर पर आये।

ज़ौक़ साहित्य के विद्वान् और बड़े ही अध्ययनशील थे। इनके विषय में इनके योग्य शिष्य आज़ाद लिखते हैं—

"फ़रमाते थे कि मैंने साढ़े सात सौ दीवान पुराने शायरों के देखे और उनका खुलासा किया। ख़ान आरज़ू की तसनीफ़ात, टेकचन्द बहार की तहक़ीक़ात और इस क़िस्म की और किताबें गाया उनकी ज़बान पर थीं, मगर मुझे इस बात का ताज्जुब नहीं, अगर पुराने शायरों के हज़ारों शेर उन्हें याद थे तो मुझे

हैरत नहीं, गुफ्तगू के वक्त, जिस तड़ाके से वे शेर सनद में देते थे, मुझे इसका भी ख़्याल नहीं। हाँ, ताज्जुब यह है कि तारीख़ का ज़िक्र आये तो वह एक साहबे नज़र मुवर्रिख़ थे, तफ़सीर का ज़िक्र आये तो ऐसा मालूम होता था कि गोया तफ़सीरे कबीर देख कर उठे हैं। जब तक़रीर करते थे यह मालूम होता था कि शेख़ शिबली हैं या बायज़ीद बुस्तामी बोल रहे हैं। रमल और ज्योतिष का ज़िक्र आये तो वह ज्योतिषी थे। मुझे ताज्जुब यह है कि उनके दिमाग़ में इस क़दर मज़ामीन महफ़ूज़ क्यों कर रहे। इल्मेतिब ख़ूब हासिल किया। मगर काम न किया। ख़ौफ़ आता कि ऐसा न हो बेपर्वाई से किसी का ख़ून हो जाय।"

इनको आडम्बर बिल्कुल पसंद न था। प्रोफ़ेसर आज़ाद लिखते हैं—

"एक तंग व तारीक मकान था, जिसकी अँगनाई इस क़दर थी कि एक छोटी सी चारपाई एक तरफ़ बिछती थी। दो तरफ़ इतना रस्ता रहता था कि एक आदमी चल सके। हुक़्क़ा मुँह से लगा रहता था। खुरी चारपाई पर बैठे रहते थे। लिखे जाते थे या किताब देखे जाते थे। गर्मी, जाड़ा, बरसात तीनों मौसमों की बहारें वहीं बैठे ग़ुज़र जाती थीं। उन्हें कुछ ख़बर न होती थी। कोई मेला, कोई ईद, और कोई मौसम बल्कि दुनिया के

शादी व ग़म से उन्हें सरोकार न था। जहाँ अव्वल रोज़ बैठे, वहीं बैठे, और जभी उठे कि दुनिया से उठे।"

"उनका मामूल था कि रात को खाने से फ़ारिग़ होकर बादशाह की ग़ज़ल कहते थे। फिर वज़ू करते और एक लोटे पानी से कुल्लियाँ करके नमाज़ पढ़ते, फिर वज़ीफ़ा शुरू होता। ज़ेरे आसमान कभी टहलते जाते, कभी क़िब्लारू ठैर जाते। अगर्चे आहिस्ता आहिस्ता पढ़ते थे मगर अक्सर अवक़ात इस जोशे दिल से पढ़ते थे कि मालूम होता गोया सीना फट जायगा।"

ज़ौक़ का बहुत समय बादशाह की ग़ज़लें बनाने में जाता था। जितनी अच्छी ग़ज़लें होती थीं, प्रायः सब में बादशाह अपना नाम डलवा लेते थे। इससे ये अपनी ग़ज़लें बादशाह को सुनाते नहीं थे। यदि किसी तरह वे बादशाह के कानों तक पहुँच जाती थीं, तो बादशाह उसी से मिलती-जुलती नई ग़ज़ल बना कर इसलाह के लिये इन्हें दे देते थे। ये यदि अपनी ग़ज़ल से उसे बढ़िया बनाते तो अपनी ग़ज़ल का मान मारा जाता। घटिया बनाते तो बादशाह के कान खड़े होते। इस से ये अपनी ग़ज़लें अपने ख़ास मित्रों तक ही रखते थे।

जो ग़ज़लें इन्होंने अपने उपनाम से कही थीं, यदि वे जमा की जातीं तो ज़फ़र के चारों दीवानों के बराबर होतीं। बादशाह

की फरमायशें दम लेने को .फुरसत न देती थीं, फिर भी ये कुछ अपना कही लेते थे। पर कितने दुःख की बात है कि सन् १८५७ के ग़द्र में उनका काव्य भी नष्ट हो गया। प्रोफ़ेसर आज़ाद ने अपने गुरु की साहित्यिक हानि का जो करुण वर्णन किया है उसे हम यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं—

"फ़साहत का दिल कुमला जाता होगा जब उनके दीवान मुख़्तसर पर निगाह पड़ती है। उसका बयान एक मुसीबत का फ़िसाना है और मरसिया ख़्वानी उसकी मेरा फ़र्ज़ है। फ़र्माते थे कि बचपन में जब कि १५-१६ बरस की उम्र थी, हमने अपना दीवान मुरत्तिब किया था और उसे बड़े शौक़ से लिखा था। फिर ज़माने ने .फ़ुर्सत न दी। जो ग़ज़ल होती, जुदा काग़ज़ पर लिखी जाती, इसी तरह ताक़ में रख देते कि .फ़ुर्सत में नज़रसानी करेंगे। जब ताक़ भर गया, तकिये के ग़िलाफ़ में भर दिये, घर में भेज दिये कि अहतियात से रखना।"

"उस्ताद की वफ़ात से चंद रोज़ बाद मैं (प्रो० आज़ाद) ने और ख़लीफा इस्माईल ने चाहा कि कलाम को तर्तीब दें। सब ज़ख़ीरा निकाला। मेहनत ने उसके इन्तख़ाब में पसीने की जगह लहू बहाया, क्योंकि बचपन से लेकर दमे वापसी तक का कलाम उन्हीं में था और बहुत सी ग़ज़लें बादशाहों की बहुतेरी ग़ज़लें शागिर्दों की भी मिली हुई थीं।'

"चुनाँचे अव्वल उनकी अपनी ग़ज़लें और क़सीदे इन्तख़ाब कर लिये। यह काम कई महीनों में ख़त्म हुआ। पहले ग़ज़लें साफ़ करनी शुरू कीं। इस ख़ता का मुझे इक़रार है कि काम को मैंने जारी किया, मगर बाइतमीनान किया। मुझे क्या मालूम था कि इस तरह यकायक ज़माने का वर्क़ उलट जायगा, आलम तहो वाला हो जायगा, हसरतों के ख़ून बह जायँगे, दिल के अरमान दिल ही में रह जायँगे। एक साथ सन् १८५७ ई० का ग़दर हो गया। किसी का किसी को होश न रहा। चुनांचे अफ़सोस है कि ख़लीफ़ा मुहम्मद इस्माईल उनके फ़र्ज़न्द जिस्मानी के साथ हो उनके फ़र्ज़न्द रूहानी (काव्य) भी दुनिया से रहलत कर गये। मेरा यह हाल हुआ कि फ़तहयाब लश्कर के बहादुर दफ़ैतन घर में घुस आये, बन्दूक़ें दिखाईं कि जल्द निकलो। दुनिया आँखों में अन्धेर थी, भरा हुआ घर सामने था और मैं हैरान खड़ा था कि क्या क्या कुछ उठा कर ले चलूँ। इनकी ग़ज़लों पर नज़र पड़ी। यही ख़्याल आया कि मुहम्मदहुसेन, ज़िन्दगी बाक़ी है तो सब कुछ हो जायगा, मगर उस्ताद कहाँ से पैदा होंगे जो ग़ज़लें फिर आकर कहेंगे। अब उनके नाम की ज़िन्दगी है तो इन पर मुनहसिर है। ये हैं तो वे मर कर भी ज़िन्दा हैं, ये गये तो नाम भी न रहेगा। वही संग्रह उठाकर बग़ल में मारा। सजे सजाये घर

को छोड़ २२ नीम जानों के साथ घर से बल्कि शहर से निकला। ग़रज़ मैं तो आवारा होकर ख़ुदा जाने कहाँ से कहाँ निकल आया। हाफ़िज़ ग़ुलाम रसूल 'वीरान' ने शेख़ मर्हूम (उस्ताद ज़ौक़) के बाज़ दर्दख़्वाह दोस्तों से ज़िक्र किया कि मसौदों का सरमाया तो सब दिल्ली के साथ बरबाद हुआ, इस वक़्त यह ज़ख़्म ताज़ा है अगर अब दीवान मुरत्तिब न हुआ तो कभी न होगा। हाफ़िज़ मौसूफ़ को ख़ुद भी हज़रत मर्हूम (उस्ताद) का कलाम बहुत कुछ याद था और ख़ुदा ने इनकी बसीरत की आँखें (ज्ञानचक्षु) ऐसी रोशन की थीं कि बसारत के मोहताज नहीं थे। बावजूद इसके लिखने की सख़्त मुश्किल हुई। ग़रज़ कि एक मुश्किल में कई कई मुश्किलें थीं, उन्होंने इस मुहिमका सरअंजाम किया और सन् १२७९ हिजरी में एक मजमुआ जिसमें अक्सर ग़ज़लें तमाम, अक्सर नातमाम, बहुत से मुतफ़र्रिक़ अशआर और चन्द क़सीदे हैं, छाप कर निकाला। मगर इबरत की आँखों से लहू टपका, क्योंकि जिस शख़्स ने दुनिया की लज़्ज़तें, उम्र के मुख़्तलिफ़ मौसम और मौसमों की बहारें, दिन की ईदें, शबकी शबबरातें, बदन का आराम, दिलकी ख़ुशियाँ, तबीयत की उमंगें सब छोड़ीं और एक शेर (काव्य) को लिया, जिसकी इन्तहा तमन्ना यही होगी कि इसकी बदौलत नाम नक बाक़ी रहेगा। तबाहकार ज़माने

हाथों आज उसकी उम्र भर की मिहनत ने यह सरमाया दिया और जिसने अदना अदना शागिर्दों को साहबे दीवान कर दिया उसको यह दीवान नसीब हुआ! ख़ैर, योंहीं ख़ुदा चाहे तो बन्दे का क्या चले। मेरे पास बाज़ क़सीदे हैं, अक्सर ग़ज़लें ये दाख़िल हो जायँगी या नातमाम ग़ज़लें पूरी हो जायंगी, मगर तस्नीफ़ के दरया में से प्यास भर पानी भी नहीं।"

ज़ौक़ की कविता उच्च भावों से पूर्ण है। ये महावरों के उस्ताद थे। भाषा पर इनका पूरा अधिकार था। प्रेम का रहस्य-वर्णन इनकी कविता में ख़ूब है। जहाँ जवानी की उमंगें हैं, वहाँ शान्त और ईश्वर-परायणता की तरंगें भी हैं।

ये बड़े प्रत्युत्पन्नमति थे। एक बार दरबार में बैठे थे। एक साहब किसी बेगम की कोई बात लेकर आये और बादशाह के कान में कहकर चलने लगे। हकीम अहसानुल्ला साहब ने पूछा—इतनी जल्दी?

यह सुनकर उन्होंने कहा—

अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले।

बादशाह ने ज़ौक़ की ओर देखकर कहा—उस्ताद, देखना क्या साफ़ मिसरा है। ज़ौक़ ने तत्काल निवेदन किया—

लाई हयात आये क़ज़ा ले चली चले।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले॥

दीवान चन्दूलाल ने हैदराबाद से इनके पास एक समस्या,

५००) और ख़िलवत भेज कर बुलाया। इन्होंने ग़ज़ल तो भेज दी, पर स्वयँ न गये। ग़ज़ल का अंतिम शेर यह था—

आजकल गर्चे दकन में है बड़ी क़द्रे सखुन।
कौन जाये ज़ौक़ पर दिल्ली की गलियाँ छोड़कर।

प्रोफ़ेसर आज़ाद ने एक दिन वहाँ न जाने का सबब पूछा तो इन्होंने यह लतीफ़ा सुनाया—

"कोई मुसाफ़िर दिल्ली में महीना बीस दिन रह कर चला। यहाँ एक कुत्ता हिल गया था। वह वफ़ा का मारा साथ हो लिया। शाहदरे पहुँच कर दिल्ली याद आई, और रह गया। वहाँ के कुत्तों को देखा, गर्दनें फ़र्बा, बदन तय्यार, चिकने चिकने बाल। एक कुत्ता इन्हें देखकर ख़ुश हुआ और दिल्ली का समझ बहुत ख़ातिर की। मिठाई के बाज़ार में ले गया—हलवाई की दूकान से एक बालूशाही उड़ा कर सामने रक्खी। भटियारे की दूकान से एक रोटी झपटी। ये ज़ियाफ़तें खाते और दिल्ली की बातें सुनाते रहे। तीसरे दिन रुख़सत माँगी। उसने रोका। इन्होंने दिल्ली के सैर तमाशे और ख़ूबियों के ज़िक्र किये। आख़िर चले और दोस्त को भी दिल्ली आने की ताकीद कर आये। उसे भी ख़याल रहा और एक दिन दिल्ली का रुख़ किया। पहले ही मरघट के कुत्ते मुर्दार खाने वाले ख़ूनी आँखें, काले-काले मुँह नज़र आये। ये लड़ते भिड़ते

ले। दरिया मिला। देर तक किनारे पर फिरे। आख़िर पड़े, मरघट पार करके पहुँचे। शाम हो गई थी। शहर गली कूचों के कुत्तों से बच बचा कर डेढ़ पहर रात गई जो दोस्त से मुलाक़ात हुई। ये बेचारे अपनी हालत पर शरमाये। बज़ाहिर ख़ुश हुए और कहा—ओहो! इस वक़्त तुम कहाँ? दिल में कहते थे कि रात ने पर्दा रक्खा, वर्ना दिन में यहाँ क्या रक्खा था। उसे लेकर इधर-उधर फिरने लगे। यह चाँदनी चौक है, यह दरीबा है, यह जामा मस्जिद है। मेहमान ने कहा—यार, भूख के मारे जान निकली जाती है, सैर हो जायगी, कुछ खिलवाओ तो सही। इन्होंने कहा, तुम अजब वक़्त आये हो, अब क्या करूँ। सौभाग्य की बात है कि जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर जानी कबाबी मिरचों की हाँड़ी भूल गये थे। इन्होंने कहा—लो यार बड़ी क़िस्मत वाले हो। वह दिन भर का भूखा था मुँह फाड़कर गिरा और साथ ही मुँह से मग़ज़ तक गोया बारूद उड़ गई। छींक कर पीछे हटा और जलकर कहा—वाह, यही दिल्ली है। इन्होंने कहा—इस चटख़ारे के मारे ही तो यहाँ पड़े हैं।"

एक दिन एक बुड्ढा चूरन की पुड़ियाँ बेंचता फिरता था और आवाज़ देता था—

तेरे मन चले का सौदा है खट्टा और मीठा।

बादशाह के कान में उसकी बात पड़ गई। उन्होंने कुछ लिखकर ज़ौक़ के पास भेज दिये। ज़ौक़ ने दस दोहे लगा दिये। सरकारी कंचनियों ने उसे लै से गाया। दूसरे दिन सारे शहर में वह बच्चे बच्चे की ज़बान पर हो गया। उनमें से दो बन्द, जो प्रोफ़ेसर आज़ाद को याद थे, ये हैं—

ले तेरे मन चले सौदा है खट्टा और मीठा।
कुँजड़े की सी हाट है दुनिया जिन्स है सारी इकट्ठी॥
मीठी चाहे मोठी ले ले खट्टी चाहे खट्टी।
ले तेरे मन चले का सौदा है खट्टा और मीठा॥
रूप रंग पर भूल न दिल में देख अक़ल के वैरी।
ऊपर मीठी नीचे खट्टी अम्बुआ की सी कैरी॥
ले तेरे मन चले का सौदा है खट्टा और मीठा।

एक फ़क़ीर यह सदा लगाता था—

कुछ राहे .खुदा दे जा जा तेरा भला होगा।

बादशाह को पसंद आई। ज़ौक़ ने उसपर बारह दोहरे लगा दिये। बहुत दिनों तक गली-कूचों में वह गाया जाता रहा—

मुहताज ख़राबाती या पाक नमाज़ी है॥
कुछ कर न नज़र उस पर वाँ नुक्ता नवाज़ी है।
कुछ राहे .खुदा दे जा जा तेरा भला होगा॥
दुनिया के किया करता है सैकड़ों तू धन्दे।
पर काम .खुदारा भी करले कोई ह्याँ बन्दे॥

कुछ राहे ख़ुदा दे जा जा तेरा भला होगा।
दुनिया है सरा इसमें तू बैठा मुसाफ़िर है॥
औ जानता है याँ से जाना तुझे आख़िर है।
कुछ राहे ख़ुदा दे जा जा तेरा भला होगा॥
जो रब ने दिया तुझ को. तो नाम पै रब के दे।
गर याँ न दिया तू ने वाँ देवेगा क्या बन्दे॥
कुछ राहे ख़ुदा दे जा जा तेरा भला होगा।
देवेगा उसी को तू वह जिसको है दिलवाता॥
पर है यह 'ज़फ़र' तुझको आवाज़ सुना जाता।
कुछ राहे ख़ुदा दे जा जा तेरा भला होगा॥

शारीरिक निर्बलता के कारण रमज़ान के दिनों में ये रोज़े नहीं रखते थे। पर किसी के सामने पानी तक न पीते थे। नौकर को इशारे मालूम थे। वह आवश्यकता होने पर ऊपर बुला ले जाता, जहाँ ये आवश्यकतानुसार खान-पान कर लेते थे।

ये स्वभाव के बहुत सरल, सच्चरित्र और दयालु पुरुष थे। कभी किसी का बुरा न चाहते थे, न किया। इनके दिल में भगवान् का डर सदा बना रहता था। इन्होंने किसी की निन्दा में एक भी शब्द नहीं लिखा। किसी अन्य कवि ने भी इनकी निन्दा में कुछ नहीं लिखा।

इनके शागिर्द इतने अधिक थे कि उतने शायद ही किसी उर्दू-कवि के रहे हों। इनमें से कई तो बहुत ही यो[illegible] निकले। बादशाह ज़फ़र को छोड़ कर इनके शिष्यों में सब[illegible] अधिक प्रसिद्ध कवि, उर्दू-अरबी-फ़ारसी के विद्वान् शमसु[illegible] उल्मा मौलवी मुहम्मदहुसेन 'आज़ाद' प्रोफ़ेसर गवर्नमेंट का[illegible] लाहौर हुए। दूसरे शागिर्द हज़रत दाग़ हुये, जिनकी प्र[illegible] प्रतिभा, और अद्भुत कवित्व-शक्ति ने उर्दू के संसार में बहु[illegible] मान पाया।

ज़ौक़ ने मरने से तीन घंटे पहले यह शेर कहा था—

कहते हैं आज ज़ौक़ जहाँ से गुज़र गया।
क्या .खूब आदमी था .खुदा मग़फ़रत करे॥

यहाँ ज़ौक़ के दीवान से कुछ शेर चुन कर दि[illegible] जाते हैं—

किसी बेकस को ऐ बेदाद गर मारा तो क्या मारा।
जो आपी मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा॥
न मारा आप को जो ख़ाक हो अकसीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अकसीर गर मारा तो क्या मारा॥
बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से अम्मारे को गर मारा।
नहंगो अज़दहाओ शेर नर मारा तो क्या मारा॥

नहीं वह क़ौल का सच्चा हमेशा क़ौल दे दे कर।
जो उसने हाथ मेरे हाथ पर मारा तो क्या मारा॥
तुफ़ंगो तीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिल के।
इलाही फिर जो दिल पर ताक के मारा तो क्या मारा॥

* * *

हो राज़े दिल न यार से पोशीदा यार का।
परदा जो दरमियाँ न हो दिल के ग़ुबार का॥
है दिल की दाव-घात में मिज़गाँ से चश्मे यार।
करती है क़स्द टट्टी की ओझल शिकार का॥

* * *

नाला इस शोर से क्यों मेरा दुहाई देता।
ऐ फ़लक गर तुझे ऊँचा न सुनाई देता॥
देख छोटों को है अल्लाह बड़ाई देता।
आस्माँ आँख के तिल में है दिखाई देता॥
पंजये महर को ख़ूने शफ़क़ो में हर रोज़।
ग़ोते क्या क्या है तेरा दस्ते हिनाई देता॥
मुँह से बस करते न हरगिज़ ऐ ख़ुदा के बन्दे।
गर हरीसों को ख़ुदा सारी ख़ुदाई देता॥
देख गर देखना है 'ज़ौक़' कि वह परदानशीं।
दीदये रोज़ने दिल से है दिखाई देता॥

* * *

जो फ़रिश्ते करते हैं कर सकता है इन्सान भी।
पर फ़रिश्तों से न हो जो काम है इन्सान का॥
नफ़्स बे मक़दूर को .क़ुद्‌रत हो गर थोड़ी सी भी।
देखे फिर सामान इस फ़रऊन बे सामान का॥
देखना ऐ 'ज़ौक़' होंगे आज फिर लाखों के .ख़ून।
फिर जमाया उसने लाले लब पै लाखा पान का॥

* * *

आँख से अश्क सिफ़त मुझको गिराकर न सम्हाल।
मैं नहीं वह कि सम्हाले से सम्हल जाऊँगा॥
जुम्बिशे बर्ग सिफ़त बाग़ जहाँ में ऐ 'ज़ौक़'।
कुछ न हाथ आयेगा तो हाथ ही मल जाऊँगा॥

* * *

पानी तबीब दे है हमें क्या बुझा हुआ।
है दिल ही ज़िन्दगी से हमारा बुझा हुआ॥
हम आप जल बुझे मगर इस दिल की आग को।
सीने में हमने 'ज़ौक़' न पाया बुझा हुआ॥

* * *

है और इल्मे अदब मकतबे मुहब्बत में।
कि है वहाँ का मुअल्लिम जुदा अदीब जुदा॥
जुदा न दर्द जुदाई हो गर मेरे आज़ा।
हरूफ़ दर्द की सूरत हों ऐ तबीब जुदा॥

हजूम अश्क के हमराह क्यों न हो नाला।
कि फ़ौज से नहीं रहता कभी नक़ीब जुदा॥
किया हबीब को मुझ से जुदा फ़लक ने अगर।
न कर सका मेरे दिल से ग़मे हबीब जुदा॥
कर जुदाई का किस किस का रंज हम ए 'ज़ौक़'!
कि होनेवाले हैं सब हमसे अनक़रीब जुदा॥

दाँत यूँ चमके हँसी में रात उस महपारा के।
मैं ने जाना माहतावाँ पारा पारा हो गया॥
एक दम भी हमको जीना हिज्र में था नागवार।
पर उमीदे वस्ल में बरसों गुज़ारा होगया॥
'ज़ौक़' इस बहरे जहाँ में क़िश्तिये उम्रे रवाँ।
जिस जगह पर जा लगी वह ही किनारा होगया॥

शुक्र परदे ही में उस बुत को हया ने रक्खा।
वर्ना ईमान गया ही था ख़ुदा ने रक्खा॥
बेनिशाँ पहले फ़ना से हो जो तुझको बक़ा।
वर्ना है किसका निशाँ ज़ौक़े फ़ना ने रक्खा॥

सफ़े हस्ती कर रहा हूँ वस्ल की उम्मेद पर।
बे निशाँ हो लूँ तो फिर नामो निशाँ पैदा करूँ॥

नशा दौलत का बद अतवार को जिस आन चढ़ा।
सर पै शैतान के एक और भी शैतान चढ़ा॥
इश्क़ के ढब पैं न कोई बजुज़ इन्सान चढ़ा।
इसके क़ाबू पैं चढ़ा तो यही नादान चढ़ा॥

* * *

गर सियहबख़्त ही होना था नसीबों में मेरे।
ज़ुल्फ़ होता तेरे रुख़सार पै या तिल होता॥
मौत ने कर दिया नाचार वगर्ना इन्साँ।
है वह ख़ुदबीं कि ख़ुदा का भी न क़ायल होता॥
आप आईनये हस्ती में है तू अपना हरीफ़।
वर्ना याँ कौन था जो तेरे मुक़ाबिल होता॥
सीन-ए चर्ख़ में हर अख़्तर अगर दिल है तो क्या।
एक दिल होता मगर दर्द के क़ाबिल होता॥

* * *

अजल आई न शबे हिज्र में और तूने फ़लक।
बे अजल हमको तमन्नाए अजल में मारा॥
आँख से आँख है लड़ती मुझे डर है दिलका।
कहीं यह जाय न इस जंगो जदल में मारा॥
न हुआ पर न हुआ मीर का अन्दाज़ नसीब।
'ज़ौक़' यारों ने बहुत ज़ोर ग़ज़ल में मारा॥

* * *

क्या जाने उसे वहम है क्या मेरी तरफ़ से।
जो ख़्वाब में भी रात को तनहा नहीं आता॥
मैं जाता जहाँ से हूँ तू आता नहीं याँ तक।
काफ़िर तुझे कुछ ख़ौफ़ ख़ुदा का नहीं आता॥
दुनिया है वह सय्याद कि सब दाम में इसके।
आजाते हैं लेकिन कोई दाना नहीं आता॥
क़िस्मत से ही लाचार हूँ ऐ 'ज़ौक़' वगर्ना।
सब फ़न में हूँ मैं ताक़ मुझे क्या नहीं आता॥

न क्यों तेरे दाँतों से झूटा हो मोती।
कि दावा किया था सफ़ाई का झूटा॥
ख़ुदा जाने है 'ज़ौक़' झूटा कि सच्चा।
नहीं है वले आशनाई का झूटा॥

ज़ाहिद शराब पीने से काफ़िर बना मैं क्यों?
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान बह गया॥

आँखें मेरी तलुओं से वह मल जाये तो अच्छा।
यह हसरते पाबोस निकल जाये तो अच्छा॥
जो चश्म कि बे नम हो वह हो कोर तो बेहतर।
जो दिल कि हो बेदाग़ वह जल जाये तो अच्छा॥

बीमारे मुहब्बत ने लिया तेरे सम्हाला।
लेकिन व सम्हाले से सम्हल जाये तो अच्छा॥
हो तुझ से अयादत जो न बीमार की अपने।
लेने को ख़बर उसकी अजल आये तो अच्छा॥
फ़ुरक़त में तेरी तारे नफ़स सीने में मेरे।
काँटा सा खटकता है निकल जाये तो अच्छा॥
दिल गिर के नज़र से तेरी उठने का नहीं फिर।
यह गिरने से पहले ही सम्हल जाये तो अच्छा॥

हमने जाना था कि क़ासिद जल्द लायेगा ख़बर।
क्या ख़बर थी जाके वाँ ख़ुद बे ख़बर हो जायगा॥
शक्ल तो देखो मुसव्विर खींचेगा तसवीरे यार।
आपही तसवीर उसको देखकर हो जायगा॥

आना तो ख़फ़ा आना जाना तो रुला जाना।
आना है तो क्या आना जाना है तो क्या जाना॥
क्या तबअ में जौदत है चट दिलका उड़ा जाना।
होटों का यहाँ हिलना वहाँ बात का पा जाना॥

मसजिद में उसने हमको आँखें दिखा के मारा।
काफ़िर की देखो शोख़ी घर में ख़ुदाके मारा॥

* * *

कुछ राज़ निहाँ दिलका अयाँ हो नहीं सकता।
गूँगे का सा है ख़्वाब बयाँ हो नहीं सकता॥

* * *

मालूम जो होता हमें अंजामे मुहब्बत।
लेते न कभी भूल के हम नामे मुहब्बत॥
है दाग़े मुहब्बत दिरमो दामे मुहब्बत।
मुज़दा तुझे पे ख़्वाहिशे इनआमे मुहब्बत॥
की जिससे रहो रस्मे मुहब्बत उसे मारा।
पैग़ामे क़ज़ा है तेरा पैग़ामे मुहब्बत॥
मेराज समझ 'ज़ौक़' तू क़ातिल की सनाँ को।
चढ़ सर के बल इस ज़ीने से ता बामे मुहब्बत॥

* * *

दीदये आवलए पा का यही है रोना।
कि न पहुँचा हो कहीं मुझसे किसी ख़ार को रंज॥
जाबजा कोह के चश्मों से रवाँ है आँसू।
है जो ना कामिए फ़रहाद का कुहसार को रंज॥

राहतो रंज ज़माने में हैं दोनों लेकिन।
याँ अगर एक को राहत है तो है चार को रंज॥

❦ ❦ ❦

बीमारे इश्क़ का जो न तुझसे हुआ इलाज।
कह ऐ तबीब तू ही कि फिर तेरा क्या इलाज॥

❦ ❦ ❦

रेशे सफ़ेद शैख़ में है .ज़ुल्मते फ़रेब।
इस मक्र चाँदनी पै न करना गुमाने सुबह॥

❦ ❦ ❦

उस बद मुआमले से भला क्या मुआमला।
किस बद सलाह ने तुझे दी यह दिला सलाह॥
ज़ाहिद य क्या कहा कि न मिल इन बुतों से तू।
देता है ऐसी कोई भी मर्दे .ख़ुदा सलाह॥

❦ ❦ ❦

फिर आया वह लो निगारे ख़ूनी इधर को सरगर्म जंग होकर।
कि जिसके हाथों से उड़ गये सर हज़ारों मेंहदी का रङ्ग होकर॥
हलावते शरमो पासदारी जहाँ में है 'ज़ौक़' रञ्जो ख़्वारी।
मज़े से गुज़री अगर गुज़ारी किसी ने बे नामो नंग होकर॥

❦ ❦ ❦

कहा पतंग ने यह दारे शमा पर चढ़ कर।
अजब मज़ा है जो मर ले किसी के सर चढ़कर॥

दिखा न जोशो ख़रोश इतना ज़ोर पर चढ़कर।
गये जहान में दरिया बहुत उतर चढ़ कर॥

❦ ❦ ❦

मुझसा मुश्ताक़े जमाल एक न पाओगे कहीं।
गर्चे ढूँढ़ोगे चिराग़े रुख़े ज़ेबा लेकर॥
तेरे पुरज़े न किये ख़त की तरह ऐ क़ासिद।
शुक्र कर छोड़ दिया उसने नविश्ता लेकर॥
वाँ से याँ आये थे ऐ 'ज़ौक़' तो क्या लाये थे।
याँ से तो जायँगे हम लाख तमन्ना लेकर॥

❦ ❦ ❦

कल गये तुम जिसे बीमारे हिजराँ छोड़कर।
चल बसा वह आज सब हस्ती का सामाँ छोड़कर॥
तिफ़्ल अश्क ऐसा गिरा दामाने मिज़गाँ छोड़कर।
फिर न उट्ठा कूचये चाके गिरेबाँ छोड़कर॥
गर्चे है मुल्के दकन में इन दिनों क़द्रे स.ख़ुन।
कौन जाये ज़ौक़ पर दिल्ली की गलियाँ छोड़कर॥

❦ ❦ ❦

इश्क़ का जोश है जब तक कि जवानी के हैं दिन।
यह मरज़ करता है शिद्दत इन्हीं अय्याम में ख़ास॥

❦ ❦ ❦

जो खुलकर उनकी जुल्फें, बाल आयें सर से पाँवों तक।
बलायें आके लें सौ सौ बलायें सर से पाँवों तक॥
हम उनकी चाल से पहचान लेंगे उनको बुर्के में।
हज़ार अपने को वह हमसे छिपायें सर से पाँवों तक॥
मेरा दिल एक दू उस ख़ुशअदा की किस अदा को मैं।
कि हैं वाँ तो अदायें ही अदायें सर से पाँवों तक॥
सरापा पाक हैं धोये जिन्होंने हाथ दुनिया से।
नहीं हाजत कि वह पानी बहायें सर से पाँवों तक॥
मज़ा इतना ही ज़ौक़ अफ़ज़ूँ हों जितने ज़ख़्म अफ़ज़ूँ हों।
न क्यों हम ज़ख़्म तेग़े इश्क़ खायें सर से पाँवों तक॥

सफ़हए दहर पै यक दिल न हुआ एक से एक।
दिलके दो हर्फ़ हैं सो भी हैं जुदा एक से एक॥

हज़ार दुश्मने जाँ से है एक दोस्त बुरा।
जो पूछा कौन है वह? मैं कहूँ हज़ार में दिल॥

उस हूरवश का घर मुझे जन्नत से है सिवा।
लेकिन रक़ीब हो तो जहन्नुम से कम नहीं॥
ऐ 'ज़ौक़' किसको चश्मे हिक़ारत से देखिए।
सब हमसे हैं ज़ियादा कोई हमसे कम नहीं॥

गुल परेशाँ हुआ हँस हँस के चमन में आख़िर।
देख पे .गुञ्चा यहाँ ख़न्दाज़नी ख़ूब नहीं॥
ताबे दंदाँ न दिखा बज़्म में तू हँस हँस कर।
कोई खा जाये जा हीरे की कनी ख़ूब नहीं॥
ख़लिशे ख़ार का खटका है बग़ल में मौजूद।
देख गुल, दावये नाज़ुकबदनी ख़ूब नहीं॥

❦ ❦ ❦

.ख़ुरशेद वार देखते हैं सब को एक आँख।
राशन ज़मीर मिलते हरेक नेको बद से हैं॥
दो गालियाँ कि बोसा .ख़ुशी पर है आपकी।
रखते फ़क़ीर काम नहीं रद्दो क़द से हैं॥
जितने मज़े. हैं याँ रविशे नश्शाये शराब।
हो जाते बे मज़ा हैं जो बढ़ जाते हद से हैं॥
दिलके वरक़ पैं सब्त हैं सद मुहर दाग़े इश्क़।
हम करते ज़ौक़ इश्क़ का दावा सनद से हैं॥

❦ ❦ ❦

इस गुलिस्ताने जहाँ में क्या गुले इशरत नहीं।
सैर के क़ाबिल है यह पर सैर की .फ़ुरसत नहीं॥
ख़्वाह गर्दिश है ज़मीं को ख़्वाह फिरता है फ़लक।
पर हमें ज़ेरे फ़लक सर मंज़िले राहत नहीं॥

मुँह में गर पानी चुआवे यार अपने हाथ से।
मर्गकी तल्ख़ी से शीरीं तर कोई शर्बत नहीं॥
दिल वो क्या जिसको नहीं तेरी तमन्नाये विसाल।
चश्म वह क्या जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं॥
कहते हैं मर जायँ गर छुट जायँ ग़म के हाथ से।
पर तेरे ग़म में हमें मरने की भी .फ़ुरसत नहीं॥
एक दिल और उस पै इतने बारे ग़म अल्ला रे दिल।
और इस ताक़त पै ऐसा कोई बे ताक़त नहीं॥

* * *

क्या ताब दिल जलों से जो बर्क़ लाग रक्खे।
दोज़ख़ भी हो तो उनकी चिलमों प आग रक्खे॥

* * *

वक्ते. पीरी शबाबकी बातें।
ऐसी हैं जैसी ख़्वाबकी बातें॥
फिर मुझे ले चला उधर देखो।
दिल ख़ाना-ख़राबकी बातें॥
देख पे दिल न छोड़ क़िस्सए .ज़ुल्फ़।
कि यह हैं पेचो ताबकी बातें॥

* * *

रुकाव ख़ूब नहीं तबा की रवानी में।
कि बू फ़िसाद की आती है बन्द पानी में॥

लगाते तोहमते गिरियाँ हैं दिल जलों को तेरे।
यह हैं वही जो लगाते हैं आग पानी में॥
नहीं ख़िज़ाव से मतलव मगर ये मूए सफ़ेद।
सियाहपोश हुए मातमे जवानी में॥

❦ ❦ ❦

तू कहे ग़ुंचा कि उस लव पै धड़ी ख़ूव नहीं।
चुप! कि मुँह छोटासा और वात वड़ी ख़ूव नहीं॥
ख़ूवरूओं से वहुत आँख लड़ी पर अफ़सोस।
क़िस्मत ऐ ज़ौक़! कहीं अपनी लड़ी ख़ूव नहीं॥

❦ ❦ ❦

वह देखें वज़्म में पहले किधर को देखते हैं।
मुहव्वत आज तेरे हम असर को देखते हैं॥
ये लोग क्यों मेरे ऐवो हुनर को देखते हैं।
उन्हें तो देखो ज़रा वह किधर को देखते हैं॥
है उनकी चश्म की गर्दिश पै गर्दिशे आलम।
जिधर हो उनकी नज़र सव उधरको देखते हैं॥
अरक़ के क़तरे नहीं देखते हैं उस रुख़ पर।
सितारे धूप में हम दोपहरका देखते हैं॥
जहाँ के आइने से दिलका आईना है जुदा।
उस आइने में हम आईनेगर को देखते हैं।

❦ ❦ ❦

सोहबते अहले सफ़ा से तीरह दिल कब साफ़ हो।
ज़ंग से आलूदा हो जाता है आहन आब में॥
'ज़ौक़' तू इस बहर में ऐसे गुले मज़मूँ बहा।
जा बजा लग जाये यक फूलोंका ख़िरमन आब में॥
भूल मत इल्मे किताबी पर कि आख़िर कब तलक।
नाव काग़ज़ की बहे ऐ तिफ़्ले कोदन आबमें॥

* * *

वह दिन है कौन सा कि सितम पर सितम नहीं।
गर ये सितम है रोज़ तो इक रोज़ हम नहीं॥
मज़मूँ के पेचो ताब से ताबे रक़म नहीं।
है ज़ुल्फ़े यार हाथ में मेरे क़लम नहीं॥
मुश्किल है मेरे अहदे मुहब्बत का टूटना।
ऐ बेवफ़ा! यह तेरी ख़ुदा की क़सम नहीं॥
मंसूबा मारने का मेरे करते हैं हरीफ़।
और मुझमें मिस्ल बाज़िये शतरञ्ज दम नहीं॥
हाथ आये किस तरह से दिले गुमशुदा का खोज।
है चोर वह कि जिस पै किसी का भरम नहीं॥
जाता है आँखें बन्द किये 'ज़ौक़' तू कहाँ।
यह राह कूचे यार है राहे अदम नहीं॥

* * *

हमसे ज़ाहिरो पिनहाँ जो उस ग़ारतगर के झगड़े हैं।
दिलसे दिल के झगड़े हैं नज़रोंसे नज़र के झगड़े हैं॥
जीतेही जी क्या मुल्के फ़ना में साथ बशर के झगड़े हैं।
मरके इधरसे जबकि छुटे तो जाके उधरके झगड़े हैं॥
कैसा मोमिन कैसा काफ़िर कौन है सूफ़ी कैसा रिन्द।
सारे बशर हैं बन्दे हक़ के सारे शर के झगड़े हैं॥
यक यक जौरो सितम प उसके सौ सौ दाग़े दिल हैं गवाह।
हम जो उससे झगड़े हैं हक़ साबित करके झगड़े हैं॥
ग़म कहता है दिलमें रहूँ मैं जलवये जानाँ कहता है मैं।
किसको निकालूँ किसको रक्खूँ यह तो घरके झगड़े हैं॥
बहरमें मोती पानी पानी लाल का दिल खूँ पत्थरमें।
देखो! लबा दन्दाँसे तुम्हारे लालो गुहरके झगड़े हैं॥
हज़रते दिलका देखना आलम हाथ उठाये दुनियासे।
पाँव पसारे बैठे हैं और सर पै सफ़र के झगड़े हैं॥
'ज़ौक़' मुरत्तिब क्योंके हो दीवाँ शिकवये फ़ुर्सत किससे करें।
बाँधे गलेमें हमने अपने आप ज़फ़र के झगड़े हैं॥

❦ ❦ ❦

कह दे शबनम से न भर सीमाब गुलके कान में।
बुलबुलें अहवाले दिल कुछ ऐ सबा कहने को हैं॥
देखे आइने बहुत बिन ख़ाक है नासाफ़ सब।
है कहाँ अहले सफ़ा अहले सफ़ा कहने को हैं॥

देख तो ले पहुँचे किस आलम से किस आलम में हैं।
नालहाये दिल हमारे नारसा कहने को हैं॥
मिट गये जौहर वफ़ा के उठ गये सब अहले दिल।
अब वफ़ा है नामको औ बावफ़ा कहने को हैं॥
है सफ़ाये दिल वही जिसमें अयाँ हो शक्ले यार।
यूँ तो आईनों के दिल भी बा सफ़ा कहने को हैं॥
क्या तमाशा है कि उनके कानमें उट्ठा है दर्द।
हम जो आये दर्दे दिल अपना ज़रा कहने को हैं॥

* * *

करे वहशत बयाँ चश्मे सखुनगो इसको कहते हैं।
यह सच कहते हैं सर चढ़ बोले जादू इसको कहते हैं॥
सवाले बोसे को टाला जवाबे चीने अबरू से।
बराते आशिक़ाँ बर शाख़ आहू इसको कहते हैं॥
अजल सौ बार आई 'ज़ौक़' पर जब तक न वह आये।
न पाया दम निकलने मेरा क़ाबू इसको कहते हैं॥

* * *

दिल का यह हाल है फटजाय है सौ जाय से और।
अगर यक जाय से हम उस को रफ़ू करते हैं॥

* * *

याँ लब पै लाख लाख सख़ुन इज़तराब में।
वाँ एक ख़ामुशी तेरी सबके जवाब में॥

ख़त देख कर वह आये बहुत पेचो ताब में।
क्या जाने लिख दिया उन्हें क्या इज़्तराब में॥

* * *

अबके दिल लेलूँ तो फिर उस बुते क़ातिल को न दूँ।
जान दूँ माल दूँ ईमान दूँ पर दिल को न दूँ॥
चार टुकड़े करो दिल के कि नहीं हो सकता।
लब को दूँ रुख़ को न दूँ ज़ुल्फ़ को दूँ तिल को न दूँ॥

* * *

रिन्दे ख़राब हाल को ज़ाहिद न छेड़ तू।
तुझको पराई क्या पड़ी अपनी नबेड़ तू॥
ना.ख़ुन ख़ुदा न दे तुझे पे पञ्जये जनूँ।
देगा तमाम अक़्ल के बख़िये उधेड़ तू॥
जो सोती भीड़ अपने सरो शोर से जगाये।
दर्वाज़ा घर का उस सगे दुनिया प भेड़ तू॥

* * *

अगर ज़ख़्म सीने से फाहा उठाऊँ।
तो ख़ुरशेदे महशर को मैं तप चढ़ाऊँ॥

* * *

अगर दुरूवये दाग़ दिलको दिखाऊँ।
तो सुबहे क़यामत का मुँह दम में फ़क़ हो॥
किताबे मुहब्बत में ऐ हज़रते दिल।
बताओ कि तुम लेते कितना सबक़ हो।

कि जब आनकर तुमको देखा तो वह ही।
लिये दस्ते अफ़सोस के दो वरक़ हो॥

❦ ❦ ❦

बजा कहे जिसे आलम उसे बजा समझो।
ज़ुबाने ख़ल्क़को नक़्क़ारए ख़ुदा समझो॥

❦ ❦ ❦

कहे एक जब सुन ले इन्सान दो।
कि हक़ ने ज़ुबाँ एक दो कान दो॥

❦ ❦ ❦

मरते हैं तेरे प्यार से हम और ज़ियादा।
तू लुत्फ़ में करता है सितम और ज़ियादा॥
सर कटके सर अफ़राज़ हैं हम और ज़ियादा॥
जूँ शाख़ बढ़े होके क़लम और ज़ियादा॥
वह दिल को चुराकर लगे जब आँख चुराने।
यारों का गया उन पै भरम और ज़ियादा॥
है बाग़े जहाँ में तुझे गर हिम्मते आली।
कर गरदने तसलीम को ख़म और ज़ियादा॥
लेते हैं समर शाख़े समर वर को झुका कर।
झुकते हैं सख़ी वक़्ते करम और ज़ियादा॥

जो कुंजे क़नाअतमें हैं तक़दीर प शाकिर ।
है 'ज़ौक़' बराबर उन्हें कम और ज़ियादा ॥

तू जान है हमारी और जान है तो सब कुछ ।
ईमान की कहेंगे ईमान है तो सब कुछ ॥

तेरे कूचे को वह बीमारे ग़म दारुलशफ़ा समझे ।
अजल को जो तबीब और मर्ग को अपनी दवा समझे ॥
सितम को हम करम समझे जफ़ा को हम वफ़ा समझे ।
औ इस पर भी न समझे वह तो उस बुतसे ख़ुदा समझे ॥
तुझे पे सङ्ग दिल आरामे जाने मुब्तला समझे ।
पड़े पत्थर समझपर अपनी हम समझे तो क्या समझे ॥
वह अपने ख़ाकसारों को गर अपना ख़ाके पा समझे ।
हम अपनी ख़ाकसारी अपने हक़ में कीमिया समझे ॥
हिसाब असला न पूछे मुझसे मेरे दिलके ज़ख्मों का ।
हिसाबे दोस्ताँ दर दिल अगर वह दिलरुबा समझे ॥
समझ ही में नहीं आती है कोई बात 'ज़ौक़' उसकी ।
कोई जाने तो क्या जाने कोई समझे तो क्या समझे ॥

कब हक़-परस्त ज़ाहिदे जन्नतपरस्त है ।
हूरों पै मर रहा है य शहवतपरस्त है ॥

दिल साफ़ हो तो चाहिये मानीपरस्त हो।
आईना ख़ाक साफ़ है सूरतपरस्त है॥
दरवेश है वही जो रियाज़त में चुस्त हो।
तारक नहीं फ़क़ीर भी राहत परस्त है॥
यह 'ज़ौक़' मै परस्त है या है सनम परस्त।
कुछ है बला से लेक मुहब्बत परस्त है॥

* * *

कभी अफ़सोस है आता कभी रोना आता।
दिले बीमार के हैं दोही अयादत वाले॥
नाज़ हैं गुल को नज़ाकत पै चमन में ऐ 'ज़ौक़'।
उसने देखे ही नहीं नाज़ो नज़ाकत वाले॥

* * *

मज़े जो मौत के आशिक़ बयाँ कभू करते।
मसीहो ख़िज़्र भी मरने की आरज़ू करते॥
अगर यह जानते चुन चुन के हमको तोड़ेंगे।
तो गुल कभी न तमन्नाये रङ्गो बू करते॥

* * *

न देना हाथ से तुम रास्ती कि आलम में।
असा है पीर को औ सैफ़ है जवाँ के लिए॥
बयाने दर्दे मुहब्बत जो हो तो क्योंकर हो।
ज़ुबाँ न दिल के लिए है न दिल ज़ुबाँ के लिए॥

बनाया ज़ौक़ जो इन्साँ को उसने जुज़वे ज़ईफ़।
तो उस ज़ईफ़ से कुल काम दो जहाँ के लिए॥

* * *

जो दिल क़िमारख़ाने में बुत से लगा चुके।
वह कावतेन छोड़ कर कावे को जा चुके॥
तुम भूल कर भी याद नहीं करते हो कभी।
हम तो तुम्हारी याद में सब कुछ भुला चुके॥

* * *

न पूछो कि दिल शाद है या हज़ीं है।
ख़बर भी नहीं याँ कि है या नहीं है॥
यही गर तेरी चश्म सहर आफ़रीं है।
तो दिल है न जाँ है न ईमाँ न दीं है॥
वो पहलू में बैठे हैं औ बदगुमानी।
लिए फिरती मुझको कहीं का कहीं है॥

* * *

फूला नहीं समाता जो गुल पैरहन में है।
आता य किस भरोसे पै हँसता चमन में है॥
दम को नही है सीने में आराम एक दम।
यह वह ग़रीब है कि मुसाफ़िर वतन में है॥

* * *

अब तो घबरा के य कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे॥

तुमने ठहराई अगर ग़ैर के घर जाने की।
तो इरादे यहाँ फिर और ठहर जायँगे॥
आग दोज़ख़ की भी हो जायगी पानी पानी।
जब यह आसी अरक़े शर्म से तर जायँगे॥
'ज़ौक़' जो मदरसे के बिगड़े हुए हैं मुल्ला।
उनको मै ख़ाने में ले आओ सँवर जायँगे॥

* * *

ज़ुबाँ खोलेंगे मुझ पर बद ज़ुबाँ क्या बद शआरो से।
कि मैने ख़ाक भर दी उनके मुँह में ख़ाकसारी से॥
गुज़रती है मज़े में ज़िन्दगी ग़फ़लत शआरी से।
मेरे नज़दीक बेहोशी है बेहतर होशियारी से॥
जो पूछे ज़ाहिदे ख़ुश्क अपनी दारू कह दो मै पी ले।
अगर परहेज़ को पूछे—कहो परहेज़गारी से॥

* * *

निगह का वार था दिल पर फड़कने जान लगी।
चली थी बरछो किसी पर किसी के आन लगी॥
तेरा ज़ुबाँ से मिलाना ज़ुबाँ जा याद आया।
न हाय हाय में तालू से फिर ज़ुबान लगी॥
किसी के दिल का सुनो हाल दिल लगा कर तुम।
जो होवे दिल को तुम्हारे भी मेहरबान लगी॥

* * *

कीड़ा ज़रा सा और वह पत्थर में घर करे।
इन्साँ वो क्या जो न दिले दिलवर में घर करे॥
यूँ मेरे दिल में चुभती है दन्दाँ की उसकी ताव।
हीरे की जूँ कनी दिले गौहर में घर करे॥

❦ ❦ ❦

लाई हयात आये कज़ा ले चली चले।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले॥
बेहतर तो है यही कि न दुनिया से दिल लगे।
पर क्या करें जो काम न बे दिल्लगी चले॥
हो उम्र ख़िज़्र भी तो कहेंगे ब वक़्ते मर्ग।
हम क्या रहे यहाँ अभी आये अभी चले॥
दुनिया ने किसका राहे फ़ना में दिया है साथ।
तुम भी चले चलो युँही जब तक चली चले॥
जाते हवाये शौक़ में हैं इस चमन से ज़ौक़।
अपनी बलासे बादे सबा अब कभी चले॥

❦ ❦ ❦

गर रुख़ का बोसा देते नहीं लब का दीजिए।
है मस्ल यह कि फूल नहीं पंखड़ी सही॥

❦ ❦ ❦

क्या वह दुनिया जिसमें कोशिश हो न दीं के वास्ते।
वास्ते वाँ के भी कुछ या सब यहीं के वास्ते॥

ख़ूँ के दरिया बह गये आलम तहो बाला हुए।
ऐ सिकन्दर किसलिए? दो गज़ ज़मीं के वास्ते॥

❦ ❦ ❦

बेक़रारी का सबब हर काम की उम्मेद है।
नाउमेदी से मगर आराम की उम्मेद है॥

❦ ❦ ❦

दिल गिरफ़्तार हुआ यार की अय्यारी से।
हम गिरफ़्तार हुए दिल की गिरफ़्तारी से॥

❦ ❦ ❦

बाक़ी है दिल में शेख़ के हसरत गुनाह की।
काला करेगा मुँह भी जो दाढ़ी सियाह की॥

❦ ❦ ❦

दर्द दिल से लोटता हूँ मेरा किसको दर्द है।
मैं हूँ लफ़्ज़े दर्द जिस पहलू से देखो दर्द है॥

❦ ❦ ❦

कितने मुफ़लिस हो गये कितने तवंगर हो गये।
ख़ाक में जब मिल गये दोनों बराबर हो गये॥

❦ ❦ ❦

यह दर्दे सर ऐसा है कि सर जाये तो जाये।
उल्फ़त का नशा जब कोई मर जाये तो जाये॥

❦ ❦ ❦

हला हो काले ने जिसको काफ़िर तो वह फ़िसूँ के असर से खेले।
दहानो गेसू का तेरे मारा न मुँह से बोले न सर से खेले॥

* * *

बद न बोले ज़ेरे गर्दूं गर कोई मेरी सुने।
है यह गुम्बद की सदा जैसी कहे वैसी सुने॥

* * *

फिर बहार आई कफ़े हर शाख पर पैमाना है।
हर रविश पर जलवये बादे सबा मस्ताना है॥

* * *

गुल भला कुछ तो बहारें पे सबा दिखला गये।
हसरत उन ग़ुँचों पै है जो बिन खिले मुर्झा गये॥

* * *

अश्क के क़तरे जो मिज़गाँ पर इकट्ठे हो गये।
ख़ोश-ए अंगूर के भी दाँत खट्टे हो गये॥

* * *

होता न अगर दिल तो मुहब्बत भी न होती।
होती न मुहब्बत तो य आफ़त भी न होती॥

* * *

कहीं तुझको न पाया गर्चे हमने यक जहाँ ढूँढ़ा।
फिर आख़िर दिलही में देखा बग़ल ही में से तू निकला॥

* * *

दरियाये अश्क चश्म से जिस आन वह गया
सुन लीजियो कि अर्श का ईवान वह गया॥
ज़ाहिद शराब पीने से काफ़िर बना मैं क्यों।
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान वह गया॥

* * *

कहूँ क्या ज़ौक अहवाले शबे हिज्र।
कि थी यक-यक घड़ी सौ सौ महीने॥
न थी शब डाल रक्खा था इक अन्धेर।
मेरे बख़्ते सिया की तीरगी ने॥
तपे ग़म शमा साँ होती न थी कम।
औ आते थे पसीनों पर पसीने॥
यही कहता था घबराकर फ़लक से।
कि ओ बेमेहर बद अख़्तर कमीने॥
कहाँ मैं और कहाँ यह शब—मगर थे—
मेरी जानिब से तेरे दिल में कीने॥
एवज़ किस बादानोशी के मुझे आज।
पड़े ये ज़हर के से घूँट पीने॥
हवासो होश जो मुझसे करीं थे।
क़रीने से हुए सब वे क़रीने॥

उठाया गाह और गाहे बिठाया ।
मुझे बेताबिओ बे ताक़ती ने ॥
कहा जी ने मुझे यह हिज्र की रात ।
यक़ीं है सुबह तक देगी न जीने ॥
मगर दिन उम्र के थोड़े थे बाक़ी ।
लगा रक्खे थे मेरी ज़िन्दगी ने ॥
कि क़िसमत से क़रीबे ख़ाना मेरे ।
अज़ाँ मसजिद में दी बारे किसी ने ॥
हुई ऐसी ख़ुशी अल्लाह अकबर ।
कि ख़ुश होकर कहा ख़ुद यह ख़ुशी ने ॥
मुअज़्ज़न मरहबा बर वक्त बोला ।
तेरी आवाज़ मक्के और मदीने ॥

* * *

दुनिया के अलम ज़ौक उठा जायँगे ।
हम क्या कहें क्या आये थे क्या जायँगे ॥
जब आये थे रोते हुए आप आये थे ।
अब जायँगे औरों को रुला जायँगे ॥

* * *

इस जहल का ज़ौक़ ठिकाना कुछ भी ।
दानिश ने किया दिल को न दाना कुछ भी ॥

हम जानते थे इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना कि न जाना कुछ भी॥

* * *

तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ 'ज़ौक़'।
है बुरा वह ही कि जो तुझको बुरा जानता है॥
और अगर तू ही बुरा है तो वह सच कहता है।
क्यों बुरा कहने से तू उसके बुरा मानता है॥

———:०:———

ग़ालिब

ग़ालिब उपनाम; नजमुद्दौला दबीरुल्मुल्क मिर्ज़ा असदुल्ला खाँ नाम; पिता का नाम अबदुल्ला बेग; स्थान दिल्ली; जन्म-संवत् १८५३; मृत्यु-संवत् १९२६।

उर्दू के सर्वश्रेष्ठ कवियों में ग़ालिब का नाम सबसे पहला है। अन्य कवियों की रचनाओं में प्रेम और विरह के सुन्दर से सुन्दर वर्णन मिलेंगे; करुण, श्रृंगार, हास्य आदि रसों का सुरुचिकर स्वाद मिलेगा; पर कविता जो चीज़ है वह ग़ालिब की ही रचना में मिलती है।

ग़ालिब पहले अपना उपनाम असद रखते थे। पर एक

कोई और महाशय असद उपनाम रखते थे। एक दिन ग़ालिब ने उनका यह शेर सुना—

असद तुमने बनाई यह ग़ज़ल ख़ूब।
अरे ओ शेर रहमत है ख़ुदा की॥

उसे सुनते ही ग़ालिब की तबीअत कुढ़ उठी। इन्होंने सं० १८८५ में अपना उपनाम ग़ालिब कर लिया। पर जो ग़ज़लें असद के नाम से थीं, उन्हें ज्यों का त्यों रहने दिया।

ग़ालिब के कुल की परम्परा ईरान के बादशाह से मिलती है। ईरानियों का प्रताप-सूर्य अस्त होने पर ग़ालिब के दादा घर छोड़ कर निकले और दिल्ली आये। शाहआलम का समय था। बादशाही नाम मात्र को थी। राज्य भीतर से खोखला हो चुका था। उन्होंने दरबार में जगह और ख़र्च के लिये जागीर पाई। पर वह सब जागीर ऐश-आराम में ख़तम हो गई। तब ग़ालिब के पिता अब्दुल्ला बेग आसफ़ुद्दौला के दरबार में लखनऊ पहुँचे। वहाँ से थोड़े दिनों के बाद वे हैदराबाद चले गये और वहाँ नौकर हो गये। वहाँ भी उनके पैर न टिके और वे अलवर में आकर राजा बख़्तावर सिंह के यहाँ नौकर हुये। यहीं किसी लड़ाई में वे मारे गये। उस समय ग़ालिब की अवस्था पाँच वर्ष की थी। ग़ालिब को उनके सगे चचा नसरुल्ला बेग ख़ाँ ने पाला पोसा। पर दुर्भाग्य से थोड़े ही दिनों बाद वे भी

क़ब्रवासी हुये। उनको अंग्रेज़ सरकार की ओर से डेढ़ लाख रुपये की जागीर मिली थी। उनके मरते ही वह भी ज़ब्त हो गई। ग़ालिब ने सरकार से बहुत लिखापढ़ी की, पर कुछ लाभ न हुआ, और ये दीनता में ही दिन काटने लगे। इनका समाचार पाकर एक मित्र ने दक्खिन हैदराबाद जाने की सम्मति दी। इन्होंने उसके पत्रके उत्तर में जो कुछ लिखा, उसका कुछ अंश यह है—

"पाँच बरस का था कि मेरा बाप मरा। नौ बरस का था कि चचा मरा। उसकी जागीर के एवज़ में मेरे और मेरे सुरकाये हक़ीक़ी के वास्ते शामिल जागीर नवाब अहमद बख़्श ख़ाँ दस हज़ार रुपये साल मुक़र्रर हुये। उन्होंने न दिये। मगर तीन हज़ार रुपये साल उनमें से ख़ास मेरी ज़ात का हिस्सा साढ़े सात सौ रुपया साल फ़क़त मैं ने सरकार अँग्रेज़ी में ग़बन ज़ाहिर किया। कोलब्रुक साहब बहादुर रेज़ीडेंट देहली और अस्टरलंग साहब बहादुर सेक्रेटरी गवर्नमेंट कलकत्ता मुत्तफ़िक़ हुये। मेरा हक़ दिलाने पर रेज़ीडेंट माज़ूल हो गये। सेक्रेटरी गवर्नमेंट बमर्ग नागाह मर गये। बाद एक ज़माना के बादशाह देहली ने पचास रुपया महीना मुक़र्रर किया। उनके वलीअहद इस तक़र्रुर के दो बरस बाद मर गये। वाजिद अली शाह बादशाह अवध की सरकार से वसिक़ा

मदहगुस्तरी ५००) साल मुकर्रर हुये। वह भी दो वरस से ज़ियादा न जिये। यानी अगरचे अवतक जीते हैं मगर सल्तनत जाती रही। और तवाही सल्तनत दो ही वरस में हुई। दिल्ली की सल्तनत कुछ सख़्त जान थी। सात वरस मुझको रोटी देकर विगड़ी। ऐसे ताला मुरव्वी कश और मुहसिन सोज़ कहाँ पैदा होते हैं। अव जो मैं वालिये दकन की तरफ़ रुजूअ करूँ, याद रहे कि विगड़ जायगा या मर जायगा या माज़ूल हो जायगा और अगर ये दोनों अम्र वाक़ा न हुये तो कोशिश इसकी ज़ाया जायगी। वालिये शहर मुझको कुछ न देगा और अहयानन अगर उसने सुलूक किया तो रियासत ख़ाक में मिल जायगी। मुल्क में गधे के हल फिर जायँगे।"

सं० १८८७ में ग़ालिब कलकत्ते गये। वहाँ गवर्नर जनरल के दफ़्तर में वहुत कोशिश करके भी ये अपनी जायदाद वापस न पा सके और दिल्ली लौट आये। ठाटवाट तो अमीरों सा था, पर पास में पैसे नहीं थे। हाथ के शाहख़र्च भी वड़े थे। इससे जल्दी ही मुसीबत ने आ घेरा। ये घवराकर रामपुर चले गये। नवाव रामपुर इनके पुराने शागिर्द थे। उन्होंने इन्हें वड़े सम्मान से अपने यहाँ रक्खा और २००) मासिक कर दिया। पर ग़ालिब को दिल्ली के विना चैन कहाँ? थोड़े ही दिन वाद

थे वहाँ से दिल्ली चले आये। ग़ालिब ने अपने एक तरहदार मित्र को पत्र लिखा, जिसमें अपने रूपरंग का भी ज़िक्र किया है। पत्र का कुछ अंश यह है—

"भाई, तुम्हारी तरहदारी का ज़िक्र मैंने मुग़लजान से सुना था। जिस ज़माने में कि वह हामिदअली ख़ाँ की नौकर थी और उसमें मुझमें बेतकल्लुफ़ाना रब्त था तो अक्सर मुग़लसे पहरों इख़्तलात हुआ करते थे। उसने तुम्हारे शेर अपनी तारीफ़ के भी मुझको दिखाये। बहर हाल तुम्हारे कशीदा क़ामत होनेपर मुझे रश्क न आया, किस वास्ते कि मेरा क़द भी दराज़ीमें अंगुश्तनुमा है। तुम्हारे गंदुमी रङ्ग पर रश्क न आया, किस वास्ते कि जब मैं जीता था तो मेरा रंग चम्पई था और दीदावर लोग उसकी सतायश किया करते थे। अब जो कभी मुझको वह अपना रङ्ग याद आता है तो छाती पर साँप फिर जाता है। हाँ, मुझको रश्क आया और मैंने ख़ूने जिगर खाया तो इस बात पर कि (तुम्हारी) दाढ़ी ख़ूब घुटी हुई है। वे मज़े याद आ गये.. क्या कहूँ जी पर क्या गुज़री। मेरी अब दाढ़ी मूछ में बाल सफ़ेद आ गये, तीसरे दिन च्यूँटी के अण्डे गालों पर नज़र आने लगे। इससे बढ़कर यह हुआ कि आगे के दो दाँत टूट गये। नाचार मिस्सी भी

छोड़ दी और दाढ़ी भी। मगर याद रखिए इस भौंड शहर दिल्ली में एक वर्दी है आम—मुल्ला, हाफ़िज़, विसाती, नैचावन्द, धोवी, सक्का, भटियारा, जुलाहा, कुँजड़ा, मुँहपर दाढ़ी सर पर बाल। मैंने जिस दिन दाढ़ी रक्खी उसी दिन सिर मुँड़ाया।"

ग़ालिब क़रीब क़रीब रोज़ शराब पीते थे। एक दिन अपने एक मित्र से बातें करते समय ये कहने लगे—उम्र भर में एक दिन शराब न पी हो तो काफ़िर, और एक दफ़े नमाज़ पढ़ी हो तो मुसलमान नहीं। फिर मैं नहीं जानता कि मुझे सरकार ने बाग़ी मुसलमानों में किस तरह शामिल समझा।

जाड़े का मौसम था। एक दिन नवाब मुस्तफ़ा ख़ाँ इनके घर आये। इन्होंने उनके आगे शराब का गिलास भर कर रख दिया। वे बेचारे इनका मुँह ताकने लगे। इन्होंने कहा—लीजिये। उन्होंने कहा—मैं तो तोवा कर चुका हूँ। इन्होंने आश्चर्य से पूछा—क्या जाड़े में भी?

इसी तरह एक साहब ने इनको सुनाने के लिये कहा कि शराब का पीना सख़्त गुनाह है। इन्होंने हँसकर कहा—भला, जो पिये तो क्या हो? उन्होंने कहा—छोटी सी बात तो यह है कि दुआ नहीं क़बूल होती। इन्होंने कहा—आप जानते हैं, शराब पीता है कौन? अव्वल तो वह कि एक बोतल ओल्डटाम की वसामान सामने हाज़िर हो; दूसरे वे

फ़िकरी, तीसरे सेहत। आप फ़रमाइये कि जिसे यह सब कुछ हासिल हो, उसे और चाहिये क्या, जिसके लिये दुआ करे?

ग़ालिब बड़े विनोद-प्रिय भी थे। एक बार रातके समय आँगनमें बैठे थे। चाँदनी रात थी। तारे छिटके हुये थे। ये आकाश की ओर देखकर कहने लगे—जो काम बेसलाह मशविरा होता है, बेढंगा होता है। .ख़ुदा ने सितारे आसमान पर किसीसे मशविरा करके नहीं बनाये हैं, न कोई सिलसिला, न ज़ंजीरह, न बेल, न बूटा।

नवाब इलाही बख़्शख़ाँ साहब की कन्या से इनका विवाह हुआ था। विवाह के समय इनकी उम्र १३ वर्ष की थी। इनको स्त्री से सुख नहीं प्राप्त हुआ। उसका स्वभाव बहुत कर्कश था, या क्या बात थी कि ये सदा उससे तंग रहते थे। एक बार इनके एक अत्यंत घनिष्ठ शागिर्द ने एक दूसरे शागिर्द उमरावसिंह की स्त्री के मरने का समाचार लिख भेजा और यह भी लिखा कि वह अपनी दूसरी शादी करना चाहता है। इस पर ये उसको लिखते हैं—

"उमरावसिंह के हाल पर उसके वास्ते रहम और अपने वास्ते रश्क आता है। अल्लाह! अल्लाह!! एक वह हैं कि दो बार उनकी बेड़ियाँ कट चुकी हैं और एक हम हैं कि एक ऊपर पचास बरस से जो फाँसी का फंदा गले में पड़ा है, तो न

फन्दाही टूटता है न दमहा निकलता है। उसको समझाओ कि भाई तेरे बच्चों को मैं पाल लूँगा। तू क्यों बला में फँसता है। ”

मौलवी फ़ज़ल हक़ साहब इनके दिली दोस्तों में से थे। उनकी आदत थो कि जब कोई घनिष्ट मित्र उनसे मिलने आता तो वे खालिक़ बारी का यह मिसरा—बया बिरादर आवरे भाई—पढ़ा करते थे। एक दिन ये उनसे मिलने गये। उन्होंने वही मिसरा कह कर इन्हें बैठाया। इतने में मौलवी साहब की रंडी भी दूसरे दालान से निकल आई। इन्होंने कहा—हाँ साहब, अब वह दूसरा मिसरा भी फ़रमा दीजिये—

व नशीं मादर बैठ री माई

ग़ालिब के सात बच्चे हुए। पर वे एक एक वर्ष के होकर मर गये। स्त्री से पटती न थी। इससे इन्हें जीवन भर अर्थ-कष्ट के साथ कुटुम्ब-कष्ट भी रहा। एक बरसात के मौसम में इनका पुराना मकान जहाँ-तहाँ से टूट गया। छत से पानी गिरने लगा, तब इन्होंने अपने एक शागिर्द को एक पत्र लिखा। जिसमें ये लिखते हैं—

“मियाँ, बड़ी मुसीबत में हूँ। महल सरा की दीवारें गिर गई हैं। छतें टपक रही हैं। तुम्हारी फूफी कहती हैं कि हाय दबी, हाय मरी। दीवान ख़ाने का हाल महल सरा से बदतर है। मैं मरने से नहीं डरता। फ़क़दानेराहत से घबरा गया हूँ।

छत छनती है । अब दो घण्टे वरसे तो छत चार घण्टे वरसती है । मालिक अगर चाहे कि मरम्मत करे तो क्योंकर करे; मेह खुले तो सब कुछ हो और फिर असनाये मरम्मत में बैठा किस तरह रहूँ। अगर तुमसे हो सके तो भाई से मुझको वह हवेली जिसमें मीरहसन रहते थे, अपनी फूफी के रहने को और कोठी में से वह वालाख़ाना, मय दालान ज़ेरी जो इलाहीख़ाँ मरहूम का मसकन था, मेरे रहने को दिलवा दो । वरसात गुज़र जायगी । मरम्मत हो जायगी । फिर साहव, मेम और वावा लोग अपने क़दीम मसकन में आ रहेंगे। तुम्हारे वालिद के ईसार व अताके जहाँ मुझ पर एहसान हैं एक यह मुरव्वत का एहसान मेरी पायान उम्र में और भी सही। ग़ालिव ।"

एक वार ग़ालिव ने दिल्ली के युवराज जवाँवख़्त की शादी के अवसर पर एक सेहरा लिखकर पढ़ा । जिसका अंतिम शेर यह है—

हम स.ख़ुन फ़हम हैं ग़ालिव के तरफ़दार नहीं ।
देखें इस सेहरे कह दे कोई वेहतर सेहरा ॥

इसे सुनकर वादशाह ज़फ़र को यह ख़्याल हुआ कि यह मुझ पर कटाक्ष है जो मैं ने ज़ौक़ को राजकवि वना लिया। ज़फ़र ने ज़ौक़ से उस सेहरे के उत्तर में एक सेहरा वनाने के

लिये कहा। ज़ौक़ ने दरबार में ही एक सेहरा लिखकर तैयार किया। जिसका अंतिम शेर यह है—

जिसको दावा है स.खुन का य सुनादो उसको।
देख इस तरह से कहते हैं स.खुनवर सेहरा॥

वास्तव में ग़ालिब ने ज़फ़र या ज़ौक़ पर कटाक्ष नहीं किया था। जब इन्हें बादशाह की अप्रसन्नता का समाचार मिला, तब इन्होंने क्षमा-प्रार्थना के रूप में यह कविता बादशाह की सेवा में उपस्थित की—

मंज़ूर है गुज़ारिशे अहवाल वाक़ई।
अपना बयान हुस्ने तबीअत नहीं मुझे॥
सौ पुश्त से है पेशये आबा सिपहगरी।
कुछ शायरी ज़रीयए इ.ज़्ज़त नहीं मुझे॥
आज़ाद रौ हूँ और मेरा मुसलिक है सुलहकुल।
हर्गिज़ कभी किसी से अदावत नहीं मुझे॥
क्या कम है यह शरफ़ कि ज़फ़रका .गुलाम हूँ।
माना कि जाहो मनसबो सरवत नहीं मुझे॥
उस्ताद शह से हो मुझे परख़ाश का ख़याल।
यह ताब यह मजाल य ताक़त नहीं मुझे॥
जामे जहाँनुमा है शहनूशाह का ज़मीर।
सौगन्द औ गवाह की हाजत नहीं मुझे॥

मैं कौन और रेख़्ता हाँ इससे मुद्दआ।
जुज़ इम्बसात ख़ातिरे हज़रत नहां मुझे॥
सेहरा लिखा गया ज़रहे इम्तसाले अम्र।
देखा कि चारह ग़ैर इताअत नहीं मुझे॥
मक़ते में आ पड़ी है स.ख़ुन गुस्तराना बात।
मक़सूद इससे क़ता मुहब्बत नहीं मुझे॥
रूए स.ख़ुन किसी की तरफ़ हो ता रूसियाह।
सौदा नहीं जनूँ नहीं वहशत नहीं मुझे॥
क़िस्मत बुरी सही पै तबीअत बुरी नहीं।
है शुक्र की जगह कि शिकायत नहीं मुझे॥
सादिक़ हूँ अपने क़ौल में ग़ालिब .ख़ुदा गवाह।
कहता हूँ सच कि झूट की आदत नहीं मुझे॥

ग़ालिब वज़ादारी के बहुत पाबंद थे। सं० १८९९ में देहली कालिज खुला। उसमें फ़ारसी के एक प्रोफ़ेसर की आवश्यकता हुई। टामसन साहब, जो गवर्नमेंट के सेक्रेटरी थे, प्राफ़ेसर की तलाश करने लगे। बहुत पूछताछ के बाद ग़ालिब ही उनको पसंद आये। बुलाये जाने पर ये गये और पालकी से उतर कर साहब की प्रतीक्षा करने लगे कि वह इनके स्वागत के लिये आयेंगे। पर न वे आये, न ये उनके पास तक गये। दोनों एक दूसरे की प्रतीक्षा में रहे। साहब ने जमादार को भेजा। इन्होंने

कहा—साहब स्वागत के लिये बाहर नहीं आये तो मैं क्यों जाता? इतने में साहब भी बाहर निकल आये। साहब ने कहा—जब आप गवर्नर के दरबार में बहैसियत रियासत तशरीफ़ लायेंगे तब आप की वह ताज़ीम होगी। इस समय तो आप नौकरी के लिये आये हैं और उस ताज़ीम के मुस्तहक़ नहो। ग़ालिब ने कहा—गवर्नमेंट की नौकरी से मैं अपनी प्रतिष्ठा की वृद्धि समझता था। न कि बुजुर्गों की प्रतिष्ठा भी गँवा दूँ। साहब ने कहा—हम क़ानून से विवश हैं। ग़ालिब वहाँ से लौट आये। साहब ने ८०) मासिक पर मोमिन ख़ाँ को वह पद दे दिया।

पहले इनकी पेंशन राजद्रोह का अपराध लगाकर ज़ब्त कर ली गई थी, पर अंत में वह फिर जारी हो गई थी। किन्तु मिलती थी छठे महीने। इससे ये बहुत तंग रहा करते थे। एक बार जब बहुत परेशान हुये, तब इन्होंने बादशाह के पास यह अर्ज़ी लिखकर भेजी—

ऐ शहंशाह आस्माँ औरंग।
ऐ जहाँदार आफ़ताब आसार॥
था मैं एक बे नवाये गोशानशीं।
था मैं एक दर्दमन्द सीना फ़िगार॥

तुमने मुझको जो आबरू बख़्शी।
हुई मेरी यह गर्मिये बाज़ार॥
कि हुआ मुझसा ज़र्रये नाचीज़।
रूशनासे सवाबतो अय्यार॥
गर्चे अज़रूये नंगे बे हुनरी।
हूँ ख़ुद अपनी नज़र में इतना ख़्वार॥
कि गर अपने को मैं कहूँ ख़ाकी।
जानता हूँ कि आये ख़ाकको आर॥
शाद हूँ लेकिन अपने जीमें कि हूँ।
बादशाह का ग़ुलाम कारगुज़ार॥
ख़ानाज़ाद और मुरीद और मद्दाह।
था हमेशा से यह अरीज़ा निगार॥
बारे नौकर भी हो गया सद शुक्र।
निस्बतें होगईं मुशख्स चार॥
न कहूँ आपसे तो किस से कहूँ!
मुद्दआये ज़रूरीउल इज़हार॥
पीर मुरशद अगर्चे मुझ को नहीं।
ज़ौक़ आरायशे सरो दस्तार॥
कुछ तो जाड़े में चाहिए आख़िर।
ता न दे बादे ज़महरीर आज़ार॥

क्यों न दरकार हो मुझे पोशिश।
जिस्म रखता हूँ है अगर्चे नज़ार॥
कुछ ख़रीदा नहीं है अब की साल।
कुछ बनाया नहीं है अब की बार॥
रात को आग और दिन को धूप।
भाड़ में जायँ ऐसे लैलो निहार॥
आग तापे कहाँ तलक इन्सान।
धूप खावे कहाँ तलक जाँदार॥
धूप की तपिश आग की गर्मी।
वक़ना रब्बना अज़ाबुन्नार॥
मेरी तनख़्वाह जो मुक़र्रिर है।
उसके मिलने का है अजब हंजार॥
रस्म है, मुर्दे को छः माही एक।
ख़ल्क़ का है इसी चलन पै मदार॥
मुझ को देखो तो हूँ बक़ैद हयात।
और छः माही हो सालमें दो बार॥
बस कि लेता हूँ हर महीने क़र्ज़।
और रहती है सूद की तकरार॥
मेरी तनख़्वाह में तिहाई का।
हो गया है शरीक साहूकार॥

आज मुझ सा नहीं ज़माने में।
शायरे नग़ज़ गो-ए .ख़ुशगुफ़्तार॥
रज़्म की दास्तान गर सुनिए।
है .ज़ुवाँ मेरी तेग़ जौहर दार॥
वज़्मका इल्तज़ाम गर कीजे।
है क़लम मेरी अब्र जौहर दार॥
.ज़ुल्म है गर न दो स.ख़ुन की दाद।
क़हर है गर करो न मुझ को प्यार॥
आप का वन्दा और फिरूँ नंगा।
आप का नौकर और खाऊँ उधार॥
मेरी तनख़्वाह कीजै माह व माह।
ता न हो मुझ को ज़िन्दगी दुश्वार॥
ख़त्म करता हूँ अव दुआ पै कलाम।
शायरी से नहीं मुझे सरोकार॥
तुम सलामत रहो हज़ार वरस।
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार॥

ग़ालिव वास्तव में फ़ारसी के महाकवि थे। उर्दू में तो यों ही मनोरंजन के लिये लिखना आरम्भ किया था। इससे बहुत थोड़ा लिखा। पर जो कुछ है वह ला जवाव है। ग़ालिव के काव्य में अद्‌भुत आनंद है। कहीं कहीं इनके शेर इतने बारीक भाव

वाले हो गये हैं कि लोग उनके विचित्र अर्थ करने लगे थे। यह देखकर इन्होंने कहाः—

न सतायश की तमन्ना न सिले की पर्वा।
न सही गर मेरे अशआर में मानी न सही॥

हकीम आग़ाजान ने इनकी बारीकियों से तंग आकर एक मुशायरे में यह क़ता पढ़ा था—

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे।
मज़ा कहने का जब है यक कहे औ दूसरा समझे॥
कलामे मीर समझे औ ज़ुबाने मीरज़ा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे॥

उस दिन से ये अपनी कविता बहुत सरल और सर्वसाधारण के समझने लायक़ बोलचाल की भाषा में लिखने लगे। फिर भी इनसे और आसान लिखने की प्रार्थना की जाने लगी। तब इन्हों ने यह रुबाई कही—

मुश्किल है ज़बस कलाम मेरा ऐ दिल।
सुन सुन के उसे सख़ुनवराने कामिल॥
आसाँ कहने की करते हैं फर्मायश।
गोयम मुश्किल वगर न गोयम मुश्किल॥

उर्दू में इनका एक ही दीवान है। पर फ़ारसी में इनकी कई पुस्तकें हैं। जा बड़े गौरव की मानी जाती हैं।

ग़ालिब बड़े गुणग्राही और उदार थे। ज़ौक़ से इनकी नहीं पटती थी, तौ भी ये उनके इस शेर की बड़ी तारीफ़ किया करते थे—

अब तो घबरा के य कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे॥

इसी तरह मोमिन का यह शेर इनको बहुत पसंद था—

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता॥

मीर के ये अनन्य भक्त थे। सौदा की भी प्रशंसा किया करते थे। इनके शागिर्द बहुत हुये। पर उन में मुख्य मुख्य ये हैं—

१—मुंशी हरगोपाल 'तुफ़्ता', सिकंदराबादी।

२—नवाब ज़ियाउद्दीन खाँ।

३—मिर्ज़ा क़ुर्बान अली बेग 'सालग'।

४—मीर मेंहदी हुसेन 'मजरूह'।

५—ख़्वाजा अल्ताफ़ हुसेन 'हाली'।

इनमें भी सबसे बढ़ चढ़कर हाली हुये। हाली मुसलमानों के जातीय कवि थे। उन्होंने उर्दू कविता का प्रवाहही बदल दिया। 'यादगारे ग़ालिब' लिखकर उन्होंने अपनी गुरुभक्ति का अच्छा परिचय दिया है।

ग़ालिब पद्य तो अच्छा लिखते ही थे, गद्य भी इन्होंने ऐसा लिखा है कि उसके जोड़ का गद्य आज तक उर्दू में कोई लिख नहीं सका। उर्दू गद्य में इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ "उर्दू ए मुअल्ला" है। इस ग्रन्थ में इनके पत्रों का संग्रह है। इसी तरह का इनका एक दूसरा ग्रन्थ औद्-ए हिन्दी है।

ग़ालिबने उर्दू-कविता में जो दार्शनिक भाव भरा है, वह अद्वितीय है। इन्होंने स्वयं अपना मार्ग निर्दिष्ट किया। किसी का अनुकरण नहीं किया। इनकी कविता में हृदय की महीन से महीन तरंग का ऐसा स्पष्ट वर्णन मिलता है कि पढ़कर तबीअत फ़ड़क उठती है। इनके शेरों की भाषा, उत्प्रेक्षा, शब्द विन्यास, और उपमाएँ एकसे एक निराली हैं।

इन्होंने अपने उर्दू दीवान में से बहुत सी ग़ज़लें निकाल उसे छोटा कर दिया है। इससे भरती का एक भी शेर उसमें नहीं रहने पाया है। वृद्धावस्था में ये बहरे हो गये थे। चुपचाप लेटे रहते थे। किसीसे कुछ कहना होता था तो लिखकर बातें कर लिया करते थे। मरने से कई दिन पहले इन्होंने यह शेर कहा था—

दमे वापसीं बरसरे राह है।
अज़ीज़ो अब अल्लाही अल्लाह है॥

यहाँ इनके कुछ शेर दिये जाते हैं—

बूये गुल नालये दिल दूदे चिराग़े महफ़िल।
जो तेरी वज़्म से निकला सो परेशाँ निकला॥

* * *

इश्क़ से तबिअत ने ज़ीस्त का मज़ा पाया।
दर्द की दवा पाई दर्द बेदवा पाया॥

* * *

वस कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना।
आदमी को भी मुयस्सर नहीं इंसाँ होना॥
गिरिया चाहे है ख़रावी मेरे काशाने की।
दरो दीवार से टपके है बयावाँ होना।
वाय दीवानगीये शौक़ कि हरदम मुझको।
आप जाना उधर और आपही हैराँ होना॥
हैफ़ उस चार गिरह कपड़े की क़िस्मत ग़ालिब।
जिसकी क़िस्मत में हो आशिक़ का गरेवाँ होना॥

* * *

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता।
बहर गर बहर न होता तो वयावाँ होता॥

* * *

दोस्त ग़मख़्वारी में मेरी सई फरमायेंगे क्या?
ज़ख़्म के भरने तलक नाख़ून न वढ़ आयेंगे क्या?

बे नियाज़ी हद से गुज़री बन्दापरवर कब तलक।
हम कहेंगे हाले दिल और आप फरमायेंगे "क्या"?॥
आज वाँ तेग़ो कफ़न बाँधे हुये जाता हूँ मैं।
उज्र मेरे क़तल करने में वो अब लायेंगे क्या?॥
गर किया नासेह ने हमको क़ैद, अच्छा, यों सही।
यह जुनूने इश्क़ के अन्दाज़ छुट जायेंगे क्या?॥
खानः ज़ादे जुल्फ़ हैं ज़ंजीर से भागेंगे क्यों?
हैं गिरफ़्तारे वफ़ा ज़िन्दाँ से घबरायेंगे क्यों?
है अब इस मामूर में क़हते ग़मे उल्फ़त "असद"।
हमने यह माना कि दिल्ली में रहें, खायेंगे क्या?॥

* * *

यह न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले यार होता।
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता॥
तेरे वादे पर जिये हम तो यह जान झूट जाना।
कि ख़ुशी से मर न जाते अगर एतबार होता॥
कोई मेरे दिल से पूछे तेरे तीर नीम कश को।
य ख़लिश कहाँ से होती जो जिगर के पार होता॥
य कहाँ कि दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह।
कोई चारहसाज़ होता कोई ग़म गुसार होता॥
कहूँ किससे मैं कि क्या है? शबेग़म बुरी बला है।
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एकबार होता॥

हुये मरके हम जो रुसवा हुये क्यों न ग़र्क़े दरिया।
न कभी जनाज़ा उठता न कहीं मज़ार होता॥
उसे कौन देख सकता कि यगाना है वह यकता।
जो दुई की बू भी होती तो कहीं दो चार होता॥

हविस को है निशाते कार क्या क्या?
न हो मरना तो जीने का मज़ा क्या?
वलाये जाँ है ग़ालिब उसकी हरबात।
इबारत क्या? इशारत क्या? अदा क्या॥

सीने का दाग़ है वो नाला कि लब तक न गया।
ख़ाक का रिज़्क़ है वह क़तरा जो दरिया न हुआ॥

दर्द मिन्नत कशे दवा न हुआ।
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ॥
है ख़बर गर्म उनके आने की।
आज ही घर में बोरिया न हुआ॥
कितने शीरीं हैं तेरे लब कि रक़ीब।
गालियाँ खाके बेमज़ा न हुआ॥
जमा करते हो क्यों रक़ीबों को।
इक तमाशा हुआ गिला न हुआ॥

जान दी हुई उसी की थी।
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ॥
ज़ख़्म गर दब गया लहू न थमा।
काम गर रुक गया रवा न हुआ॥

* * *

न था कुछ तो .ख़ुदा था कुछ न होता तो .ख़ुदा होता।
डुबोया मुझको होने ने न होता मैं तो क्या होता॥
हुआ जब ग़म से यों बेहिस तो ग़म क्या सर के कटने का।
न होता गर जुदा तन से तो ज़ानू पर धरा होता॥
हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया, पर याद आता है।
वो हरयक बात पर कहना कि यों होता तो क्या होता॥

* * *

बुलबुल के कारोबार प हैं ख़न्दहाये गुल।
कहते हैं जिसको इश्क़ ख़लल है दिमाग़ का॥
सौ बार बन्दे इश्क़ से आज़ाद हम हुये।
पर क्या करें कि दिल ही उदू है फ़राग़ का॥

* * *

कोई वीरानी सी वीरानी है।
दश्त का देखकर घर याद आया॥

* * *

आये हो कल औ आजही कहते हो कि जाऊँ।
माना कि हमेशा नहीं अच्छा कोई दिन और॥
जाते हुये कहते हो क़यामत को मिलेंगे।
क्या ख़ूब, क़यामत का है गोया कोई दिन और॥

❦ ❦ ❦

क़ासिद के आते आते ख़त इक और लिख रखूँ।
मैं जानता हूँ जो वो लिखेंगे जवाब में॥

❦ ❦ ❦

य फ़ितना आदमी की ख़ाना वीरानी को क्या कम है।
हुये तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आसमाँ क्यों हो?
यही है आज़माना तो सताना किसको कहते हैं।
उदू के हो लिये जब तुम तो मेरा इम्तहाँ क्यों हो?

❦ ❦ ❦

पूछते हैं वह कि ग़ालिब कौन है?
कोई बतलाओ कि हम बतलायँ क्या?

❦ ❦ ❦

इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना॥
दिल से मिटना तेरी अंगुश्त हिनाई का ख़याल।
हो गया गोश्त से नाख़ुन का जुदा हो जाना॥

❦ ❦ ❦

इन आबलों से पाँव के घबरा गया था मैं ।
जी ख़ुश हुआ है राह को पुरख़ार देखकर ॥

* * *

आह को चाहिये इक उम्र असर होने तक ।
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक ॥
दाम हर मौज में है हलक़ये सद कामे निहंग ।
देखें क्या गुज़रे है क़तरे प गुहर होने तक ॥
आशिक़ी सब्र तलब और तमन्ना बेताब ।
दिल का क्या रंग करूँ ख़ूने जिगर होने तक ॥
हमने माना कि तग़ाफ़ुल न करोगे लेकिन ।
ख़ाक हो जायँगे हम तुमको ख़बर होने तक ॥
ग़मे हस्ती का 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग इलाज ।
शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक ॥

* * *

मेहरबाँ हो के बुला लो मुझे चाहो जिस वक़्त ।
मैं गया वक़्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ ॥
ज़ोफ़ में तानये अग़यार का शिकवा क्या है ।
बात कुछ सर तो नहीं है कि उठा भी न सकूँ ॥
ज़हर मिलता ही नहीं मुझको सितमगर वरना ।
क्या क़सम है तेरे मिलने की कि खा भी न सकूँ ॥

* * *

य हम जो हिज्र में दीवारो दर को देखते हैं।
कभी सबा को कभी नामावर को देखते हैं॥
वो आये घर में हमारे .खुदा की .कुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं॥
नज़र लगे न कभी उसके दस्तो बाज़ू को।
य लोग क्यों मेरे ज़ख़्मे जिगर को देखते हैं॥

* * *

हम मवाहिद हैं हमारा केश है तर्के रसूम।
मिल्लतें जब मिट गईं अजज़ाये ईमाँ हो गईं॥
रंज से ख़ू गर हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गईं॥
योंहीं गर रोता रहा ग़ालिब तो ऐ अहले जहाँ।
देखना इन बस्तियों को तुम कि वीराँ हो गईं॥

* * *

न लुटता दिनको तो कब रात का यों बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरी का दुआ देता हूँ रहज़न को॥

* * *

शब को किसी के ख़्वाब में आया न हो कहीं।
दुखते हैं आज उस बुते ना.ज़ुक बदन के पाँव॥

* * *

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमस.खुन कोई न हो औ हमज़वाँ कोई न हो।
बेदरो दीवार सा इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया न हो औ पासवाँ कोई न हो॥
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
औ अगर मर जाइये तो नौहाख़्वाँ कोई न हो॥

इश्क़ मुझको नहीं वहशत ही सही।
मेरी वहशत तेरी शुहरत ही सही॥
क़ता कीजे न तआल्लुक़ हमसे।
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही॥
हम कोई तर्के वफ़ा करते हैं।
न सही इश्क़ मुसीबत ही सही॥
यार से छेड़ चली जाये "असद"।
गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही॥

नक़श को उसके मुसव्वर पर भी क्या क्या नाज़ हैं।
खींचता है जिस क़द्र उतना ही खिँचता जाय है॥

उग रहा है दरो दीवार से सब्ज़ा "ग़ालिब"।
हम बयाबाँ में हैं और घर में बहार आई है॥

सादगी पर उसके मर जाने की हसरत दिल में है।
बस नहीं चलता कि फिर ख़ंजर कफ़े क़ातिल में है॥
देखना तक़रीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा।
मैं ने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है॥
गरचे है किस किस बुराई से वले बाईं हमा।
ज़िक्र मेरा मुझसे बेहतर है कि उस महफ़िल में है॥
बस हुजूमे नाउमेदी ख़ाक में मिल जायगी।
यह जो इक लज़्ज़त हमारी सइए बे हासिल में है॥

* * *

कोई उम्माद बर नहीं आती।
कोई सूरत नज़र नहीं आती॥
मौत का एक दिन मुऐयन है।
नींद क्यों रातभर नहीं आती॥
आगे आती थी हाले दिल प हँसी।
अब किसी बात पर नहीं आती॥
है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ।
वरना क्या बात कर नहीं आती॥
हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी।
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती॥

मरते हैं आरज़ू में मरने की ।
मौत आती है पर नहीं आती ॥

❦ ❦ ❦

हरेक बात प कहते हो तुम कि "तू क्या है ?"
तुम्हीं कहो कि यह अंदाज़े गुफ़्तगू क्या है ?
जला है जिस्म जहाँ दिल भी जल गया होगा ।
कुरेदते हो जो अब राख जुस्तजू क्या है ?
रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ायल ॥
जब आँखही से न टपका तो फिर लहू क्या है ?

❦ ❦ ❦

क़हर हो या बला हो जो कुछ हो ।
काश कि तुम मेरे लिये होते ॥
मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था ।
दिल भी या रब ! कई दिये होते ॥

❦ ❦ ❦

दे मुझको शिकायत की इजाज़त कि सितमगर ।
कुछ तुझको मज़ा भी मेरे आज़ार में आवे ॥

❦ ❦ ❦

उनके देखे से जो आजाती है मुँह पर रौनक़ ।
वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है ॥

क़तरए दरिया में जो मिल जाय तो दरिया हो जाय।
काम अच्छा है वो जिसका कि मआल अच्छा है॥
हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के खुश रखने को ग़ालिब य ख़याल अच्छा है॥

❦ ❦ ❦

ग़ैर लें महफ़िल में बोसे जाम के।
हम रहें या तिश्नालब पैग़ाम के॥
ख़त लिखेंगे गरचः मतलब कुछ न हो।
हम तो आशिक़ हैं तुम्हारे नाम के।
इश्क़ ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे काम के॥

❦ ❦ ❦

है वस्ल हिज्र आलमे तमकीं व ज़ब्त में।
माशूक़ शोख़ व आशिक़े दीवाना चाहिये॥

❦ ❦ ❦

चाहिये अच्छों को जितना चाहिये।
यह अगर चाहें तो फिर क्या चाहिये॥
चाक मत कर जेब बे ऐयाम गुल।
कुछ उधर का भी इशारा चाहिये॥
दोस्ती का परदा है बेगानगी॥
मुँह छिपाना हमसे छोड़ा चाहिये॥

मुनहसर मरने प जिसकी हो उमीद।
नाउमेदी उसकी देखा चाहिये॥

❧ ❧ ❧

नुक़्तःचीं है ग़मे दिल उसको सुनाये न बने।
क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने॥
मैं बुलाता तो हूँ उसको मगर ऐ जज़्बये दिल।
उस प बन जाय कुछ ऐसी कि बिन आये न बने॥
इस नज़ाकत का बुरा हो वो भले हैं तो क्या?
हाथ आयें तो उन्हें हाथ लगाये न बने॥
कह सके कौन कि यह जलवागरी किसकी है।
परदा छोड़ा है वह उसने कि उठाये न बने॥
इश्क़ पर ज़ोर नहीं है य वो आतिश ग़ालिब।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने॥

❧ ❧ ❧

वादा आने का वफ़ा कीजै, य क्या अंदाज़ है।
तुमने क्यों सौंपी है मेरे घर की दरबानी मुझे।

❧ ❧ ❧

रोने से और इश्क़ में बेबाक हो गये।
धोये गये हम इतने कि बस पाक हो गये॥
कहता है कौन नालये बुलबुल को बेअसर।
परदे में गुल के लाख जिगर चाक हो गये॥

❧ ❧ ❧

बात पर वाँ ज़बान कटती है।
वह कहें और सुना करे कोई॥
बक रहा हूँ जुनूँ में क्या क्या कुछ।
कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई॥
न सुनो गर बुरा कहे कोई।
न कहो गर बुरा करे कोई॥
रोक लो गर ग़लत चले कोई।
बख़्श दो गर ख़ता करे कोई॥
कौन है जो नहीं है हाजत मन्द।
किसकी हाजत रवा करे कोई॥
जब तवक़्क़ा ही उठ गई "ग़ालिब"।
क्यों किसी का गिला करे कोई॥

* * *

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश प दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले॥
निकलना ख़ुल्द से आदम का सुनते आये हैं लेकिन।
बहुत बे आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले॥
मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़ जीने और मरने का।
उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर प दम निकले॥

* * *

ग़ालिब बुरा न मान जो वायज़ बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे॥

* * *

इस सादगी प कौन न मर जाय ऐ ख़ुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥

* * *

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ तो सहल है।
दुशवार तो यही है कि दुशवार भी नहीं॥

* * *

हमसे खुल जाओ ब व़क्ते मैपरस्ती एक दिन।
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उ़ज्रे मस्ती एक दिन॥
ग़ुर्रये औजे बिनाये आलमें इमकाँ न हो।
इस बलन्दी के नसीबों में है पस्ती एक दिन॥
क़र्ज़ की पीते थे मै लेकिन समझते थे कि हाँ।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ा मस्ती एक दिन॥
नग़महाये ग़म को भी ऐ दिल! ग़र्नामत जानिये।
बे सदा हो जायगी यह साज़े हस्ती एक दिन॥

* * *

बोसा नहीं न दीजिए दुश्नाम ही सही।
आख़िर ज़ुबाँ तो रखते हो तुम गर दहाँ नहीं॥

नुक़साँ नहीं जुनूँ में बला से हो घर ख़राब।
सौ गज़ ज़मीं के बदले बयाबाँ गिराँ नहीं॥

* * *

गदा समझ के व चुप था मेरी जो शामत आई।
उठा औं उठ के क़दम मैंने पासबाँ के लिये॥
ज़ुबाँ पै बारे ख़ुदाया य किसका नाम आया।
कि मेरे नुत्क़ ने बोसे मेरी ज़ुबाँ के लिये॥

—— :o: ——

मोमिन

मोमिन उपनाम; मोमिन खाँ नाम; पिता का नाम हकीम ग़ुलाम नबी ख़ाँ; स्थान दिल्ली; जन्म-संवत् १८५६; मृत्यु-संवत् १९०७।

इनके पूर्वज मुग़ल राज्य के अंतिम दिनों में कश्मीर से आकर दरबार के हकीमों में नियत हुये। शाहआलम के समय में नारनौल परगने में इनके पूर्वजों को जागीर मिली थी। जब अँग्रेज़ी सरकार ने झज्जर की रियासत नवाब फ़ैज़ तलब ख़ाँ को दी, तब उसी में नारनौल का इलाक़ा भी चला गया। उसके बदले इनके पितामह के उत्तराधिकारियों को १०००) मासिक पेंशन मिलने लगी। उसमें से मोमिन को भी एक

भाग मिलता था। इस आय के सिवा इनके कुटुम्ब के चार हकीमों के नाम सौ सौ रुपये मासिक पेंशन अंग्रेज़ी सरकार से मिलती थी, उसमें भी मोमिन को भाग मिलता था।

दिल्ली में चीलों के कूचे में इनके पूर्वज रहते आये थे, उसी में ये भी रहे। बचपन में इनको साधारण शिक्षा मिली थी। जब ज़रा कुछ बड़े हुये तो शाह अब्दुल क़ादिर से अरबी पढ़ने लगे। अरबी में कुछ योग्यता हो जाने के बाद अपने पिता और चचा गुलाम हैदर ख़ाँ और ग़ुलाम हसन ख़ाँ से वैद्यक की पुस्तकें पढ़ने लगे, फिर उन्हीं के दवाख़ाने में नुस्ख़े लिखने लगे।

बहुत दिनों तक इनकी तबीअत एक ही विषय पर नहीं जमी। वैद्यक से उकता कर शायरी और ज्योतिष की ओर झुके। ज्योतिष में इन्होंने इतनी योग्यता प्राप्त की कि इनके उत्तरों को सुनकर बड़े बड़े ज्योतिषी दाँतों तले उँगली दबाते थे। ये शतरंज खेलने के भी बड़े शौक़ीन थे। दिल्ली में दो एक को छोड़कर ये सब से अच्छा शतरंज खेलना जानते थे।

शायरी का शौक़ सब से अधिक था। आशिक़ मिज़ाज भी थे, इससे शायरी और भी चमक उठी। पहले ये शाह नसीर को अपना कलाम दिखाते रहे। पर थोड़े दिनों के बाद उनसे भी इसलाह लेनी बंद कर दी और फिर किसी को उस्ताद नहीं बनाया।

ये बड़े शौक़ीन और रंगीन तबीअत के आदमी थे। सिर पर घूँघरवाले बाल थे, जिन में उँगलियों से प्रायः हर वक्त कंघी करते रहते थे। मलमल का ढीला-ढाला अँगरखा पहनते थे।

मोमिन के पढ़ने का ढंग बड़ाही करुणोत्पादक था। जब ये ग़ज़ल पढ़ते थे तो मशायरे में बड़ा ही मर्म-वेधक सन्नाटा छा जाता था।

मोमिन ने किसी राजा-रईस की प्रशंसा में कभी एक भी पद्य नहीं कहा। हाँ, पटियाले के रईस राजा कर्म सिंह के भाई राजा अजीत सिंह की प्रशंसा में एक क़सीदा कहा था। राजा अज़ीत सिंह दिल्ली में रहते थे। एक दिन मोमिन उनकी ओर जा निकले। मुसाहिबों से नाम सुनकर राजा साहब ने इन्हें बुलाया और बहुत सत्कार किया। बातचीत के बाद राजा साहब ने एक सजी सजाई हथिनी पुरस्कार में दी। मोमिन ने कहा—मैं ग़रीब आदमी हूँ, इसे खिलाऊँगा क्या? राजा साहब ने सौ रुपये और दिलाये। मोमिन हथिनी पर सवार होकर घर आये। पर सौ रुपये ख़र्च होने के पहले ही हथिनी बेंच बाँच कर निश्चिंत हो गये।

कपूरथला-नरेश ने साढ़े तीन सौ रुपये मासिक पर इन्हें बुलाया और १०००) राहख़र्च के लिये भी भेजा। पर जब इन्हें

मालूम हुआ कि यही वेतन वहाँ एक गवैये का भी है, तब ये स्वाभिमान-वश वहाँ नहीं गये।

मोमिन चार पाँच वार दिल्ली से वाहर गये। पहली बार रामपुर गये। दूसरी वार सहसवान गये। कई वार जहाँगीराबाद गये। और एक वार सहारनपुर गये। बाक़ी सारा जीवन इन्हों ने दिल्ली में ही विताया। कोठे से गिर कर पाँच महीने के पश्चात् ये क़ब्रवासी हुये।

इनका दीवान मिलता है। उस में ग़ज़लों, क़सीदों, मसनवियों और पहेलियों आदि का अच्छा संग्रह है।

इनकी कविता के नमूने देखिये—

अगर ग़फ़लत से वाज़ आया जफ़ा की।
तलाफ़ी की भी ज़ालिम ने तो क्या की॥
मुझे उम्मेद थी मेह्रो वफ़ा की।
वले ज़ालिम ने जब देखो दग़ा की॥
अभी इस राह से कोई गया है।
कहे देती है शोख़ी नक्शे पा की॥
सबा ने उस के कूचे से उड़ाकर।
ख़ुदा जाने हमारी ख़ाक क्या की॥
न कुछ तेज़ी चली बादे सबा की।
बिगड़ने पर भी ज़ुल्फ़ उस की बना की॥

विसाले यार से दूना हुआ इश्क़ ।
मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की ॥
मरीज़े इश्क़ यह अच्छा न होगा ।
तबीबों ने बहुत इसकी दवा की ॥
मरज़ अपना नहीं अच्छा हुआ कुछ ।
तमामी उम्र ईसा ने दवा की ॥
तबीबो क्या दवा करते हो मेरी ।
है दीदारे सनम सूरत शिफ़ा की ॥
हुआ मैं दर्दे उल्फ़त से न अच्छा ।
तबीबों ने बहुत मेरी दवा की ॥
लगी ठोकर जो पाए दिलरुबा की ।
महीनों तक मेरी तुरबत हिला की ॥
न आया चैन यक दम वस्ल में भी ।
घटा की रात और हसरत बढ़ा की ॥
हमारे आइने दिल को न छेड़ो ।
क़सम तुमको बुतो अपने खुदा की ॥
नहाने में जो अब्रे .ज़ुल्फ़ टपका ।
उलझ कर कान से बिजली गिरा की ॥
हवा से .ज़ुल्फ़ आरिज़ पर हिला की ।
कि बदली चाँद के सिदक़े हुआ की ॥

सुँघाती है हमें बू गुल की लाकर।
करूँ मिन्नत न क्यों बादेसबा की॥
तपे उल्फ़त उदू क्या क्या जला है।
हक़ीक़त खुल गई रोज़े जज़ा की॥
मेरा दिल ले लिया बातों हि बातों।
चला बोलो न बस तुम ने दग़ा की॥
मिले बोसे रक़ीबों को हज़ारों।
भला हमने तुम्हारी क्या ख़ता की॥
न आओगे जनाज़े पर अगर तुम।
रहेगी रूह मेरी तुमसे शाकी॥
अदम है या कि यह कूए सनम है।
चली आती है याँ ख़िलक़त ख़ुदा की॥
सबा जल्दी ख़बर दे जा के उनको।
कि हालत देखलें मेरे निज़अ़ की॥
किसी ने गर कहा मरता है 'मोमिन'।
कहा मैं क्या करूँ मरज़ी ख़ुदा की॥

वो जो हमसे तुम से क़रार था तुम्हें याद हो कि न याद हो।
वोही याने वादः निबाह का तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
वो जो ज़ुल्फ़ थे मुँह प पेशतर वो करम कि था मेरे हाल पर।
वो हरेक बातों में रूठना तुम्हें याद हो कि न याद हो॥

वो नये गिले व शिकायतें वो मज़े मज़े की हिकायतें।
मुझे सब हैं याद ज़रा ज़रा तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
कभी हम से तुम से भी राह थी कभी हम से तुम से भी चाह थी।
कभी हम भी तुम भी थे आशना तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
वो बिगड़ना वस्ल की रात का वो न मानना किसी बात का।
वो नहीं नहीं की जो थी सदा तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
जिसे आप कहते थे बेवफ़ा उसे आप कहते हैं आशना।
मैं वही हूँ मोमिने मुबतिला तुम्हें याद हो कि न याद हो॥

* * *

नावक अन्दाज़ जिधर दीदए जानाँ होंगे।
नीम बिसमिल कई होंगे कई बे जाँ होंगे॥
तावे नज़्ज़ारः नहीं आईना क्या देखने दूँ।
और बन जायँगे तसवीर जो हैराँ होंगे॥
तू कहाँ जायगी कुछ अपना ठिकाना करले।
हम तो कल ख़्वाबे अदम में शबे हिजराँ होंगे॥
एक हम हैं कि हुये ऐसे पशेमान कि बस।
एक वह हैं कि जिन्हें चाह के अरमाँ होंगे॥
दाग़े दिल निकलेंगे तुरबत से मेरी जूँ लाला।
यह वो अख़गर नहीं जो ख़ाक में पिनहाँ होंगे॥

उम्र सारी तो कटी इश्के बुताँ में 'मोमिन'।
आख़िरी वक्त में क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे॥

* * *

ख़ुशी न हो मुझे क्योंकर क़ज़ा के आने की।
ख़बर है लाश प उस बेवफ़ा के आने की॥
जो बे हिजाब न होगी तो जान जायेगी।
कि राह देखी है उसने हया के आने की॥
करूँ मैं वाद़ा ख़िलाफ़ी का शिकवा किस किस से।
अजल भी रह गई ज़ालिम सुना के आने की॥
मुझे य डर है कि 'मोमिन' कहीं न कहता हो।
मेरी तसल्ली को रोज़े जज़ा के आने की॥

* * *

आग अश्के गरम की लगी जी क्या ही जल गया।
आँसू जो उसने पोंछे शब और हाथ फल गया॥
फोड़ा था दिल न था य मूए पुर ख़लल गया।
जब ठेस साँस की लगी द़म ही निकल गया॥
की मुझको हाथ मलने की तालीम वरनः क्यों।
ग़ैरों को आके बज़्म में वह इत्र मल गया॥
उस कूचे की हवा थी कि मेरी ही आह थी।
कोई तो दिल की आग प पंखा सा झल गया॥

बुतख़ाने से न काबे को तकलीफ़ दे मुझे।
'मोमिन' बस अब मुआफ़ कि याँ जी बहल गया॥

बीमारे अजल चारा को गर हज़रते ईसा।
अच्छा न करेंगे तो कुछ अच्छा न करेंगे॥

जायँ वहशत में सूए सहरा क्यों?
कम नहीं अपने घर की वीरानी॥
मैं वह सरमायए बलाग़त हूँ।
जिसके दर का गदा है ख़ाक़ानी॥

उलझा है पाँव यार का ज़ुल्फ़े दराज़ में।
लो आप अपने दाम में सैयाद आ गया॥

देखो मत देखियो कि आईना।
ग़श तुम्हें देखकर न हो जाये॥

है अहदे शबाब ज़िन्दगानी का मज़ा।
पीरी में कहाँ वो नौजवानी का मज़ा॥
अब यह भी कोई दिन में फ़िसाना होगा।
बातों में जो बाक़ी है कहानी का मज़ा॥

'मोमिन' य असर सियाह मस्ती का न हो।
अंदेशा कभी वलन्द व पस्ती का न हो॥
तौहीदे वजूदी में जो है कैफ़ीयत।
डरता हूँ कि हीला ख़ुद परस्ती का न हो॥

———:०:———

अनीस

अनीस उपनाम; मीर ववर अली नाम; पिता का नाम मुस्तहसन ख़लीक़; दादा का नाम सुप्रसिद्ध मीरहसन; परदादा का नाम मीर ज़ाहक; स्थान लखनऊ; जन्म-संवत् १८५८; मृत्यु-संवत् १९३०

अनीस के परदादा मीरज़ाहक दिल्ली से चले आये थे और फ़ैज़ाबाद में बस गये थे। अनीस ने लखनऊ में तालीम पाई। प्रारंभिक शिक्षा इनको मौलवी हैदरअली से मिली। कविता तो इनकी पैतृक सम्पत्ति थी। इनमें कविता बीज-रूप से मौजूद थी। थोड़ीसी अनुकूलता मिलते ही वह अंकुरित और पल्लवित हो गई। पहले इनके पिता इनको कविता करने से रोकते थे, पर जब उन्होंने देखा कि यह आग रोकने से न रुकेगी तो उन्होंने केवल उसका रुख़ मोड़ दिया। उन्होंने एक दिन कहा—बेटा! आशिक़ाना ग़ज़लों को तो सलाम करो और अपनी

प्रतिभा को उस मार्ग में ले जाओ, जिसमें दीन दुनिया दोनों हासिल हो। उस दिन से अनीस ने अपनी प्रतिभा की बाग मोड़ दी। ये मरसिया लिखने लगे। जब तक इनके पिता जीवित रहे, ये अपनी रचना उन्हें दिखला लिया करते थे। उनके मर जाने पर ये स्वयं अपनी इसलाह कर लेने लगे। मरसिया कहने में इन्होंने इतना महत्व प्राप्त किया, कि लखनऊ के अमीर ग़रीब सब इनके क़ाबू में आ गये। उनसे केवल वाह वाह ही नहीं, बल्कि इनाम अकराम भी ख़ूब मिलने लगे। इनके मुक़ाबिले के लिये मिर्ज़ा दबीर ने क़दम बढ़ाया। लखनऊ के चतुर रसिकों ने दोनों उस्तादों को भिड़ा दिया। बस, फिर क्या था? दोनों ने अपनी अपनी प्रतिभा के वह चमत्कार दिखाये कि मुसलमानों के मनोराज्य पर दोनों का अधिकार हो गया। अपने शब्दों के जोड़ बंद से दोनों ऐसा जादू बाँध देते थे कि चाहें तो रुला दें, चाहें हँसा दें और चाहें तो श्रोताओं को आश्चर्य की प्रतिमा बना दें।

अनीस ने कमसे कम दस हज़ार मरसिये कहे होंगे। रुबाइयों और सलामों की तो गिनती ही नहीं। जब तक लखनऊ में सल्तनत क़ायम रही, ये कहीं न गये। पूछने पर कहते थे कि मेरे कलाम को लखनऊ वाले ही समझ सकते हैं। पर सं० १९१६ में लखनऊ की तबाही के बाद अनीस को लखनऊ

छोड़ना ही पड़ा। ये अज़ीमाबाद गये। वहाँ से सं० १९२८ में हैदराबाद गये। वहाँ इनकी बड़ी क़द्र हुई। इनका रूप रंग भी प्रभावशाली था और पढ़ने का ढंग तो बड़ा ही आकर्षक था। इनका और इनके भाइयों—मीर उन्स और मीर मूनिस का क़ायदा था कि एक बड़े आईने को सामने रखकर ये बैठ जाते थे और मरसिया पढ़ने का अभ्यास करते थे। अंगों की गति और मुँह के चढ़ाव-उतार को देखते थे। कविता के प्रत्येक रस को वर्णन के अनुसार अपने मुख पर झलकाने का प्रयत्न करते थे। हैदराबाद में इनका मरसिया सुनने को इतनी भीड़ आती थी कि बैठने को जगह न मिलती थी और आने वालों को रोकने के लिये पहरे खड़े करने पड़ते थे। हैदराबाद से लौटते समय ये इलाहाबाद में भी ठहरे थे। यहाँ भी इनका मरसिया सुना गया और सुना जाता है कि बड़ी भीड़ हुई थी।

अनीस चरित्रवान् और संतोषी व्यक्ति थे। बहुत कम बोलते थे, और जब बोलते तो ऐसे मोहक और तुले हुये शब्द बोलते थे, मानों मुँह से फूल झड़ रहे हैं।

मौलाना शिवली ने मानी नेअनीस और दबीर पर एक पुस्तक लिखी है। उस में वे अनीस के विषय में यह लिखते हैं:-

"मीर अनीस का कलाम शायरी के तमाम असनाफ़ का बेहतर से बेहतर नमूना है।"

"मीर अनीस के कमाल शायरी का बड़ा जौहर यह है कि बावजूद इसके कि उन्होंने उरदू शुअरा में से सब से ज़ियादा अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किये और सैकड़ों मुख़्तलिफ़ वाक़यात बयान करने की वजह से हर क़िस्म और हर दरजे के अल्फ़ाज़ उनको इस्तेमाल करने पड़े, ताहम उनके तमाम कलाम में ग़ैर फ़सीह अल्फ़ाज़ निहायत कम पाये जाते हैं।"

"मीर अनीस के कलाम में निहायत कसरत से रोज़मर्रा और महावरा का इस्तेमाल पाया जाता है। और उस पर उनको नाज़ भी था।"

सचमुच उर्दू-कविता में मीर अनीस के मरसिये एक ख़ास स्थान रखते हैं, और उनमें कवि-प्रतिभा की किरनें सब ओर छिटकी हुई दिखाई पड़ती हैं।

हिन्दी में भी अनीस के नाम से एक घनाक्षरी छंद बहुत प्रचलित है। पता नहीं, वह भी इन्हीं अनीस का है,। या किसी दूसरे का। अच्छा होता कि वह इन्हीं का होता। वह छंद यह है—

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहैं,
राखिहौ हमैं तो सोभा रावरी बढ़ावैंगे।
तजिहौ हरषि कै तो विलग न मानैं कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनों जस गावैंगे।

सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे फेरि,
सुकवि 'अनीस' हाथ हाथन बिकावैंगे।
देस मैं रहैंगे, परदेस मैं रहैंगे काहू
भेस मैं रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे।

अनीस यद्यपि आजीवन लखनऊ में रहे, पर अपनी बोल-चाल दिल्ली की ही रखते थे। इसका इन्हें गर्व भी था। मौक़ा पड़ने पर ये कहा करते थे कि—साहबो! यह लखनऊ वालों की बोलचाल नहीं है, यह मेरे घर की ज़बान है। ये 'जगह' को दिल्लीवालों की तरह 'जागह' बोलते थे और कभी कभी 'दिखाई' का 'दिखाइयाँ' और 'बचाई' को 'बचाइयाँ' लिख भी जाते थे।

अनीस ने बालक, स्त्री, पुरुष, योद्धा, कायर, प्रेमी तथा सेवक आदि सब प्रकार के मनुष्यों के मनोभावों के व्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया है। कहीं कहीं प्रकृति का वर्णन तो बहुत ही उत्तम किया है।

यहाँ हम अनीस की कविता से कुछ चुने हुये छंद उद्धृत करते हैं—

क़रीबे क़ब्र हम आये कहाँ कहाँ फिर कर।
तमाम उम्र हुई जब तो अपना घर देखा॥

नमूदो वूद आक़िल हुवाव समझे हैं।
वो जागते हैं जो दुनिया को ख़्वाव समझे हैं॥

* * *

दर प शाहों के नहीं जाते फ़क़ीर अल्लाह के।
सर जहाँ रखते हैं सब हम व्हाँ क़दम रखते नहीं॥
जो सख़ी हैं माले दुनिया से हैं ख़ाली उनके हाथ।
अहले दौलत जो हैं वो दस्ते करम रखते नहीं॥

* * *

हर वक़्त ज़माने का सितम सहते हैं।
हासिद जो बुरा कहते हैं चुप रहते हैं॥
जो नेक हैं वो वदों को भी कहते हैं नेक।
जो वद हैं वो नेकों को बुरा कहते हैं॥

* * *

क्या हाथ था क्या तेग़ था क्या हिम्मते आली।
दम भर में नमूदार सफ़ें होती थीं ख़ाली॥
जव झूम के ढालों की घटा आती थी काली।
विजली सी चमक जाती थी शमशीर हिलाली॥
मिलता था निशाँ रन में सफों का न परों का।
था शोर कि मेंह आज वरसता है सरों का॥
कट कट के हरेक ज़र्व में सर गिरते थे सर पर।
वर्छों प न फल था न कोई फूल सिपर पर॥

फिर जाती थी गर्दन प कभी गाह जिगर पर।
मरकज़ की तरह थी कभी दुश्मन की कमर पर॥
निकली जो कमर से तो चली ख़ानए ज़ीं पर।
ज़ीं से गई मरकब में तो मरकब से ज़मीं पर॥

अफ़सोस जहाँ से दोस्त क्या क्या न गये।
इस बाग़ से क्या क्या गुलेराना न गये॥
था कौनसा नख़्ल जिसने देखी न ख़िज़ाँ।
वह कौन से गुल खिले जो मुरझा न गये॥

अब गर्म ख़बर मौत के आने की है।
नादाँ तुझे फ़िक्र आबो दाने की है॥
हस्ती के लिये ज़रूर यक दिन है फ़ना।
आना तेरा दलील जाने की है।

गुनह का बोझ जो गरदन प हम उठा के चले।
.ख़ुदा के आगे ख़िजालत से सर झुका के चले॥
तलब से आर है अल्लाह के फ़क़ीरों को।
कहीं जो हो गया फेरा सदा सुना के चले॥
किसी का दिल न किया हमने पायमाल कभी।
चले जो राह तो चिउँटों को भी बचा के चले॥

मिला जिन्हें उन्हें उफ़तादगी से औज मिला।
उन्होंने खाई है ठोकर जो सर उठा के चले॥
मुक़ाम यों हुआ इस कारगाहे दुनिया में।
कि जैसे दिन को मुसाफ़िर सरायें आ के चले॥
'अनीस' दम का भरोसा नहीं ठहर जाओ।
चिराग़ ले के कहाँ सामने हवा के चले॥

दिल से ताक़त बदन से कस जाता है।
आता नहीं फिर कर जो नफ़स जाता है॥
जब साल गिरह हुई तो उक़द: य खुला।
याँ और गिरह से यक बरस जाता है॥

इज़्ज़त रहे यारों आशना के आगे।
महजूब न हो शाहो गदा के आगे॥
यह पाँव चले तो राहे मौला में चलें।
यह हाथ उठे जब ता ख़ुदा के आगे॥

मर मर के मुसाफ़िर ने बसाया है तुझे।
रुख़ सब से फिरा के मुँह दिखाया है तुझे॥
क्यों कर न लपटके तुझसे सोऊँ ऐ क़ब्र!
मैंने भी तो जान दे के पाया है तुझे॥

जो शै है फ़ना उसे बक़ा समझा है।
जो चीज़ है कम उसे सिवा समझा है॥
है बहरे जहाँ में उम्र मानिन्दे हुबाब।
ग़ाफ़िल इस ज़िन्दगी को क्या समझा है॥

* * *

क्या क़द्र ज़मीं की आसमाँ के आगे।
झुकते है क़वी भी नातवाँ के आगे॥
नर्मी से मुतीअ संगदिल होते हैं।
दन्दाँ सफ़बस्तः हैं ज़बाँ के आगे॥

* * *

गर लाख बरस जीए तो फिर मरना है।
पैमानए उम्र एक दिन भरना है॥
हाँ तोशए आख़िरत मुहैया करले।
ग़ाफ़िल तुझे दुनिया से सफ़र करना है॥

* * *

क्या क्या दुनिया से साहबे माल गये।
दौलत न गई साथ न अतफाल गये॥
पहुँचा के लहद तलक फिर आये सब लोग।
हमराह अगर गये तो आमाल गये॥

दबीर

दबीर उपनाम; मिर्ज़ा सलामत अली नाम; पिता का नाम मिर्ज़ा ग़ुलाम हुसेन; स्थान लखनऊ; जन्म-संवत् १८५९; मृत्यु-संवत् १९३१।

दबीर के पिता मिर्ज़ा ग़ुलाम हुसेन दिल्ली से लखनऊ आये। लखनऊ में उन्हों ने शादी की और मकानात भी बनवाये जो महल्ला नख़ास में अब तक मौजूद है और वह महल्ला आजकल कूचा दबीर कहलाता है।

मिर्ज़ा ग़ुलाम हुसेन कुछ दिनों के बाद फिर दिल्ली चले गये और वे वहीं सात आठ बरस तक लगातार रहे। दबीर की दो बड़ी बहनें, उनके बड़े भाई और स्वयं दबीर भी दिल्ली ही में पैदा हुये। जब ये पाँच सात बरस के हुये तब इनके पिता फिर कुटुम्ब-सहित लखनऊ चले आये और फिर वहीं रहे।

दबीर की शिक्षा लखनऊ में ही हुई और अच्छी तरह हुई। बारह वर्ष की उम्र से ही ये पद्य-रचना करने लगे थे। पहले पहल जब ये मीर ज़मीर के पास शागिर्द होने के लिये गये तो कलाम की फ़रमायश पर इन्हों ने यह पद्य पढ़ा था—

किसी का कुन्दः नगीने प नाम होता है।
किसी की उम्र का लबरेज़ जाम होता है॥

अजब सरा है य दुनिया कि जिसमें शामो सहर।
किसी का कूच किसी का मुक़ाम होता है !!

इस पद्य को सुनते ही उस्ताद फड़क उठे। उन्हों ने कहा—मैं तुमको ज़रूर बताऊँगा। उन्हीं ने ही इनका उपनाम दबीर रक्खा। इनकी प्रतिभा ऐसी चमकी कि सोलह सत्रह वर्ष की उम्र में ही ये कवि-मंडल में प्रसिद्ध हो गये। उस्ताद ज़मीर इनकी प्रतिभा के इतने क़ायल हो गये कि अन्य शागिर्दों की ग़ज़लें वे पहले इनको ही इसलाह के लिये देने लगे। इनके देख लेने के बाद वे देखते थे। दबीर की बड़ी तारीफ़ मरसिया कहने में हुई। इनको लोग प्रसिद्ध मरसिया-गो ज़मीर, ख़लीक़, फ़सीह और दिलगीर के समकक्ष मानने लगे। इनकी प्रसिद्धि यहाँ तक हुई कि बहुत से शाहज़ादे और शाहज़ादियाँ इनकी शागिर्द हो गईं। अवध के नवाब ने भी इनको अपने यहाँ बुलाया, मरसिया सुना और पुरस्कृत किया।

दबीर की चालीस वर्ष की उम्र में मीर अनीस फ़ैज़ाबाद से लखनऊ आये। अनीस भी मरसिया-गो थे। लखनऊ में एक पार्टी ऐसी भी थी जो दो गुणियों को आपस में लड़ाकर उनकी प्रतिभा का चमत्कार देखा करती थी। अनीस के आते ही वह पार्टी फिर बीच में आई और दबीर और अनीस को लड़ाकर तमाशा देखने दिखाने लगी। दो पार्टियाँ बन गईं; एक पार्टी के

लोग 'अनीसिये' और दूसरी पार्टी के लोग 'दबीरिये' कहलाने लगे। अनीस और दबीर दोनों अपने अपने फ़न में उस्ताद थे। दोनों में कौन श्रेष्ठ था, यह नहीं कहा जा सकता।

दबीर सं० १९३० में अंधे हो गये। उस समय लखनऊ के इतिहास-प्रसिद्ध नवाब वाजिद अली शाह कलकत्ते के मटिया बुर्ज मे नज़र बंद थे। आँखों का एक जर्मन डाक्टर उनका नौकर हुआ। तब उन्हों ने दबीर को याद किया और बुलाकर आँखें दुरुस्त करा दीं। इस बात से यह पता चलता है कि दबीर की पहुँच कहाँ तक थी। दबीर को यद्यपि बाहर के अमीर उमरा बुलाया करते थे, पर ये लखनऊ छोड़कर कहीं जाना पसंद न करते थे। एक बार सं० १९१६ में बहुत आग्रह करने पर ये नवाब इमाम बाँदी बेगम साहबा के बुलाने से पटना गये थे। और फिर वहाँ ये हर साल जाया करते थे।

दबीर लखनऊ में अपने मकान में ही क़ब्रवासी हुये।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

जुज़ हैफ़ क्या जहाँ से सुलेमान ले गये।
यूसुफ़ भी ज़ेरे ख़ाक सब अरमान ले गये॥
शाहाने दहर कौन सा सामान ले गये।
सब कुछ वो ले गये कि जो ईमान ले गये॥

किन क़ाफ़िलों को ख़ाक न इस राह ने किया।
किन यूसुफ़ों को ग़र्क़ न इस चाह ने किया॥

❦ ❦ ❦

अदना से जो सर झुकाये आला वह है।
जो ख़ल्क़ से बहरावर है दरिया वह है॥
क्या ख़ूब दलील है यह ख़ूबी की 'दबीर'।
समझे जो बुरा आपको अच्छा वह है॥

❦ ❦ ❦

गुलशन में सबा को जुस्तजू तेरी है।
बुलबुल की ज़बाँ प गुफ़्तगू तेरी है॥
हर रंग में जलवा है तेरी क़ुदरत का।
जिस फूल को सूँघता हूँ बू तेरी है॥

❦ ❦ ❦

दिल को मेरे शग़्ल ग़मगुसारी का है।
ग़फ़लत में तौर होशियारी का है॥
गरदूँ को है अगर सरकशी का ग़ुरूँ।
हमको भी ग़ुरूर ख़ाकसारी का है॥

❦ ❦ ❦

याँ शोर, वहाँ ग़ुल, इधर आई उधर आई।
वह चमकी, वह तड़पी, व छुपी, वह नज़र आई॥

वह तेज़ गई .खूद में वह सर में दर आई।
गर्दन से बढ़ी सीना लिया ता कमर आई॥
सिन उसका घटा था जो दिलेराना बढ़ा था।
मुँह की वही खाता था जो मुँह उसके चढ़ा था॥
चमकी जो .खूद सर प तो सर से निकल गई।
शाने प जो पड़ी तो जिगर से निकल गई॥
सीने में दम लिया तो कमर से निकल गई।
हैराँ था .खुद वदन कि किधर से निकल गई॥
ऊँची हुई तो फ़र्क़ अदू को फ़रो किया।
गिर कर उठी तो राकिबो मरकब को दो किया॥

* * *

घर कौन सा वसा कि जो वीराँ न हो गया।
गुल कौन सा हँसा कि परेशाँ न हो गया॥

* * *

चमन की बे सबाती पर जो उसका ध्यान जाता है।
तो क्या रोती है शबनम मुँह प रखके गुलके दामन को॥
मैं कुश्ता हूँ किसी गुल के मिसी आलूदः दन्दाँ का।
चढ़ाना बाग़बाँ तुरवत प मेरी वर्गे सौसन को॥
'दवीर' आयेगा कब वह भूल कर गोरे ग़रीबाँ पर।
जो अक्सर रौंदता था नाज़ से फूलों के ख़िरमन को॥

* * *

दुनिया का अजीब कारख़ाना देखा।
किस किस का न याँ हमने ज़माना देखा॥
बरसों रहा जिनके सर प छतरे ज़र्रीं।
तुरबत प न उनकी शामियाना देखा॥

* * *

नमरूद को ख़ुदाई के दावे से क्या मिला।
बन्दा जुदा हुआ जो ख़ुदी से ख़ुदा मिला॥

* * *

पहुँचा कमाल को जो वतन से निकला।
क़तरा गुहर बना जो अदन से निकला॥
तकमीले कमाल की ग़रीबी है दलील।
पुख़्ता जो समर हुआ चमन से निकला॥

—:o:—

नसीम

नसीम उपनाम; पंडित दयाशंकर कौल नाम; पिता का नाम पंडित गंगाप्रसाद कौल; स्थान लखनऊ; जन्म-संवत् १८६८; मृत्यु-संवत् १९००।

नसीम को प्रारंभ में उर्दू फ़ारसी की शिक्षा मिली थी। बड़े होने पर ये शाही फ़ौज में वकील हुये। अपनी जीविका का काम करते हुये भी साहित्य की ओर इनकी रुचि कुछ कम न थी। इन्होंने पुराने कवियों की कविताओं का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया और बीस वर्ष की उम्र में ये स्वयं भी अच्छी रचना करने लगे। कविता में ये आतिश के शागिर्द थे। पच्चीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'गुलज़ार नसीम' नाम की एक मसनवी लिखी। 'गुलज़ार नसीम' के पहले मीर हसन की मसनवी 'सहरुलबयान' ही की चर्चा चारों ओर थी। उसी से उत्साहित होकर नसीम ने अपनी मसनवी लिखी, जिसके प्रकाश में 'सहरुलबयान' के तारे फीके पड़ गये। जब नसीम 'गुलज़ार नसीम' को लेकर आतिश के पास इसलाह के लिये गये, तब उस बड़े पोथे को देखकर आतिश ने कहा—अरे भई, इतनी बड़ी मसनवी कौन पढ़ेगा? या तुम पढ़ोगे, क्योंकि तुमने लिखा है। या इसलाह के ख़्याल से मैं एक बार देख जाऊँगा। उस्ताद की बात से प्रभावित होकर नसीम ने 'गुलज़ार नसीम' को काट-छाँट कर छोटा किया। जो भाव चार पदों में वर्णित थे, उन्हें एक में कस दिया। आतिश ने अपने शागिर्द के इस प्रयत्न पर हर्ष प्रकट किया और इसलाह के लिये क़लम उठाई। पर आतिश की इसलाह नसीम को पसंद

न आई और इन्होंने जिसे जैसा लिखा था उसे वैसा ही रहने दिया। अनुदार हृदय के मुसलमान साहित्यिक 'गुलज़ार नसीम' को आतिश की रचना प्रमाणित करने का जी-जान से प्रयत्न करते हैं! क्योंकि एक हिन्दू की क़लम से उर्दू में ऐसी अद्वितीय मसनवी लिखी जाने पर उन्हें कुछ लज्जा बोध होती है। पर 'गुलज़ार नसीम' की कविता स्वयं इस बात का प्रमाण है कि वह आतिश की नहीं। क्योंकि आतिश की वर्णन-शैली ही जुदा है। नसीम की अन्य ग़ज़लों की वर्णन-शैली और महावरों का प्रयोग 'गुलज़ार नसीम' से मिलता-जुलता है। अतएव 'गुलज़ार नसीम' को नसीम की रचना न मानकर आतिश की रचना बतलाना सीनाज़ोरी के सिवा और कुछ नहीं। 'गुलज़ार नसीम' उर्दू-कविता का मुकुट है। और एक हिन्दू के लिये यह गर्व की बात है कि दूसरे के मैदान में जाकर भी उसने अपना सिर ऊँचा रक्खा और वह सर्वोपरि होकर रहा।

आतिश के देख चुकने के बाद 'गुलज़ार नसीम' एक बड़े मशायरे में, जिसमें लखनऊ के प्रायः सब प्रसिद्ध प्रसिद्ध साहित्यिक उपस्थित थे, पढ़ा गया। सब ने मुक्तकंठ से उसकी तारीफ़ की। उसका पहला संस्करण छपते ही हाथों-हाथ बिक गया। कविता के मर्मज्ञ लोगों ने नसीम को मीर हसन के समकक्ष माना और समय ने फ़ैसला कर दिया कि नसीम की मसनवी मीर हसन की मसनवी से कहीं बढ़कर है।

नसीम ने अपने जीवन-काल में ही अपनी प्रसिद्धि का सुखानुभव कर लिया था। पर शोक की बात है कि 'गुलज़ार नसीम' के छपने के एक वर्ष बाद ही हैज़े की बीमारी से नसीम प्रातःकालीन वायु की तरह एक सुरभित झोंका देकर न जाने किधर चले गये। ३२ वर्ष की अवस्था में ही वे अमर कीर्ति छोड़कर स्वर्गवासी हुये।

नसीम बड़े प्रसन्नचित्त और हाज़िर जवाब थे। एक बार एक मशायरे में लखनऊ के सब प्रसिद्ध प्रसिद्ध शायर उपस्थित थे। ये भी थे। मशायरा शुरू होने में ज़रा सी देर थी। शेख़ नासिख़ ने नसीम की ओर आकर्षित होकर कहा—

पंडित जी, देखिये एक मिसरा कहा है। दूसरा मिसरा नहीं सूझता।

"शेख़ ने मसजिद बना मिसमार बुतख़ाना किया"

नासिख़ के मुँह से यह मिसरा निकलना था कि नसीम ने तत्काल दूसरा मिसरा कह दिया—

"तब तो यक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया"

यह सुनना था कि सारी मज़लिस चहचहा उठी। लोग फड़क उठे। वाह वाह की झड़ी लग गई। नासिख़ ने कविता की आड़ में मज़हबी चोट की थी। लेकिन नसीम ने उन्हें वहीं ठंडा कर दिया।

एक दिन आतिश के यहाँ शागिर्दों का जमाव था। रिन्द, सबा, ख़लील आदि बैठे हुये थे। नसीम भी थे। सवेरे का सुहावना समय था। बरसात का मौसम था। पानी बरस रहा था। तबीअतें उमड़ी आती थीं। शागिर्दों ने आतिश से निवेदन किया कि, उस्ताद! इस समय एक ग़ज़ल कह डालिये। आतिश ने कहा—अच्छा, मैं बोलता जाता हूँ, लिखते जाओ। आतिश ने एक ग़ज़ल लिखाई, जिसका मतला यह है—

दहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे।
कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे कैसे॥

नसीम की तबीअत उमंग पर थी। इन्होंने उन शेरों को पँचपदा बनाना प्रारंभ कर दिया। जितनी देर में आतिश एक शेर सोचते थे, उतनी देर में नसीम उनके पहले शेर पर तीन मिसरे लगा चुकते थे। कोई कोई मिसरे तो ऐसे अनूठे बन गये हैं कि कोई बरसों सोचता तो शायद वैसा कह पाता। नमूने के लिये दो पँचपदे यहाँ दिये जाते हैं—

(१)

न ख़ूनी कफ़न हैं न घायल हुये हैं।
न ज़ख़्मी बदन हैं न बिसमिल हुये हैं॥
लहू मल के कुश्तों में दाख़िल हुये हैं।
तुम्हारे शहीदों में शामिल हुये हैं॥

गुलो लाला औ अरग़वाँ कैसे कैसे ?

(२)

कोई जानता है किसी को ख़बर है।
कि परदे में कौन ऐ सनम ! जलवागर है॥
कहीं कुछ ख़याल औ कहीं कुछ नज़र है।
दिलो दीदए अहले आलम में घर है॥
तुम्हारे लिये हैं मकाँ कैसे कैसे ?

इनमें पहले के चार चरण तो हैं नसीम के और पाँचवां आतिश का। आतिश की यह ग़ज़ल १४,१५ शेरों की है। नसीम ने सब पर मिसरे लगा दिये। आतिश के शागिर्दों में सबा और नसीम में बड़ी मित्रता थी। सबा भी उच्चकोटि के उर्दू-कवियों में से हैं। नसीम के मरने पर दुःखी होकर सबा ने एक शेर कहा है—

उठ गये हैं नसीम जिस दिन से।
ऐ सबा ! वह हवाए बाग़ नहीं॥

पर रिन्द से नसीम की नहीं पटती थी। एक दिन नसीम ने एक मशायरे में रिन्द की एक मशहूर ग़ज़ल पर पँचपदे जोड़कर पढ़े। रिन्द आपे से बाहर हो गये और नसीम को मारने के लिये उन्होंने तलवार खींच ली। नसीम भी जवाँमर्द थे। इन्होंने उठकर कहा—तलवार पर मत भूलियेगा। ऐसी तलवारें यहाँ थप्पड़ मारकर छीन ली जाती हैं। ख़ैर; समझदार

लोगों ने उठ कर बीच बिचाव कर दिया। इसी तरह के दो एक और विवादों से रिन्द की तबीअत इनसे बिगड़ती ही गई।

नसीम बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। इन्होंने कभी धन-दौलत का वृद्धि के लिये मुहताजी न ज़ाहिर की। यद्यपि ये चाहते तो शाही दरबार में इनका प्रवेश आसानी से हो जाता, जहाँ इनको काफ़ी क़द्र होती और मनसब और जागीर भी मिलती। बड़े बड़े ओहदेदार इन पर कृपा-दृष्टि रखते थे। पर इन्हों ने कविता को कभी अपनी जीविका नहीं बनाई।

एक बार अमजद अली शाह के सामने एक वेश्या ने नसीम की वह प्रसिद्ध ग़ज़ल गाई, जिसका मतला यह है—

जब न जीते जी मेरे काम आयगी।
क्या य दुनिया आक़बत बख़्शायगी॥

जब उसने उसका मक्ता गाया—

जाँ निकल जायेगी तन से पै "मसीम"।
गुल को बूए गुल हवा बतलायगी॥

तो कविता के मर्मज्ञ शाह ने पूछा—क्या यह ग़ज़ल उसी नसीम की है, जो 'गुलज़ार नसीम' का रचयिता है ? वेश्या ने कहा—हाँ। इतना सुनना था कि शाह ने हुक्म दिया—उस सख़ुनवर बाकमाल को दरबारे शाही में हाज़िर करो। लोगों ने कहा— वह तो मर गये। शाह पछताने लगे।

नसीम ने मरने के दो तीन घंटे पहले यह शेर कहा था—

पहुँची न राहत हमसे किसी को वल्कि अज़ीयत कोश हुये।
जान पड़ी तव वारे शिकम थे मर के ववाले दोश हुये॥

नसीम बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। इनके समय में लखनऊ मुसलमानी सभ्यता और साहित्य का केन्द्र हो रहा था। यद्यपि उर्दू-कविता के पतन का समय था। पर बुझने वाले दीपक की तरह वह अंतिम वार ज़ोर से वल रही थी। नासिख़ और आतिश का जादू चल रहा था। अनीस और दवीर के मरसिये अलग अपना रंग जमा रहे थे। वज़ीर, सवा, रिन्द, और ख़लील आदि नौजवान शायरों की शोख़ तबीअतें अलग क़यामत बरपा कर रही थीं। भला ऐसे समय में एक हिन्दू कवि का कवियों की प्रथम श्रेणी में जाकर बैठना कोई सहज काम था! पर यह नसीम का ही काम था कि इन्होंने अपनी प्रतिभा से सब को मुग्ध कर लिया और ऐसे ऐसे साहित्यिक चमत्कार दिखलाये कि इनकी धाक जम गई।

अव आइये, 'गुलज़ार नसीम' की भी ज़रासी सैर करते चलें। 'गुलज़ार नसीम' में गुल वकावली का क़िस्सा लिखा गया है। इसके प्रारम्भ के चार शेर ये हैं—

हर शाख़ में है शिगूफ़ा कारी।
समरा है क़लम का हम्दे वारी॥

करता है य दो ज़बाँ से यकसर।
हम्दे हक़ व मदहते पयम्बर॥
पाँच उँगलियों में य हर्फ़ ज़न है।
यानी कि मुतीय पंजतन है॥
ख़त्म इस प हुई सुख़नपरस्ती।
करता है ज़बाँ की पेश दस्ती॥

सारा क़िस्सा इस एकहो छंद में लिखा गया है। कवि ने जिस जिस दृश्य पर क़लम चलाई है, उसे सजीव कर दिया है। मनोभावों का वर्णन, महावरों का सुन्दर प्रयोग, प्रकृति-वर्णन एक से एक मनोहर हैं। बस,

"काग़ज़ प रख दिया है कलेजा निकाल कर"

फूल के ग़ायब हो जाने पर बकावली की बेचैनी का वर्णन नसीम इस प्रकार करते हैं—

देखा तो वह गुल हवा हुआ है।
कुछ और ही गुल खिला हुआ है॥
घबराई कि हैं! किधर गया गुल।
झुँझलाई कि कौन दे गया जुल॥
है! है!! मेरा फूल ले गया कौन?
है! है!! मुझे ख़ार दे गया कौन॥

हाथ उस प अगर पड़ा नहीं है।
तू होके तो गुल उड़ा नहीं है॥
नरगिस तू दिखा किधर गया गुल।
सौसन तू बता किधर गया गुल॥
सम्बुल मेरा ताज़ियाना लाना।
शमशाद उन्हें सूली पर चढ़ाना॥
थर्राई ख़वासें सूरते बेद।
एक एक से पूछने लगी भेद॥

मीरहसन की मसनवी में एक एक विषय का वर्णन आव-श्यकता से अधिक लम्बा कर दिया गया है। पर नसीम के 'गुल-ज़ार नसीम' में थोड़े शब्दों में बहुत अधिक भाव भर दिये गये हैं। देखिये—

ऐ आइनादारे ख़ुदनुमाई।
दे सुरमए चश्म आशनाई॥

* * *

यक शब थी कि ख़ाल रूए शामत।
या मरदुमे दीदए क़यामत॥

* * *

इंसाँ से झुकी परी की गरदन।
काँटे से रुका हवा का दामन॥

* * *

आने लगे बैठे बैठे चक्कर।
फ़ानूसे ख़याल बन गया घर॥

❦ ❦ ❦

महरम जो हटी थी उस क़मर की।
कुरज़ों प से चाँदनी थी सरकी॥

❦ ❦ ❦

क्या लुत्फ़ जो ग़ैर परदा खोले।
जादू वह जो सर प चढ़के बोले॥

❦ ❦ ❦

ग़म राह नहीं कि साथ दीजै।
दुख बोझ नहीं कि बाँट लीजै॥

❦ ❦ ❦

पानी तहे ख़ाक गो रवाँ है।
लौ शोले की सूए आसमाँ है॥

❦ ❦ ❦

इंसाँ व परी का सामना क्या?
मुट्ठी में हवा का थामना क्या?

❦ ❦ ❦

आता हो तो हाथ से न दीजै।
जाता हो तो उसका ग़म न कीजै॥

❦ ❦ ❦

दरवेश रवाँ रहे तो बेहतर।
आबे दरिया बहे तो बेहतर॥

❦ ❦ ❦

क्यों मुँह प शफ़क़ .खुशी से फूली।
क्या शामे विसाल राह भूली॥

❦ ❦ ❦

क्या रंग ज़माने ने दिखाये।
गुल लेने गये थे दाग़ लाये॥

❦ ❦ ❦

रातों को जो गिनती थी सितारे।
दिन गिनने लगी .खुशी के मारे॥

❦ ❦ ❦

करती थी जो भूक प्यास बस में।
आँसू पीती थी खाके क़समें॥
जामा से जो ज़िन्दगी के थी तंग।
कपड़ों के यवज़ बदलती थी रंग॥
सूरत में ख़याल रह गई वह।
हैयत में मिसाल रह गई वह॥

मौलाना हाली ने 'गुलज़ार नसीम' की कविता पर कुछ एतराज़ात भी किये हैं, पर वह माक़ूल नहीं जान पड़ते।

अत्युक्तियों से भी कविता में रस उत्पन्न होता है। मौलाना हाली को अत्युक्तियों के लिये कुछ छूट देनी चाहिये थी।

हिन्दी-कवियों से हमारा अनुरोध है कि वे एक बार 'गुलज़ार नसीम' को अवश्य पढ़ें।

नसीम का एक छोटा सा दीवान भी मिलता है। जिसमें थोड़ी सी ग़ज़लें हैं। इनकी मृत्यु के बहुत दिन बाद ये ग़ज़लें संग्रह की गई थीं। कुछ लोगों का कहना है कि उनमें कुछ अन्य कवियों की ग़ज़लें भी शामिल हो गई हैं।

यहाँ नसीम के कुछ शेर दिये जाते हैं—

रूहे रवाँ व जिस्म की सूरत मैं क्या कहूँ।
झोंका हवा का था इधर आया उधर गया॥
समझा है हक़ को अपनी ही जानिब हरेक शख़्स।
यह चाँद उसके साथ चला जो जिधर गया॥
तूफ़ाने नूह इसमें हो या शोरे हश्र हो।
होना जो कुछ है होगा जो गुज़रा गुज़र गया॥
गुज़रा जहाँ से मैं तो कहा सुनके यार ने।
क़िस्सा गया फ़साद गया दर्दे सर गया॥
काग़ज़ सियाह करते हो किसके लिये 'नसीम'।
आया जवाब ख़त तुम्हें औ नामावर गया॥

इश्क़ में दिल बन के दीवाना चला।
आशना से हो के बेगाना चला॥
बे ज़बानों को भी आई है ज़बान।
बेड़ी ,गुल करती है दीवाना चला॥
इश्क़बाज़ी बाज़िए शतरंज है।
चाल नादाँ रह गया दाना चला॥
शब जो आया बज़्म में वह शोला रू।
शमा गुल करने को परवाना चला॥
बूए गुल ,गुंचा से कहती है 'नसीम'।
बात निकली मुँह से अफ़साना चला॥

* * *

कहानी कहके सुलाते थे यार को सो अब।
फ़िसाना उम्र हुई ख़्वाब वह ख़याल हुआ॥
जुनूँ की चाकज़नी ने असर किया वाँ भी।
जो ख़त में हाल लिखा था वह ख़त का हाल हुआ॥

* * *

शरीक़ बज़्म हुये हो तो दूर कीजे हिजाब।
जो निकले नाचने फिर क्या लिहाज़ घूँघट का॥

* * *

बजुज़ गोरे ग़रीबाँ नक़्शे पा थे फिर नहीं आगे।
यहीं तक हर मुसाफ़िर ने पता पाया है मंज़िल का॥

ज़वाने मौज ने तूफ़ान जोड़ा आशनाओं पर।
हुबाबे बहर तू भी तोड़ अपना आबला दिल का॥
'नसीम' अपने ही आमालों से गर्दिश है ज़माने को।
रवाँ किश्ती प आता है नज़र हर नख़्ल साहिल का॥

❦ ❦ ❦

कूचए जानाँ को मिलती थी न राह।
बन्द को आँखें तो रस्ता खुल गया॥

❦ ❦ ❦

बुतों को जो देखा गुनह क्या हमारा।
ख़ुदाई ख़ुदा की तमाशा हमारा॥
बुतों की गली छोड़कर कौन जाये।
यहीं से है काबे को सिजदा हमारा॥

❦ ❦ ❦

य तसवीरे चेहरा उतर क्यों गया है!
खिँचे किससे हो क्या है नक़्शा तुम्हारा॥
नसीम इस चमन में गुलेतर की सूरत।
फटे कपड़े रखते हैं परदा तुम्हारा॥

❦ ❦ ❦

कल तक जो शमा महफ़िले ऐशो निशात थे।
जलता नहीं चिराग़ भी आज उनकी गोर पर॥

❦ ❦ ❦

दिल वदिल आईना है दैरो हरम।
हक़ जो पूछो एक दर है दो तरफ़॥
ख़्वाह काबा ख़्वाह बुतख़ाने को जा।
दश्ते दिलका रह गुज़र है दो तरफ़॥
कुफ़्रो ईमाँ दोनों जानिब की सुने।
इसलिये गोशे वशर है दो तरफ़॥

* * *

जब न जीते जी मेरे काम आयगी।
क्या य दुनिया आक़बत वख़्शायगी॥
जब मिले दो दिल मुख़िल फिर कौन है।
बैठ जाओ .ख़ुद हया उठ जायगी॥
जाँ निकल जायेगी तन से ऐ 'नसीम'।
गुल को बूए गुल हवा बतलायगी॥

* * *

.ख़ुम न बन कर .ख़ुद ग़रज़ हो जाइये।
मिस्ले साग़र और के काम आइये॥
सब्र रुख़सत हो तो जाने दीजिये।
बेक़रारी आये तो ठहराइये॥
दिलमें है दिखलाइये तासीरे इश्क़।
ठंढी साँसों से उन्हें गरमाइये॥

* * *

दिल से हरदम हमें आवाज़े बुका आती है।
बन्द कानों को भी गिरिया की सदा आती है॥
दिल से है आँख तक आई असर गरमीए शौक़।
अश्क हसरत से निगह आबलः पा आती है॥
गुल हुआ कोई चिराग़े सहरी औ बुलबुल।
हाथ मलती हुई पत्तों से सबा आती है॥
छू लिया धोखे से दामाने सबा तू ने तो क्या।
ग़ुंचए गुल कहीं मुट्ठी में हवा आती है॥
जिस क़द्र वस्ले बुताँ का तुम्हें रहता है फ़िराक़।
ऐ 'नसीम' उतनी कभी यादे ख़ुदा आती है॥

* * *

कान में सब के अपनी बात न डाल।
आबरू मिस्ले आबे गौहर है॥
अबतो जाते हैं उस गली में 'नसीम'।
हो रहेगा जो कुछ मुक़द्दर है॥

* * *

मैं बोसा लूँगा बहाने बताइये न मुझे।
जो दिल लिया है तो क़ीमत दिलाइये न मुझे॥
तुम्हें रक़ीब की ख़ातिर है लो मैं जाता हूँ।
उठाइये न हया को बिठाइये न मुझे॥

* * *

हम तुम हैं जो एक फिर जुदाई कैसी ?
दिल ही न मिला तो आशनाई कैसी ?
काफ़िर न घमंड रख .खुदआराई का।
सब कुछ हो जो बुत तो खु.दाई कैसी ?

* * *

अहदे पीरी में रवाना हुए यों होश हवास।
सुबह को जैसे मुसाफ़िर से हो मंज़िल ख़ाली॥

* * *

आन में फ़र्क़ न आने दीजे।
जान अगर जाय तो जाने दीजे॥

———:o:———

अमीर

अमीर उपनाम; मौलवी मुफ़्ती मुंशी अमीर अहमद 'अमीर' मीनाई नाम; पिता का नाम मौलवी करम मुहम्मद; जन्मस्थान लखनऊ; जन्म-संवत् १८८४; मृत्यु-संवत् १९५७।

इनका वंश शाह मीना से सम्बंध रखता था। इसलिये ये अमीर मीनाई के नाम से प्रसिद्ध हुये। नवाब नसीरुद्दीन हैदर के समय में ये पैदा हुये। इनकी शिक्षा सुप्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र फ़िरंगी महल लखनऊ में हुई थी। ये अरबी फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे। और शायरी तो मानो ईश्वर की दी हुई

चीज़ थी। ये सूफ़ी मज़हब के थे। बड़े सच्चरित्र, ईश्वर-भक्त साधु प्रकृति और संतोषी मनुष्य थे। वैद्यक, ज्योतिष आदि अन्य कई विषयों के भी अच्छे ज्ञाता थे। बोलने की अच्छी शक्ति रखते थे। कहा जाता है कि इन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया।

इनके कविता-गुरु मुंशी सैयद मुज़फ़्फ़र अली खाँ बहादुर 'असीर' थे। ये सं० १९०९ में वाजिदअली शाह के दरबार में पहुँचे और वाजिदअली शाह के इच्छानुसार इन्होंने दो पुस्तकें भी लिखीं, जिनके बदले में इन्हें मुँहमाँगा इनाम और ख़िलअत मिली। जबतक लखनऊ की नवाबी क़ायम रही, तब तक ये वहीं रहे। ये चार भाग्यवान् पुत्रों के पिता और सैकड़ों प्रसिद्ध शागिर्दों के उस्ताद थे।

इनके बचपन में नासिख़ और आतिश जीवित थे। युवावस्था में सबा, वज़ीर और सहर आदि की संगति का इनको सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अनीस और दबीर के मारके भी इन्होंने देखे थे। इन सबकी देखादेखी इन्हें भी शायरी का चस्का लगा और इनकी स्वाभाविक प्रतिभा जाग उठी। पर इसी बीच में सन् १८५७ का ग़दर प्रारंभ हो गया। लोग अपने अपने प्राण और धन बचाने में लगे। मशायरे बंद हो गये, और चहकने वाले बुलबुल अपने अपने घोसलों में पर समेट कर बैठ गये।

जब ग़दर समाप्त हुआ। तब फिर अमीर की तूती बोली। इनकी प्रसिद्धि सुनकर, रामपुर के नवाब मुहम्मद यूसुफ़ अली खाँ 'नाज़िम' ने इन्हें बुला भेजा। ये रामपुर पहुँचे, और वहाँ बहुत दिनों तक अदालत दीवानी के हाकिम रहे। नवाब साहब अपना उर्दू कलाम इन्हीं को दिखाया करते थे। सं० १९२० में नवाब यूसुफ़ अली खाँ मर गये, और नवाब कल्बे अली खाँ गद्दी पर बैठे। इनके समय में कविता की ख़ूब चर्चा बढ़ी। दिल्ली, लखनऊ आदि स्थानों से प्रसिद्ध प्रसिद्ध शायर वहाँ पहुँचने लगे और मशायरों की धूम मच गई। असीर, मुनीर, बहर, ज़की, दाग़, क़लक़, उरूज, जलाल, हया, जान साहब आदि सबने अपनी अपनी बोलियाँ बोलीं। पर नवाब को अमीर का ही रंग पसंद आया और उन्होंने इनको ही अपना उस्ताद चुना। इनको वहाँ सौ रुपया मासिक मिलता था। उन्हीं दिनों कभी कभी ग़ालिब भी रामपुर जाया करते थे। और ख़ूब चहल-पहल रहा करती थी।

अमीर सचमुच कवियों के अमीर थे। ये मीर की तरह ग़ज़लें, सौदा की तरह क़सीदे, अनीस और दबीर की तरह करुणरस की कविता लिखने में सिद्धहस्त थे।

नवाब कल्बे अली खाँ के मर जाने पर भी ये रामपुर में ही रोक लिये गये। वहाँ रियासत के सब लोग इनको चाहते

थे और अदब करते थे। अस्तु; ये वहीं बस गये।

बहुत दिनों से हैदराबाद जाने का इनका इरादा था। उन दिनों दाग़ हैदराबाद में थे। इनको बुलाने के लिये वहाँ से बड़ी कोशिशें चल रहीं थीं। अंतमें ये सं० १९५७ में हैदराबाद गये और दाग़ के ही मकान पर ठहरे। वहाँ पहुँचने के दो दिन भी न बीतने पाये थे कि ये बीमार हो गये। बहुत दवा दरमत करने पर भी अच्छे न हुये और एक महीने तक बीमार रहकर वहीं क़ब्रवासी हुये।

इनके शिष्यों की संख्या दो तीन सौ से कम नहीं थी। उनमें कई तो बहुत ही प्रसिद्ध हुये; जैसे—रियाज़, जलील, मुज़तर, कौसर, नवाब, सफ़दर, पंडित रतननाथ 'सरशार', हफ़ीज़, आह, जाह, अख़्तर, क़मर आदि।

अमीर की रचनायें प्रायः छप गई हैं। सुना जाता है कि इनका एक दीवान ग़दर में लापता हो गया। ग़दर के बाद दूसरा दीवान 'मरातुलग़ैब' जा पहला दीवान समझा जाता है, छपा। सं० १९३८ में दूसरा आशिक़ाना दीवान 'सनमख़ानए इश्क़,' के नाम से छपा। इनका सबसे अधिक उपादेय काम 'अमीरुल्लुग़ात' है, जिसमें उर्दू भाषा के महावरे, लखनऊ और दिल्ली की बोलचाल के फ़र्क़ आदि और भी बहुत सी काम की बातें हैं। पर खेद है कि वह पूरा छप नहीं पाया था कि

ये संसार से चल बसे।

दाग़ से इनको भिड़ा देने के लिये लोगों ने बहुत हाथ-पैर मारे; पर ये ऐसे न्यायप्रिय थे कि सदा दाग़ के अच्छे कलाम की तारीफ़ करते रहे। वैसेही दाग़ भी इनको दिल से चाहते थे। ये और दाग़ दोनों अपने समय के उर्दू-कवियों में चन्द्र और सूर्य थे। यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

दिल मुझसे लिया है तो ज़रा बोलिये हँसिये।
चुटकी में मसलने के लिये दिल नहीं होता॥

ज़ाहिर में हम फ़रेफ़्ता हुस्ने बुताँ के हैं।
पर क्या कहें निगाह में जलवे कहाँ के हैं॥

ख़त उस आरिज़ का जब से छुप गया है मेरी नज़रों में।
निगह यों आँख में चुभती है काँटा जैसे छाले में॥

मज़े जितने थे बाग़े दहर में सब चुन लिये दिल ने।
न ऐसा ज़ख़्म है गुल में न ऐसा दाग़ लाले में॥

पाक दामन हो तो अरमाने विसाल अच्छा है।
अच्छी नीयत हो तो अच्छों का ख़याल अच्छा है॥

ऐ सबा सम्बुल ने क्यों गुलशन में फैलाया है जाल।
मौजे बूए गुल भी मुझको बढ़के है ज़ंजीर से॥

* * *

ख़ुदी से बेख़ुदी में आ जो शौक़े हक़परस्ती है।
जिसे तू नेस्ती समझा है ऐ ग़ाफ़िल वो हस्ती है॥
ख़बरदार ऐ मुसाफ़िर ख़ौफ़ की जा राहे हस्ती है।
ठगों का बैठका है जाबजा चोरों की बस्ती है॥
'अमीर' उस रास्ते से जो गुज़रते हैं वो लुटते हैं।
महल्ला है हसीनों का कि क़ज़्ज़ाकों की बस्ती है॥

* * *

वक़्त जागे हुये हैं आलमें हुशियारी है।
ख़्वाब में देख रहा हूँ कि यह बेदारी है॥

* * *

कैसी घड़ी थी घर से जो निकला था मैं ग़रीब।
फिर देखना नसीब न मुझको वतन हुआ॥
अबका सफ़र वो है कि न देखूँगा फिर वतन।
यों तो मैं लाख बार ग़रीबुल्वतन हुआ॥

* * *

पहलू बचाऊँ उससे जा दिलको सँभाल के।
मारे छुरी वो बात में पहलू निकाल के॥
मुश्किल बहुत पड़ेगी बराबर की चोट से।
आईना देखियेगा ज़रा देखभाल के॥

मेरे तुम्हारे बीचमें आता है बार बार।
कम्बख़्त पाँव भी नहीं थकते मलाल के॥
आई सहर इधर कि उधर शाम हो गई।
दो दो घड़ी के होने लगे दिन विसाल के॥
मिट्टी जो देने आये हो तो दो हँसी-ख़ुशी।
फेंको भी अब ग़ुबार को दिल से निकालके॥
यह नातवान होके सुबुक हो गये 'अमीर'।
हम साथ साथ फिरते हैं अपने ख़याल के॥

उसको आता है प्यार पर ग़ुस्सा।
मुझको ग़ुस्से प प्यार आता है॥

हर जगह जोशे मुहब्बत का नया आलम हुआ।
आँख में आँसू, जिगर में दाग़, दिल में ग़म हुआ॥

बहार आई चमन होता है मालामाल दौलत से।
निकाला चाहते हैं ज़र गिरह ग़ुञ्चों ने खोली है॥
वह कहते हैं कि हम आँखों में सब को ताड़ लेते हैं।
मुहब्बत सारी दुनिया की इसी काँटे में तोली है॥
नज़रबाज़ी से जो मिलती है लज़्ज़त दिल में रखते हैं।
तेरे दीदार के भूखे फ़क़ीरों की य झोली है॥

जगाती है य कहकर सुबहे पीरी चश्मे ग़ाफ़िल को।
बस उठ ओ नींद की माता कि शब भर ख़ूब सो ली है॥

❦ ❦ ❦

मैं जाग रहा हूँ हिज्र की शब।
पर मेरे नसीब सो रहे हैं॥

❦ ❦ ❦

मैं मिट गया तो वह भी मेरे साथ मिट गया।
साये से ख़ूब हक़्क़े रिफ़ाक़त अदा हुआ॥

❦ ❦ ❦

मसजिद में बुलाता है हमें ज़ाहिदे नाफ़हम।
होता अगर कुछ होश तो मैख़ाने न जाते॥

❦ ❦ ❦

यह तो मैं क्योंकर कहूँ तेरे ख़रीदारों में हूँ।
तू सरापा नाज़ है मैं नाज़ बरदारों में हूँ॥
किस तरह फ़रियाद करते हैं बता दो क़ायदा।
ऐ असीराने क़फ़स मैं नौ गिरफ़्तारों में हूँ॥
फूल में फूलों में हूँ काँटा हूँ काँटों में 'अमीर'।
यार मैं यारों में हूँ ऐयार ऐयारों में हूँ॥

❦ ❦ ❦

झूठे वादों से वो राहत का मज़ा जाता रहा।
बाये क़िस्मत यास का भी आसरा जाता रहा॥

बे तकल्लुफ़ नश्शए मैं ने तो उनको कर दिया।
पर वो शर्मीली निगाहों का मज़ा जाता रहा॥
आनेवाला जानेवाला बेकसी में कौन था।
हाँ मगर इक दम ग़रीब आता रहा जाता रहा॥
घूरते देखा जो हमचश्मों ने झुँझला कर कहा।
क्या लिहाज़ आँखों का भी ओ बेहया जाता रहा॥
खो गया दिल खो गया रहता तो क्या होता अमीर।
जाने दो यक बेवफ़ा जाता रहा जाता रहा॥

* * *

मौक़ूफ़ जुर्म ही प करम का ज़हूर था।
बन्दे अगर .क़ुसूर न करते .क़ुसूर था॥
मेरे अमल तो क़ाबिले दोज़ख़ ही थे मगर।
करता जो वह न रहम तो रहमत से दूर था॥
उसकी कड़ी नज़र की उठाई गई न चोट।
लगते ही ठेस शीशए दिल चूर चूर था॥
इक नीम जाँ का काम न पूरा हुआ 'अमीर'।
क़ातिल को तेग़े नाज़ प नाहक़ .ग़ुरूर था॥

* * *

दिल में ख़याल उन आँखों का लाया न जायगा।
मैख़ाना घर .ख़ुदा का बनाया न जायगा॥

आहों से सोज़े इश्क़ मिटाया न जायगा।
आँधी से यह चिराग़ बुझाया न जायगा॥
दीदारे यार का न उठेगा मज़ा 'अमीर'।
जब तक दुई का पर्दा उठाया न जायगा॥

* * *

मैं कभी वक़्त प मक़तल से न टल जाऊँगा।
कुछ ज़माना नहीं करवट जो बदल जाऊँगा॥
लाख दुनिया में फँसूँ चाल वह चल जाऊँगा।
कि मैं इस भूलभुलैयाँ से निकल जाऊँगा॥
इस सरा में मैं मुसाफ़िर नहीं रहने आया।
रह गया थक के अगर आज तो कल जाऊँगा॥
सोचता है मेरी तप देख के .फ़ुर्क़त में तबीब।
नब्ज़ को हाथ लगाऊँगा तो जल जाऊँगा॥
हूँ सुबुकरूह करेगा मुझे क्या क़ैद कोई।
मिस्ल आवाज़ सलासल से निकल जाऊँगा॥
मस्ती उन आँखों में आती है तो कहता है हिजाब।
देख तू आई तो मैं घर से निकल जाऊँगा॥
क़द्र दाँ मसहफ़ी वो हज़रते सौदा थे 'अमीर'।
लेके तुरबत प उन्हीं की ये ग़ज़ल जाऊँगा॥

* * *

दो आलम के सरताज अल्लाह वाले।
मुझे अब तो क़दमों में अपने बुला ले॥
जफ़ाकार दुनिया जफ़ाजू ज़माना।
पड़ा हूँ मैं दो बेवफ़ाओं के पाले॥
कहीं मुझको ठंडा न कर दें जला कर।
मेरी सर्द आहें मेरे गर्म नाले॥
लहद की अँधेरी ने घेरा है मुझको।
सिवा तेरे कौन इस मुसीबत को टाले॥
जुदाई के सदमे ज़ईफ़ी का आलम।
कहाँ तक अमीर अपने दिल को सँभाले॥

तुंद मै औ ऐसे कमसिन के लिये।
साक़िया हलकी सी ला इनके लिये॥
है जवानी ख़ुद जवानी का सिंगार।
सादगी गहना है इस सिन के लिये॥
कौन वीराने में देखेगा बहार।
फूल जंगल में खिले किनके लिये॥
दिल का ज़ामिन तू तेरा क्या एतबार।
पहले यक ज़ामिन हो ज़ामिन के लिये॥
झाड़ती है कौन से गुल की नज़र।
बुलबुलें फिरती हैं क्यों तिनके लिये॥

बाग़बाँ कलियाँ हों हलके रंग की।
भेजनी है एक कमसिन के लिये॥
लाश पर इबरत य कहती है 'अमीर'।
आये थे दुनिया में इस दिन के लिये॥

❦ ❦ ❦

ज़ोफ़े दिल ने असर य दिखलाया।
दर्द से भी उठा नहीं जाता॥

❦ ❦ ❦

न होगा वन्द जब तक नक़्द जाँ बाक़ी है क़ालिब में।
सबा के घर का दरवाज़ा है चाक अपने गरेवाँ का॥
जिगर को दूँ कि दिल को दूँ वता ऐ नावके क़ातिल।
कि दो प्यासों में है यह एक क़तरा आबे पैकाँ का॥
मज़ा आशिक़ के दिल से पूछ हुस्ने शोला रूयाँ का।
तमाशा देख परवानों की आँखों से चिराग़ाँ का॥

❦ ❦ ❦

जब कहा उससे शबे ग़म कोई ग़मख़्वार न था।
दर्द ने उठके कहा क्या य गुनहगार न था॥

❦ ❦ ❦

क़रीब है यार रोज़े महशर छुपेगा कुश्तों का ख़ून कब तक।
जो चुप रहेगी ज़बाने ख़ंजर लहू पुकारेगा आस्तीं का॥

❦ ❦ ❦

मुरग़ाने बाग़ तुमको मुबारक हो सैरे गुल।
काँटा था एक मैं सो चमन से निकल गया॥

❦ ❦ ❦

हिलालो बद्र हैं दोनों तेरी तसवीर के ख़ाके।
य सूरत है लड़कपन की वो नक़्शा है जवानी का॥

❦ ❦ ❦

उठाऊँ सख़्तियाँ लाखों कड़ी बात उठ नहीं सकती।
मैं दिल रखता हूँ शीशे का जगर रखता हूँ आहन का॥

❦ ❦ ❦

चश्मे नरगिस न मिली दीदए आहू न मिला।
ऐ हया! तुझको इन्हीं आँखों में क्या रहना था॥

❦ ❦ ❦

रोज़े ख़िलक़त से वहीं हैं बाहर आ सकती नहीं।
कहते हैं जिन्नत जिसे है क़ैदख़ाना हूर का॥
आदमी का मुँह है जो दावा ख़ुदाई का करे।
बोलते हैं आप हज़रत नाम है मंसूर का॥

❦ ❦ ❦

फ़ितना था क़हर था जलवा तेरा ऐ यार न था।
जब तलक दिल का सँभालूँ मैं दिलेज़ार न था॥

❦ ❦ ❦

करता मैं दर्दमंद तबीबों से क्या रुजू।
जिसने दिया था दर्द बड़ा वह हकीम था॥

❦ ❦ ❦

तड़पा रही है हिज्र में लज़्ज़त विसाल की।
कल पी थी जो शराब है उसका ख़ुमार आज॥

❦ ❦ ❦

आँखों में नूर तेरा दिल में सुरूर तेरा।
दरवाज़े से है घर तक सारा ज़हूर तेरा॥
जन्नत में भी है चर्चा ऐ रश्के हूर! तेरा।
शुहरा है अल्ला अल्ला अब दूर दूर तेरा॥
ऐ चश्मे शौक़ वह तो हर रंग में है ज़ाहिर।
अब भी जो तू न देखे तो है क़ुसूर तेरा॥
मैं आईना हूँ तेरा तू आईना है मेरा।
तुझमें ज़हूर मेरा मुझमें ज़हूर तेरा॥
मदहोशे इश्क़ होकर जा बज़्मे मारफ़त में।
परदा न बीच में हो ग़ाफ़िल शऊर तेरा॥
है बेखुदी हाँ जिससे होता है क़ुर्ब हासिल।
ग़ायब जो आपसे हो पाये हुज़ूर तेरा॥
नादाँ अमीर नाहक़ उम्मीदवार है तू।
दिल लेके फेर देगा वह अब ज़रूर तेरा॥

❦ ❦ ❦

कह रही है हश्र में वह आँख शर्माई हुई।
हाय! कैसी इस भरी महफ़िल में रुसवाई हुई॥

ठोकरें खिलवाएगी यह चाल इठलाई हुई।
क्या जवानी फिरती है जोबन प इतराई हुई॥
कैफ़े मस्ती में भी रहता है य जोबन का लिहाज़।
उनको अँगड़ाई भी आती है तो शर्माई हुई॥
वस्ल में ख़ाली हुई अग़यारों से महफ़िल तो क्या।
शर्म भी जाए तो मैं जानूँ कि तनहाई हुई॥
गर्द उड़ी आशिक की तुरबत से तो झुँझला कर कहा।
वाह ! सर चढ़ने लगी पावों की ठुकराई हुई॥
वस्ल की शब वाह री बेताबिए शौक़े विसाल।
शर्म भी नीची निगाहों में तमाशाई हुई॥
जाँ बलब हसरत में पाती है जो मुझ नाशाद को।
क्या हँसी फिरती है उन होठों प इतराई हुई॥
मैं तो राज़े दिल छुपाऊँ पर छुपा रहने भी दे।
जान की दुश्मन य ज़ालिम आँख ललचाई हुई॥
शेरे गुलदस्ते में मुझ अफ़सुर्दा दिल के क्या अमीर।
दामने गुलचीं में कुछ कलियाँ हैं मुरझाई हुई॥

* * *

इश्क़ में जाँ से गुज़रते हैं गुज़रनेवाले।
मौतकी राह नहीं देखते मरनेवाले॥
दाग़े दिलसे मेरे कहता है य उसका जोबन।
देख इस तरह गुज़रते हैं गुज़रनेवाले॥

आख़िरी वक़्त भी पूरा न दिया वादए वस्ल।
आप आतेही रहे मर गए मरनेवाले॥
उठे औ कूचए-महबूब में पहुँचे आशिक़।
यह मुसाफ़िर नहीं रस्ते में ठहरनेवाले॥
जान देनेको कहा मैंने तो हँसकर बोले।
तुम सलामत रहो हर रोज़ के मरनेवाले॥
तेग़ो खंजरसे न झगड़ा सरो गर्दन का चुका।
चल दिये मोड़के मुँह फ़ैसला करनेवाले॥
आसमाँ पर जो सितारे नज़र आये 'अमीर'।
याद आये मुझे दाग़ अपने उभरनेवाले॥

* * *

जफ़ाएं झेलकर तासीरे-उल्फ़त हम दिखाते हैं।
हिनाकी तरह से पिस लेते हैं तब रंग लाते है॥
शबाबो शर्म दोनों का असर दिल में जो पाते हैं।
सवाले वस्ल पर अँगड़ाई लेकर मुस्कराते हैं॥
निगाहों की तरह वह शोख़ फिरता है जो महफ़िल में।
कफे पा के तले महे-जमाल आँखें बिछाते हैं॥
मज़ा उनकी तबीअत में है ग़ुस्सा आ नहीं सक्ता।
सवाले वस्ल पर त्योरी चढ़ा कर मुस्कराते हैं॥

सहर को दर पै जाता हूँ तो फ़र्माते हैं अन्दर से।
अभी सोकर उठे हैं हाथ मुहँ धोते हैं आते हैं॥

* * *

किया क़स्द जब कुछ कहूँ उनको जल कर।
दबी बात होठों में मुँह से निकल कर॥
यही सोज़े दिल है तो महशर में जलकर।
जहन्नम उगल देगा मुझको निगल कर॥
इधर की न हो जाय दुनिया उधर को।
ज़माने को बदलो न आँखैं बदलकर॥
ग़ज़ब औज पर है मेरी बेक़रारी।
ज़मीं आसमाँ बन गई है उछल कर॥
पड़ा तीर दिल पर जो मुँह तूने फेरा।
निशाना उड़ाया है क्या रुख़ बदल कर॥
जो शामे शबे हिज्र देखी तो समझे।
क़ज़ा सर पै आई है सूरत बदल कर॥
य मेरी तरफ़ पाँव महफ़िल में कैसे।
ज़रा आदमीयत से बैठो सँभल कर॥

* * *

बाइसे वहशत हुई बेपतनाई आपका।
तिनके चुनवाने लगी हमसे जुदाई आपकी॥
आपकी जाने बला क्यों कर कटी फ़ुर्क़त की रात।

दिल तड़प कर रह गया जब याद आई आपकी ॥
बात करना हमसे औ आँखें लड़ाना ग़ैर से।
देखली बस वाह मुश्फ़िक़ पारसाई आपकी ॥
आशिक़ों के दिल प गिरती हैं हज़ारों बिजलियाँ।
देखकर सीने प ज़ंजीरे तिलाई आपकी ॥
आपकी बातों का रहता है मुझे हरदम ख़याल।
जब कोई बोला सदा कानों में आई आपकी ॥
.खुद गला काटूँ मुझे खंजर इनायत कीजिये।
देखिये दुख जायगी ना.जुक कलाई आपकी ॥
जान दे दो या पसे दीवार सर पटको अमीर।
उनके कूचे तक न होवेगी रसाई आपकी ॥

* * *

तोड़ता है जो कोई फूल तो कहती है सबा।
क्या ख़बर तुझको कि यह दिल य जिगर किसका है ॥

* * *

फ़ना कैसी वक़ा कैसी जब उसके आशना ठहरे।
कभी इस घर में आ निकले कभी उस घर में जा ठहरे ॥
जो चश्मे ग़ौर से आईनए तौहीद को देखा।
तो सब कुछ तू ही ठहरा हम न कुछ पें .खुदनुमा ठहरे ॥
हक़ीक़त खोल दी आईनए वहदत ने दोनों की।
न तुम हमसे जुदा ठहरे न हम तुमसे जुदा ठहरे ॥

अमीर आया जो वक़्ते वद तो सबने राह ली अपनी।
हज़ारो सैकड़ों में दर्दों ग़म दा आशना ठहरे॥

* * *

नक़्द जाँ दिलकी तरह देके अभी लेता हूँ।
लज़्ज़ते दर्द जो हाथ आये कहीं थोड़ीसी॥

* * *

उन्हीं से ग़मूज़ करती है जो तुझ पर जान देते हैं।
अजल तुझको भी कितना नाज़े माशूक़ाना आता है॥

:o:

दाग़

दाग़ उपनाम; नवाब मिर्ज़ा खाँ नाम; स्थान दिल्ली; जन्म-संवत् १८८८; मृत्यु-संवत् १९६२।

सुल्तानुश्शुअरा, बुलबुले हिन्दुस्तान, जहाँ उस्ताद, नाज़िमे यारजंग, दबीरुद्दौला, फसीहुल्मुल्क आदि उपाधियों से विभूषित दाग़ दिल्ली में एक प्रतिष्ठित घराने में पैदा हुए। सात वर्ष की अवस्था में इनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। ग़यासुल्लोग़ात के कर्ता मौलवी ग़यासुद्दीन से इन्होंने पहले पहल फ़ारसी की कुछ पुस्तकें पढ़ीं। इसके बाद मीर के शागिर्द मौलवी सैयद अहमद हुसेन इनके शिक्षक नियत हुये। सं० १९०१ से इनको शाही क़िले में आने जाने का मौक़ा मिला। वहाँ शिक्षा के बहुत से साधन मिले। वहीं इन्होंने घोड़े पर चढ़ना, बंदूक़ और तीर

चलाना सीखा। क़िले में जहाँ और बातें थीं, वहाँ शायरी का भी बाज़ार गर्म था। ज़ौक़ राजगुरु थे। क़िले में उनका आना जाना रोज़ लगा रहता था। वहीं दाग़ को भी शायरी का शौक़ हुआ। ग्यारह बारह वर्ष की उम्र में ये ज़ौक़ के शागिर्द हुये। इन्होंने डरते डरते जो ग़ज़ल उस्ताद के पास इसलाह के लिये भेजी, उसके दो शेर ये हैं—

रुख़े रोशन के आगे वह शमा रखकर य कहते हैं।
उधर जाता है देखो या इधर परवाना आता है॥
जो तुम हँसने में हो मश्शाक़ मैं रोने में कामिल हूँ।
तुम्हें बिजली गिराना मुझ को मेंह बरसाना आता है॥

ज़ौक़ इस ग़ज़ल को देख कर फड़क उठे। उनको आशा हो गई कि यह शागिर्द किसी दिन शायरी की दुनिया में रंग लायेगा। वे बड़े प्रेम से दाग़ की कविता सुधारने लगे।

होते-होते इनकी पहुँच बादशाह तक हो गई। बादशाह की कवि-सभा में स्थान पाना बड़े गौरव की बात थी। दाग़ की प्रतिभा देखकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुये। पहली ग़ज़ल, जो दाग़ ने बादशाह की कवि-सभा में सुनाई थी, वह यह थी—

निकाल अब तीर सीने से कि जाने पुर अलम निकले।
जो यह निकले तो दिल निकले जो दिल निकले तो दम निकले॥

मेरे दिल से कोई पूछे शबे .फ़ुरक़त की बेताबी।
यही फ़रियाद थी लब पर कि या रब्ब जल्द दम निकले॥
हुये मग़रूर जब वह आह मेरी बेअसर देखी।
किसी का इस तरह या रब न दुनिया में भरम निकले॥
मुबारक हो य घर ग़ैरों को तुमको पासबानों को।
हमारा क्या इज़ारा है निकाला तुमने हम निकले॥
समझ कर रहम दिल तुमको दिया था हमने दिल अपना।
मगर तुमतो बला निकले ग़ज़ब निकले सितम निकले॥
गये हैं रंजो गम ऐ दाग़ बादे मर्ग साथ अपने।
अगर निकले तो यह अपने रफ़ीक़ाने अदम निकले॥

दाग़ को इस ग़ज़ल के प्रत्येक शेर पर .ख़ूब दाद मिली। ग़ज़ल समाप्त होने पर बादशाह ने मुग्ध हो कर फ़रमाया कि क्या अच्छी तबीअत पाई है।

बस, उसी दिन से दाग़ कवि-सभा के चिराग़ हो गये। शहर भर में इनका नाम हो गया। बादशाह की प्रसन्नता का समाचार बात की बात में चारों ओर फैल गया और दाग़ सब लोगों की नज़रों में चढ़ गये।

क़िले का कवि सम्मेलन उमंग पर था कि इतने में सन् ५७ का ग़दर हो गया। सब लोग अपनी अपनी जान बचाने की फ़िक्र में लगे। दाग़ सकुटुम्ब रामपुर चले गये, और नवाब

यूसुफ़ अली खाँ की शरण में सुख से रहने लगे। नवाब यूसुफ़ अली खाँ के मर जाने के बाद नवाब कलबे अली ख़ाँ भी इन पर कृपा-दृष्टि रखते रहे। उन्होंने इन्हें अस्तबल, गाड़ी-खाने, फ़राश-ख़ाने और शुतुर-ख़ाने का अफ़सर नियत किया। चौबीस बरस तक इन्होंने वहाँ बड़ी तत्परता और प्रतिष्ठा के साथ मुसाहबत की। रामपुर में कवियों का अच्छा जमाव रहता था। हया, बहर, क़लक़, उरूज, असीर, मुनीर, तसलीम, जलाल, अमीर मीनाई आदि तो वहाँ थे ही, कभी कभी ग़ालिब भी वहाँ चहक आते थे। पर दाग़ का रंग सबसे निराला था। नवाब के साथ दाग़ हज यात्रा में भी गये। वहाँ से वापस आकर दाग़ ने अपनी एक कविता में नवाब के इस उपकार के लिये बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। उन्हीं दिनों दाग़ ने कलकत्ते और पटने की यात्रा भी की थी।

नवाब कलबे अली खाँ के मरते ही रामपुर की कवि-सभा उजड़ गई और उस चमन के सब बुलबुल उड़ गये। दाग़ फिर दिल्ली पहुँचे। कुछ दिनों तक लाहौर, अमृतसर, कृष्णकोट, बंगलौर, आगरा, अलीगढ़, मथुरा, जैपुर, अजमेर आदि नगरों की सैर भी करते रहे। जहाँ जहाँ ये जाते थे, वहाँ वहाँ के साहित्य-रसिक लोग जी खोलकर इनका स्वागत करते थे। क्योंकि इनकी ग़ज़लें वहाँ पहले ही पहुँच कर इनको प्रसिद्ध

कर चुकी होती थीं। सं० १६४५ में घूमते-फिरते ये हैदराबाद पहुँचे। वहाँ इनके आने की धूम मच गई। इनकी कविताएँ वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थीं। पर पहली बार निज़ाम से इनकी मुलाक़ात न हो पाई। ये निज़ाम के लिये एक क़सीदा लिखकर दिल्ली चले आये। थोड़े दिनों के बाद निज़ाम ने इनको आदर-पूर्वक बुलाया। ये फिर हैदराबाद पहुँचे। वहाँ इनकी जो प्रतिष्ठा हुई, वह उर्दू के किसी कवि को आज तक कहीं नसीब न हुई। इनको १५००) मासिक वेतन मिलता थो। सवारी मकान, नौकर-चाकर अलग। ये निज़ाम के काव्य-गुरु नियत हुये। इन्हें मौक़े मौक़े पर जो पुरस्कार मिलता था, वह सब ख़ज़ाने में जमा होता जाता था। कहा जाता है कि छब्बीस हज़ार रुपये के लगभग इनका वहाँ जमा था, पर इनको रुपये की कमी थी ही नहीं। वे रुपये ख़ज़ाने में जमा के जमे ही रह गये। हैदराबाद में इन्हें ऊँची से ऊँची उपाधियाँ दी गईं। वहाँ कवि सभाओं में एक ज़ोरदार लहर आगई। अनेक नवयुवक कविता की ओर झुक पड़े।

दाग़ के समय में ही अमीर मीनाई भी हैदराबाद पहुँचे थे। दाग़ ने बड़े प्रेम से उनकी अभ्यर्थना की थी। यद्यपि रामपुर में दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी रह चुके थे। पर दोनों एक दूसरे को हृदय से चाहते थे। यकायक अमीर के देहावसान

दाग़ को बड़ा खेद हुआ। एक ही समय में दाग़ दिल्ली के और अमीर लखनऊ के सबसे बड़े कवि थे। अमीर की मृत्यु के पाँच वर्ष बाद ही दाग़ भी दुनिया से चल बसे। हैदराबाद में उन्होंने जीवन के अंतिम अठारह वर्ष बड़े सुख से काटे!

दाग़ हैदराबाद में शरीफ़ साहब की दरगाह में दफ़न किये गये। वहीं अमीर मीनाई भी दफ़नाये गये थे।

दाग़ का रूप रंग बहुत सुन्दर और प्रभावशाली था। ये बड़े मधुर भाषी, मिलनसार और विनोद-प्रिय थे। कविता पढ़ने का उनका ढंग बड़ा ही प्रभाव शाली और स्वर चित्ताकर्षक था।

दाग़ की ग़ज़लों के कई दीवान छप चुके हैं। एक मसनवी भी है। उसका नाम है 'फ़रियादे दाग़'। मसनवी का क़िस्सा उनका निज का है। वह यह है कि मनीबाई नामकी एक वेश्या एक मेले में कलकत्ते से रामपुर आई। दाग़ उस पर फ़िदा हो गये। वह इनके नज़र की गई। बस, उसी के प्रेम और विरह का वर्णन उस मसनवी में है। दाग़ की अपनी बीती होने के कारण उस में अनुभव की सरसता भी ख़ूब है।

दाग़ की कविता का सबसे बड़ा महत्व भाषा की स्वच्छता है। ऐसी सादी, साफ़ और चटकीली भाषा उर्दू के किसी कवि ने नहीं लिखी है। भावों के विषय में यह कहा जा सकता है कि कहीं कहीं उसमें इश्क़ का बहुत ही खुला हुआ वर्णन है,

जो लोगों की दृष्टि में अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है। इसीसे कुछ लोग दाग़ की कविता को चूमाचाटी की कविता कहते हैं। पर अश्लीलता उर्दू के किस कवि में नहीं है? दाग़ में कुछ अधिक परिमाण में है। समय भी तो उसी के अनुकूल था। समय ने दाग़ को पैदा किया, दाग़ ने समय को सहायता दी। आज तो दाग़ की ग़ज़लें सर्वत्र शौक़ से गाई और सुनी जाती हैं।

दाग़ ने कभी किसी की निन्दा नहीं लिखी। समकालीन साहित्यिकों के साथ इनका व्यवहार बड़ा प्रेमपूर्ण रहता था। विरोधियों के साथ भी ये शिष्टाचार का सदा ध्यान रखते थे।

दाग़ के शिष्यों की संख्या डेढ़ हज़ार के लगभग कही जाती है। दाग़ ने उर्दू-साहित्य को बहुत अच्छे अच्छे कवि दिये। जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—

इक़बाल, बेख़ुद, सायल, आग़ा, हसन, बेबाक, हैरत, आज़ाद, रसा, फ़ीरोज़, अश्क, अहसन आदि। सायल दाग़ के दामाद हैं, और साफ़ सुथरी भाषा लिखने में इस समय लासानी हैं।

दाग़ की कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

आख़िर को इश्क़ कुफ़्र से ईमान हो गया।
मैं बुत परस्तियों से मुसलमान हो गया॥

रिन्दाने वेश्या की है सुहबत किसे नसीब।
ज़ाहिद भी हम में बैठ के इन्सान हो गया॥

❦ ❦ ❦

लोग कहते हैं बना दिल्ली बिगड़कर लखनऊ।
पर कहाँ ऐ दाग़ उस उजड़े हुये गुल का जवाब॥

❦ ❦ ❦

चश्मे जानाँ से अलग हो ऐ हया!
यों झुके पड़ते नहीं बीमार पर॥

❦ ❦ ❦

लुत्फ़े मै तुझसे क्या कहूँ ज़ाहिद।
हाय! कम्बख़्त तूने पी ही नहीं॥
उड़ गई यों वफ़ा ज़माने से।
कभी गोया किसी में थी ही नहीं॥
दिल्लगी दिललगी नहीं नासेह।
तेरे दिल को अभी लगी ही नहीं॥

❦ ❦ ❦

जिसमें लाखों बरस की हूरे हों।
ऐसी जन्नत को क्या करे काई॥

❦ ❦ ❦

रंज वह रंज है जिसमें न बुता को भूलें।
ऐश वह ऐश है जिसमें न ख़ुदा याद रहे॥

❦ ❦ ❦

य हूरों प मरता है ये देखे-भाले।
नहीं कोई आशिक़ मुसलमाँ से बढ़कर॥

❦ ❦ ❦

वो दिल लेके चुपके से चलते हुये।
यहाँ रह गये हाथ मलते हुये॥
न इतराइये देर लगती है क्या।
ज़माने को करवट बदलते हुये॥
मुहब्बत में नाकामियों से अख़ीर।
बहुत काम देखे निकलते हुये॥
करे वादा पर वादा वो हमको क्या।
ये चकमे ये फिकरे हैं चलते हुये॥
ज़रा दाग़ के दिल प रक्खो तो हाथ।
बहुत तुमने देखे हैं जलते हुये॥

❦ ❦ ❦

कहने देती नहीं कुछ मुँह से मुहब्बत तेरी।
लब प रह जाती है आ आ के शिकायत तेरी॥
अब तेरा ए दिले बेताब ख़ुदा हाफ़िज़ है।
कर चुके हम तो मुहब्बत में हिफ़ाज़त तेरी॥
देखिये करती है रुसवाये ज़माना क्या क्या।
मुझको यह चाह मेरी तुझको य सूरत तेरी॥

याद सब कुछ हैं मुझे हिज्र के सदमे ज़ालिम।
भूल जाता हूँ मगर देख के सूरत तेरी॥
अदम आबाद को जाते हैं बशर ख़ाली हाथ।
मुझको है नाज़ कि ले जाऊँगा हसरत तेरी॥
है रक़ीबों की ज़बाँ पर भी सितम का शिकवा।
तू भी मजबूर है जाती नहीं आदत तेरी॥
कूचए यार में भी जा नहीं लगता ऐ दाग़!
देखिये जायगी किस रोज़ य वहशत तेरी॥

अहले उल्फ़त के लिये चाहिए शोहरत ऐ दिल!
नाम बिकता है मुहब्बत के ख़रीदारों का॥

गर मेरे बुते होशरुबा को नहीं देखा।
उस देखनेवाले ने ख़ुदा को नहीं देखा॥
इतना तो बता दे मुझे ऐ नासहे मुशफ़िक़।
देखा है कि उस माहेलक़ा को नहीं देखा॥
ऐसी नज़रे शोख़ में तमकीं नहीं देखी।
इस तरह तग़ाफ़ुल में हया को नहीं देखा॥
अग़यार के नाले तो बहुत तुमने सुने हैं।
मज़लूम का तासीरे दुआ को नहीं देखा॥

जब दाग़ को ढूँढ़ा किसी बुतख़ाने में पाया।
घर में कभी उस मर्दे .ख़ुदा को नहीं देखा॥

* * *

दिल लेके उसकी बज़्म में जाया न जायगा।
यह मुद्दई बग़ल में छिपाया न जायगा॥
जो दिल दिखा रहा है मज़ा हर घड़ी मुझे।
आँखों से सौ बरस भी दिखाया न जायगा॥
दुश्मन के आगे सर न झुकेगा किसी तरह।
यह आसमाँ ज़मीं से मिलाया न जायगा॥
ऐ दाग़ तुझको रिज़्क़ की ख़ाहिश है चर्ख़ से।
इतना य ग़म खिलायेगा खाया न जायगा॥

* * *

मज़ा हरएक को ताज़ा मिला है इश्क़े जानाँ का।
निगह को दीद का लबको .फ़ुग़ाँ का दिलको अरमाँ का॥
फ़लक पर्दा बना अहले ज़मीं की पर्दापोशी को।
मगर इस दुश्मने जाँ ने किसी का ऐब कब ढाँका॥
किसी की शर्म आलूदह निगाहों में य शोख़ी है।
इसे देखा उसे देखा इधर ताका उधर झाँका॥
तेरी आतिश बयानी दाग़ रोशन है ज़माने पर।
पिघल जाता है मिस्ले शमा दिल हर इक सख़ुनदाँ का॥

* * *

ग़म को मैं इश्क़ में ग़मख़्वारे दिलो जाँ समझा।
रंज को राहत और आज़ार को दरमाँ समझा॥
और भी आग सिवा इश्क़ की भड़की तहे ख़ाक।
मैं सबा को जो तेरी जुम्बिशे दामाँ समझा॥
चाहता हूँ कि निकल जाये कहीं सीने से।
दिल को मैं हिज्र में तेरे कोई अरमाँ समझा॥
कुछ तो थी बात कि नासेह की न मानी कुछ बात।
कुछ तो समझा जो न कुछ यह दिले नादाँ समझा॥
सहल होना मेरी मुश्किल का बहुत मुश्किल है।
काम दुश्वार यह निकला जिसे आसाँ समझा॥
जान कर चाक किये मैंने वह दीवाना हूँ।
जेब को जेब गरेवाँ को गरेवाँ समझा॥

* * *

खा गया मग्ज़ नासहे नादाँ।
मुझको इस ख़ैरख़्वाह ने मारा॥

* * *

बाक़ी जहाँ में क़ैस न फ़रहाद रह गया।
अफ़साना आशिक़ों का फ़क़त याद रह गया॥
पाबन्दियों ने इश्क़ की बेकस रखा मुझे।
मैं सौ असीरियों में भी आज़ाद रह गया॥

यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई।
गोया कि लब से होके कुछ इर्शाद रह गया॥
ऐ दाग़ दिल ही दिल में घुले ज़ब्ते इश्क़ से।
अफ़सोस शौक़े नालओ फ़रयाद रह गया॥

❦ ❦ ❦

सीने में अब कहाँ वह जोश, वह भी था इक बवाल सा।
बैठ गया कुछ उठते ही, छोड़ गया ख़याल सा॥
अर्ज़ वफ़ा पै देखना उसकी अदाये दिल-फ़रेब।
दिलमें कुछ एतबार सा आँख में कुछ मलाल सा॥
तारे ही गिनके काटते रात फ़िराक़ की मगर।
निकला सितारा भी कहीं कोई तो ख़ाल ख़ाल सा॥

❦ ❦ ❦

न पूछिए मेरे रोज़े सियाह की ज़ुल्मत।
चिराग़ लेके भी ढूँढ़ा तो आफ़ताब न था॥

❦ ❦ ❦

दिल लेके मुफ़्त कहते हैं कुछ काम का नहीं।
उल्टा शिकायतें हुईं एहसान तो गया॥
होशो हवासो ताबो तवाँ दाग़ जा चुके।
अब हम भी जाने वाले हैं सामान तो गया॥

❦ ❦ ❦

कभी मस्जिद में जो वह शोख़ परीज़ाद आया।
फिर न अल्लाह के वन्दों को .खुदा याद आया॥
दी मुअज़्ज़न ने शवे वस्ल अज़ाँ पिछली रात।
हाय कमवख़्त को किस वक्त .खुदा याद आया॥

* * *

रहती थी उसकी याद वह रातें किधर गईं।
अव मुझको इन्तज़ार है उस इन्तज़ार का॥
तोवा जो मैंने की निकल आया ज़रा सा मुँह।
वह रंग रूप ही नहीं सुवहे वहार का॥
ऐ चश्मे यार देख, तग़ाफ़ुल से वाज़ आ।
दिल टूट जायगा किसी उम्मेद्वार का॥
आशिक़ की मुश्ते ख़ाक परेशाँ न हो कभी।
उसमें जो मेल हो तेरे दिल के .गुवार का॥
ग़श खाके दाग़ यार के क़दमों पै गिर पड़ा।
वेहोश ने भी काम किया होशियार का॥

* * *

न देखो देखो तुम आईने को कि मुझ को रहता है हौल हर दम।
कहीं न जम जाये अक्स उसका रुख़े मुसफ़्फ़ा पै ज़ंग होकर॥
वह हम हैं मजनूने दश्तो पैमाँ जनूँ को होता है हमसे सौदा।
कि चश्मे आहू में वैठी वहशत हमारी वहशत से तंग होकर॥

भरे हुए हैं हज़ार अर्मां फिर उस पै है हसरतों की हसरत।
कहाँ निकल जाऊँ या इलाही मैं दिल की वसअत से तंग होकर॥
झुका ज़रा चश्मे जंगजू भी निकल गई दिलकी आर्जू भी।
बड़ा मज़ा उस मिलाप का है जो सुलह हो जाय जंग होकर॥

कोई गिला करेगा न ग़ुस्से की बात का।
कहना हो जो किसी को वो कहलो अताब में॥
ऐ शैख़ जो बताये मये इश्क़ को हराम।
ऐसे के दो लगाये भिगो कर शराब में॥

न पूछो कुछ मुसीबत दर्दमन्दाने मुहब्बत की।
ख़ुदा पर ख़ूब रोशन है गुज़र जिस तरह करते हैं॥
कभी यह दिल तमाशागाह था ऐशो मसर्रत का।
अब इसमें हसरतो शौक़ो तमन्ना सैर करते हैं॥
कभी गिरता हूँ शीशे पर कभी गिरता हूँ साग़र पर।
मेरी बेहोशियों से होश साक़ी के बिखरते हैं॥

मैं तो हर अन्दाज़े माशूक़ाना का दीवाना हूँ।
गुल पै बुलबुल हूँ अगर तो शमा पर परवाना हूँ॥
जिस प आशिक़ है सबा उस ख़ाक का ज़र्रा हूँ मैं।
बर्क़ जिस पर लोट है उस खेत का दाना हूँ मैं॥

आँखें बिछायें हम तो उदू की भी राह में।
पर क्या करें कि तू है हमारी निगाह में॥
दिल में समा गई हैं क़यामत की शोख़ियाँ।
दो चार दिन रहा था किसी की निगाह में॥
उस तोबा पै है नाज़ तुझे ज़ाहिद इस क़दर।
जो टूट कर शरीक हो मेरे गुनाह में॥
आती है बात बात मुझे याद बार बार।
कहता हूँ दौड़ दौड़ के क़ासिद से राह में॥

* * *

उससे पूछो तुम मेरी आशुफ़्तगी।
ज़ुल्फ़ कह देगी तुम्हारे कान में॥
गर फ़रिश्तावश हुआ कोई तो क्या।
आदमीयत चाहिये इन्सान में॥
जिसने दिल खोया उसीको कुछ मिला।
फ़ायदा देखा इसी नुक़सान में॥

* * *

दिल ही तो है न आये क्यों दम ही तो है न जाये क्यों।
हमको ख़ुदा जो सब्र दे तुझसा हसीं बनाये क्यों॥
लाग हो या लगाव हो कुछ भी नहीं तो कुछ नहीं।
बन के फ़रिश्ता आदमी बज़्मे जहाँ में आये क्यों॥

हाँ नहीं ग़ैरते रक़ीब ख़ैर मैं वेहया सही।
जो न दोबारा आ सके बज़्म से तेरी जाये क्यों॥
फ़िक्र में हम तो रह गये और वह आज कह गये।
देव नहीं तो राज़े दिल हमसे कोई छिपाये क्यों॥

* * *

आँख पड़ती है कहीं पाँव कहीं पड़ता है।
सबको है तुमको ख़बर अपनी ख़बर कुछ भी नहीं॥
काबे जाना भी तो बुतख़ाने से होकर ज़ाहिद।
दूर इस राह से अल्लाह का घर कुछ भी नहीं॥
लामकाँ में भी तो कुछ जलवा नज़र आता है।
बेकसी में तो उधर हूँ कि जिधर कुछ भी नहीं॥
इक जफ़ा तेरी जो कुछ भी नहीं तो सब कुछ है।
इक वफ़ा मेरी कि सब कुछ है मगर कुछ भी नहीं॥

* * *

जलवे मेरी निगाह में कोनों मकाँ के हैं।
मुझसे कहाँ छिपेंगे वो ऐसे कहाँ के हैं॥
खुलते नहीं हैं राज़ जो सोज़े निहाँ के हैं।
क्या फूटने के वास्ते छाले ज़ुबाँ के हैं॥
क़ासिद यहाँ से वर्क़ था पर निस्फ़ राह से।
बीमार की है चाल क़दम नातवाँ के हैं॥

* * *

कभी फ़लक को पड़ा दिलजलों से काम नहीं।
अगर न आग लगादूँ तो दाग़ नाम नहीं॥
वफ़ूरे यास ने याँ कामही तमाम किया।
ज़ुबाने यार से निकली थी नातमाम 'नहीं'॥

* * *

मिले मुझ से तो फ़रमाया तुम्हीं को दाग़ कहते हैं।
तुम्हीं हो माहे कामिल में तुम्हीं रहते हो लाले में॥

* * *

हाथ निकले अपने दोनों काम के।
दिलको थामा उनका दामन थामके॥
घूँट पीकर वादये गुलफ़ाम के।
बोसे ले लेता हूँ ख़ाली जाम के॥
दाव-ए इश्क़। वफ़ा पर यह कहा।
सब बजा लेकिन मेरे किस काम के॥
अब उतर आये हैं वो तारीफ़ पर।
हम जो आदी होगये दुश्नाम के॥
नाल ओ फ़रियाद की ताक़त कहाँ।
बात करता हूँ कलेजा थाम के॥
दाग़ के सब हर्फ़ लिखते हैं जुदा।
टुकड़े कर डाले हमारे नाम के॥

* * *

ऐ फ़लक दे हमको पूरा ग़म तो खाने के लिये।
वह भी हिस्सा कर दिया सारे ज़माने के लिये॥
ज़ाहिदे सद साला आया मैकदे में भूलकर।
ला शराबे कोहना साक़ी इस पुराने के लिए॥
तुमसे बचकर इक वफ़ा हिस्से में अपने लग गई।
तुमने ख़ूबी कौनसी छोड़ी ज़माने के लिये॥
आगया कुछ याद दिल भर आया आँसू गिर पड़े।
हम न रोये थे तुम्हारे मुस्कराने के लिये॥
मर गये तो मर गये हम इश्क़ में नासेह को क्या।
मौत आने के लिए है जान जाने के लिए॥

* * *

जहाँ लग गई कारगर हो गई।
मेरी आह तेरी नज़र हो गई॥
फ़रिश्ते हों मुख़बिर तो क्या कीजिये।
यहाँ बात की वाँ ख़बर हो गई॥
शबे वस्ल ऐसी खिली चाँदनी।
वो घबराके बोले सहर हो गई॥
ग़मे हिज्र से दाग़ मुझको नजात।
यक़ीं था न होगी मगर हो गई॥

यहाँ सुबहे पीरी से पहले ही दाग़।
जवानी चिराग़े सहर हो गई॥

❦ ❦ ❦

हज़रते दाग़ जहाँ बैठ गये बैठ गये॥
और होंगे तेरी महफ़िल से उभरने वाले॥

❦ ❦ ❦

ख़ूब तक़दीर की ख़ूबी ने किया है वर्बाद।
जाबजा मुझको लिये फिरती है शोहरत मेरी॥
कहीं दुनियाँ में नहीं इसका ठिकाना ऐ दाग़।
छोड़कर मुझको कहाँ जाय मुसीबत मेरी॥

❦ ❦ ❦

ज़ाहिद शरावे नावकी तासीर कुछ न पूछ।
अक्सीर है जो हल्क़ के नीचे उतर गई॥
रहती है कब वहारे जवानी तमाम उम्र।
मानिन्द वूये गुल इधर आई उधर गई॥

❦ ❦ ❦

आगे तो नहीं, नहीं सुनी थी।
अब तकिया कलाम होगई है॥
जागीर जुनूँ की क़ैस के वाद।
अव दाग़ के नाम होगई है॥

❦ ❦ ❦

बशर ने ख़ाक पाया लाल पाया या गुहर पाया।
मिज़ाज अच्छा अगर पाया तो सब कुछ उसने भर पाया॥

* * *

खोया गया हूँ दे के पता नामावर को मैं।
अपनी ख़बर को जाऊँ इलाही किधर को मैं॥
मुझको तबाह चश्मे मुरव्वत ने कर दिया।
मिल जाये तो चुराऊँ किसी की नज़र को मैं॥

* * *

इस चमन में गो बरंगे सब्ज़ये बेगाना हूँ।
गुल है रंगीं हो, मैं अपने रंग का दीवाना हूँ॥
मुझ से ऐ गब्रो मुसल्माँ किसलिए इतना तपाक।
क़ाबिले मस्जिद न हरगिज़ लायक़े बुतख़ाना हूँ॥

* * *

याँ दिल में ख़याल और है वाँ मद्दे नज़र और।
है हाल तबीअत का इधर और उधर और॥
ठहरा है वहाँ मशवर-ए क़त्ल हमारा।
लो हज़रते दिल और सुनो ताज़ा ख़बर और॥

* * *

कोई नामोनिशाँ पूछे तो ऐ क़ासिद बता देना।
तख़ल्लुस दाग़ है वह आशिक़ों के दिल में रहते हैं॥

* * *

दाग़ वह बेहतर है जा मरहम बना।
दर्द वह अच्छा जो दवा हो गया॥

❦ ❦ ❦

तुम्हारे शेर में गर्मी है किस क़यामत की।
जले हुए हो मगर दाग़ इन्तहा के तुम॥

❦ ❦ ❦

दाग़ को देख के बोले, यह शख़्स।
आप ही आप जला जाता है॥

❦ ❦ ❦

वह हँसकर देखते हैं दाग़ के दाग़।
किसी की सैर हो गुलशन किसी का॥

❦ ❦ ❦

नाम को दाग़ हूँ मगर ज़ालिम।
तू जलाये तो जल नहीं सकता॥

❦ ❦ ❦

हज़रते दाग़ यह है कूचए क़ातिल उठिये।
जिस जगह बैठते हैं आप तो जम जाते हैं॥

❦ ❦ ❦

दिलको इस आजिज़ी से देता हूँ।
कोई जाने सवाल करता है॥

❦ ❦ ❦

लब से दुश्नाम तो वह दिलसे दुआ देते हैं।
घोल कर ज़हर मुझे आबे बक़ा देते हैं॥

आके बाज़ारे मुहब्बत में ज़रा सैर करो।
लोग क्या कहते हैं क्या लेते हैं क्या देते हैं॥

ग़म से कहीं नजात मिले चैन पायें हम।
दिल खून में नहाये तो गंगा नहायें हम॥

देखते ही मुझे महफ़िल में उन्हें ताब कहाँ।
ख़ुद खड़े होगये कहते हुए बाहर बाहर॥

हिज्र की यह रात कैसी रात है।
एक मैं हूँ या ख़ुदा की ज़ात है॥

यह क्या कहा कि दाग़ को पहचानते नहीं।
वह एक ही तो शख़्स है तुम जानते नहीं॥

यह तौर दिल चुराके हुआ उस निगाह का।
जैसे क़सम के वक़्त हो झूठे गवाह का॥

यह क्या कहा कि मेरी बला भी न आयेगी।
क्या तुम न आओगे तो क़ज़ा भी न आयेगी॥

अजब अपना हाल होता जो विसाले यार होता।
कभी जान सिदक़े होती कभी दिल निसार होता॥

जो तुम्हारी तरह तुम से कोई झूठे वादे करता।
तुम्हीं मुंसिफ़ी से कहदो तुम्हें ऐतबार होता॥
तेरे वादे पर सितमगर अभी और सब्र करते।
अगर अपनी ज़िन्दगी का हमे ऐतबार होता॥
तुम्हें नाज़ हो न क्योंकर कि लिया है दाग़ का दिल।
यह रकम न हाथ लगती न यह इफ़्तख़ार होता॥

तुमने बदले हम से गिन गिन के लिये।
हमने क्या चाहा था इस दिन के लिए॥
फ़ैसला हो आज मेरा आप का।
यह उठा रक्खा है किस दिन के लिए॥
दिल के लेने को ज़मानत चाहिए।
और इतमीनान ज़ामिन के लिए॥
मैकशो अब आई शायद फ़स्ले गुल।
बुलबुलों ने चोंच में तिनके लिये॥

भवें तनती हैं ख़ंजर हाथ में है तन के बैठे हैं।
किसी से आज बिगड़ी है कि वह यूँ बन के बैठे हैं॥
य गुस्ताख़ी य छेड़ अच्छी नहीं है ऐ दिले नादाँ!
अभी वह रूठ जायँगे अभी वह मन के बैठे हैं॥

तलाशे मंज़िले मक़सद की गर्दिश उठ नहीं सकती।
कमर खोले हुए रस्ते में हम रहज़न के बैठे हैं॥
निगाहे शोख़ चश्मे शौक़ में दर पर्दा छनती है।
कि वह चिल्मन में हैं नज़दीक हम चिल्मन के बैठे हैं॥

———:o:———

आसी

आसी उपनाम; मौलाना शाह अब्दुल अलीम नाम; स्थान सिकन्दरपुर, ज़ि० बलिया; जन्म-संवत् १८९०; मृत्यु संवत् १९७२।

आसी प्रायः ग़ाज़ीपुर में अधिक रहते थे। इसीलिये ये 'आसी' ग़ाज़ीपुरी, के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। अपने समय में ये अरबी और फ़ारसी के अद्वितीय पंडित माने जाते थे। अरबी फ़ारसी पर इनका मातृभाषा के समान अधिकार था। इनके सैकड़ों शिष्य हैं। शायरी का शौक़ इनको लड़कपन से ही था। कविता की कला इन्होंने नासिख़ के ख़ान्दान से सीखी थी। किसी समय इनकी कविता कठिन शब्दों और दुरूह भावों से भरी हुई होती थी, पर जब से इन्होंने इश्क़ मजाज़ी छोड़कर इश्क़ हक़ीक़ी की राह पकड़ी, तब से इनकी कविता में भाषा और भाव दोनों परिमार्जित और सुबोध हो गये।

आसी सूफ़ी मज़हब के थे। इससे इनकी कविता में आत्म-रहस्य का ही कवित्वमय वर्णन अधिक है। ये बड़े सात्विक विचार के मनुष्य थे। मुसलमानों और हिन्दुओं के साथ इनका एक सा प्रेम और व्यवहार था। इनके आचरण का प्रभाव इनके महल्ले के लोगों पर बहुत अच्छा पड़ता था।

आसी की कविता में भक्ति, वैराग्य, विरह और प्रेम का अद्भुत वर्णन है। ऐसा सरस और सुन्दर वर्णन उर्दू की पुरानी कविता में बहुत कम देखने को मिलता है।

आसी को अपनी कविताओं का जमा करना और छपाना पसंद नहीं था। इनकी कविताओं के काग़ज़ रद्दी हालत में इधर उधर बिखरे पड़े रहते थे। शिष्यों ने उन्हें जमा कर लिया था। अब वही पुस्तकाकार मिलते हैं। जौनपुर, गोरखपुर और काशी इनका दीवान छपा था। यहाँ आसी की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

इतना तो जानते हैं कि आशिक़ फ़ना हुआ।
और इससे आगे बढ़के ख़ुदा जाने क्या हुआ॥
पहचानता वो अब नहीं दुश्मन को दोस्त से।
किस क़ैद से असीरे मुहब्बत रिहा हुआ॥

जीने ने यहाँ के मार डाला आसी।
सुनते हैं कि फिर हश्र में जीना होगा॥

* * *

या मुझको तेरा हुस्न न भाया होता।
या हर रगो पै में तू समाया होता॥
या दिल ही में जलवागर अगर होना था।
हर जुज़ वो बदन को दिल बनाया होता॥

* * *

नावके हसरते वस्लो ग़मे .फ़ुरक़त मुझको।
अपनी हस्ती से किसी तरह हो ग़फ़लत मुझको॥
हूँ गुनहगार मगर हसरते दीदार भी है।
जलवा तेरा हो तो दोज़ख़ भी है जन्नत मुझको॥
मैं भी बातिल मेरी हस्ती भी सरासर बातिल।
यह सुझाई है अनलहक़ की हक़ीक़त मुझको॥
नूरे .ख़ुरशेद सितारों को मिटा देता है।
तुम हो पहलू में तो महफ़िल भी हो ख़िलवत मुझको॥
बेहिजाबी कभी मुमकिन नहीं जब तक मैं हूँ।
ख़लल अन्दाज़ हूँ कर दीजिये रुख़सत मुझको॥

* * *

'आसी' जो गुल से गाल किसी के हुये तो क्या।
माशूक़ वह कि सब से निराला कहें जिसे॥

* * *

अहदे शबाब अहदे वफ़ाये निगार है।
कितना हो पायदार हो नापायदार है॥
हस्ती है ऐन मौजए दरियाय नेस्ती।
दरकार क़ूवते निगहे ऐतबार है॥
बुनियादे रोज़गार की ना महकमी न पूछ।
गुम्बद हुबाब का तो बहुत इस्तवार है॥
वायज़ मेरा मुआमला मेरे ख़ुदा को सौंप।
मै हूँ गुनाहगार वो आमर्ज़गार है॥
मस्ती में कोई राज़ जो आसी से फ़ाश हो।
माज़ूर है अभी कि नया बाद:ख़्वार है॥

* * *

बेहिजाबी यह कि हर सूरत में जलवा आशकार।
घूँघट उस पर वह कि सूरत आजतक नादीद: है॥

* * *

पड़े हैं सूरते नक़्शे क़दम न छेड़ो हमें।
हम और ख़ाक में मिल जायँगे उठाने से॥

* * *

बरबाद किया जिससे जहाँ आँख लड़ाई।
ख़ाक उड़ती है आलम में तेरे मौजे नज़र से॥

* * *

लालवो गुल का य दीवाना तमाशाई न था।
बाग़ में हर फूल तेरे हुस्न का आईनः था॥

* * *

कुछ न कुछ वादे मुख़ालिफ़ बज़्मे हस्ती में चला।
पीरी आई है तो मिसले शमा थर्राता हूँ क्यों?

* * *

उदू क्या मौत है आने से उसके हम जो डरते हैं।
तू क्या उम्रे रवाँ है जो तेरे जाने से मरते हैं॥

* * *

रहे मुल्के अदम का नाम सुनकर दम निकलता है।
य वो रस्ता है जिसमें हर मुसाफ़िर मर के चलता है॥

* * *

इश्क़ कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है॥

* * *

वहाँ पहुँच के य कहना सबा सलाम के बाद।
कि तेरे नाम की रट है ख़ुदा के नाम के बाद॥

* * *

समझो हमारे इश्क़ की हद अपने हुस्न से।
आईनादार हालते बुलबुल है रूय गुल॥

* * *

हाय ! इक चाँद के टुकड़े ने सितारों की तरह।
मुद्दतों शाम से ता सुबह जगाया हमको ॥

* * *

घट गई वस्ल में फ़ुरक़त में बढ़ी थी जितनी।
रात आशिक़ की कभी दिन के बराबर न हुई ॥

* * *

बेख़ुदी ले गई कहाँ हमको।
देर से इन्तज़ार है अपना ॥

* * *

ताब दीदार जो लाये मुझे वह दिल देना।
मुँह क़यामत में दिखा सकने के क़ाबिल देना ॥

* * *

आशिक़ी में है महवियत दरकार।
राहते वस्ल व रंजे फ़ुरक़त क्या?
जिसमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब ऐसी सोहबत क्या?
उससे मिल जो हमेशा साथ रहे।
बेवफ़ाओं से लुत्फ़े सोहबत क्या?
और हिम्मत बलन्द कर ऐ शेख़!
तमअ व ख़ौफ़ की इबादत क्या? ॥

'आसी' ए मस्त का कलाम सुनो।
वाज़ क्या पन्द क्या नसीहत क्या ?

बुरा क्यों मानें हम जो भेस चाहो शौक़ से बदलो।
हमारी ही नुमाइश है तुम्हारी ख़ुदनुमाई में॥
अभी ख़त भी नहीं आया कि होते हो जुदा हमसे।
तुम अपने हुस्न से भी बढ़ के निकले बेवफ़ाई में॥

बनूँ बगूला वो ख़ाक़ हूँ मैं बहूँ लहू बनके हूँ वो पानी।
जलाऊँ क़िस्मत वो आग हूँ मैं उड़ाऊँ ख़ाक अपनी वह हवा हूँ॥

हुबाबे बहर यह कहते हुए ऊपर उभरते हैं।
फ़ना दम भर में हैं दम आशनाई का जो भरते हैं॥
कटे यह रात क्योंकर हाय क्या सदमे गुज़रते हैं।
न वह आते न सब्र आता न नींद आती न मरते हैं॥
नतीजा ज़िन्दगी का इश्क़बाज़ी के सिवा क्या है।
हक़ीक़त में वही जीते हैं बस तुम पर जो मरते हैं॥
तुम्हें कसरत से नफ़रत और महवे ज़ौक़ वहदत हो।
कुछ इससे और बढ़ जाओ ता वहदत हो न कसरत हो॥

मेरी नज़रों में तो हो डर तेरा तेरी मुहब्बत हो।
न दुनिया हो न उक़बा हो न दोज़ख़ हो न जन्नत हो॥
सिवा तेरे न मायल हो किसी पर वह तबीअत दे।
तेरी उल्फ़त हो तेरा इश्क़ हो तेरी मुहब्बत हो॥
मुझे हर तरह की ख़ुद बीनियों से कर दे बेगाना।
जो आईना भी मैं देखूँ नुमायाँ तेरी सूरत हो॥

जान दो दिन की है मेहमान सताते क्यों हो?
आप रोते हुए आये हैं रुलाते क्यों हो?
तुम नहीं कोई तो सब में नज़र आते क्यों हो?
सब तुम्हीं तुम हो तो फिर मुँह को छिपाते क्यों हो?
हमने माना कि वो आँखें नहीं जादू 'आसी'।
रात भर वस्ल में फिर उनको जगाते क्यों हो?

मुँह तेरा चश्मे सख़ुन संज की तस्वीर न हो।
जो ख़मोशी में भरी शोख़िए तक़रीर न हो॥
जिसको देखा उसे छाती से लगाये देखा।
दिल जिसे कहती है ख़िलक़त तेरी तस्वीर न हो॥
वह भी कुछ इश्क़ है जो दर्द की लज़्ज़त न चखे।
यह भी नाला है जो हसरतकशे तासीर न हो॥

हाय उस शख़्स की क़िस्मत जिसे वह रोग मिले।
जुज़ तेरे मिलने के जिसकी कोई तद्बीर न हो॥

* * *

कहाँ दिल और कहाँ उसके हुस्न का जलवा।
किया है इश्क़ ने कूज़े में बन्द दरिया को॥
हमारे ख़ानए दिल को अगर किया बर्बाद।
कहीं जगह न मिलेगी तेरी तमन्ना को॥
कहीं किनारा है उसके मुहीते हिम्मत का।
जो ऐन प्यास में समझे सुराब दरिया को॥
कभी न जोशे जुनूँ में न पाँउँ में ताक़त।
कोई नहीं जो उठा लाये घर में सहरा को॥

* * *

जो यह ज़िद है कोई बुलबुल की सूरत नारः ज़न क्यों हो?
कोई गुलफ़ाम क्यों हो गुलबदन गुल पैरहन क्यों हो?
हमारे बाद तू बदनाम ऐ रश्के चमन क्यों हो?
हमें जब डूब हा मरना तेरा चाहे ज़क़न क्यों हो?
तुम्हीं सच सच बताओ कौन था शीरीं की सूरत में।
कि मुश्ते ख़ाक की हस्रत में कोई कोहकन क्यों हो?
किसी परवाने के जल बुझने का ग़म हो जो ऐ आसी!
निकलकर कोई ख़िलक़त से चिराग़े अंजुमन क्यों हो!

* * *

हाय ! इक चाँद के टुकड़े ने सितारों की तरह ।
मुद्दतों शाम से ता सुबह जगाया हमको ॥
हम न कहते थे कि ऐ दिल न किसी पर जी दे ।
ज़िन्दगी रोग है अब तुझको बता या हमको ॥
देखिए ख़ाक में हम मिल गये मानिन्द सरश्क ।
आपने किसलिए आँखों से गिराया हमको ॥
जान हम समझे थे जिसको वह हमें दिल समझा ।
हाय किस प्यार से पहलू में बिठाया हमको ॥
वस्ल की रात भी उस रश्के चमन ने 'आसी' ।
सूरते शबनमे गुल .खूब रुलाया हमको ॥

* * *

कहते हो कि और को न चाहो ।
मालूम हुआ कि तुम .खुदा हो ॥
हाँ बायज़ो और को न चाहो ।
अपने दिल के तो आशना हो ॥

* * *

मुफ़लिसी पज़मुर्दगी है .गुञ्चए गुलशन से पूछ ।
आये क्या मुँह पर हँसी मुट्ठी में जब तक ज़र न हो ॥
बुलबुले की तरह ऐ दीवानए नाज़ु.क दिमाग़ ।
सर वह पैदा कर कि जिसको हाजते अफ़सर न हो ॥

आख़िर इक दिन ऐ गुलेतर देख मुरझाना पड़ा।
इस क़दर भी अपने जामे से कोई बाहर न हो॥
आँसू आँखों में भर आये सुन के 'आसी' का कलाम।
दर्द हो दिल में तो बातों में असर क्योंकर न हो॥

है इश्क़ वह शोला कि फुका जाता है तन मन।
इस आग को भड़का के ख़ुदी मेरी जला दो॥

हाय! मुँह फेर के ज़ालिम ने किया काम तमाम।
वस्ल तो वस्ल जुदाई भी मुयस्सर न हुई॥
घट गई वस्ल में फ़ुर्क़त में बढ़ी थी जितनी।
रात आशिक़ की कभी दिन के बराबर न हुई॥
बेकसी में शबे ग़म मौत तो सोई थी कहाँ।
साँस आई भी जो कमबख़्त तो खंज़र न हुई॥

अदावत इन्तहाए दोस्ती है।
अदूए जाँ है मेरा यार जानी॥
अनलहक़ और मुश्ते ख़ाके मंसूर।
ज़रूर अपनी हक़ीक़त उसने जानी॥
हज़ारों हस्रतें उसमें भरी थीं।
ग़ुबार उस क़ाफ़िले की है निशानी॥

जो बालों में सियाही रह गई है।
बुढ़ापे में है यह दाग़े जवानी॥
भला आसी के शिकवों का गिला क्या?
मुहब्बत को है लाज़िम बदगुमानी॥

❦ ❦ ❦

दर्दे दिल कितना पसन्द आया उसे।
मैंने जब की आह उसने वाह की॥
राहे हक़ की है अगर 'आसी' तलाश।
ख़ाके रह हो मर्दे हक़ आगाह की॥

❦ ❦ ❦

वस्ल की शब दरो दीवार से आई आवाज़।
ख़्वाहिशों को जो पछाड़े वो बड़ा रुस्तम है॥
क्यों न दी जान किसी पर कि न फिर मौत आती।
ज़िन्दगी मुफ़्त गँवाई य बड़ा मातम है॥
हाय! क्या बोझ बुढ़ापे में भरा था अल्लाह।
सर तो सीने में घुसा पीठ कमर तक ख़म है॥
इश्क़ कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है॥

❦ ❦ ❦

पसे मर्ग तो उसको मैं देखूँ भला कहीं ऐसे भी वक़्त ख़ुदा दे मुझे।
सरे गोर जो आये वह माहे लक़ा कोई ख़्वाबे लहद से जगा दे मुझे॥
तेरे वारे फ़िराक़ से पिस मैं गया दिल ग़मज़दा सीने में ख़ून हुआ।
मगर अब भी तो कोई वरंगे हिना तेरे क़दमों से लेके लगा दे मुझे॥
तेरे कूचे में आके मरा हूँ सनम न है आँखों में जान न सीने में दम।
य पड़ा जो हूँ सूरते नक़्शे क़दम कोई ख़ाक में आके छिपा दे मुझे॥

* * *

अयाँ ऐसे कि हर शै में निहाँ थे।
निहाँ ऐसे कि हर शै से अयाँ थे॥
किसी ने भी न देखा हम जहाँ थे।
बदन थी ख़ल्क़ हम मानिन्दे जाँ थे॥
जब उस कूचे की हासिल थी गदाई।
ख़ुदावन्दा ज़मीनो आसमाँ थे॥
कुछ ऐसे नश्शए हस्ती से बहके।
नहीं जाना कहाँ आये कहाँ थे॥
सरापा दर्द थे मानिन्द दिल हम।
मरज़ थे पर नसीबे दोस्ताँ थे॥
अयाँ ऐसे कि थे सबसे निहाँ हम।
निहाँ ऐसे कि हर शै में अयाँ थे॥
उठे हम उठ गया पर्दा दुई का।
हमारे उसके बस हम दर्मियाँ थे॥

न रहते थे ठिकाने एक साइत।
कभी हम भी हवासे आशिक़ाँ थे॥

❦ ❦ ❦

हाँ वो आये किधर से आये कहाँ वो ठहरे किधर सिधारे।
हाँ मैं हम मह्व थे कुछ ऐसे कि उनकी भी कुछ ख़बर नहीं है॥

❦ ❦ ❦

इन्हीं कानों से अनलहक़ के सुने हैं नारे।
आदमी इश्क़ में क्या जानिए क्या होता है॥
हुस्न की चारःगरी का है बड़ा शोर मगर।
दर्दे उल्फ़त कहीं मुहताजे दवा होता है॥
इश्क़ कामिल हो तो मुर्शिद नहीं ऐसा कोई।
ख़ुद वही क़िब्ला वही क़िब्ला नुमा होता है॥
दिल जो था ख़ास घर उसका न बनाया अफ़सोस॥
मसजिदो दैर बनाया करो क्या होता है॥

❦ ❦ ❦

लाई अदम में किश्तिए उम्रे रवाँ मुझे।
पहुँचा दिया है बैठे बिठाये कहाँ मुझे॥
क्योंकर कहूँ कि चार निगाहें उदू से कीं।
आधी निगाह ने तो किया नीमजाँ मुझे॥
लाई अदम से ले वही चल जानिबे अदम।
कैसी रफ़ीक़े रह मिली उम्रे रवाँ मुझे॥

वह आह कर कि फूँक दे दोनों जहान को।
भड़का रहा है सोलए सोज़े निहाँ मुझे॥
'आसी' शहीदे इश्क़ हूँ मुर्दा न जानना।
मरकर मिली है ज़िन्दगीए जावदाँ मुझे॥

* * *

फिर मिज़ाज उस रिन्द का क्योंकर मिले।
जिसको उसके हाथ से साग़र मिले॥
काबा बुतख़ाना कलीसा सौमेआ।
फिरते हैं दर दर कि तेरा घर मिले॥
कुछ न पूछो कैसी नफ़रत हमसे है।
हम हैं जबतक वह हमें क्योंकर मिले॥

* * *

मिलने की यही राह न मिलने की यही राह।
दुनिया जिसे कहते हैं अजब राहगुज़र है॥
वह दौर चला जामे मये बेख़बरी का।
हम वह हैं कि वह हम नहीं इतनी भी ख़बर है॥
उम्र अपनी रवाँ है तो अक़ामत से सरोकार।
समझे अगर इन्सान तो दिन रात सफ़र है॥
शर्म आती है कहते हुए आशिक़ हूँ किसी का।
नालों में न तासीर न आहों में असर है॥

अंजाम की मंज़िल है कड़ी देखिए क्या हो।
दुनिया में जो आये हो य आग़ाज़े सफ़र है॥
ज़ुज़ नाम निशाँ और पता कुछ नहीं उसका।
उश्शाक़ की हस्ती भी हसीनों की कमर है॥

❦ ❦ ❦

हाँ, यह माना कि जो निकले भी तो मर कर निकले।
पर यह हैरत है कि उस कूचे से क्योंकर निकले॥
दिल ही खो बैठे जो सीने से लगाया उनको।
दिल जिन्हें समझे हम अफ़सोस वो दिलवर निकले॥

❦ ❦ ❦

नज़ारा तेरा बरमला चाहता हूँ।
कि पर्दे की सूरत उठा चाहता हूँ॥
ख़ुदा से तेरा चाहना चाहता हूँ।
मेरा चाहना देख क्या चाहता हूँ॥

❦ ❦ ❦

ज़र्रे से जो देखने में कमतर होंगे।
तेरे लिए वह भी मेह्रो अनवर होंगे॥
ऐ दिल! न बराबरी किसी की करना।
हाँ ख़ाक के इक रोज़ बराबर होंगे॥

❦ ❦ ❦

दोहे

भुज फरकत तोरे मिलन को, स्रवन सुनन को बैन।
मन माला तोहि नाम का, जपत रहत दिन रैन॥
कर कंपै लिखनी डिगै, अंग अंग थहराय।
सुधि आवत छाती फटै, पाती लिखी न जाय॥
मन माँ राखूँ मन जरे, कहूँ तो मुख जरि जाय।
गूँगे का सपना भयो, समझ समझ पछताय॥
हम तुम सामी एक हैं, कहन सुनन को दोय।
मन को मन से तोलिए, दो मन कभी न होय॥
काजर दूँ तो किर किराय, सुरमा दिया न जाय।
जिन नैनन माँ पिउ बसैं, दूजा कौन समाय॥
मैं चाहूँ कि उड़ चलूँ, पर विन उड़ा न जाय।
काह कहौं करतार को, जो पर ना दिया लगाय॥
ओस ओस सब कोई कहे, आँसू कहे न कोय।
मोहिं विरहिन के सोग में, रैन रही है रोय॥

——:०:——

हाली

हाली उपनाम; शम्सुलउल्मा मौलाना अलताफ़ हुसेन 'हाली' पानीपती नाम: पिता का नाम ख़्वाज़ा ईज़द्बख़्श; स्थान पानीपत (करनाल); जन्म-संवत् १८९७; मरण-संवत् १९७१ ।

हाली के पिता इनकी नौ वर्ष की अवस्था में ही मर गये थे, और माता का दिमाग़ ठीक नहीं रहता था, इससे इनको प्रारंभिक शिक्षा उचित रीति से नहीं मिली । पहले इन्हें क़ुरआन कंठस्थ कराया गया । फिर इन्हें फ़ारसी और अरबी की शिक्षा दिलाई गई । विद्या की ओर इनकी स्वाभाविक रुचि थी । ये आगे पढ़ना चाहते थे, पर कुटुंबियों और मित्रों ने आग्रह करके १७ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह कर दिया। इन्होंने विवाह को विद्या-प्राप्ति में बड़ा बाधक समझा। इनकी ससुराल में धन-दौलत की कमी न थी। स्त्री को उसके नैहर भेजकर ये चुपके से दिल्ली भाग आये और वहाँ दो वर्ष तक अरबी फ़ारसी के उच्चकोटि के साहित्य और छन्दःशास्त्र तथा तर्क का अध्ययन करते रहे। इनकी शिक्षा समाप्त भी न होने पाई थी कि घरवाले आकर इन्हें वापस ले गये। घर पर भी ये वर्ष डेढ़ वर्ष तक स्वयं पुस्तकावलोकन करते रहे। फिर कुछ धन-संग्रह के लिये ये सं० १९१३ में हिसार के कलक्टर के दफ़्तर में एक छोटे पद पर नौकर हुये। पर कई कठिनाइयाँ

उपस्थित होने पर ये नौकरी छोड़कर फिर घर आये। इतने में १८५७ का ग़दर हुआ। इससे कई वर्ष तक ये घर पर और बेकार बैठे रहे। इस अवकाश के समय में भी पानीपत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों से ये उनके मुख्य ज्ञान की शिक्षा लेते रहे। फिर ये पंजाब गवर्नमेंट के बुकडिपो में नौकर हुये। वहाँ ये अंग्रेज़ी के उर्दू-अनुवाद की भाषा शुद्ध किया करते थे। इस काम पर ये चार वर्ष तक रहे। फिर लाहौर के ऐंग्लो अरेबिक स्कूल में मुदर्रिस हो गये और वहाँ सं० १९४८ तक काम करते रहे। दिल्ली में ये उर्दू के महाकवि ग़ालिब से भी मिला करते थे और अर्बी फ़ारसी के कठिन शेरों का अर्थ पूछा करते थे। इन्हें भी कविता का कुछ शौक़ पैदा हुआ। इन्होंने कुछ ग़ज़लें फ़ारसी में लिख कर ग़ालिब को दिखलाईं। ग़ालिब की यह आदत थी कि अपने मिलने वालों को वे कविता करने से रोकते थे। पर हाली की ग़ज़ल देखकर उन्होंने कहा—यद्यपि मैं किसी को शेर कहने की सम्मति नहीं दिया करता, पर तुम्हारे सम्बंध में मेरा यह विचार है कि यदि तुम शेर न कहोगे तो अपनी तबीयत पर घोर अत्याचार करोगे। उस समय से ग़ालिब इनके काव्यगुरु हुये।

उस समय तक उर्दू के कवि रदीफ और क़ाफ़िये के हाँ चक्कर में पड़े हुये थे। किसी ख़ास विषय पर हिन्दी-कवियों की तरह क्रमबद्ध कविता वे करते ही न थे। सं० १९३१ में कर्नल

हालराइड ने लाहौर में एक कवि-सभा स्थापित की। उसमें समस्या-पूर्ति के बदले किसी निर्द्धारित विषय पर कविता पढ़ी जाती थी। इस कवि-सभा में हाली और प्रो० आज़ाद ऐसे दो प्रतिभाशाली कवि सम्मिलित हुये। इन्होंने उस दिन से उर्दू-कविता की काया पलट कर दी। कर्नल हालराइड शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष और उस कवि-सभा के संरक्षक थे। हाली ने उस कवि-सभा में चार मसनवियाँ लिखकर पढ़ी थीं—१—बरखा रुत; २—निशाते उमेद; ३—मुनाज़रा रहमो इन्साफ़; ४—हुब्बे वतन। उर्दू-संसार में ये चारों मसनवियाँ एक नई चीज़ थीं। इससे इनका बड़ा आदर और प्रचार हुआ।

चार वर्ष बाद हाली एंग्लो अरेबिक स्कूल, दिल्ली के शिक्षक हुये। कुछ दिनों तक ये लाहौर के चीफ़्स कालेज में भी शिक्षक रहे थे, पर वह काम इन्हें पसंद नहीं था। जब ये अरेबिक स्कूल में अध्यापक थे, उन्हीं दिनों हैदराबाद के प्रधान मंत्री उसे देखने आये थे। उन्होंने अरबी फ़ारसी और उर्दू के विद्वानों, कवियों और सुलेखकों के लिये कुछ वृत्तियाँ प्रदान की थीं। उन्हीं में से हाली को ७५) मासिक की एक वृत्ति मिली। यही वृत्ति, जब ये अलीगढ़ कालेज के डेपुटेशन में हैदराबाद गये थे, बढ़ाकर रुपये मासिक कर दी गई थी, जो इनको अंत समय तक मिलती रही।

मौलाना हाली सर सैयद अहमद के बड़े समर्थकों में थे। सर सैयद ने इन्हें अलीगढ़ कालेज का ट्रस्टी बनाया। वे प्रत्येक काम में इनकी सम्मति लेते रहते थे। हाली ने शुद्ध भाव और सच्ची लगन से जाति-हित का काम अपनाया। सर सैयद की सम्मति से हाली ने अपना सुप्रसिद्ध मुसद्दस लिखा। इस मुसद्दस के लिखने में हाली ने अद्भुत प्रतिभाशक्ति का परिचय दिया है। मुसद्दस को पढ़कर सर सैयद ने जो पत्र हाली को लिखा, उसका कुछ अंश यह है—

पाँच जिल्द मुसद्दस पहुँचे। जिस वक़्त हाथ में आई जब तक ख़त्म न हुई हाथ से न छूटी और जब ख़त्म हुई तब अफ़सोस हुआ कि क्यों ख़त्म होगई। ×× किस सफ़ाई और ख़ूबी से यह नज़्म तहरीर हुई है—बयान से बाहर है। ×× मेरी निस्बत जो इशारा उस नज़्म में है उसका शुक्र करता हूँ और आपकी मुहब्बत का असर समझता हूँ। जब ख़ुदा पूछेगा कि तू क्या लाया, मैं कहूँगा कि हाली से मुसद्दस लिखवा लाया हूँ और कुछ नहीं। ख़ुदा आपको जज़ाये ख़ैर दे और क़ौम को इससे फ़ायदा बख़्शे। ××

पार्क होटल, शिमला।
 १०-६-१८७९।

आपका अहसानमन्द ताबेदार
 सैयद अहमद

इससे पाठक समझेंगे कि मुसद्दस कितनी क़ीमती चीज़ है

इसका अनुवाद पश्तो और सिन्धी बोलियों में भी हो गया है। हिन्दी में भी भारत-भारती की कविता इसी ढंग की है। उर्दू-कविता के सुधार के लिये हाली ने "शेर और शायरी," नाम की एक पुस्तक गद्य में लिखी। सर सैयद की जीवनी भी इन्हों ने ही लिखी, जिसका नाम 'हयाते जावेद' है और जो इनकी मृत्यु के बाद छपी। यह हाली का सब से बड़ा गद्य-ग्रंथ है। अपने उस्ताद ग़ालिब की यादगार में गुरुभक्त शिष्य हाली ने 'यादगारे ग़ालिब' लिखा है, जो अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। ग़ालिब के मरने पर हाली ने जो शोक-सूचक कविता लिखी है, वह बड़ी ही करुणोत्पादक है। उसके कुछ शेर ये हैं—

बुलबुले हिन्द मर गया हैहात।
जिसकी थी बात बात में इक बात॥
नुक्तादाँ नुक्ता संज नुक्ता शनास।
पाकदिल पाकज़ात पाक सिफ़ात॥
लाख मज़मून और उसका एक ठठोल।
सौ तकल्लुफ़ और उसकी सीधी बात॥
एक रोशन दिमाग़ था न रहा।
शहर में इक चिराग़ था न रहा॥
नक़्दे मानी का गंजदाँ न रहा।
ख़ाने मज़मूँ का मेज़बाँ न रहा॥

कोई वैसा नज़र नहीं आता।
वह ज़मीं और वह आस्माँ न रहा॥
साथ उसके गई बहारे सख़ुन।
अब कुछ अन्देश-ए ख़िज़ाँ न रहा॥
क्या है जिसमें वह मर्द कार न था।
इक ज़माना कि साज़गार न था॥
शाइरी का किया हक़ उसने अदा।
पर कोई उसका हक़ गुज़ार न था॥
ख़ाकसारों से ख़ाकसारी थी।
सरबुलन्दों से इन्किसार न था॥
बे रियाई थी ज़ुहद के बदले।
ज़ुहद उसका अगर शआर न था॥
ऐसे पैदा कहाँ हैं मस्तो ख़राब।
हमने माना कि होशियार न था॥
हिन्द में नाम पायगा अब कौन।
सिक्का अपना बिठायगा अब कौन॥
उसने सबको भुला दिया दिल से।
उसको दिल से भुलायगा अब कौन॥
उससे मिलने को याँ हम आते थे।
जाके दिल्ली से आयगा अब कौन॥

था विसाते स.खुन में शातिर एक।
हमको चालें बतायगा अब कौन॥
शेर में ना तमाम है हाली।
ग़ज़ल उसकी बनायगा अब कौन॥
किसको जाकर सुनायें शेरो ग़ज़ल!
किससे दादे सखु.नवरी पायें॥
पस्त मज़मूँ है नोह-ये उस्ताद।
किस तरह आस्माँ पं पहुँचायें॥
अब न दुनिया में आयँगे यह लोग।
कहीं ढूँढ़ें न पायँगे यह लोग॥
उठ गया था जो मायेदार स.खुन।
किसको ठहरायें अब मदारे स.खुन॥
मज़हरे शान हुस्ने फ़ितरत था।
मानिये लफ़्ज आदमीयत था॥

उन ग्रंथों के सिवाय इन्होंने शेख़सादी और हकीम नासिर .खुसरो का भी जीवनचरित्र लिखा है।

हाली की कविता में सबसे बड़ी विशेषता भाषा की सरलत और भावों की सुबोधता है। भाषा और भाव का निकट सम्बंध ग़ालिब की कविता का ख़ास गुण था, वही गुण हाली की कविता में भी वर्तमान है। पहले लोग इनकी कविता को नीरस

और कोरी तुकबंदी कहते थे, पर जनता की कसौटी पर वह सबसे खरी उतरी और थोड़े ही समय में उसका सर्वत्र प्रचार होगया। उसकी उपयोगिता ने उसे सबसे अधिक सरस बन दिया। हाली के कई ग्रंथों के अनुवाद भिन्न भिन्न भाषाओं में हो गये हैं। मुनाजाते बेवा का अनुवाद कोई दस भाषाओं में हुआ है। इससे बढ़कर उसकी लोकप्रियता और क्या होगी कि उसका अनुवाद संस्कृत में भी होगया है। हाली की रुबाइयों का अनुवाद अंग्रेज़ी में भी हुआ है। इनकी कविताएँ और निबंध सिन्ध, पंजाब और युक्तप्रदेश के विश्वविद्यालयों-द्वारा स्वीकृत पाठ्य-पुस्तकों में स्थान पाये हुये हैं।

हाली ने उर्दू की सुप्रसिद्ध मसनवी 'गुलज़ार नसीम' पर आक्षेप किया है और उसमें दोष दिखलाये हैं। इससे कुछ लोग उन पर यह दोष लगाते हैं कि उर्दू में सर्वश्रेष्ठ मसनवी लिखने का गौरव एक हिन्दू कवि को मिला हुआ देखकर हालीने बुरी नीयत से उसकी समालोचना की है। पर हाली का स्विभाव ऐसा नहीं था। ये बड़े न्यायप्रिय, साधु प्रकृति, गुणग्राहक और मज़हबी कट्टरता से पाक मुसलमान थे। इनसे मिलने वाले लोग कहते हैं कि ये कभी किसी की बुराई न करते थे। 'गुलज़ार नसीम' की जो कड़ी समालोचना इन्होंने की है, संभव है, उसमें इनकी भ्रांति रही हो, पर वह बुरी

नीयत से की गई है, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं देख पड़ता। बल्कि इसके विरुद्ध हाली की साहित्यिक निष्पक्षता का एक प्रमाण हिन्दी वालों के पास भी है। कई वर्ष हुये, हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक पंडित पद्मसिंह शर्मा ने "सतसई-संहार" नामक एक लेख सरस्वती में लिखा। जिसमें प्रसंगवश उन्होंने बिहारी के एक दोहे को उर्दू के एक शेर से बढ़कर बता दिया। इस पर विवाद उठ खड़ा हुआ। शर्मा जी ने हाली के सामने यह मामला पेश किया। अस्वस्थ होने पर भी हाली ने जो उत्तर दिया, वह इनकी योग्यता के साथ साथ इनकी निष्पक्षता का भी द्योतक है। यहाँ हम उस पत्र की प्रतिलिपि उद्धृत करते हैं—

पानीपत,

६ दिसम्बर, सन् १९१०

जनाब मन, इनायत नामे का जवाब भेजने में इस सबब से देर हुई कि मैं आँखों की शिकायत के सबब लिखता पढ़ता बहुत कम हूँ। अक्सर तहरीरों में दूसरे का माहताज रहता हूँ और बग़ैर सख़्त ज़रूरत के जवाब नहीं लिखता।

बिहारी-सतसई के दोहे और एक उर्दू शेर के मुताल्लिक़ जो आपने मेरी राय दरयाफ़्त की है सो मेरे नज़दीक शेर को दोहे के मज़मून से कुछ निसबत नहीं। शाइर कैसा ही नामुम-किनउल्वक़ूअ मज़मून बाँधे, जब उसके साथ गोया की क़ैद

लगा दी, फिर नामुमकिन नामुमकिन नहीं रहता।

मसलन—ज़ैद वे ऐब होने में गोया फ़रिश्ता है; या घोड़ा क्या है हवा है; या उसके दाँतों की बत्तीसी गोया मोतियों की लड़ी है; या उसका चेहरा चौदहवीं रात का चाँद है। पस जब कि दोहे के मज़मून में 'मानो' 'यानी' 'गोया' का लफ़्ज़ मौजूद है तो उसमें कोई इस्तिहाल यानी अदमइमकान बाक़ी नहीं रहता। बरख़िलाफ़ इसके शेर का मज़मून बिलकुल दायरे इमकान से ख़ारिज और नामुमकिनउल्-वक़ूअ है। मोतरिज़ जिस दलील से मज़मून शेर से मुताल्लिक़ हद्द दरजे की नज़ाकत साबित करता है उससे नज़ाकत का सबूत नहीं बल्कि उसकी नफ़ी होती है।

लखनऊ के एक नामवर शाइर ने अपनी मसनवी में बाज़ार की रौनक़ और चहल-पहल इस तरह बयान की है कि "बाज़ार में आवे गौहर का छिड़काव होता है"—ज़ाहिर है कि इस बयान से बजाय इसके कि बाज़ार की रौनक़ साबित हो यह ख़याल होता है कि वहाँ ख़ाक उड़ती होगी; क्योंकि आवे-गौहर का छिड़काव ख़ाक को दबा नहीं सकता। इसी तरह शेर मज़कूर का हाल है। क्योंकि—

ख़्वाब में तसवीर का बोसा लेने से साहबे तसवीर के होठों का नीला पड़ जाना बजाय इसके कि साहबे तसवीर की

नज़ाकत साबित करे बोसा लेनेवाले का जादूगर होना साबित करता हैं।

मोतरिज़ का यह एतराज़ भी सही नहीं है कि ज़ेवर चूँकि मसनूयी चीज़ है, इसलिए ब्रह्मा या .कुदरत को उसका बनानेवाला क़रार देना ग़लत है। क्योंकि इनसान के तमाम मसनूयात दरहक़ीक़त .खुदा के मसनूयात हैं क्योंकि इनसान .खुद उसका मसनूअ है। इस पर दलील लाने की कुछ ज़रूरत नहीं है। क्योंकि हर ज़बान में ऐसी हज़ारों मिसालें मौजूद हैं कि इनसान के कामों को मजाज़न खुदा की तरफ़ मनसूब किया गया है, और तसव्वुफ़ और वेदान्तवाले तो इनसान के हर काम को मजाज़न् नहीं बल्कि हक़ीक़तन् .खुदा ही का काम बताते हैं।

ख़ाकसार दुआगो—
अलताफ़ हुसैन हाली।

हाली ने उर्दू-कविता की भाषा और भाव दोनों युगान्तर उपस्थित कर दिया। गुल और बुलबुल, आशिक़ और माशूक़, सैयाद और घोंसले से उर्दू-कविता का पिंड छुड़ा दिया। नीति-कविता लिखने में ये शेख सादी के जोड़ के थे। सं० १९५० में इनका उर्दू दीवान पहले पहल छपा। फ़ारसी और अरबी में भी इनका कुछ कलाम है। इन्होंने अरबी की एक किताब का उर्दू-अनुवाद भी लाहौर में किया था, जिसे पंजाब

युनिवर्सिटी ने छपवाया था।

इनकी योग्यता पर मुग्ध होकर गवर्नमेंट ने इन्हें सं० १९६१ में शम्सुलउलमा की उपाधि से विभूषित किया था।

जीवन के अंतिम दिनों में ये प्रायः पानीपत में अपने घर पर ही रहा करते थे। स्वास्थ्य भी बहुत ख़राब हो चला था। कुछ दिनों से इनका प्रायः कुल समय ईश्वर-चिन्तन में बीतता था। पानीपत में इनका बहुत सम्मान था। इनके मरने के बाद भी इनका स्मारक बनाने की चिन्ता पानीपत के अनेक गण्य-मान्य मुसलमान सज्जन कर रहे थे।

यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं।

उमेद

काटने वाली ग़मे अय्याम की।
थामने वाली दिले नाकाम की॥
तुझसे है मोहताज का दिल बेहिरास।
तुझसे है बीमार को जीने की आस॥
राम के हमराह चढ़ी रन में तू।
पांडवों के साथ फिरा बन में तू॥
ज़र्रे को खु़रशेद में दे तू खपा।
बन्दे को अल्लाह से दे तू मिला॥
एक तमन्ना में है औलाद की।
एक को दिल्दार की है लौ लगी॥

एक को है धुन कि जो कुछ हाथ आये।
धूम से औलाद की शादी रचाये॥
एक को कुछ आज अगर मिल गया।
कल की है यह फ़िक्र कि खायँगे क्या॥
जो है ग़रज़ उस को नई जुस्तजू।
लाख अगर दिल हैं तो लाख आरज़ू॥
तुझसे हैं दिल सब के बाग़ बाग़।
गुल कोई होने नहीं पाता चिराग़॥
तुझ में छुपा राहते जाँ का है भेद।
छोड़ियो हाली का न साथ ऐ उमेद॥

* * *

हुब्बेवतन

ऐ सपहरे बरीं के सय्यारो।
ऐ फ़िज़ाये ज़मीं के गुलज़ारो॥
ऐ पहाड़ों की दिल फ़रेब फ़िज़ा।
ऐ लबे जू की ठंडी ठंडी हवा॥
ऐ अनादिल के नग़मये सहरी।
ऐ शबे माहताब तारों भरी॥
ऐ नसीमे बहार के झोंको।
दहरे ना पायदार के धोको॥

तुम हर इक हाल में हो यूँ तो अज़ीज़।
थे वतन में मगर कुछ और ही चीज़॥
जब वतन में हमारा था रहना।
तुमसे दिल बाग़ बाग़ था अपना॥
तुम मेरी दिल्लगी के सामाँ थे।
तुम मेरे दर्दे दिल के दरमाँ थे।
तुम से कटता था रंजे तनहाई।
तुम से पाता था दिल शिकेबाई॥
आन इक इक तुम्हारी भाती थी।
जो अदा थी वह जी लुभाती थी॥

* * *

है कोई अपनी क़ौम का हमदर्द।
नौअ इन्साँ का जिनको समझें फ़र्द॥
जिसपै इतलाक़ आदमी हो सहीह।
जिसको हैवाँ पै दे सकें तर्जीह॥
क़ौम पै कोई ज़द न देख सके।
क़ौम का हाले बद न देख सके॥
क़ौम से जान तक अज़ीज़ न हो।
क़ौम से बढ़ के कोई चीज़ न हो॥
समझे उन की ख़ुशी को राहते जाँ।
वहाँ जो नौ रोज़ हो तो ईद हो याँ॥

रंज को उनके समझें माय ये ग़म।
वाँ अगर सोग हो तो याँ मातम॥
भूल जायें सब अपनी क़द्रे जलील।
देखकर भाइयों को ख़्वारो ज़लील॥
जब पड़े उन पै गर्दिशे-अफ़लाक।
अपनी आसायशों पै डाल दे ख़ाक॥
बैठे बेफ़िक्र क्या हो हमवतनो!
उठो अहले वतन के दोस्त बनो!
मर्द हो तो किसी के काम आओ।
वर्ना खाओ पिओ चले जाओ॥

* * *

जागने वालो ग़ाफ़िलों को जगाओ।
तैरनेवालो डूबतों को तिराओ॥
तुम अगर हाथ पाँव रखते हो।
लँगड़े लूलों को कुछ सहारा दो॥
तन्दुरुस्ती का शुक्र क्या है बताओ।
रंज बीमार भाइयों का बटाओ॥
तुम अगर चाहते हो मुल्क की ख़ैर।
न किसी हमवतन को समझो ग़ैर॥
हो मुसल्मान इसमें या हिन्दू।
बौध मज़हब हो या कि हो ब्रह्मू॥

सब को मीठी निगाह से देखो।
समझो आँखों की पुतलियाँ सबको॥

* * *

वो शेर औ क़सायद का नापाक दफ़्तर।
अफ़ूनत में संडास से जो है बदतर॥
ज़मा जिससे है जलज़ले के बराबर।
मलक जिससे शर्माते हैं अस्माँ पर॥
हुआ इल्मो दीं जिससे ताराज सारा।
वह इल्मों में इल्मे अदब है हमारा॥
बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है।
अबस झूट बकना अगर ना रवा है॥
तो वह महकमा जिसका क़ाज़ी ख़ुदा है।
मुक़र्रिर जहाँ नेको बद की जज़ा है॥
गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे।
जहन्नम को भर देंगे शायर हमारे॥
ज़माने में जितने क़ुली औ नफ़र हैं।
कमाई से अपनी वो सब बहरे वर हैं॥
गवैये अमीरों के नूरे नज़र हैं।
डफ़ाली भी ले आते कुछ माँग कर हैं॥
मगर इस तपेदिक़ में जो मुब्तला हैं।
ख़ुदा जाने वह किस मरज़ की दवा हैं॥

जो सक्के न हों जी से जायें गुज़र सब।
हो मैला जहाँ गुम हों धोबी अगर सब॥
वनें दम पै गर शहर छोड़ें नफ़र सब।
जो रुठ जायँ मेहतर तो गन्दे हों घर सब॥
पै कर जायँ हिजरत जो शाइर हमारे।
कहें मिलके 'ख़स कम जहाँ पाक' सारे॥

* * *

वस ऐ ना उमेदी न यूँ दिल बुझा तू।
झलक ऐ उमेद अपनी आख़िर दिखा तू॥
.ख़ुदा नाउमेदों को ढारस बँधा तू।
फ़िसुर्दा दिलों के दिल आख़िर बढ़ा तू॥
तेरे दम से मुर्दों में जानें पड़ी हैं।
जलीं खेतियाँ तूने सरसब्ज़ की हैं॥
बहुत हैं अभी जिनमें ग़ैरत है बाक़ी।
दिलेरी नहीं पर हमैयत है बाक़ी॥
फ़क़ीरी में भी बू—ए सरवत है बाक़ी।
तिहीदस्त हैं पर मुरव्वत है बाक़ी॥
मिटे पर भी पिन्दारे हस्ती वही है।
मकाँ गर्म है आग गो बुझ गई है॥
समझते हैं इज़्ज़त को दौलत से बेहतर।
फ़क़ीरी का ज़िल्लत की शोहरत से बेहतर॥

गलीमे क़नाअत को सरवत से बेहतर।
उन्हें मौत है बारे मिन्नत से बेहतर॥
सर उनका नहीं दर बदर झुकने वाला।
वह .ख़ुद पस्त हैं पर निगाहें हैं वाला॥
पिघलते है साँचे में ढालने की ख़ातिर।
लगाते हैं ग़ोता उछलने की ख़ातिर॥
ठहरते हैं दम लेके चलने की ख़ातिर।
वह खाते हैं ठोकर सम्हलने की ख़ातिर॥
सबब को मरज़ से समझते हैं पहले।
उलझते हैं पोछे सुलझते हैं पहले॥
न राहत तलब हैं न मोहलत तलब वह।
लगे रहते हैं काम में रोज़ो शब वह।
नहीं लेते दम एक दम बेसबब वह।
बहुत जाग लेते हैं सोते हैं तब वह॥
वह थकते हैं और चैन पाती है दुनिया।
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया॥
खपाते हैं कोशिश में तावो तवाँ को।
घुलाते हैं मेहनत में जिस्मे रवाँ को॥
समझते नहीं इसमें जाँ अपनी जाँ को।
वह मर मर के रखते हैं ज़िन्दा जहाँ को॥

बस इस तरह जीना इबादत है उन का।
और इस धुन में मरना शहादत है उन की॥
बशर को है लाज़िम कि हिम्मत न हारे।
जहाँ तक हो काम आप अपने सँवारे॥
ख़ुदा के सिवा छोड़ दे सब सहारे।
कि है आरज़ी ज़ोर, कमज़ोर सारे॥
अड़े वक्त तुम दायें बायें न झाँको।
सदा अपनी गाड़ी को गर आप हाँको॥

* * *

जहाँ में हाली किसी प अपने सिवा भरोसा न कीजिएगा।
य भेद है अपनी ज़िन्दगी का बस इसका चर्चा न कीजिएगा॥
हो लाख ग़ैरों का ग़ैर कोई न जानना उसको ग़ैर हरगिज़।
जो अपना साया भी हो तो उसको तसव्वुर अपना न कीजिएगा॥
लगाव तुम में न लाग ज़ाहिर न दर्द उल्फ़त की आग ज़ाहिर।
फिर और क्या कीजिएगा आख़िर जो तर्क दुनिया न कीजिएगा॥

* * *

उनके गुस्से में है दिल सोज़ी मलामत में है प्यार।
महरबानी करते हैं ना महरबानों की तरह॥
काम से काम अपने उनको गो हों आलम नुक्ताचीं।
रहते हैं बत्तीस दाँतों में ज़ुबानों की तरह॥

ताने सुन सुन अहमकों के हँसते हैं दीवानावार।
दिन बसर करते हैं दीवानों में स्यानों की तरह॥
कीजे क्या हाली न कीजे सादगी गर अख़्त्यार।
बोलना आये न जब रंगीं बयानों की तरह॥

* * *

होगी न क़द्र जान की .कुर्बां किये बग़ैर।
दाम उठेंगे न जिन्स के अर्ज़ां किये बग़ैर॥
गो हो शफ़ा से यास पै जब तक है दम में दम।
बन आयेगी न दर्द का दरमाँ किये बग़ैर॥
बिगड़ी हुई बहुत है कुछ इस बाग़ की हवा।
यह बाग़ को रहेगी न वीराँ किये बग़ैर॥
गो मै है तुन्दो सख़्त पै साक़ी है दिलरुबा।
ऐ शैख़ बन पड़ेगी न कुछ हाँ किये बग़ैर॥

* * *

तज़करा दहिल-ए मरहूम का ऐ दोस्त न छेड़।
न सुना जायगा हमसे यह फ़िसाना हर्गिज़॥
जिसको ज़ख़्मों से हवादस के अछूता समझें।
नज़र आता नहीं एक ऐसा घराना हरगिज़॥
हमको गर तूने रुलाया तो रुलाया ऐ चर्ख़।
हम पै ग़ैरों को तो ज़ालिम न हँसाना हरगिज़॥

शाइरी मर चुकी अब ज़िन्दा न होगी यारो।
याद कर करके उसे जी न कुढ़ाना हरगिज़॥
ग़ालिबो शेफ़्-ओ नय्यरो आ.ज़ुरदओ ज़ौक़।
अब दिखायेगा यह शकलें न ज़माना हरगिज़॥
मोमिनो उलवियो अहबावओ ममनूँ के बाद।
शेर का नाम न लेगा कोई दाना हरगिज़॥
दाग़ो मजरूह को सुनलो कि फिर इस गुलशन में।
न सुनेगा कोई बुलबुल का तराना हरगिज़॥
बज़्मे मातम तो नहीं बज़्मे स.ख़ुन है हाली।
याँ मुनासिब नहीं रो रो के रुलाना हरगिज़॥

* * *

यारों को तुझ से हाली अब सर गरानियाँ हैं।
नींदें उचाट देतीं तेरी कहानियाँ हैं॥
याद उसकी दिल से धो दे ऐ चश्मेतर तो मानूँ।
अब देखनी मुझे भी तेरी रवानियाँ हैं॥
ग़ीवत हो या हज़ूरी दोनों बुरी हैं तेरी।
जब बदगुमानियाँ थीं अब बद.ज़ुबानियाँ हैं॥
कहते हैं जिस को जन्नत वह इक झलक है तेरी।
सब वाइज़ों की बाक़ी रंगीं बयानियाँ हैं॥

अपनी नज़र में भी याँ अब तो हक़ीर हैं हम।
बे ग़ैरती की यारो अब ज़िन्दगानियाँ हैं॥
खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौ जवानों उठती जवानियाँ हैं॥
फ़ज़लो हुनर बड़ों के गर तुम में हों तो जानें।
गर यह नहीं तो बाबा वह सब कहानियाँ हैं॥

* * *

कम से कम वाज़ में इतना तो असर हो वाइज़।
बोल क़व्वाल के जो दिल पे असर करते हैं॥
ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ।
वर्ना याँ ऐब तो सब फ़र्दे बशर करते हैं॥

* * *

बादे सबा गई फूँक क्या जाने कान में क्या।
फूले नहीं समाते ग़ुंचे जो पैरहन में॥
रो रो चुके हैं दुखड़ा सौ बार क़ौम का हम।
पर ताज़गी वही है इस क़िस्स-ए कुहन में॥

* * *

बढ़ाओ न आपस में मिल्लत ज़ियादा।
मुबादा कि हो जाय नफ़रत ज़ियादा॥
तकल्लुफ़ अलामत है बेगानगी की।
न डालो तकल्लुफ़ की आदत ज़ियादा॥

करो दोस्तो पहले आप अपनी इज़्ज़त।
जो चाहो करें लोग इज़्ज़त ज़ियादा ॥
निकालो न रखने नसब में किसी के।
नहीं इससे कोई रज़ालत ज़ियादा ॥
करो इल्म से इकतसावे शराफ़त।
नजावत से है यह शराफ़त ज़ियादा ॥
फ़राग़त से दुनिया में दमभर न बैठो।
अगर चाहते हो फ़राग़त ज़ियादा ॥
जहाँ राम होता है मीठी ज़वाँ से।
नहीं लगती कुछ इसमें दौलत ज़ियादा ॥
मुसीवत का इक इक से अहवाल कहना।
मुसीवत से है यह मुसीवत ज़ियादा ॥
करो ज़िक्र कम अपनी दाद़ो दहिश का।
मुवादा कि साबित हो खि़स्सत ज़ियादा ॥
फिर औरों की तकते फिरोगे सख़ावत।
वढ़ाओ न हद से सख़ावत ज़ियादा ॥
कहीं दोस्त तुमसे न हो जायँ वदज़न।
जताओ न अपनी मुहब्बत ज़ियादा ॥
जो चाहो फ़क़ीरी में इज़्ज़त से रहना।
न रक्खा अमारों से मिल्लत जियादा ॥

वह इफ़लास अपना छिपाते हैं गोया ।
जो दौलत से करते हैं नफ़रत ज़ियादा ॥
है उल्फ़त भी वहशत भी दुनिया से लाज़िम ।
पै उल्फ़त ज़ियादा न वहशत ज़ियादा ॥
फ़रिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना ।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज़ियादा ॥
बिके मुफ़्त याँ हम ज़माने के हाथों ।
पै देखा तो थी यह भी क़ीमत ज़ियादा ॥
हुई उम्र दुनिया के धन्दों में आख़िर ।
नहीं बस अब पै अक़्ल ! मोहलत ज़ियादा ॥
ग़ज़ल में वह रंगत नहीं तेरी "हाली" ।
अलापें न बस आप धुरपत ज़ियादा ॥

* * *

जब यह कहता हूँ कि बस दुनिया पै अब तुफ़ कीजिए ।
नफ़्स कहता है अभी चन्दे तवक़्कुफ़ कीजिए ॥
ज़ब्त कीजे दर्दे दिल ता ज़ब्त की ताक़त नहीं ।
औ खुला जाता है राज़े दिल अगर उफ़ कीजिए ॥
वक़्त था जो काम का हाली गवाँ बैठे उसे ।
जाइए अब उम्र भर बैठे तआस्सुफ़ कीजिए ॥

तोबा हज़रत की युँ ही इक दूध का सा है उबाल।
हम दिखा देंगे ज़रा दम भर तवक्कुफ़ कीजिए॥

❦ ❦ ❦

है इश्क़ तबीब दिल के बीमारों का।
या घर है वह ख़ुद हज़ार आज़ारों का॥
हम कुछ नहीं जानते पै इतनी है ख़बर।
इक मशग़ला दिलचस्प है बेकारों का॥

❦ ❦ ❦

मुमकिन् यह नहीं कि होवशर ऐब से दूर।
पर ऐब से बचिए तावमक़दूर ज़रूर॥
ऐब अपने घटाओ पै ख़बरदार रहो।
घटने से कहीं उनके न बढ़ जाये ग़रूर॥

❦ ❦ ❦

हैं जहल में सब आलिमो जाहिल हमसर।
आता नहीं फ़र्क़ इसके सिवा उनमें नज़र॥
आलिम को है इल्म अपनी नादानी का।
जाहिल को नहीं जहल की कुछ अपने ख़बर॥

❦ ❦ ❦

है नफ़्स में इन्साँ के जिबिल्ली यह मर्ज़।
हर सई पै होता है तलबगार एवज़॥

जो ख़ास .ख़ुदा के लिए थे काम किये।
देखा तो निहाँ उनमें भी थी कोई ग़रज़॥

* * *

दुनियाए दुनी को नक़्शे फ़ानी समझो।
रूदादे जहाँ को इक कहानी समझो॥
पर जब करो आग़ाज़ कोई काम बड़ा।
हर साँस को उम्रे जाविदानी समझो॥

* * *

देखो जिस सलतनत की हालत दरहम।
समझो कि वहाँ है कोई बरकत का क़दम॥
या तो कोई बेग़म है मुशीरे दौलत।
या है कोई मौलवी वज़ीरे आज़म॥

* * *

मूसा ने यह की अर्ज़ कि ऐ यारे .ख़ुदा॥
मक़बूल तेरा कौन है बन्दों में सिवा॥
इरशाद हुआ बन्दा हमारा वह है।
जो ले सके और न ले बदी का बदला॥

* * *

कुछ क़ौम की हमसे सोगवारी सुनलो।
कुछ चश्मेजहाँ में अपनी ख़्वारी सुनलो॥

अफ़साने ए क़ैसो कोहकन याद नहीं।
चाहो तो कथा हम से हमारी सुनलो॥

* * *

है जान के साथ काम इन्साँ के लिए।
बनती नहीं ज़िन्दगी में बेकाम किये॥
जीते हो तो कुछ कीजिए ज़िन्दों की तरह।
मुर्दों की तरह जिये तो क्या ख़ाक जिये॥

* * *

मौजूद हुनर हों ज़ात में जिसकी हज़ार।
बदज़न न हो ऐब उसमें गर हों दो चार॥
ताऊस के पाये ज़िश्त पर करके नज़र।
कर हुस्नो जमाल का न उसके इन्कार॥

* * *

मसरूफ़ जो यूँ वज़ीफ़ा ख़्वानी में हैं आप।
ख़ैर अपनी समझते बेज़बानी में हैं आप॥
बोलें कुछ मुँह से या न बोलें हज़रत।
मालूम है हमको जितने पानी में हैं आप॥

* * *

यह सच है कि माँगना ख़ता है न सवाब।
ज़ेबा नहीं सायल पै मगर क़हरो इताब॥

बदतर है हज़ार बार पें दूने हिम्मत।
सायल के सवाल से तेरा तलख़ जवाब॥

❦ ❦ ❦

वाइज़ ने कहा कि वक़्त सब जाते हैं टल।
इक वक़्त से अपने नहीं टलती तू अजल!॥
की अर्ज़ यह इक सेठ ने उठकर कि हुज़ूर।
है टैक्स का वक़्त भी इसी तरह अटल॥

❦ ❦ ❦

मरने पै मेरे वह रोज़ो शब रोयेंगे।
जब याद करेंगे मुझे तब रोयेंगे॥
उल्फ़त पै वफ़ा पैं जाँ निसारी पै मेरी।
आगे नहीं रोये थे तो अब रोयेंगे॥

अकबर

अकबर उपनाम; सैयद अकबर हुसेन रिज़वी नाम; पिता का नाम सैयद तफ़ज्जुल हुसेन; जन्म-स्थान वारा ज़ि० इलाहाबाद; जन्म-संवत् १९०३; मरण-संवत् १९७८।

अकबर के पिता बड़े ही धार्मिक पुरुष थे। इससे इनके जीवन पर भी पिता की धार्मिकता का वड़ा प्रभाव पड़ा। प्रारंभ में इनको अरवी, फ़ारसी और हिसाव की शिक्षा दी गई थी। चौदह वर्ष की अवस्था में इन्हें अँग्रेज़ी का शौक़ हुआ। घर पर ही अभ्यास करके इन्हों ने अँग्रेज़ी का ख़ासा ज्ञान प्राप्त कर लिया। सं० १९२४ में इन्हों ने वकालत की परीक्षा पास की और नायव तहसीलदारी के पद पर ये नियत हुये। वहाँ से उन्नति करके ये सं०१९२७ में हाईकोर्ट में मिसिल पढ़ने वाले का पद प्राप्त किया। फिर सं० १९२९ से १९३७ तक वकालत की। सं० १९३७ में मुंसिफ़ हुये। और उन्नति करते करते सं० १९४५ में सव-जज और सं० १९५१ में स्माल काज़ कोर्ट के प्रथम श्रेणी के जज और सेशन जज नियुक्त हुये। उस समय इन्हें हज़ार वारह सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। सं० १९५५ में इन्हें ख़ाँ वहादुर की उपाधि मिली। ये प्रयाग विश्व-विद्यालय के फ़ेलो भी थे। ये हाईकोर्ट के जज भी होने वाले थे; पर काम करते करते थककर इन्हों ने १९५९ में पेंशन ले ली। पेंशन

लेने के बाद ये प्रयाग में अपनी इशरत मंज़िल नामक कोठी में रहने लगे और अंत समय तक उसी में रहे। रिटायर्ड होने के बाद इनका सारा समय या तो ईश्वर चिन्तन में जाता था, या साहित्य-चर्चा में।

अकबर ख़्वाजा आतिश के शागिर्द मुंशी ग़ुलाम हुसेन 'वहीद' के शागिर्द थे। बचपन से ही साहित्य की ओर इनकी रुचि थी। शिक्षा समाप्त कर चुकने पर पहले ये भी पुराने ढंग की ग़ज़लें लिखा करते थे। पर जब सं० १९३६ में लखनऊ से "अवध पंच" निकला, तब इन्हों ने अपना रंगही बदल दिया। ये उसमें प्रहसनात्मक गद्य और पद्य लेख लिखने लगे। पद्य की एक नई शैली इन्हों ने निकाली, जिसमें इन्हें पूरी सफलता मिली। यद्यपि उर्दू में एक से एक बढ़कर कवि हो गये हैं, पर अकबर अपने ढंग के एक ही कवि थे। इन्होंने उर्दू को गुलो बुलबुल की महफ़िल से निकाल कर एक ऐसे मैदान में लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ से संसार के प्रत्येक हिस्से का रूप-रंग दिखाई पड़ता है। अकबर हास्यरस के अवतार थे। इन्हों ने प्रेम, विरह, धर्म, राजनीति, समाज-सुधार, शिक्षा आदि विषयों पर ऐसा विनोद किया है, कि उसे पढ़ कर हँसी आये बिना नहीं रहती।

अकबर अंग्रेज़ी रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, वेषभूषा के

कट्टर विरोधी थे। एक एक शेर में इन्होंने अंग्रेज़ियत की दिल्लगी उड़ाई है। ये ईश्वर-निष्ठ, देश-भक्त, हिन्दू-मुसलिम एकता के पूरे पक्षपाती, समाज-सुधारक हृदय से महात्मा 'गाँधी' के अनुयायी और सहृदय व्यक्ति थे।

इनका जीवन विनोद-पूर्ण था। इनके प्रत्येक शेर के साथ कोई न कोई लतीफ़ा अवश्य लगा हुआ है। एक बार एक व्यक्ति इनसे मिलने आये। ये ज़नान ख़ाने मे थे। उन्हों ने विज़िटिंग कार्ड भेजा। उस पर उनका नाम तो छपा था, पर शायद कार्ड छपाने के बाद वे बी० ए० हुये थे, इससे बी० ए० शब्द उन्हों ने पेंसल से लिख दिया था। अकबर को उनकी इस हरकत से कुछ विरक्ति सी हुई। इन्हों ने उसी कार्ड की पीठ पर यह शेर लिखकर उसे वापस भेजा और मिलने से इन्कार कर दिया—

शेख़ जी घर से न निकले और पेसा लिख दिया।
आप बी० ए० पास हैं तो मैं भी बीबी पास हूँ॥

इनके पुत्र सैयद इशरत हुसेन साहब, जो आजकल युक्तप्रांत में डिप्टी कलक्टर हैं पढ़ने के लिये विलायत भेजे गये थे। वहाँ से वे पूरे अंग्रेज़ बनकर घर लौटे। अंग्रेज़ीपन से अकबर को स्वाभाविक घृणा थी; फिर अपने पुत्र ही में उसका पूर्ण विकास देख कर तो ये बड़े ही मर्माहत हुये। कितने ही

शेरों में इन्हों ने अपनी यह मर्मव्यथा प्रकट की है। एक वार ये इशरत हुसेन साहव से मिलने गये। वे सीतापुर में डिप्टी कलक्टर थे। अकवर सदा सादी पोशाक पहना करते थे। शाम का वक्त था डिप्टी साहव के कई मित्र जमा थे। अकवर को एक साधारण आदमी समझ कर सव ने इनकी ओर उदासीनता प्रकट की। उनमें एक अकवर के पहचानने वाले भी थे। उन्हों ने चुपके से अपने साथियों के कान में कहा कि ये डिप्टी साहव के पिता हैं। यह मालूम होते ही डिप्टी साहव के मित्र इनसे वड़े सम्मान और तकल्लुफ़ के साथ वातें करने लगे। अकवर ताड़ गये। पहले तो ये चुप रहे, फिर थोड़ी देर वाद वातों ही वातों में कहने लगे—"मियाँ और भी कुछ सुना है? सुना है, योरप में अल्लाह मियाँ आये थे।" सव चकित होकर इनका मुँह ताकने लगे। इन्हों ने फिर गंभीर भाव से कहना प्रारंभ किया—"हाँ, मुझे वहुत ही मातवर तरीक़े से मालूम हुआ है। और एक वात तो वड़े ही मज़े की हुई। योरप में किसी ने अल्लाह मियाँ को वात तक न पूछी। इतने में किसी ने वतलाया कि अल्लाह मियाँ ख़ुदावंद ईसू मसीह के वाप हैं। यह वात मालूम होते ही अल्लाह मियाँ की वड़ी आवभगत हुई।"

अकवर ने ये वातें इस ढंग से कहीं, मानों वे किसी समाचार पत्र में उसे पढ़ रहे हैं। पर डिप्टी साहव के मित्र

समझ गये कि यह उन्हीं पर कटाक्ष है। वे लज्जित हो गये।

कालिजों की नास्तिकता-पूर्ण शिक्षा से ये बहुत चिढ़ते थे। मौक़ा पड़ने पर अलीगढ़ के मुसलिम कालिज और सर सैयद अहमद ख़ाँ की कड़ी से कड़ी आलोचना करने में नहीं हिचकते थे। अलीगढ़ के एक मुसलमान अब्दुलग़फ़ूर ख़ाँ ने पहले पहले मोंछ दाढ़ी मुँड़ाकर करज़न फ़ैशन रक्खा। अकबर को यह बात धार्मिक रीति-रवाज के विरुद्ध जान पड़ी। इन्होंने एक दिन, अब्दुल ग़फ़ूर ख़ाँ जब अपने मित्रों में बैठे थे, यह कह ही डाला—

देख अब्दुल ग़.फ़ूर ख़ाँ की तरफ़।
मर्द .ख़ुशहाल इसका कहते हैं॥
चार अब्रू का याँ सफ़ाया है।
फ़ारिग़-उल्-बाल इसको कहते हैं॥

सारा मज़ा फारिग-उल्-बाल शब्द ही में है। इसके दो मानी हैं, बेफ़िक्र और बाल-रहित।

ये स्त्री-शिक्षा के विरोधी तो न थे। पर अंग्रेज़ी ढंग की शिक्षा को स्त्रियों के लिये विष से भी अधिक भयानक समझते थे। पर कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि स्त्री-शिक्षा के पूरे पक्षपाती भी इनकी बातें सुनकर हास्य के साथ कुछ नसीहत भी प्राप्त कर लेते थे। देखिये—

तालीम लड़कियों को ज़रूरी तो है मगर।
ख़ातूने ख़ाना हों वो सभा की परी न हों॥
ज़ीइल्मो मुत्तक़ी हों वले उनके मुन्तज़िम।
उस्ताद अच्छे हों मगर उस्तादजी न हों॥

कविता का रस 'उस्तादजी' में है। उस्तादजी वेश्याओं के उस्ताद कहलाते हैं।

अंग्रेज़ी तिजारत, कालेज की तालीम, कौंसिल की मेम्बरी, शासन-सुधार, वोटभिक्षा, अख़बार, विलायती पोशाक और रहन-सहन, आदि प्रायः सब वर्तमान विषयों पर चुभते हुये मार्मिक शेर ऐसे विनोद-पूर्ण ढंग से कहे हैं कि इनके विचारों का कट्टर से कट्टर विरोधी भी उन्हें सुनकर प्रसन्न हो जाता है। यही कवि की सफलता है।

अकबर महात्मा गाँधी के असहयोग का हृदय से समर्थन करते थे। यद्यपि ये ख़ुल्लमख़ुल्ला उसमें भाग न ले सके, पर 'गाँधी नामा' लिखकर इन्होंने असहयोग की उपयोगिता और आवश्यकता का समर्थन किया है। एक पेंशनर जज का यह काम कम साहस का नहीं कहा जा सकता।

योरप की लड़ाई के दिनों में अकबर ने कुछ ऐसी ग़ज़लें लिखीं, जिनसे सरकार भयभीत हुई। सरकार ने अपना भय क्रोध के रूप में प्रकट भी किया। अकबर ने ग़ज़लें लिखनी

बंद कर दीं। पर भला, नशेबाज़ का नशा कहीं छूट सकता है। बक़ौले ग़ालिब "छुटती नहीं है मुँह से य काफ़िर लगी हुई" अकबर चुपके-चुपके ग़ज़लें लिखते रहे और अपने मित्रों को सुनाते रहे। एक ग़ज़ल का एक शेर यह है—

प्रेस बयूरो के तारों से नतीजा यह निकलता है।
फ़तह सरकार की होती है क़ब्ज़ा उसका होता है॥

उन्हीं दिनों के दो शेर ये हैं—

हुक्म अकबर को मिला है कि न लिखो अशआर।
ख़्वाजा हाफ़िज़ भी निकाले गये मैख़ाने से॥

* * *

सीने इधर ऐसे कि सहें जौरे रफ़ल भी।
कान उनके वो नाज़ुक कि गराँ मेरी ग़ज़ल भी॥

अकबर की कविता भारत के वर्तमान अँग्रेज़ी शासन का सूत्र-रूप में एक संक्षिप्त इतिहास है। आगे आने वाले लोग जब अकबर की कविता पढ़ेंगे तो उसमें वे भारत के अँग्रेज़ी ज़माने का नाटक ध्यान में देखेंगे। अबतक के हिन्दी या उर्दू के किसी कवि की कविता में उसके समय का संसार नहीं दिखाई पड़ता, यह ख़ूबी अकबर की ही कविता में है। अकबर के पहले और किसी कवि ने अंग्रेज़ी शब्दों को अपनी भाषा में मिलाने का प्रयत्न नहीं किया था। हाली ने कुछ किया था,

पर उस मज़ाक़ के साथ नहीं। अकबर ने अंग्रेज़ी शब्दों को इस ख़ूबी से अपनी कविता में जड़ दिया है कि बस, समझते ही बनता है।

जो प्रभाव बड़े बड़े उपदेशकों के लम्बे-चौड़े व्याख्यानों से नहीं हो सकता, वह अकबर के एक शेर से हो सकता है। अकबर अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। हिन्दी में भी उनके जोड़ का कोई कवि नहीं था।

अकबर के तीन दीवान छप चुके हैं। चौथा दीवान भी प्रेस में है, ऐसा सुना जाता है। इनके दीवानों की माँग भी बहुत है। एक एक दीवान के कई संस्करण हो चुके हैं। हिन्दी में भी अकबर पर दो तीन पुस्तकें निकल चुकी हैं। पर आवश्यकता इस बात की है कि अकबर के पूरे दीवान हिन्दी अक्षरों में छपें।

पद्य के सिवा अकबर गद्य भी बहुत अच्छा लिखते थे। इनके पत्र साहित्यिक दृष्टि से बड़े महत्व-पूर्ण हैं। उर्दू में ग़ालिब और आज़ाद के बाद अकबर के ही पत्र सर्वसाधारण के पढ़ने योग्य हैं।

यहाँ हम अकबर की कविता के कुछ चुने हुये शेर उद्धृत करते हैं—

.ख़ुदा का नाम रोशन है .ख़ुदा का नाम प्यारा है।
दिलों को इससे .क़ुव्वत है .ज़ुबानों को सहारा है॥
उसी के हुक्म से है रातदिन की ये कमी बेशी।
उसी के हुक्म का तावे फ़लक पर हर सितारा है॥
उसी के इन्तज़ामो हुक्म से मौसम बदलते हैं।
वही है वक्त पर जिसने हवाओं को उभारा है॥
उसी के हुक्म से फल और ग़ल्ले की है पैदायश।
ज़मीं पर बदलियों से उसने पानी को उतारा है॥
य जब तक साँस चलती है समझते हो हमी हम हैं।
अजल जब सर पै आ पहुँची तो फिर क्या बस हमारा है॥
अगर आमाल अच्छे हैं तो पावोगे बड़े दर्जे।
समझ लो इम्तहाँ इस 'दारे फ़ानी' में तुम्हारा है॥
बु.ज़ुर्गों का अदब अल्लाह का डर शर्म आँखों में।
इन्हीं औसाफ़ की निस्बत मज़ाहब में इशारा है॥

* * *

जो मिल गया वो खाना दाता का नाम जपना।
इसके सिवा बताऊँ क्या तुम को काम अपना॥
रोना है तो इसीका कोई नहीं किसी का।
दुनिया है और मतलब मतलब है और अपना॥

अय विरहमन हमारा तेरा है एक आलम।
हम ख़्वाब देखते हैं तू देखता है सपना॥

❦ ❦ ❦

अज़ल से वो डरें जीने को जो अच्छा समझते हैं।
यहाँ हम चार दिन की ज़िन्दगी को क्या समझते हैं॥

❦ ❦ ❦

न हो मज़हब में जब ज़ोरे हुकूमत।
तो वो क्या है फ़क़त यक फ़िलसफ़ा है॥

❦ ❦ ❦

दिल मेरा जिस से बहलता कोई ऐसा न मिला।
बुत के बन्दे मिले अल्लाह का बन्दा न मिला॥
सय्यद उट्ठे जो गज़ट लेके तो लाखों लाये।
शेख़ क़ुरआन दिखाते फिरे पैसा न मिला॥

❦ ❦ ❦

कहा बुक़रात से दुनिया में क्यूँ आया तू अय दाना।
कहा उसने कि मैं लाया गया मुझको पड़ा आना॥
कहा क्यूँकर बसर की उम्र? बोला—साथ हैरत के।
कहा क्या जाना? बोला—कुछ नहीं जाना, यही जाना॥

❦ ❦ ❦

अकबर से मैंने पूछा अय वाइज़े तरीक़त।
दुनियाये दूँ से रक्खूँ मैं किस क़दर तआल्लुक़॥

उसने दिया बलाग़त से ये जवाब मुझको।
अँगरेज को है नेटिव से जिस क़दर तआल्लुक़॥

❦ ❦ ❦

ग़फ़लत की हँसी से आह भरना अच्छा।
अफ़आले मुज़िर से कुछ न करना अच्छा॥
अकबर ने सुना है अहले ग़ैरत से यही।
जीना ज़िल्लत से हो तो मरना अच्छा॥

❦ ❦ ❦

क्या तुम से कहूँ जहाँ को कैसा पाया।
ग़फ़लत ही में आदमी को डूबा पाया॥
आँखें तो बेशुमार देखीं लेकिन।
कम थीं ब.खुदा कि जिन को बीना पाया॥

❦ ❦ ❦

ऊँचा नीयत का अपनी ज़ीना रखना।
अहबाब से साफ़ अपना सीना रखना॥
.गुस्सा आना तो नेचरल है अकबर।
लेकिन है शदीद ऐब कीना रखना॥

❦ ❦ ❦

मर्द को चाहिये क़ायम रहे ईमान के साथ।
ता दमे मर्ग रहे यादे .खुदा जान के साथ॥

मैंने माना कि तुम्हारी नहीं सुनता कोई।
सुर मिलाना तुम्हें क्या फ़र्ज़ है शैतान के साथ॥

* * *

हमारे ज़हन को इस मिसरये अकबर पै मस्ती है।
.खुश अख़लाक़ी इबादत है .खुशामद बुत परस्ती है॥

* * *

न किताबों से न कालिज के है दर से पैदा।
दीन होता है बु.जुर्गों की नज़र से पैदा॥

* * *

जुदाई ने 'मैं' बनाया मुझको जुदा न होता तो मैं न होत।
खु.दा की हस्ती है मुझ से साबित .खुदा न होता तो मैं न होता॥

* * *

नज़र उनकी रही कालिज में बस इल्मी फ़वायद पर।
गिरा कीं चुपके चुपके बिजलियाँ दीनी अक़ायद पर॥

* * *

तमाशा देखिये बिजली का मग़रिब और मशरिक़ में।
कलों में है वहाँ दाख़िल यहाँ मज़हब पै गिरती है॥

* * *

.ज़ुबान खोली है महफ़िल में वाह वा के लिये।
कभी तो बन्द कर आँखों को भी .खुदा के लिये॥

* * *

वरसों का छोड़ती है दम भर में साथ ज़ालिम।
कहते हैं उम्र जिस को माशूक़े बेवफ़ा है॥

सेठ जी को फ़िक्र थी यक एक के दस कीजिये।
मौत आ पहुँची कि हज़रत जान वापस कीजिये॥

हुस्न है बेवफ़ा भी फ़ानी भी।
काश समझे इसे जवानी भी॥

ख़ुदा का घर बनाना है तो नक़्शा ले किसी दिल का।
य दीवारों को क्या तजवीज़ है ज़ाहिद य छत कैसी॥

जो देखी हिस्ट्री इस बात पर कामिल यक़ीं आया।
उसे जीना नहीं आया जिसे मरना नहीं आया॥

जलवये साक़ी वो मय जान लिये लेते हैं।
शेख़जी ज़ब्त करें हम तो पिये लेते हैं॥
दिल में याद उनकी जो आते हुवे शरमाती है।
दर्द उठता है कि हम आड़ किये लेते हैं॥
दौरे तहज़ीब में परियों का हुवा दूर नक़ाब।
हम भी अब चाके गरेबाँ को सिये लेते हैं॥

ख़ुदकुशी मना ख़ुशी गुम ये क़यामत है गर।
जीना ही कितना है अब ख़ैर जिये लेते हैं॥
लज़्ज़ते वस्ल को परवाने से पूछें उश्शाक़।
वो मज़ा क्या है जो वे जान दिये लेते हैं॥

❦ ❦ ❦

उन्हें भी जोशे उल्फ़त हो तो लुत्फ़ उट्ठे मुहब्बत का।
हमीं दिन रात अगर तड़पे तो फिर इसमें मज़ा क्या है॥
मुसीबत ऐन राहत है अगर हो आशिक़े सादिक़।
कोई परवाने से पूछे कि जलने में मज़ा क्या है॥
तबीबों से मैं क्या पूछूँ इलाजे दर्दे दिल अपना।
मरज़ जब ज़िन्दगी ख़ुद हो तो फिर उसकी दवा क्या है॥

❦ ❦ ❦

ज़ख़्मी किया सीने को नज़र है कि ग़ज़ब है।
ख़ूँ होके भी क़ायम है जिगर है कि ग़ज़ब है॥
वो कहते हैं मय पीने को तू पी नहीं सकता।
अय शेख़ ये अल्लाह का डर है कि ग़ज़ब है॥
गुज़री है शबे वस्ल कि आई है मेरी मौत।
वो होते हैं रुख़सत य सहर है कि ग़ज़ब है॥
लिपटा के मुझे सीने से वो आज ये बोले।
अकबर तेरी आहों का असर है कि ग़ज़ब है॥

❦ ❦ ❦

कहाँ से लाऊँगा ख़ूने जिगर उनके खिलाने को।
हज़ारों तरह के ग़म दिल के मेहमाँ होते जाते हैं॥

जो महफ़िल में अकबर ने खोली ज़बान।
गुलिस्ताँ में बुलबुल चहकने लगा॥

लगावट की अदा से उनका कहना पान हाज़िर है।
क़यामत है सितम है दिल फ़िदा है जान हाज़िर है॥
कहो जो चाहो सुन लेंगे मगर मुतलक़ न समझेंगे।
तबीयत ता ख़ुदा जाने कहाँ है कान हाज़िर है॥
निगाहें ढूढ़ती हैं जिन को उनका दो निशाँ यारो।
इसे मैं क्या करूँगा ये जो सब सामान हाज़िर है॥
बिठा कर ग़ैर की महफ़िल में मुझको उसने फ़रमाया।
सुनो अकबर की ग़ज़लें देखो ये मस्तान हाज़िर है॥

ग़रीब ख़ाने में लिल्लाह दो घड़ी बैठो।
बहुत दिनों में तुम आये हो इस गली की तरफ़॥
ज़रा सी देर ही हो जायगी तो क्या होगा।
घड़ी घड़ी न उठावो नज़र घड़ी की तरफ़॥
जो घर में पूछे कोई ख़ौफ़ क्या है कह देना।
चले गये थे टहलते हुवे किसी की तरफ़॥

पोशीदा आँखों में कभी दिल में निहाँ रहा।
बरसों ख़याले यार मेरा मेहमाँ रहा॥
फ़रियाद किसकी थी पसे दीवार रात भर॥
क्या मुझ से पूछते हो तू कल शब कहाँ रहा॥
बेजा मेरे सफ़र पै हैं ये बदगुमानियाँ।
पेशे नज़र तुम्हीं तो रहे मैं जहाँ रहा॥

❦ ❦ ❦

रंगे शराब से मेरी नीयत बदल गई।
वाइज़ की बात रह गई साक़ी की चल गई॥
तैयार थे नमाज़ पै हम सुन के ज़िक्रे हूर।
जलवा बुतों का देख के नीयत बदल गई॥
चमका तेरा जमाल जो महफ़िल में वक़्ते शाम।
परवाना बेक़रार हुआ शमअ़ जल गई॥

❦ ❦ ❦

मैं नज़अ़ में हूँ आयें तो अहसान है उनका।
लेकिन य समझ लें कि तमाशा नहीं होता॥
हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम।
वो क़त्ल भी करते हैं तो चरचा नहीं होता॥

❦ ❦ ❦

हया से सर झुका लेना अदा से मुस्करा देना।
हसीनों का भी कितना सहल है बिजली गिरा देना॥

ये तर्ज़ अहसान करने का तुम्हीं को ज़ेब देता है।
मरज़ में मुबतला करके मरीज़ों को दवा देना ॥

❦ ❦ ❦

हूर मिस्र का मये गुलगूँ को परी कहते हैं।
शेख़ .खुश हों कि ख़फ़ा हम तो खरी कहते हैं ॥
हुस्न के बाब में 'अकबर' की सनद ठीक नहीं।
ये तो हरयक बुते कमसिन को परी कहते हैं ॥

❦ ❦ ❦

क्या वस्ल का हौसला करें पेशे रक़ीब।
जिनको इस वक़्त तक कमर ही न मिली ॥

❦ ❦ ❦

तुम्हारे हुस्न में साइन्स का भी दिल उलझता है।
कमर को देखकर वो ख़ते उक़लैदस समझता है ॥

❦ ❦ ❦

हम रीश दिखाते हैं कि इसलाम को देखो।
मिस .ज़ुल्फ़ दिखाती है कि इस लाम को देखो ॥

❦ ❦ ❦

दिला क्यूँ कर मैं उस रुख़सारे रोशन के मुक़ाबिल हूँ।
जिसे .खुरशीदे महशर देखकर कहता है मैं तिल हूँ ॥

❦ ❦ ❦

बुतों से मेल .खुदा पे नज़र ये ख़ूब कहो।
शब गनह वो नमाज़े सहर ये ख़ूब कही ॥

फ़िटन नफ़ीस सड़क .खुशनुमा डिनर हर शब।
ये लुत्फ़ छोड़के हज का सफ़र य ख़ूब कही॥

* * *

मज़हब का हो क्यूँ कर इल्मो अमल दिल ही नहीं भाई एक तरफ़।
किरकिट की खिलाई एक तरफ़ कालिज की पढ़ाई एक तरफ़॥
क्या ज़ौक़े इबादत हो उनको जो मिस के लबों के शैदा हों।
हलवाय बहिश्ती एक तरफ़ होटल की मिठाई एक तरफ़॥
ताऊनो तपो खटमल मच्छर सब कुछ हैं य पैदा कीचड़ से।
बम्बे की रवानी एक तरफ़ औ सारी सफाई एक तरफ़॥
क्या काम चले क्या रंग जमे क्या बात बने कौन उसकी सुने।
है अकबर बेकस एक तरफ़ औ सारी .खुदाई एक तरफ़॥
फ़रियाद किये जा अय अकबर कुछ हो ही रहेगा आख़िरकार।
अल्लाह से तोबा एक तरफ़ साहब की दुहाई एक तरफ़॥

* * *

उन्हें शौक़े इबादत भी है औ गाने की आदत भी।
निकलती हैं दुआयें उनके मुँह से ठुमरियाँ होकर॥
न थी मुतलक़ तवक़्क़ै बिल बना कर पेश कर दोगे।
मेरी जाँ लुट गया मैं तो तुम्हारा मेहमाँ होकर॥
निकाला करती है घर से य कह कर तू तो मजनूँ है।
सता रक्खा है मुझको सास ने लैला की माँ होकर॥

रक़ीबे सिफ़ला ख़ू ठहरे न मेरी आह के आगे।
भगाया मच्छरों को उनके कमरे से धुँवा होकर॥

* * *

जब मैं कहता हूँ कि या अल्लाह मेरा हाल देख।
हुक्म होता है कि अपना नामये आमाल देख॥
सोच तुझ को है अगर आइन्दा पालिटिक्स की।
ले नतायज से मदद औ हिस्टरी में फ़ाल देख॥
शौक़े तूलो पेच इस ज़ुल्मतकदे में है अगर।
वात बङ्गाली की सुन बङ्गालनों के वाल देख॥
हुस्ने मिस पर कर नज़र मज़हव अगर जाता है जाय।
क़द्रदाँ को निर्ख़ की क्या वहस अकवर माल देख॥

* * *

बाप माँ से शेख़ से अल्लाह से क्या उनको काम।
डाक्टर जनवा गये तालीम दी सरकार ने॥

* * *

उश्शाक़ को भी माले तिज़ारत समझ लिया।
इस क़द्र को मुलाहज़ा लिल्लाह कीजिये॥
भरते हैं मेरी आह को फ़ोनोगिराफ़ में।
कहते हैं फ़ीस लीजिये औ आह कीजिये॥

* * *

स्माल नहीं ग्रेट होना अच्छा।
दिल होना बुरा है पेट होना अच्छा॥

पंडित हो कि मौलवी हो दोनों बेकार।
इन्सान को ग्रेजुएट होना अच्छा॥

❦ ❦ ❦

थे केक की फ़िक्र में सो रोटी भी गई।
चाहते थे बड़ी शय सो छोटी भी गई॥
वाइज़ की नसीहत क्यूँ न मानें आख़िर।
पतलून की ताक में लँगोटी भी गई॥

❦ ❦ ❦

कर दिया करज़न ने ज़न मरदों की सूरत देखिये।
आबरू चेहरे की सब फ़ैशन बना कर पूँछली॥
सच य है इन्सान को यूरुप ने हलका कर दिया।
इब्तदा डाढ़ी से की औ इन्तहा में मूँछ ली॥

❦ ❦ ❦

क़िस्सये 'मनसूर' सुनकर बोल उठी वो शोख़ मिस।
कैसा अहमक़ लोग था पागल को फाँसी क्यों दिया॥
काश अय अकबर वही हालत मुझे भी पेश आय।
और ये काफ़िर पुकारे 'दर पनाहे मन बिया'॥

❦ ❦ ❦

उनकी तहरीकों से यूँ रहती है दुनिया बेचैन।
जिस तरह पेट में बीमार के बाई दौड़े॥

मेम्बरी के लिये लपका मेरी जानिब वो ग़ोल।
गाय मोटी नज़र आई तो क़साई दौड़े॥

❦ ❦ ❦

ख़्वाह साहब को तुम सलाम करो।
ख़्वाह मन्दिर में राम राम करो॥
भाई जी का फ़क़त ये मतलब है।
जिसमें रुपया मिले वो काम करो॥

❦ ❦ ❦

मेरी रसाई है दैर में भी हरम में भी मेरी मनज़िलत है।
बुतों से बोसे की है तवक़्क़े .ख़ुदा से उम्मीदे मग़फ़रत है॥
झुका है सर अपना पाये बुत पर ज़बान पर है गिला जफ़ा का।
मेरे अमल में है तरज़े सय्यद ग़ज़ल में अन्दाज़े लाजपत है॥

❦ ❦ ❦

नफ़्स के ताबा हुये ईमान रुख़सत हो गया।
वो ज़नाने में घुसे मेहमान रुख़सत हो गया॥
इस क़द्र था खटमलों का चारपाई में हुजूम।
वस्ल का दिल से मेरे अरमान रुख़सत हो गया॥
मै उन्होंने पी अब उनके पास क्यों कर दिल लगे।
जानवर इक रह गया इन्सान रुख़सत हो गया॥

लात दुनिया ने जो मारी बन गया दींदार वो।
थी बुरी ठोकर मगर शैतान रुख़सत हो गया॥

* * *

इस से तो इस सदी में नहीं हमको कुछ ग़रज़।
सुक़रात बोले क्या वो अरस्तू ने क्या कहा॥
बहरे ख़ुदा जनाब दें हमको ये इत्तला।
साहब का क्या जवाब था बाबू ने क्या कहा॥

* * *

मोहताजे दरे वकीलो मुख़्तार हैं आप।
सारे अमलों के नाज़बरदार हैं आप॥
आवारवो मुन्तशिर हैं मानिन्दे ग़ुबार।
मालूम हुआ मुझे ज़मींदार हैं आप॥

* * *

वो मिस बोली मैं करती आपका ज़िक्र अपने फ़ादर से।
मगर आप अल्ला अल्ला करता है पागल का माफ़िक़ है॥
न माना शेख़ जी ने चख गये दस पाँच ये कह कर।
अगर क़ाबिज़ हैं ये बिसकुट तो हों अल्लाह मालिक है॥

* * *

नुक़ता ये सुना है एक बङ्गाली से।
करना हो बसर जो तुम को ख़ुशहाली से॥

ख़ाली हो जगह तो अपने भाई को दिलावो।
.गुस्सा आय तो काम लो गाली से॥

❦ ❦ ❦

छोड़ लिट्रेचर को अपनी हिस्ट्री को भूल जा।
शेख़ो मसजिद से तअल्लुक़ तर्क कर इस्कूल जा॥
चार दिन की ज़िन्दगी है कोफ़्त से क्या फ़ायदा।
खा डबल रोटी कलरकी कर .खुशी से फूल जा॥

❦ ❦ ❦

दरबारे सल्तनत में है किब्रो .खुद पसन्दी।
मज़हब में देखता हूँ जङ्ग औ गिरोह बन्दी॥
रिन्दी वो आशिक़ी का है शग़्ल सब से बेहतर।
लेमनेड है औ व्हिसकी बन्दा है और बन्दी॥

❦ ❦ ❦

न लैसन्स हथियार का है न ज़ोर।
कि टरकी के दुश्मन से जाकर लड़ें॥
तहे दिल से हम कोसते हैं मगर।
कि इटली की तोपों में कीड़े पड़ें॥

❦ ❦ ❦

मग़रबी ज़ौक है और वज़ा की पाबन्दी भी।
ऊँट पर चढ़ के थियेटर को चले हैं हज़रत॥

❦ ❦ ❦

जो जिसके मुनासिब था गर्दूं ने किया पैदा।
यारों के लिये ओहदे चिड़ियों के लिये फन्दे॥

❦ ❦ ❦

मग़रिब ने ख़ुर्दबीं से कमर उन की देखली।
मशरिक़ की शाइरी का मज़ा किरकिरा हुवा॥

❦ ❦ ❦

पाकर ख़िताब नाच का भी ज़ौक़ा हो गया।
सर हो गये तो बाल का भी शौक़ हो गया॥

❦ ❦ ❦

बन्दूक़ का नहीं है जो लैसन्स ग़म नहीं।
मैंने तो इस ख़याल ही को गोली मार दी॥

❦ ❦ ❦

आदत जो पड़ी हो हमेशा से वो दूर भला कब होती है।
रक्खी है चुनौटी पाकट में पतलून के नीचे धोती है॥

❦ ❦ ❦

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।
जब तोप मुक़ाबिल है तो अख़बार निकालो॥

❦ ❦ ❦

बिरगिड के मौलवी को क्या पूछते हो क्या है।
मग़रिब की पालिसी का अरबी में तरजुमा है॥

❦ ❦ ❦

फ़रमा गये हैं य ख़ूब भाई घूरन।
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन॥

❦ ❦ ❦

बोले चपरासी जो मैं पहुँचा ब उम्मीदे सलाम।
फाँकिये ख़ाक आप भी साहब हवा खाने गये॥

❦ ❦ ❦

उनका बिस्कुट के लिये सूजी की थैली मिल गई।
कैम्प में ग़ुल मच गया मजनूँ को लैली मिल गई॥

❦ ❦ ❦

इन से बोसा माँगता हूँ उन से वोट।
बुत भी मुझ से तङ्ग हैं औ शेख़ भी॥

❦ ❦ ❦

ऐसा शौक़ न करना अकबर गोरे को न बनाना साला।
भाई रंग यही है अच्छा हम भी काले यार भी काला॥

❦ ❦ ❦

पका लें पीसकर दो रोटियाँ थोड़े से जौ लाना।
हमारी क्या है अय भाई न मिस्टर हैं न मौलाना॥

❦ ❦ ❦

इस्लाम को जो कहते हैं फैला बज़ोरे तेग़।
ये भी कहेंगे फैली ख़ुदाई बज़ोरे मौत॥

❦ ❦ ❦

जो सुन चुके मेरी गज़लें तो बोले ला चन्दा।
जो हिनहिनाया है आज इतना तौ लीद भी कर॥

* * *

रक़ीबों ने रपट लिखवाई है जा जा के थाने में।
कि अकबर ज़िक्र करता है .खुदा का इस ज़माने में॥

* * *

मज़हब ने पुकारा अय अकबर अल्लाह नहीं तो कुछ भी नहीं।
यारों ने कहा ये क़ौल ग़लत तनख़्वाह नहीं तो कुछ भी नहीं॥

* * *

धमका के बोसा लूँगा रुखे रश्के माह का।
चन्दा वसूल होता है साहब दबाव से॥

* * *

हम क्या कहें अहबाब क्या कारे नुमायाँ कर गये।
बी० ए० हुये, नौकर हुये, पेन्शन मिली, फिर मर गये॥

* * *

शेख़ जी के दोनों बेटे बा हुनर पैदा हुवे।
एक हैं .खुफ़िया पुलिस में एक फाँसी पा गये॥

* * *

सिधारे शेख़ काबे को हम इङ्गलिस्तान देखेंगे।
वो देखें घर .खुदा का हम .खुदा की शान देखेंगे॥

* * *

तुम नाक चढ़ाते हो मेरी बात पै अय शेख़।
खींचूँगा किसी रोज़ मैं अब कान तुम्हारे॥

❦ ❦ ❦

एवज़ क़ुरआँ के अब है डारविन का ज़िक्र यारों में।
जहाँ थे हज़रते आदम वहाँ बन्दर उछलते हैं॥

❦ ❦ ❦

फ़र्क़ क्या वाइज़ो आशिक़ में है बतायें तुम से।
उसकी हुज्जत में कटी इसकी मुहब्बत में कटी॥

❦ ❦ ❦

थी शबे तारीक चोर आये जो कुछ था ले गये॥
कर ही क्या सकता था बन्दा खाँस लेने के सिवा॥

❦ ❦ ❦

क़ाबिले रश्क है ज़माने में।
दिन वकीलों का रात रंडी की॥

❦ ❦ ❦

लिपट भी जा, न रुक अकबर, ग़ज़ब की ब्यूटी है।
नहीं नहीं पै न जा, ये हया की ड्यूटी है॥

❦ ❦ ❦

शाइराना दाद अच्छी दी ये मुझको चर्ख़ ने।
तेग़े अबरू का था आशिक़ ख़ाँ बहादुर कर दिया॥

❦ ❦ ❦

हरम वालों से क्या निसबत हम अहले होटल को।
वहाँ .कुरआन उतरा है यहाँ अँग्रेज़ उतरे हैं॥

❦ ❦ ❦

.खुदा की राह में अब रेल चल गई अकबर।
जो जान देना हो अञ्जन से कट मरो एक दिन॥

❦ ❦ ❦

गुज़र उनका हुवा कब आलमे अल्लाहो अकबर में।
पले कालिज के चक्कर में मरे साहब के दफ़्तर में॥

❦ ❦ ❦

हुवे इस क़दर मुहज़्ज़िब कभी घर का मुँह न देखा।
कटी उम्र होटलों में मरे अस्पताल जा कर॥

❦ ❦ ❦

अफ़ईए ज़ुल्फ़े मिस का तो सौदा बुरा नहीं।
पेचीदगी जो कुछ है फ़क़त उसके दिल में है॥

❦ ❦ ❦

क्या पूछते हो अकबरे शोरीदः सर का हाल।
.खुफ़िया पुलिस से पूछ रहा है कमर का हाल॥

❦ ❦ ❦

मुमकिन्न नहीं अय मिस तेरा नोटिस न लिया जाय!
गाल ऐसे परीज़ाद हों औ किस न लिया जाय॥

❦ ❦ ❦

हमें क्या वाल्शेविक फिर गया या रूस आता है।
यहाँ तो फ़िक्रे सरमाई है माहे पूस आता है॥

❦ ❦ ❦

जो असलो नक़्ल से वाक़िफ हैं उसने दिल को है रोका।
मुबारिक हो तुम्हीं को चाटना लड्डू के फोटो का॥

❦ ❦ ❦

क्या ग़नीमत नहीं य आज़ादी।
साँस लेते हैं बात करते हैं॥

❦ ❦ ❦

मेहरबानी से मुझे गोदाम की कुंजी तो दी।
लेकिन अब बाक़ी नहीं गेहूँ फ़क़त घुन क्या करें॥

❦ ❦ ❦

तोप खिसकी प्रोफ़ेसर पहुँचे।
जब बसूला हटा तो रंदा है॥

❦ ❦ ❦

पेट मसरूफ़ है कलर्की में।
दिल है ईरान और टर्की में॥

❦ ❦ ❦

इशरती घर की मुहब्बत का मज़ा भूल गये।
खा के लन्दन की हवा अहदे वफ़ा भूल गये॥
पहुँचे होटल में तो फिर ईद की परवा न रही।
केक को चख के सवैंइयों का मज़ा भूल गये॥

भूले माँ बाप को अग़यार के चरचों में वहाँ।
सायये कुफ्र पड़ा नूरे ख़ुदा भूल गये॥
मोम की पुतलियों पर ऐसी तबीयत पिघली।
चमने हिन्द की परियों की अदा भूल गये॥
वस्ल है अहले वतन से जो वफ़ा में तुमको।
क्या बज़ुर्गों की वो सब जूदो अता भूल गये॥
नक़्ले मग़रिब की तरङ्ग आई तुम्हारे दिल में।
और ये नुक़्ता कि मेरी अस्ल है क्या भूल गये॥
क्या ताज्जुब है जो लड़कों ने भुलाया घर को।
जब कि बूढ़े भी रविशे दीने ख़ुदा भूल गये॥

* * *

लन्दन को छोड़ लड़के अब हिन्द की ख़बर ले।
बनती रहेंगी बातें आबाद घर तो कर ले॥
राह अपनी अब बदल दे बस 'पास' करके चल दे।
अपने वतन का रुख़ कर औ रुख़सते सफ़र ले॥
इङ्गलिश की कर के कापी दुनिया की राह नापी।
दीनी तरीक़ में भी अपने क़दम को धर ले॥
वापस नहीं जो आता क्या मुन्तज़िर है इसका।
माँ ख़स्ता हाल हो ले बेचारा बाप मर ले॥
मग़रिब के मुरशिदों से तू पढ़ चुका बहुत कुछ।
पीराने मशरिक़ी से अब फ़ैज़ की नज़र ले॥

मैं भी हूँ एक स.ख़ुनवर आ सुन कलामे 'अकबर'।
इन मोतियों से आकर दामन को अपने भरले॥

* * *

ले ले के क़लम के लोग भाले निकले।
हर सिम्त से बीसियों रिसाले निकले॥
अफ़सोस कि मुफ़लिसी ने छापा मारा।
आख़िर अहबाब के दिवाले निकले॥

* * *

उन्हीं के मतलब की कह रहा हूँ, ज़बान मेरी है बात उनकी।
उन्हीं की महफ़िल सँवारता हूँ, चिराग़ मेरा है रात उनकी॥
फ़क़त मेरा हाथ चल रहा है, उन्हीं का मतलब निकल रहा है।
उन्हीं का मज़मूँ उन्हीं का काग़ज़, क़लम उन्हीं का दवात उनकी॥

* * *

देखता एक उम्र से है बन्दा।
होता है कुछ काम न धन्दा॥
बस यही बातें औ यही फन्दा।
लाओ चन्दा लाओ चन्दा॥

* * *

तकल्लुफ़ उन्हीं के लिये कीजिये।
फ़क़ीरों का क्या है ? जहाँ पड़ रहे॥

बुतों से भी लड़ती नहीं याँ तो आँख।
विरहमन हैं लन्दन तलक लड़ रहे॥

❦ ❦ ❦

जो सच्ची बात है कह दूँगा बे ख़ौफ़ो ख़तर उसको।
नहीं रुकने का मैं हरगिज़ परी टोके कि जिन टोके॥
अनार आते जो क़ाबुल के तो पड़ते सब के हिस्से में।
अमीर आये तो हम को क्या मज़े हैं लार्ड मिन्टो के॥

❦ ❦ ❦

करज़नो किचनर की हालत पर जो कल।
वो सनम तशरीह का तालिब हुवा॥
कह दिया मैंने कि है ये साफ़ बात।
देख लो तुम ज़न पै नर ग़ालिब हुवा॥

❦ ❦ ❦

ये बात ग़लत दारे इसलाम है हिन्द।
ये झूठ कि मुल्के लछमनो राम है हिन्द॥
हम सब हैं मुती वो ख़ैरख़्वाहे इङ्गलिश।
यूरप के लिये बस एक गोदाम है हिन्द॥

❦ ❦ ❦

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ॥
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ॥

❦ ❦ ❦

सरविस में मैं दाख़िल नहीं हूं क़ौम का ख़ादिम।
चन्दों की फ़क़त आस है तनख़्वाह कहाँ है॥

वो रोये बहुत इस्पीचों में हिकमत इस को कहते हैं।
मैं समझा ख़ैरख़्वाह उनको हिमाक़त इसको कहते हैं॥

कोई साहब न हों लिल्लाह ना,ख़ुश सुन के ये मिसरा।
ख़याले हुब्बे क़ौमी पीछे औ फ़िक्रे,शिकम पहिले॥

हम से छिन कर हो गई वज़्मे तरक़्क़ी के सुपुर्द।
सच कहा मिरज़ा ने अब उर्दू भी कोरट हो गई॥

ताऊन की बदौलत उनको भी इरतफ़ा, है।
जो मारते थे मक्खी अब मारते हैं चूहे॥

अब मिसेज़ बेसेन्ट नज़्मों में कहानी बन गई।
राज हम पायें न पायें वो तो रानी बन गई॥

तङ्ग दुनिया से दिल इस दौरे फ़लक में आ गया।
जिस जगह मैंने बनाया घर सड़क में आ गया॥

एक पीर ने तहज़ीब से लड़के को उभारा।
एक पीर ने तालीम से लड़की को सँवारा॥

पतलून में वो तन गया ये साये में फैली।
पाजामा ग़र्ज़ ये है कि दोनों ने उतारा ॥
बहरा वो बना कैम्प में ये बन गई आया।
बीबी न रही जब तो मियाँपन भी सिधारा ॥
दोनों जो कभी मिलते हैं गाते हैं ये मिसरा।
आग़ाज़ से बदतर है य अञ्जाम हमारा ॥

* * *

मेरे अमल से न शेख़ .खुश हैं, न भाई .खुश हैं न बाप .खुश हैं।
मगर मैं समझा हूँ इसको अच्छा, दलील ये है कि आप .खुश हैं॥
जो देखा साइन्स का ये चक्कर, धरम पुकारा कि अय बिरादर।
हमारे दौरे में पुन मगन थे, तुम्हारे दौरे में पाप .खुश हैं॥

* * *

ये बात तो खरी है हरगिज़ नहीं है खोटी।
अरबी में नज़्मे मिल्लत बी० ए० में सिर्फ़ रोटी॥
लेकिन जनाबे लीडर सुन कर ये शेर बोले।
बँधवायेंगे ये हज़रत इस क़ौम को लँगोटी ॥

* * *

मशरिक़ी को है ज़ौक़े रूहानी।
मग़रिबी में है मेले जिस्मानी ॥
कहा मन्सूर ने ख़ुदा हूँ मैं।
डारविन बोले बूज़ना हूँ मैं ॥

* * *

नई तहज़ीब में दिक़्क़त ज़ियादा तो नहीं होती।
मज़ाहब रहते है क़ायम फ़क़त ईमान जाता है॥
थियेटर रात को दिन को है यारों की ये इस्पीचें।
दुहाई लाट साहब की मेरा ईमान जाता है॥

* * *

पड़े गुन गुनाते थे लाला निरञ्जन।
न आँखों में अञ्जन न दाँतों में मञ्जन॥
छुटे हम से बिल्कुल वो अगले तरीक़े।
कहाँ खीच ले जायगा हमको अञ्जन॥

* * *

तरक्क़ी की नई राहें जो ज़ेरे आस्माँ निकली।
मियाँ मसजिद से निकले औ हरम से बीबियाँ निकलीं॥
मुसीबत में भी अब यादे ख़ुदा आती नहीं उनको।
दुआ निकली न मुँह से पाकटों से अर्ज़ियाँ निकलीं॥

* * *

मेरे मनसूबे तरक्क़ी के हुवे सब पायमाल।
बीज मग़रिब ने जो बोया वो उगा औ फल गया॥
बूट डासन ने बनाया मैंने यक मज़मूँ लिखा।
मुल्क में मज़मूँ न फैला और जूता चल गया॥

* * *

पुरानी रोशनी में औ नई में फ़र्क़ इतना है।
उसे किश्ती नहीं मिलती इसे साहिल नहीं मिलता॥

* * *

दिल में अब नूरे ख़ुदा के दिन गये।
हड्डियों में फ़ास्फ़ोरस देखिये॥

* * *

कुछ देखता नहीं मैं दिले ज़ार के लिये।
जो कुछ य हो रहा है सब अख़बार के लिये॥

* * *

मेरी नर्माहतों को सुनकर वो शेख़ बोला।
नेटिव की क्या सनद है साहब कहें तो मानूँ॥

* * *

शेख़ साहब का तास्सुब है जो फ़रमाते हैं।
ऊँट मौजूद है फिर रेल पै क्यूँ चढ़ते हो?॥

* * *

बिठाई जायेंगी परदे में बीबियाँ कब तक।
बने रहोगे तुम इस मुल्क में मियाँ कब तक॥

* * *

नूरे इसलाम ने समझा था मुनासिब परदा।
शमए ख़ामोश को फ़ानूस की हाजत क्या है॥

* * *

जब पेशवा ने अपना कावा जुदा बनाया।
अपने मज़े को सब ने अपना .ख़ुदा बनाया॥

❦ ❦ ❦

तिफ़्ल में बू आये क्या माँ बाप के अतवार को।
दूध तो डिब्बे का है तालीम है सरकार की॥

❦ ❦ ❦

मेरे सय्याद की तालीम की है धूम गुलशन में।
यहाँ जो आज फँसता है वो कल सय्याद होता है॥

❦ ❦ ❦

बे परदा नज़र आईं जो कल चन्द बीबियाँ।
'अकबर' ज़मीं में ग़ैरते क़ौमी से गड़ गया॥
पूछा जब उन से आपका परदा कहाँ गया।
कहने लगीं कि अक़्ल पै मरदों की पड़ गया॥

❦ ❦ ❦

तालीम लड़कियों की ज़रूरी तो है मगर।
ख़ातूने ख़ाना हों वो सभा की परी न हों॥
ज़ीइल्मो मुत्तक़ी हों जो हों उनके मुन्तज़िम।
उस्ताद अच्छे हों मगर उस्तादजी न हों॥

❦ ❦ ❦

कौन कहता है कि तालीमे ज़नाँ ख़ूब नहीं।
एक ही बात फ़क़त कहना है याँ हिकमत को॥

दो उसे शौहरो अतफ़ाल की ख़ातिर तालीम।
क़ौम के वासते तालीम न दो औरत को॥

❦ ❦ ❦

तालीमे दुख़्तराँ से ये उम्मीद है ज़रूर।
नाचे दुल्हन ख़ुशी से ख़ुद अपनी बरात में॥

❦ ❦ ❦

उन से बीबी ने फ़क़त इस्कूल ही की बात की।
ये न बतलाया कहाँ रक्खी है रोटी रात की॥

❦ ❦ ❦

अग़राज़ बढ़ गया है आराम घट गया है।
ख़िदमत में है वो लेज़ी औ नाचने में रेडी॥
तालीम की ख़राबी से हो गई बिल आख़िर।
शौहर पसन्द बीबी पब्लिक पसन्द लेडी॥

❦ ❦ ❦

क्यों अपने सर पर ज़हमते बेसूद लीजिये।
कौन्सिल के बदले घर में उछल कूद लीजिये॥
खा पी के घर में बैठिये औ गाइये भजन।
काशी से जल प्रयाग से अमरूद लीजिये॥

❦ ❦ ❦

हमदर्द हों सव ये लुत्फ़े आवादी है।
हमसाया भी हो शरीक तव शादी है॥
तसकीन है जव कि .ख़ुदा पर हो तकिया।
क़ानून वना सकें तव आज़ादी है॥

ज़ोरे बाज़ू न हो तो क्या इस्पीच।
हाथ भी दे .ख़ुदा ज़वाँ के साथ।

हमें तो चाहते हैं खींचना .ख़ुद हम से खिंचते हैं।
ये उनकी पालिसी के वाग़ किस पानी से सिंचते हैं॥

म उर्दू को अरवी क्यूँ न करें, उर्दू को वो भाषा क्यूँ न करें !
गड़े के लिये अख़वारों में, मज़मून तराशा क्यूँ न करें॥
ापस में अदावत कुछ भी नहीं, लेकिन एक अखाड़ा क़ायम है।
व इससे फ़लक का दिल वहले, हम लोग तमाशा क्यूँ न करें॥

हिन्दू मुसलिम एक हैं दोनों।
यानी ये दोनों एशियाई हैं॥
हमवतन हम.ज़ुबाँ वो हमक़िस्मत।
क्यूँ न कह दूँ कि भाई भाई हैं॥

वाज़ मुसलिम तो ऐसे हैं मौजूद।
मुँह जो लहमे वक़रसे मोड़ते हैं॥
फ़ौजी गोरे मगर रुकें क्यूँ कर।
जान बुल कब गऊ को छोड़ते है॥

* * *

झगड़ा कभी गाय का ज़ुबाँ की कभी वहस।
है सख़्त मुज़िर ये नुस्ख़ये गाव ज़ुबाँ॥

* * *

ख़ुदा ही की इबादत जिन को हो मक़सूद ऐ अकबर।
वो क्यूँ बाहम लड़ें गो फ़र्क़ हो तरज़े इबादत में॥

* * *

चला जाता था एक नन्हा सा कीड़ा रात काग़ज़ पर।
बिना क़स्दे ज़रर उसको हटाया मैंने उँगली से॥
मगर वह ऐसा नाज़ुक था कि फ़ौरन पिस गया बिलकुल।
निहायत ही ख़फ़ीफ़ यक दाग़ काग़ज़ पर रहा उसका॥
अभी वो रोशनी में शमअ की काग़ज़ पै फिरता था।
अभी यूँ मिट गया वो ज़ुम्बिशे अन्गुश्ते इन्साँ से॥
लिया मेरे सिवा नोटिस ही किसने उसका दुनियाँ में।
न थी फ़ितरत की क्या कारीगरी उसके बनाने में॥

नसबनामा भी उसका आलमे ज़र्रात में होगा।
यही थी उसकी हस्ती और इसी में उसकी मस्ती थी॥
न मातम करने वाला है न लाइफ़ लिखने वाला है।
वो धब्बा दर्से इबरत दे रहा है मुझको ऐ अकबर॥
मआ़ज़ अल्लाह क्या समझा है तूने अपनी वक़अ़त को।
तुझे भी सफ़हए रुवे ज़मीं से एक दिन आख़िर॥
मिटा देगी कोई तहरीके फ़ितरत हुक्मे बारी से।
अजब हैरत से मैं हूँ देखता इस दाग़े काग़ज़ को॥
मेरी नज़रों में तो नक़्शा ये है दुनियाये फ़ानी का।
सरीहन जिस्म था एक जान थी अहसास था उसमें॥
औ अब धब्बा सा है क्या जाने कोई कैसा धब्बा है।
अजब क्या है जो समझे कोई पेन्सिल की लकीर इस को॥
मआ़ज़ अल्ला मआ़ज़ अल्लाह सन्नाटे का आलम है।
बहुत जी चाहता है रोऊँ इस हस्ती के धब्बे पर॥
ये हैं बरसात के दिन तीसरी भादों गुज़रती है।
मैं अपना ग़म ग़लत करता हूँ कुछ अशआ़र लिखने से॥

* * *

अकबर न थमा बुतख़ाने में ज़हमत भी हुई औ ज़र भी गया।
कुछ नामे .ख़ुदा से उन्स भी था कुछ .ज़ुल्मे बुताँ से डर भी गया॥
परवाने का हाल इस महफ़िल में है क़ाबिले रश्क अय अहले नज़र।
यक शब ही में यह पैदा भी हुआ आशिक़ भी हुवा और मर भी गया॥

काबे से जो बुत निकले तो क्या, काबा ही गया जब दिल से निकल।
अफ़सोस कि बुत भी हम से छुटे क़ब्ज़े से .ख़ुदा का घरभी गया॥
क्या गुज़री जो एक परदे के उदू रो रो के पुलिस से कहते थे।
इज़्ज़त भी गई दौलत भी गई बीबी भी गई ज़ेवर भी गया॥
अकबर के जो मर जाने की ख़बर साक़ी ने सुनी तो ख़ूब कहा।
मरना तो ज़रूरी था ही उसे, रिन्दों के लिये कुछ कर भी गया॥

❧ ❧ ❧

गुल फेंके है यूरप की तरफ़ बल्कि समर भी।
अय नेचरी साइन्स भला कुछ तो इधर भी॥
अग़यार तो दुनिया हैं उठाये हुवे सर पर।
हम बैठे हैं इस तरह कि उठता नहीं सर भी॥
अग़यार तो रग रग से हमारी हुवे वाक़िफ़।
हम वो हैं कि पाते नहीं उस बुत की कमर भी॥

❧ ❧ ❧

सोचो कि आगे चलकर क़िस्मत में क्या लिखा है।
देखो घरों में क्या था और आज क्या रहा है॥
हुशियार रहके पढ़ना इस जाल में न पड़ना।
यूरप ने ये किया है यूरप ने वो किया है॥

❧ ❧ ❧

या इमीटेशन के सदक़े चाय दूध और खाँड ले।
या इमीटेशन के बदले तू चला जा माँडले॥
या क़नाअ़त और ताअ़त में बसर कर ज़िन्दगी।
रिज़्क़ की किश्ती को खे पतवार ले और डाँड ले॥

* * *

बुते सितमगर की कुछ न पूछो हसीन भी है ज़हीन भी है।
नहीं है दिल ही पै सिर्फ़ आफ़त यहाँ तो ख़तरे में दीन भी है॥
हमारे झगड़ों की कुछ न पूँछो तमाम दुनिया है और हम हैं।
कि जेब में ज़र है घर में ज़न है ख़िराज पर कुछ ज़मीन भी है॥

* * *

ज़िन्दगी को ज़रूर है एक शग़्ल।
ख़ैर बिलफ़ेल लीडरी ही सही॥
अब तो अकबर बसा है गङ्गा तीर।
न हो अस्नान दिल्लगी ही सही॥

* * *

लुत्फ़ चाहो एक बुते नौख़ेज़ को राज़ी करो।
नौकरी चाहो किसी अंग्रेज़ को राज़ी करो॥
लीडरी चाहो तो लफ़्ज़े क़ौम है महमाँ नवाज़।
गप नवीसों को औ अहले मेज़ को राज़ी करो॥

* * *

वाज़ कालिज में जो कह आते हैं अक्सर अकबर।
क्या ये गिरती हुई दीवार को थाम आते हैं॥

❦ ❦ ❦

फ़िरंगी से कहा पेन्शन भी लेकर बस यहीं रहिये।
कहा जाने को आये हैं यहाँ मरने नहीं आये॥

❦ ❦ ❦

जहाँ सुई घड़ी की होती थी वक़ उसको कहते थे।
गई चोरी तो हम समझे ज़माना इसको कहते हैं॥

❦ ❦ ❦

हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को ख़ब्ती समझते हैं॥

❦ ❦ ❦

तुम से उस्तादों में मेरी शाइरी बेकार है।
साथ सारङ्गी का बुलबुल के लिये दुशवार है॥

❦ ❦ ❦

ग़रीब अकबर के गिर्द क्यूँ हैं जनाबेवाइज़ से कोई कह दे।
उसे डराते हो मौत से क्या वो ज़िन्दगी ही से डर चुका है॥

❦ ❦ ❦

ये परचा जिसमें चन्द अशआर हैं इरसाले ख़िद्मत है।
हमारे लख़्ते दिल हैं आपका माले तिजारत है॥

❦ ❦ ❦

ये न पूछो मुझ से ये क्यों है और पैसा क्यों नहीं।
शेख़ ये सोचो तुम्हारे पास पैसा क्यों नहीं॥

❦ ❦ ❦

काफ़ी अगरचे लेटने को एक पलङ्ग है।
अँगड़ाइयों को अरज़े दुनिया भी तङ्ग है॥

❦ ❦ ❦

क्यूँकर न शेरे अकबर आये पसन्द सब को।
ये रङ्ग ही नया है कूचा ही दूसरा है॥

❦ ❦ ❦

बुतों की मद्‌ह से कुल शायरी उर्दू की ममलू है।
शिकस्त उर्दू जो पायेगी तो मैं समझूँगा बुत टूटा॥

❦ ❦ ❦

इश्क़ नाज़ुक मिज़ाज है बेहद।
अक़्ल का बोझ उठा नहीं सकता॥

❦ ❦ ❦

एक दिन और क़यामत खिसक आयेगी इधर।
और क्या अर्ज़ करूँ आप से कल क्या होगा॥

❦ ❦ ❦

कहाँ हैं हम में अब ऐसे सालिक कि राह ढूँढ़ी क़दम उठाया।
जो हैं तो ऐसे ही रह गये हैं किताब देखी क़लम उठाया॥

* * *

बाग़े उमीद के फल होते हैं रोज़ ज़ाया।
हमको ख़ुदा बचाये औलाद डारविन से॥

* * *

डारविन साहब हक़ीक़त से निहायत दूर थे।
मैं न मानूंगा कि मूरिस आपके लंगूर थे॥

* * *

दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ।
बाज़ार से गुज़रा हूँ ख़रीदार नहीं हूँ॥
ज़िन्दा हूँ मगर ज़ीस्त की लज़्ज़त नहीं बाक़ी।
हरचंद कि हूँ होश में हुशियार नहीं हूँ॥
वह गुल हूँ ख़िज़ाँ ने जिसे बरबाद किया है।
उलझूँ किसी दामन से मैं वो ख़ार नहीं हूँ॥

* * *

चर्ख़ ने पेशे कमीशन कह दिया इज़हार में।
क़ौम कालिज में औ उसकी ज़िन्दगी अख़बार में॥

* * *

मुद्दत से होश में हूँ नज़रे दिले ज़वाँ हूँ।
लेकिन खुला न अवतक मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ॥

❦ ❦ ❦

जैसा मौसिम हो मुताबिक़ उसके मैं दीवाना हूँ।
मार्च में बुलबुल हूँ औ जोलाई में परवाना हूँ॥

❦ ❦ ❦

ख़िलवते नाज़ में क्या शान खुद आराई है।
हुस्न ख़ुद आलमे हैरत में तमाशाई है॥

❦ ❦ ❦

क़द्रदानों की तबीअत का अजब रंग है आज।
बुलबुलों को है य हसरत कि वो उल्लू न हुये॥

❦ ❦ ❦

मेरा टट्टू ज़ियादा मशरक़ी है शेख़ साहब से।
कि वो मोटर में चढ़ते हैं य मोटर से भड़कता है॥

❦ ❦ ❦

काफ़ी है अमीरों को क़वानीन गवर्मेंट।
मज़हब की ज़रूरत तो ग़रीबों के लिये है॥

❦ ❦ ❦

मेम ने शेख़ को डाँटा तो पुकारा वो ग़रीब।
देखिये तोप ने लाठी को दबा रक्खा है॥

❦ ❦ ❦

ख़ुदा की राह में पहले बसर करते थे सख़्ती से।
महल में बैठकर अब इश्क़े क़ौमी में तड़पते हैं॥

❦ ❦ ❦

भूलता जाता है यूरप आसमानी बाप को।
बस ख़ुदा समझा है उसने बर्क़ को औ भाप को॥
बर्क़ गिर जायेगी यक दिन और उड़ जायेगी भाप।
देखना अकबर बचाये रखना अपने आप को॥

❦ ❦ ❦

सवाब कहता है मिल जाऊँगा कर उनकी मदद।
छिपा हुआ मैं ग़रीबों की भूख प्यास में हूँ॥

❦ ❦ ❦

हमको नई रविश के हलके जकड़ रहे हैं।
बातें तो बन रही हैं औ घर बिगड़ रहे हैं॥

❦ ❦ ❦

शागिर्दे डार्विन तो ख़ुदा ही ने कर दिया।
अकबर मगर नहीं है मदारी के हाथ में॥

❦ ❦ ❦

मुवक्किल छुटे उनके पंजे से जब।
तो बस क़ौमे मरहूम के सर हुये॥

पपीहे पुकारा किये पी कहाँ।
मगर वो तो फ़ीडर से लीडर हुये॥

❧ ❧ ❧

यक दिल्लगी है वक़्त गुज़रने के वास्ते।
देखो तो मेम्बरों के ज़रा हेर-फेर को॥
ऐसी कमेटियों से है फल का उमेद्वार।
अकबर दरख़्त समझा है पत्तों के ढेर को॥

❧ ❧ ❧

क़ौम के दिल में खोट है पैदा।
अच्छे अच्छे हैं वोट पै शैदा॥
भाई भाई में हाथा पाई है।
सेल्फ़ गवर्नमेंट आगे आई है॥

❧ ❧ ❧

पाँव का होश अब न फ़िक्र है सिर की।
वोट की धुन में बन गये फिरकी॥

❧ ❧ ❧

गाँधी में सब भलाई लेकिन वो महज़ बेबस।
साहब में सब बुराई लेकिन वो ख़ूब चौकस॥

❧ ❧ ❧

बुद्धू मियाँ भी हज़रते गाँधी के साथ हैं।
गो गर्दे राह हैं मगर आँधी के साथ हैं॥

❧ ❧ ❧

कहता हूँ हिन्दू वो मुसल्माँ से यही।
अपनी अपनी रविश प तुम नेक रहो॥
लाठी है हवाये दहर पानी बन जाओ।
मौजों की तरह लड़ो मगर एक रहो॥

* * *

मुहर्रम औ दशहरा साथ होगा।
निवाह उसका हमारे हाथ होगा॥
ख़ुदा ही की तरफ़ से है य संजोग।
तो वाहम क्यों न रक्खें सुलह हम लोग॥

* * *

अपने ऐबों की न कुछ फ़िक्र है न परवा है।
ग़लत इलज़ाम बस औरों प लगा रक्खा है॥
यही फ़रमाते रहे तेग़ से फैला इसलाम।
यह न इरशाद हुआ तोप से क्या फैला है॥

* * *

मदख़ूलए गवर्मेंट अकबर अगर न होता।
उसको भी आप पाते गाँधी की गोपियों में॥

* * *

क़सीदे से न चलता है न ये दोहे से चलता है।
समझ लो ख़ूब कारे सल्तनत लोहे से चलता है॥

* * *

उधर है जेल की ज़हमत इधर है क़ौम की लानत।
उधर आराम जाता है इधर ईमान जाता है॥
ब मजबूरी वो माज़ूरी शरीके कैम्प है अकबर।
मगर जिसकी बसीरत है उसे पहचान जाता है॥

❦ ❦ ❦

बहारे उम्र गुज़री सालहाए इम्तहानी में।
हमें तो पास ही की फ़िक्र ने पीसा जवानी में॥

❦ ❦ ❦

हसरत बहुत तरक्क़िए दुख़तर की थीं उन्हें।
पर्दा जो उठ गया तो वो आख़िर निकल गई॥

❦ ❦ ❦

वाह क्या धज है मेरे भोले की।
शक्ल कोले की हैट सोले की॥

❦ ❦ ❦

जिधर साहब उधर दौलत जिधर दौलत उधर चंदा।
जिधर चंदा उधर आनर जिधर आनर उधर बंदा॥

❦ ❦ ❦

बेहतर यही है फेर लें आँखों को गाय से।
क्या फ़ायदा है रोज़ की इस हाय हाय से॥

मुँह वन्द हो सकेगा मुसलमाँ शरीफ़ का।
चस्का मगर न जायगा साहव से वीफ़ का॥

* * *

पानी पीना पड़ा है पाइप का।
हर्फ़ पढ़ना पड़ा है टाइप का॥
पेट चलता है आँख आई है।
शाह एडवर्ड की दुहाई है॥

* * *

चिपकूँ दुनिया से किस तरह मैं।
औरत ने कहा कि गोंद मैं हूँ॥
कौमो चंदे कहाँ समायेंगे।
कालेज ने कहा कि तोंद मैं हूँ॥

* * *

वड़े शौक़ से सुन रहा था ज़माना।
तुम्हीं सो गये दास्ताँ कहते कहते॥

कौमुदी-कुञ्ज

(१)

साक़ी तू दिये जा मै जिस जिस को दिया चाहे।
सब में वो सोहागिन है कि जिस को पिया चाहे॥
तू आज दुआ साक़ी गर मेरी लिया चाहे।
इस ढब कि पिला दे मै पीते हा पिया चाहे॥
जब जान लिया तुझको पहचान लिया तुझको।
फिर किस प य दिल रीझे और किसको जिया चाहे॥
दिल पास था जो मेरे दिलवर को दिया मैंने।
अब जान भी हाज़िर है जानाँ जो लिया चाहें॥
मै पीते हैं मस्ताने हम इश्क़ के दीवाने।
काबे को तू मैख़ाना कर दे जो किया चाहे॥

अज्ञात

(२)

ग़रीबों का भी कोई आसरा होता तो क्या होता।
बुते काफ़िर हमारा भी ख़ुदा होता तो क्या होता॥
कोई लज़्ज़त नहीं है फिर भी दुनिया जान देती है।
ख़ुदावन्दा मुहब्बत में मज़ा होता तो क्या होता॥
जब इतनी बेवफ़ाई पर उसे दिल प्यार करता है।
तो या रब वह सितमगर बा वफ़ा होता तो क्या होता॥

सुना है हश्र वह ज़िक्रे वफ़ाये ग़ैर करते थे।
जो मैं भी बीच ही में बोल कुछ उठता तो क्या होता॥

हश्र

(३)

है बहारे बाग़ दुनिया चन्द रोज़।
देखलो इसका तमाशा चन्द रोज़॥
ऐ मुसाफ़िर कूच का सामान कर।
इस सरा में है बसेरा चन्द रोज़॥
दफ़न करके क़ब्र में बोली क़ज़ा।
अब यहाँ तुम सोते रहना चन्द रोज़॥
है जमीं एक मौजे दरिया कोई दिन।
आसमाँ है यक बला सा चन्द रोज़॥
ग़ाफ़िलो यादे इलाही चाहिये।
है बखेड़ा ज़िन्दगी का चन्द रोज़॥
पूछा लुक़माँ से जिया तू कितने दिन।
दस्ते हसरत मलके बोला चन्द रोज़॥
फिर कहाँ 'अकबर' कहाँ तुम दोस्तो।
ज़िन्दगी का है बखेड़ा चन्द रोज़॥

अकबर

(४)

मेरे माशूक़ तुम हो यार तुम हो दिलरुबा तुम हो।
ये सब कुछ हो मगर मैं कह नहीं सकता कि क्या तुम हो॥

तुम्हारे नाम से सब लोग मुझको जान जाते हैं।
मैं वह खोई हुई यक चीज़ हूँ जिसका पता तुम हो॥

अज्ञात

(५)

लैला को यार तूने मजनूँ बना के मारा।
ऐसे शिकस्तः दिल को दर दर फिरा के मारा॥
फोड़ा है पत्थरों से सर कोहकन का किसने।
मनसूर से अनलहक़ किसने कहा के मारा॥
ऐ यार क्या क्या तेरी नैरंगियाँ बयाँ हो।
बुत बनके आप हमको काफ़िर बना के मारा॥
गर जाँ गई बला से ऐ दिल नहीं ग़म इसका।
कर शुक्र उसने अपना बन्दा बना के मारा॥

अज्ञात

(६)

उसने कहा तू कौन है मैंने कहा शैदा तेरा।
उसने कहा मतलब है क्या मैंने कहा सौदा तेरा॥
उसने कहा क्या नाम है औ किस नशे से काम है।
मैंने कहा मैं मस्त हूँ औ हूँ मैं दीवाना तेरा॥
उसने कहा दिल ले गया मैंने कहा हाँ ले गया।
उसने कहा वह कौन है मैंने कहा ग़मज़ा तेरा॥
उसने कहा हट दूर हो मैंने कहा हर्गिज़ नहीं।
उसने कहा दावा है क्या मैंने कहा बन्दा तेरा॥

अज्ञात

(७)

य किस मस्त के आने की आरज़ू है।
कि साक़ी लिये साग़रे मुश्क बू है॥
समाया है जबसे तू नज़रों में मेरी।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है॥
निकल जाय दम तेरे क़दमों के नीचे।
यही दिल की हसरत यही आरज़ू है॥
गुलिस्ताँ में जाकर हरेक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है॥
शफ़क़ बन के होता है गर्दूँ प ज़ाहिर।
य किस कुश्तए बेगुनः का लहू है॥

पादशाह

(८)

कोई घड़ी न वस्ल की आई तमाम रात।
बातों में उस परी नें गँवाई तमाम रात॥
उठ कर जो आप जगह से अपने चले गए।
पहलू में दिल ने धूम मचाई तमाम रात॥
पैरों पड़े बलाएँ लीं औ मिन्नतें भी कीं।
सरकी न उनके मुँह से दुलाई तमाम रात॥
ख़ौफ़ उनको था कि नींद में बोसा न ले कहीं।

गालों प धर के सोए कलाई तमाम रात ॥
तारों के टूटने की चमक उन को भा गई।
अफ़शाँ लगा लगा के छुड़ाई. तमाम रात ॥
पाला पड़ा है मुझको अजब बद मिज़ाज से।
झगड़े तमाम दिन हैं लड़ाई तमाम रात ॥
मूनिस फिर आज हिज्र की शब काटनी पड़ी।
नींद ऐसी सो गई कि न आई तमाम रात ॥

मूनिस

(९)

ज़बानी हाल यों कहना तू जाकर नामावर पहले।
हमारी आहे गिरियाँ की तू कर देना ख़बर पहले ॥
भौंरा लोभी फूल का, कली कली रस ले।
काँटा लागा प्रेम का, हेर फेर जिय दे ॥
तेरी उलफ़त के कूचे में नफ़ा पीछे ज़रर पहले ॥
सजन सकारे जायँगे, नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर, भोर कभी ना होय ॥
सुबह गर यार जाएगा तो अपना है सफ़र पहले ॥
जिन नैनों से देखते, कहाँ गए वो नैन।
प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, अब लागे दुख देन ॥
हमारे क्या हुए प्यारे जो करते थे क़दर पहले ॥

पंख नहीं बिन पङ्ख हौं, केहि बिधि उड़के जाउँ।
दरस पियारे श्याम को, बिन पर कैसे पाउँ॥
मेरे सैयाद ज़ालिम ने उखेड़े बालो पर पहले॥
बह गए बालम बह गए, नदी किनार किनार।
आप तो पार उतर गए, हमें छोड़ मँझधार॥
सितमगर था तुझे लाज़िम मेरी लेनी ख़बर पहले॥
आओ प्यारे नैन में, मूँदि पलक तोहिँ लेउँ।
ना मैं देखों और को, ना तोहिँ देखन देउँ॥
करूं ख़िदमत मैं आँखों से बिछा लूँ चश्म पर पहले।
अगले दिन पाछे गए, हरिसे कियो न हेत।
अब पछताए होत का, चिड़या चुग गई खेत॥
अक्ल जाती है इस कूचे में अय ज़ामिन गुज़र पहले॥

ज़ामिन

(१०)

नहीं इश्क़ में इसका तो रंज हमें कि क़रारो शकेब ज़रा न रहा।
ग़मे इश्क़ तो अपना रफ़ीक़ रहा कोई और बला से रहा न रहा॥
दिया अपनी ख़ुदीको जो हमनेउठाजो परदासा बीच में था न रहा।
रहा परदे में अब वही परदा नशीं कोई दूसरा उसके सिवा न रहा॥
न थी हाल की जब हमें अपने ख़बर रहे देखते औरों के ऐबो हुनर।
पड़ी अपनी बुराइयों पर जो नज़र तो निगाह में कोई बुरा न रहा॥

मुझे साफ़ बताए निगार अगर तो ये पूछूँ मैं रो रो के ,खूने जिगर।
मले पाँव से किसके हैं दीदए तर कफ़े पाय जो रंगे हिना न रहा॥
ज़फ़र आदमी उसको न जानिएगा व हो कैसाही साहिबे फ़ह्मोज़का।
जिसे ऐश में यादे ,खुदा न रही जिसे तैश में ख़ौफ़े ,खुदा न रहा॥

ज़फ़र *

(११)

पसे मर्ग मेरी मज़ार पर जो दिया किसीने जला दिया।
उसे आह दामने बाद ने सरे शाम ही से बुझा दिया॥
मेरी आँख झपकी थी एक पल वोंही दिलने कहा कहा उठके चल।
दिले बेक़रार ने आनकर मुझे चुटकी लेके जगा दिया॥
पये मग़फ़रत मेरे ऐ ज़फ़र पढ़े फ़ातिहा कोई आन कर।
वो जो टूटी क़ब्र का था निशाँ उसे ठोकरों से मिटा दिया॥

ज़फ़र

(१२)

यार था गुलज़ार था मै थी फ़िज़ा थीं मैं न था।
लायक़े पाबोसे जानाँ क्या हिना थी मैं न था॥
मैंने पूछा आपका वह क्या हुआ हुस्ने शबाब।
हँस के बोला वह सनम शाने ,खुदा थी मैं न था॥
कोई जा सकता नहीं असमत सराए यार तक।
परदए दर जिसने उलटा वो हवा थी मैं न था॥

* बहादुर शाह 'ज़फ़र'; दिल्ली के अंतिम मुग़ल बादशाह; ज़ौक़ के शागिर्द।

बे .ख़ुदी में ले लिया बोसा ख़ता कीजे मुआफ़।
इस दिले बेताब की साहब ख़ता थी मैं न था॥
मैं सिसकता ही रहा औ मर गये फ़रहादो क़ैस।
क्या उन्हीं दोनों के हिस्से में क़ज़ा थी मैं न था॥
नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में।
कोने कोने ढूँढ़ती फिरती क़ज़ा थी मैं न था॥
दाग़ इसका दिल प मेरे पे ज़फ़र रह जायगा।
ख़ानहाये यार में ख़ल्क़े .ख़ुदा थी मैं न था॥

ज़फ़र

(१३)

न कुछ हम हँस के सीखे है न कुछ हम रो के सीखे हैं।
जो कुछ थोड़ा सा सीखे हैं किसी के हो के सीखे हैं॥

ज़फ़र

(१४)

क़मर धोका दहन उक़दः ग़ज़ाल आँखें परी चेहरा।
शिकम हीरा बदन .ख़ुशबू जबीं दरिया ज़बाँ ईसा॥
बराये सैर मुझसा रिन्द मैख़ाने में गर आये।
गिरे साग़र लुँढे शीशा हँसे साक़ी बहे दरिया॥

अख़्तर*

* नवाब वाजिदअली शाह 'अख़्तर'; लखनऊ के आख़िरी नवाब; कलकत्ते के मटियाबुर्ज में सं० १९३४ में मरे।

(१५)

सल्तनत छोड़ दी दरवेशों की सोहबत के लिये।
ज़ोफ़ए इश्क़ में है कोई न हमसर अपना॥ अख़्तर

(१६)

क़ैद होने से कहीं बूए रियासत जायगी।
लाख गर्दिश आसमाँ को हो ज़मीं होता नहीं॥ अख़्तर

(१७)

ज़ईफ़ी में भी लपटी है बलाए शायरी हम से।
न छूटेगी कभी 'अख़्तर' क़लम से मश्क़े तिफ़्लाना॥ अख़्तर

(१८)

वाए बिस्मल्लाह भी बेहबूदिए बीमार है।
सीन है उसका सफ़ीना बहरे ग़म से पार है॥
मीम से मालो मनालो मुल्क .खुश मिलता है रोज़।
है अलिफ़ वहदत प दाल अब अपना अल्ला यार है॥ अख़्तर

(१९)

मैं लखनऊ में जैसो अज़ा करता था।
और गिरियए अन्दोहो बुका करता था॥
वैसा ही मेरा हाल है कलकत्ते में।
पर याद नहीं कि पेश क्या करता था॥ अख़्तर

(२०)

फ़क़ीरी फ़ख़्रे शाहाँ है य क़ौल अहमद का है ऐ दिल !
बड़ा है तख़्ते सुल्ताँ से कहीं पाया तवक्कुल का ॥ अख़्तर

(२१)

क्या हुआ गर इश्क़ में तेरे लुटा मुल्के अवध ।
यक गदा अदना सा इब्राहीम अदहम हो गया ॥ अख़्तर

(२२)

लगा ठोकर न पाये नाज़ से तू ।
कभी ताजे सरे हिन्दोस्ताँ थे ॥ अख़्तर

(२३)

ग़ुरूरो मैपरस्ती, ख़ुदबद, रंज ।
ये इन्साँ के लिये हैं चार दोज़ख़ ॥

अख़्तर

(२४)

जहाँ तेग़ उसकी अलम देखते हैं ।
वहाँ अपना हम सर क़लम देखते हैं ॥
जो जलवा सनम तुझमें हम देखते हैं ।
ख़ुदा की ख़ुदाई में कमदेखते हैं ॥
गुज़रते हैं सौ सौ ख़याल अपने दिल में
किसी का जो नक़्शे क़दम देखते हैं ॥

बुतों की गली में शबोरोज़ 'आसफ़'।
तमाशा ख़ुदाई का हम देखते हैं॥

आसफ़*

(२५)

जिन्से दिल दाब के हम अपनी बग़ल में ले आये।
जाके बाज़ार को देखो तो ख़रीदार न था॥

(२६)

हम कहे देते हैं ऐ दिल! इश्क़ है ख़ाना ख़राब।
इसने जब रक्खा क़दम तब लाख का घर ख़ाक था॥

(२७)

ऐसे लोगों में नहीं हम जो कहें औ न करें।
मर्द जो कहते हैं वह करके दिखा देते हैं॥

आसफ़†

(२८)

नौ गिरफ़्तारी में चन्दे याद गुलशन की रही।
अब क़फ़स से छुटके घर याद आयगा सैयाद का॥

*स्व० नवाब आसफ़ुद्दौला, लखनऊ; "जिसे न दे मौला, उसे दे आसफ़ुद्दौला," वाले।

†निज़ाम हैदराबाद; दाग़ के शागिर्द।

ज़बा करते करते मुरग़ाने क़फ़स तंग आये हैं।
अब रिहाई उनकी हो या हुक्म हो फ़रियाद का॥
रिन्द

(२९)

सैयाद तेरे दाम से आसाँ था छूटना।
मुश्किल य है कि तुझसे मेरा दिल अटक गया॥

(३०)

मतलब में सफ़ा हो य तकल्लुफ़ है ज़बाँ का।
दिक़्क़त हुई मानी में तो क्या लुत्फ़ बयाँ का॥

(३१)

मै पीके जवाँ देते हैं साक़ी को दुआएँ।
ता दौरे फ़लक दौर रहे पीरे मुग़ाँ का॥ रिन्द

(३२)

फेंक दूँगा मैं इसे चीर के पहलू अपना।
तुझ प क़ाबू नहीं दिल पर तो है क़ाबू अपना॥ रिन्द

(३३)

कब मिटा इश्क़ का निशाँ दिल से।
ज़ख़्म अच्छा हुआ तो दाग़ रहा॥
नाज़ बेजा उठाइये किसके।
अब न वह दिल न वह दिमाग़ रहा॥ रिन्द

(३४)

मुसाफ़िर थे अदम के सैर करने याँ भी आये थे।
रहे याँ जब तलक क़िस्मत में याँ का आबोदाना था॥ रिन्द

(३५)

कोह फ़रहाद से मज़नूँ से बयाबाँ जीता।
बहशते दिल तेरे इक़बाल से मैदाँ जीता॥ रिन्द

(३६)

यक एक नुक़ता पर अजी लड़ते हैं मरदुवे।
महफ़िल मशायरा की अखाड़ा है भीम का॥ जान सा०*

(३७)

तिल नहीं माँग में ज़नानी के।
यह कन्हैया खड़ा है गोकुल में॥
आँख लड़ते ही हो गई आशिक़।
मोहनी थी मुए के काजल में॥ जान साहब

(३८)

हम उनसे दूर बज़ाहिर हज़ार बैठे हैं।
य लाख जान से दिल में निसार बैठे हैं॥
इधर भी चश्मे इनायत हो ज़रा ऐ साक़ी!

---

*मीर यार अली 'जान साहब'; रेख़ती के प्रसिद्ध शायर; जन्मस्थान लखनऊ; जन्म-संवत् १८६८; मृत्यु-संवत् १९३८।

कि मस्त देर से उम्मेद्वार बैठे हैं॥
चमन में उलझे हुये हैं जो दामने गुल से।
वो दिल में बुलबुले शैदा के ख़ार बैठे हैं॥
जला के हिज्र में तुमने जो ख़ाक कर दिया दिल।
हम उसका दाग़ लिये यादगार बैठे हैं॥
कमाल इश्क़ तो यह है कि जो बज़ाहिर हाल।
बिगाड़ बैठे हैं याँ वह सँवार बैठे हैं॥
निगाहे नाज़ का साक़ी के एक है य कमाल।
कि बज़्म हो गई मदहोश वो यार बैठे हैं॥
कमान अब्रूए जानाँ के दिल से हूँ क़ुर्बां।
कि जितने तीर हैं सीने के पार बैठे हैं॥
वो साफ़ होवेंगे क्या अपने ख़ाकसारों से।
कि आप दिल प य बनकर ग़ुबार बैठे हैं॥
तुम्हारे ज़ुल्फ़ को थे बाँधते परीशाँ हम।
सो दामन आज लिये तार तार बैठे हैं॥
नज़र उठा के नहीं देखता वो सैदअफ़गन।
दिलों को हाथों प रक्खे शिकार बैठे हैं॥
अमामः शेख़ का छोड़ेंगे क्या भला वो रिन्द।
जो अपनी पगड़ी को पहले उतार बैठे हैं॥
क़िमारे इश्क़ में अब क्या लगायेंगे 'आज़ाद'।
कि नक़द दिल को तो पहले ही हार बैठे हैं॥

(३९)

दिलों में करते जो उलफ़त से हैं जहाँदारी।
जहाँ को एक नज़र में ग़ुलाम करते हैं॥

(४०)

हुआ लैला प मजनूँ कोहकन शीरीं प सौदाई।
मुहब्बत दिल का इक सौदा है जिसकी जिससे बन आई॥

(४१)

कुछ ग़म नहीं मिटा जो निशाँ मेरी क़ब्र का।
काफ़ी है यह निशान कि मैं बेनिशाँ गया॥

आज़ाद *

(४२)

यक राज़ जर्मनों ने कहा अज़ रहे ग़ुरूर।
आसाँ नहीं है फ़तह तो दुश्वार भी नहीं॥
बर्तानिया की फ़ौज है दस लाख से भी कम।
उस पर य लुत्फ़ है कि वो तैयार भी नहीं॥
बाक़ी रहा फ़रांस तो वो ज़िन्दलम यज़ल।
आईशनासे शेवए पैकार भी नहीं॥

*शम्सुलउल्मा मौलवी मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद"; आबेहयात के कर्ता; दिल्ली-निवासी।

मैंने कहा ग़लत है तेरा दावए .ग़ुरूर।
दीवाना तू नहीं है तो हुशियार भी नहीं॥
हम लोग अहले हिन्द हैं जर्मन से दस गुने।
तुझको तमीज़ अंदको विसयार भी नहीं॥
इस सादगी प कौन न मर जाय ऐ .ख़ुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥

शिवली *

(४२)

ऐ ख़ाके हिन्द ! तेरी अज़मत में क्या गुमाँ है।
दरियाए फ़ैज़े .क़ुदरत तेरे लिये रवाँ है॥
तेरी ज़बीं से नूरे हुस्ने अज़ल अयाँ है।
अल्लः रे ज़ेबो ज़ीनत क्या औजे उज़्ज़ो शाँ है॥
हर सुबह है य ख़िदमत .ख़ुरशेद पुर ज़िया की।
किरनों से गूँधता है चोटी हिमालिया की॥
इस ख़ाके दिलनशीं से चश्मे हुये वो जारी।
चीनो अरब में जिनसे होती थी आबयारी॥
सारे जहाँ प जब था वहशत का अब्र तारी।
चश्मो चिराग़े आलम थी सर ज़मीं हमारी॥

*शम्सुलउल्मा मौलाना शिबली नेमानी; आज़मगढ़ निवासी; जन्म-संवत् १९१६; मृत्यु-संवत् १९७१।

शमा अदब न थी जब यूनाँ की अंजुमन में।
ताबाँ था मेहरे वेनिस इस वादिए कुहन में॥
गौतम ने आबरू दी इस माबदे कुहन को।
सरमद ने इस ज़मीं पर सिद्के किया वतन को॥
अकबर ने जाये उल्फ़त बख़्शा इस अंजुमन को।
सींचा लहू से अपने राना ने इस चमन को॥

सब सूर बीर अपने इस ख़ाक में निहाँ हैं।
टूटे हुये खँडर हैं या उनकी हड्डियाँ हैं॥
ऐ सूर हुब्बे क़ौमी इस ख़्वाब से जगा दे।
भूला हुआ फ़साना कानों को फिर सुना दे॥
मुर्दा तबीअतों की अफ़सुरदगी मिटा दे।
उठते हुये शरारे इस राख से दिखा दे॥

हुब्बे वतन समायें आँखों में नूर होकर।
सर में ख़ुमार होकर दिल में सुरूर होकर॥
शैदाए बोस्ताँ को सर्वो समन मुबारक।
रंगीं तबीअतों को रंगे सुख़न मुबारक॥
बुलबुल को गुल मुबारक गुल को चमन मुबारक।
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक॥

ग़ुंचे हमारे दिलके इस बाग़ में खिलेंगे।
इस ख़ाक से उठे हैं इस ख़ाक में मिलेंगे॥

है जूए शीर हमको नूरे सहर वतन का।
आँखों की रोशनी है जलवा इस अंजुमन का॥
है रश्के महर ज़र्रा इस मंज़िले कुहन का।
तुलता है बर्गे गुल से काँटा भी इस चमन का॥
गर्दो गुबार याँ का ख़िलअत है अपने तनको।
मरकर भी चाहते हैं ख़ाके वतन कफ़न को॥

दीवारो दर से अबतक उनका असर अयाँ है।
अपनी रगों में अबतक उनका लहू रवाँ है॥
अबतक असर में डूबी नाक़ूस की फ़ुग़ाँ है।
फिरदौसे गोश अबतक कैफ़ीयते अज़ाँ है॥
कश्मीर से अयाँ है जन्नत का रंग अबतक।
शौकत से बह रहा है दरियाए गंग अबतक॥
अगली सी ताज़गी है फूलों में औ फलों में।
करते हैं रक़्स अबतक ताऊस जंगलों में॥
अबतक वही कड़क है बिजली की बादलों में।
पस्ती सी आ गई है पर दिल के वलवलों में॥
गुल शमा अंजुमन है गो अंजुमन वही है।
हुब्बे वतन नहीं है ख़ाके वतन वही है॥

बरसों से हो रहा है बरहम समाँ हमारा।
दुनिया से मिट रहा है नामो निशाँ हमरा॥

कुछ कम नहीं अज़ल से ख़्वाबे गिराँ हमारा।
इक लाशे बेकफ़न है हिन्दोसताँ हमारा॥
इसके भरे ख़जाने बरबाद हो रहे हैं।
ज़िल्लत नसीब वारिस ग़फ़लत में सो रहे हैं॥

(४४)

तू गुल के लिये है, गुल है शबनम के लिये।
इक रब्त है इन्तज़ामे आलम के लिये॥
लेकिन है मेरा शबाब मातम के लिये।
ग़म मेरे लिये है और मैं ग़म के लिये॥

(४५)

फ़ना का होश आना ज़िन्दगी का दर्द सर जाना।
अजल क्या है, ख़ुमारे बादःए हस्ती उतर जाना॥
मुक़ामे कूच क्या है, मंज़िले मक़सूद तक भूले।
क़यामत था सराये दहर में दो दिन ठहर जाना॥
सिधारी मंज़िले हस्ती से किस बे पतनाई से।
तने ख़ाकी को शायद रूह ने गर्दे सफ़र जाना॥

(४६)

दर्दे दिल पासे वफ़ा जज़्बए ईमाँ होना।
आदमीयत है यही औ यही इन्साँ होना॥
सर में सौदा न रहा पाँव में बेड़ी न रही।
मेरी तक़दीर में था बे सरो सामाँ होना॥

गुल को पामाल न कर लालो गुहर के मालिक।
है इसे तुर्रए दस्तारे गरीबाँ होना॥

चकबस्त *

(४७)

न पा सकते जिसे पाबन्द रहकर क़ैदे हस्ती में।
सो हमने बेनिशाँ होकर तुझे ओ बेनिशाँ पाया॥

(४८)

देखे जिसे है राहे फ़ना की तरफ़ रवाँ।
तेरी महलसरा का यही रास्ता है क्या ?

(४९)

शब वही शब है दिन वही दिन है।
जो तेरी याद में गुज़र जाये॥

(५०)

शेर दर अस्ल है वही 'हसरत'।
सुनते ही दिल में जो उतर जाये॥

(५१)

है इन्तहाए यास भी इक इब्तदाये शौक़।
फिर आगये वहीं प चले थे जहाँ से हम॥

---

*पंडित ब्रजनारायण 'चकबस्त', वकील हाईकोर्ट; स्थान लखनऊ; जन्म-संवत् १९४०; वर्तमान।

(५२)

मस्ती के फिर आगये ज़माने।
आबाद हुये शराबख़ाने॥
हर फूल चमन में ज़र बकफ़ है।
बाँटे हैं बहार ने ख़ज़ाने॥

(५३)

क़ौमों की तरक्क़ी के हैं कुछ और ही असबाब।
जो डाक प मौक़ूफ़ न है तार प मौक़ूफ़॥

(५४)

लुत्फ़ की उनसे इल्तिजा न करें।
हमने ऐसा कभी किया न करें॥
मिल रहेगा जो उनसे मिलना है।
लब को शर्मिंदए दुआ न करें॥
सब्र मुश्किल है आरज़ू बेकार।
क्या करें आशिक़ी में क्या न करें॥

हसरत मोहानी

(५५)

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा॥

ग़ुरबत में हों अगर हम रहता है दिल वतन में।
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहाँ हमारा॥
पर्वत वो सबसे ऊँचा हमसाया आसमाँ का।
वह सन्तरी हमारा वह पासबाँ हमारा॥
गोदीमें खेलती हैं इसकी हज़ारों नदियाँ।
गुलशन है जिनके दमसे रश्के जिनाँ हमारा॥
ऐ आबे रौदे गंगा वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा॥
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा॥
यूनानो मिस्रो रोमा सब मिट गये जहाँ से।
अब तक मगर है बाक़ी नामोनिशाँ हमारा॥
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा॥
"इक़बाल" कोई महरम अपना नहीं जहाँ में।
मालूम क्या किसी को दर्दे निहाँ हमारा॥

(५६)

दुनिया की महफ़िलों से उकता गया हूँ या रब।
क्या लुत्फ़ अंजुमन में जब दिलही बुझ गया हो॥
शोरिश से भागता हूँ दिल ढूँढ़ता है मेरा।
ऐसा सिकूत जिस पर तक़दीर भी फ़िदा हो॥

मरता हूँ ख़ामुशी पर यह आरज़ू है मेरी।
दामन में कोह के इक छोटा सा झोंपड़ा हो॥
आज़ाद फ़िक्र से हूँ उजलत में दिन गुज़ारूँ।
दुनिया के ग़म का दिल से काँटा निकल गया हो॥
लज़्ज़त सरोद की हो चिड़ियों के चहचहों में।
चश्मे की शोरिशों में बाजा सा बज रहा हो॥
पत्तों का हो नज़ारा मेरी किताब ख़ानी।
दफ़्तर हा मार्फ़त का जो गुल खिला हुआ हो॥
गुल की कली चटक कर पैग़ाम दे किसी का।
साग़र ज़रा सा गोया मुझको जहाँनुमा हो॥
हो हाथ का सरहाना सब्ज़े का हो बिछौना।
शर्माये जिससे जिलवत ख़िलवत में वह अदा हो॥
मानूस इस क़दर हो सूरत से मेरी बुलबुल।
नन्हें से दिल में उसके खटका न कुछ मेरा हो॥
सफ़ बाँधे दोनों जानिब बूटे हरे हरे हों।
नदी का साफ़ पानी तस्वीर ले रहा हो॥
हो दिल फ़रेब ऐसा कुहसार का नज़ारा।
पानी भी मौज बनकर उठ उठ के देखता हो॥
आग़ोश में ज़मीं के सोया हुआ हो सब्ज़ा।
पड़ पड़ के झाड़ियों में पानी चमक रहा हो॥

पानी को छू रही हो झुक झुक के गुल की टहनी।
जैसे हसीन कोई आईना देखता हो॥
मेंहदी लगाये सूरज जब शाम की दुलहन हो।
सुरखी लिये सुनहरी हर फूल की क़बा हो॥
यों वादियों में ठहरे आकर शफ़क़ की सुरख़ी।
जैसे किसी गली में कोई शकिस्ता-पा हो॥
पच्छिम को जा रहा हो कुछ इस अदा से सूरज।
जैसे कोई किसी के दामन को खींचता हो॥
रातों को चलनेवाले रह जायँ थक के जिस दम।
उम्मेद उनकी मेरा टूटा हुआ दिया हो॥
बिजली चमक के दिन को कुटिया मेरी दिखादे।
जब आस्माँ पै हरसू बादल घिरा हुआ हो॥
पिछले पहर की कोयल वह सुबह की मोअज़्ज़न।
मैं उसका हमनवा हूँ वह मेरी हमनवा हो॥
कानों पै हो न मेरे दहरो हरम का अहसाँ।
रोज़न ही झोंपड़ी का मुझको सहरनुमा हो॥
ज़ुल्मत झलक रही हो इस तरह चाँदनी में।
जूँ आँख में सहर की सुर्मा लगा हुआ हो॥
फूलों को आये जिस दम शबनम वज़ू कराने।
रोना मेरा वज़ू हो नाला मेरी दुआ हो॥

दिल खोल कर बहाऊँ अपने वतन पै आँसू।
सरसब्ज़ जिसके नम से बूटा उमेद का हो॥
इस ख़ामुशी में जायें इतने बुलन्द नाले।
तारों के क़ाफ़ले को मेरी सदा दरा हो॥
हर दर्दमन्द दिल को रोना मेरा रुला दे।
बेहोश जो पड़े हैं शायद उन्हें जगा दे॥

इक़बाल

(५७)

ख़ौफ़ आफ़त से कहाँ दिल में रया आयेगी।
बात सच्ची है जो वह लब प सदा आयेगी॥
दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उल्फ़त।
मेरी मिट्टी से भी खुशबूए वफ़ा आयेगी॥
मैं उठा लूँगा बड़े शौक़ से उसको सर पर।
ख़िद्मते क़ौमो वतन में जो बला आयेगी॥
सामना सब्रो सजाअत से करूँगा मैं भी।
खिंच के मुँह तक जो कभी तेग़े जफ़ा आयेगी॥
आत्मा हूँ मैं बदल डालूँगा फ़ौरन् चोला।
क्या बिगाड़ेगी अगर मेरी क़ज़ा आयेगी॥
ख़ून रोयेगी समा पर मेरे मरने प शफ़क़।
ग़म मनाने के लिये काली घटा आयेगी॥

अब्र तर अश्क बहायेगा मेरे लाशे पर।
ख़ाक उड़ाने के लिये बादे सबा आयेगी॥
ज़िन्दगानी में तो मिलने से झिझकती है फ़लक।
खल्क़ को याद मेरी बादे फ़ना आयेगी॥

लालचंद "फ़लक"

(५८)

लूटा है उस निगाह ने मिल कर निगाह से।
चोरी गया है दिल इन्हीं आँखों की राह से॥

आह

(५९)

क़ब्र में जाते हैं शायद रंज से राहत मिले।
इस जमीं से दूर कुछ तो आसमाँ हो जायगा॥

अब्र

(६०)

मौत क्या हमसे फ़क़ीरों से तुझे लेना है।
मरने से पहले ही यह लोग तो मर जाते हैं॥
ता क़यामत नहीं मिटने के दिलें असलम से।
दर्द हम अपने एवज़ छोड़े 'असर' जाते हैं।

(६१)

ज़िन्दगानी की राह थी तारीक।
इसलिए अक़्ल का चिराग़ दिया॥

है तअज्जुब कि दे दिया सब कुछ।
लेकिन अपना न कुछ सुराग़ दिया॥

असर

(६२)

चाँद अब किसको देखने निकला।
चढ़ के कोठे प वह उतर भी गये॥

(६३)

जिसका सर है दार पर सरदार है।
इश्क़ की सरकार क्या सरकार है॥

अख़्तर

(६४)

ग़म नहीं मुजको जनाज़े प मेरे मद्फ़न तक।
हसरते यार तो थी साथ अगर यार न था॥

इरशाद

(६५)

आईनाः लेके ज़रा चाँद सी सूरत देखो।
ऐसी आँखों में तो अन्धेर है सुरमा देना॥

(६६)

थक चुके हैं पाँव उसका आस्ताना दूर है
दिन है कम मंज़िल कड़ी है और जाना दूर है॥

बे हुनर मसनदनशीं अहले हुनर दर दर ख़राब।
अक़्ले इन्साँ से ख़ुदा का कारख़ाना दूर है॥

(६७)

न दोज़ख़ को समझते हैं न जन्नत को हम ऐ वाइज़।
फ़िराक़े यार दोज़ख़ है विसाले यार जन्नत है॥

असीर लखनवी

(६८)

कुछ जवानी है अभी कुछ है लड़कपन उनका।
दो दग़ाबाज़ों के क़ब्ज़े में है जोबन उनका॥

अश्क दहलवी

(६९)

ऐ माहरू झलकते हैं आरिज़ नक़ाब में।
कहता है हुस्न मैं न रहूँगा हिजाब में॥

अफ़सर

(७०)

आया जो वह गुल तो गुल चमन में।
फूले न समाये पैरहन में॥ पंडित

(७१)

चमन में नुक़्तः कहा जब सबा ने तुझ लबका।
दहन जो गुल का खुला था मुँदा नहीं तबका॥

पहुँचा

(७२)

पीरजी इश्क़ में घुले ऐसे।
उड़ गया गोश्त रह गया छिलका॥ पीरजी

(७३)

किस किस तरह की दिल में गुजरती हैं हसरतें।
है वस्ल से ज़ियादा मज़ा इन्तज़ार का॥

(७४)

हँसता है गुल चमन में तो नालाँ है अन्दलीब।
दो दिल ख़ुशी न देखते हैं इस जहाँ के बीच॥

(७५)

इन बुतों को तो मेरे साथ मुहब्बत होती।
काश बनता मैं बरहमन ही मुसलमाँ के एवज़॥
ताबाँ

(७६)

चर्ख़ को चक्कर ज़मीं को ज़लज़लः लर्ज़ां हैं कोह।
ख़ौफ़ मेरी आहे सोज़ाँ से तुम्हें लेकिन नहीं॥
तास्सुफ़

(७७)

सहरा में मुझे देखके मजनूँ य पुकारा।
इस वक़्त मदद कीजिए उस्ताद हमारी॥ नायब

(७८)

यहाँ तक गिरिया में रोये सहर तक।
गली कूचे में पानी है कमर तक॥

(७९)

हम ज़ेरे ख़ाक लेके जो यह चश्म तर गये।
अन्धे कुएँ भी जितने थे पानी से भर गये॥

तजल्ली

(८०)

किताबे क़िस्सए फ़रहादो दफ़्तरे मजनूँ।
य दो वर्क़ हैं मेरी इश्क़ की कहानी के॥

(८१)

अल्लाः होगई है जवानी की शाम सुबह।
लेकिन शबे फ़िराक़ की पैदा सहर नहीं॥

(८२)

पहलुए यार से उठने को तो उठे लेकिन।
दर्द की तरह उठे गिर पड़े आँसू की तरह॥

(८३)

हाय क्या फितनए महशर को करेंगे बेदार।
अपनी सोती हुई किस्मत तो जगाई न गई॥

(८४)

हमको अपनी ख़बर नहीं हमदम।
देख तो आके मर गये शायद॥

(८५)

हजूमे मस्ती है बे.ख़ुदी है .ख़ुमार जोशे शबाब में हूँ।
य देखने को खुली हैं आँखें वगरनः बेहोश ख़्वाब में हूँ॥
तमाशाए वहरे जहाँ के देखूँ फ़ना से इतनी कहाँ है .फ़ुर्सत।
हवा की मानिन्द कोई दम गो असीर क़ैदे हुबाव में हूँ॥

तस्लीम लखनवी

(८६)

क्या कहा फिर भी कहो दिल की ख़बर कुछ भी नहीं।
फिर य क्या है ख़मे गेसू में अगर कुछ भी नहीं॥
जज़्बए दिल ने किया हाय असर कुछ भी नहीं।
हम यहाँ मरते हैं और उनको ख़बर कुछ भी नहीं॥
इक जफ़ा तेरी नहीं कुछ भी मगर है सब कुछ।
इक वफ़ा मेरी कि सब कुछ है मगर कुछ भी नहीं॥
आँख पड़ती है कहीं पाँव कहीं पड़ता है।
सबकी है तुमका ख़बर अपनी ख़बर कुछ भी नहीं॥
शमअ भी गुल भी है बुलबुल भी है पर्वानः भी।
रात की रात य सब .कुछ है सहर कुछ भी नहीं॥

हश्र की धूम है सब कहते हैं यों है यों है।
फ़ित्नः है इक तेरी ठोकर का मगर कुछ भी नहीं ॥
शमअ मग़रूर न हो बज़्म फ़रोज़ी प बहुत।
रात भर की य तजल्ली है सहर कुछ भी नहीं ॥
नेस्ती की है मुझे कूचए हस्ती में तलाश।
सैर करता हूँ उधर की कि जिधर कुछ भी नहीं ॥
ला़मकाँ में भी तो कुछ जल्वः नज़र आता है।
वे कसी में तो उधर हूँ कि जिधर कुछ भी नहीं ॥
एक आँसू भी असर जब न करे ऐ तिश्नः।
फ़ायदः रोने से ऐ दीदए तर कुछ भी नहीं ॥

तिश्नः दहलवी

(८७)

आओ आज उस दिले नाकाम की तुरबत प चलें।
ज़िन्दगी भर जो हरेक काम को आसाँ समझा ॥

(८८)

उम्रे अज़ीज़ गुज़री हसरत परस्तियों में।
ऐसी भी ज़िन्दगी का या रब ! हिसाब होगा ॥

(८९)

कैसे कैसे सितम हुये तुझ पर।
क्या मेरे दिल तुझे ख़बर न हुई ॥

दिल ने दुनिया नई बना डाली।
और हमें आज तक ख़बर न हुई॥
हिज्र की रात काटने वाले।
क्या करेगा अगर सहर न हुई॥

(९०)

बना दिया न ज़माने को दास्ताँ जब तक
मिली न इश्क़ को फ़ुरसत फ़साना साज़ी से॥

(९१)

कभी जन्नत, कभी दोज़ख़, कभी काबा, कभी दैर।
अजब अंदाज़ से तामीर हुआ ख़ानए दिल॥

(९२)

दिल की चमक में जब तेरी सूरत नज़र पड़ी।
साबित हुआ कि हुस्न का पर्दा ही दर्द था॥

(९३)

आगे ख़ुदा को इल्म है क्या जाने क्या हुआ
बस उनके रुख़ से याद है उठना नक़ाब का॥

(९४)

हिचकी का तार टूट चुका रूह अब कहाँ।
ज़ंजीर खुल के गिर पड़ी दीवाना छुट गया॥

अज़ीज़

(९५)

कोई मुँह चूम लेगा इस 'नहीं' पर।
शिकन रह जायगी यों ही ज़बाँ पर॥
धरी रह जायगी यों हीं शबे-वस्ल।
'नहीं' लब पर शिकन तेरी ज़बाँ पर॥
उड़ाये फिरती है उनको जवानी।
क़दम पड़ता नहीं उनका ज़मीं पर॥

(९६)

आँचल ढला रहा मेरे मस्ते शबाब का।
ओढ़ा गया कभी न दुपट्टा सँभाल के॥
मेंहदी लगाये बैठे हैं कुछ इस अदा से वह।
मुट्ठी में उनका देदे कोई दिल निकाल के॥

(९७)

न आया हमें इश्क़ करना न आया।
मरे उम्र भर और मरना न आया॥
यही दिन थे सौ सौ तरह तुम सँवरते।
जवानी तो आई सँवरना न आया॥

(९८)

बार होता न शबे वस्ल नज़ाकत को तेरी।
लब मेरा मिस्ले तबस्सुम तेरे लब पर होता॥
रियाज़

(९९)

होता नहीं है कोई बुरे वक़्त का शरीक।
पत्ते भी भागते हैं ख़िज़ाँ में शजर से दूर॥

अज्ञात

(१००)

इधर होश आया उधर तेरी याद।
य फिर खाई ठोकर सँभलते हुए॥

आरज़ू

(१०१)

ग़मों से घुल के न कुछ मेरे ख़स्तः तन में रहा।
रहा तो कुछ योंही धोका सा पैरहन में रहा॥

(१०२)

है मुहब्बत में अबस हिन्दू मुसलमाँ का ख़याल।
इश्क़ में रहता नहीं है दीनो ईमाँ का ख़याल॥

आज़ाद

(१०३)

वो निहायत हमें मग़रूर नज़र आते हैं।
पास बैठे हैं मगर दूर नज़र आते हैं॥ दाग़

(१०४)

कमसिनी है तो ज़िदें भी हैं निराली उनकी।
इस प मचले हैं कि हम दर्दे जिगर देखेंगे॥

फ़साहत

(१०५)

आँखें न जीने देंगी तेरी बेवफ़ा मुझे।
इन खिड़कियों से झाँक रही है क़ज़ा मुझे॥ बहर

(१०६)

चन्द तसवीरे बुताँ चन्द हसीनों के ख़तूत।
बाद मरने के मेरे घर से य सामाँ निकला॥ दर्द

(१०७)

चल ऐ बादे सबा आहिस्ता चल, बेदार होता है।
मना कर कलियों को चटखें न मेरा यार सोता है॥

अज्ञात

(१०८)

✓कौन होता है बुरे वक्त. की हालत का शरीक।
मरते दम आँख को देखा है कि फिर जाती है॥

अज्ञात

(१०९)

ना.ज़ुक है न खिन्चावऊँगा तसवीर मैं उसकी।
चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आये॥ अर्शद

(११०)

✓सियह बख़्ती ये कब कोई किसी का साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा होता है इन्साँ से॥

नासिर अली

(१११)

कह रहा है आसमाँ यह सब समाँ कुछ भी नहीं।
पीस दूँगा एक गर्दिश में जहाँ कुछ भी नहीं॥
रोती है शबनम कि नैरंगे जहाँ कुछ भी नहीं।
चीख़ती हैं बुलबुलें गुल का निशाँ कुछ भी नहीं॥
तख़्त वालों का पता देते हैं तख़्ते गोर के।
खोज मिलता है यहीं तक बाद अज़ाँ कुछ भी नहीं॥
जिनकी नौबत की सदा से गूँजते थे आसमाँ।
दम ब.खुद हैं मक़बरों में हूँ न हाँ कुछ भी नहीं॥
जिनके महलों में हज़ारों रंग के फ़ानूस थे।
झाड़ उनकी क़ब्र पर है औ निशाँ कुछ भी नहीं॥

अज्ञात

(११२)

जो जाके न आये वो जवानी देखी।
जो आके न जाय वो बुढ़ापा देखा॥

(११३)

बुलबुल का चुराया दिल नाहक़ यह खामख़याली फूलों की।
लेती है तलाशी बादे सबा सब डाली डाली फूलों की॥
आलम है अनोखा कलियों का दुनिया है निराली फूलों की।
अल्लाह रे इस .खुशहाली पर यह .खुश इक़बाली फूलों की॥

मिसले बुलबुल नकहत से छुटे दमभरको चमन मुमकिन ही नहीं।
होती है तसद्दुक़ फ़ूलों पर .खुद रहनेवाली फ़ूलों की॥
माना कि लुटाया रातों को गुलज़ार में मोती शबनम ने।
जब सुबह हुई सूरज निकला तो जेब थी ख़ाली फ़ूलों की॥
गुलचीं की भी नज़रें पड़ती हैं सरसर के भी झोंके आते हैं।
हो ऐसे में किससे क्यों कर कबतक रखवाली फ़ूलों की॥
आती है ख़िज़ाँ अब रुख़सत कर ज़िन्दा जो रहे फिर आयेंगे।
हमसे तो न देखी जायेगी माली पामाली फ़ूलों की॥
गुलज़ारे-जहाँ को जब देखा तो शक्ल नज़र आई मुझ को।
आलम से अलग आलम से जुदा आलम से निराली फ़ूलों की॥
हर ज़र्रे पर हर पत्ते पर .क़ुरबानो तसद्दुक़ करने को।
नकहत का ख़ज़ाना खोल दिया हिम्मत है य आली फ़ूलों की॥
फिर रुत बदली फिर अब्र उठा फिर सर्द हवायें चलने लगीं।
हो जायँ परी बन जायँ दुल्हन अब डाली डाली फ़ूलों की॥
हारों में गुँधे जकड़े भी गये गुलशन भी छुटा सीना भी छिदा।
पहुँचे मगर उनकी गरदन तक यह .खुशइक़वाली फ़ूलों की॥
बुलबुल को यह समझा दे कोई क्यों .खून के आँसू रोती है।
उड़ जायगी सुरख़ी फ़ूलों से मिट जायगी लाली फ़ूलों की॥
हम अपने दिल में दाग़ों को यों देखते हैं यों जाँचते हैं।
करता है निगहबानी जैसे गुलज़ार में माली फ़ूलों की॥

जो लुत्फ़ कभी हासिल था हमें वह लुत्फ़ चमन के साथ गया।
अब कुंजे क़फ़स में खैंचते हैं तसवीर ख़याली फूलों की॥
ऐ बादे सबा मुरग़ाने चमन देते हैं तुझे दिल से य दुआ।
अल्लाह करे .ख़ुश वह भी रहे .ख़ुश रखने वाली फूलों की॥
सैयाद के घर से गुलशन तक अल्लाह ही पहुँचाये मुझ को।
उम्मीद नहीं मैं .ख़ुश होकर देखूँ .ख़ुशहाली फूलों की।
हर मिसरे में हर शेर में है गुलहाय मज़ामीं का जलवा।
ऐ "नूह" कहूँ मैं इसको ग़ज़ल या समझूँ डाली फूलों की॥

नूह।

(११४)

उम्मीद अगर ज़ालिम होती न क़यामत की।
जीना तो बुरा था हा मरना भा बुरा होता॥

अज्ञात

(११५)

वो अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्स नुसख़ए इश्क़ का।
कि किताब अक़्ल की ताक़ पै जो धरी थी यों ही धरी रहा॥
तेरे जोशे हैरते हुस्न का हुआ इस क़दर से असर यहाँ।
न ता आइने में जिला रहा न परी में जलवागरी रही॥

(११६)

नफ़्स की आमदोशुद दिल का दाग़ जलता है।
.ख़ुदा की शान हवा में चिराग़ जलता है॥

(११७)

शबे विसाल में गुल कर दो इन चिराग़ों को।
.खुशी के बज़्म में क्या काम जलने वालों का॥

(११८)

कमर ख़मीदा नहीं बेवजः ज़ईफ़ी में।
ज़मीन ढूंढ़ रहा हूँ मज़ार के क़ाबिल॥

(११९)

शानों में .ज़ुल्फ .ज़ुल्फ़ में दिल दिल में हसरतें।
इतना तो बोझ सर पै नज़ाक़त कहाँ रही॥

(१२०)

ज़िन्दगी ज़िन्दा दिली का नाम है।
मुर्दा दिल ख़ाक जिया करते हैं॥

(१२१)

जो ख़िज़ाँ हुई वो बहार हूँ जो उतर गया वो .खुमार हूँ।
जो बिगड़ गया वो नसीब हूँ जा उजड़ गया वो सिंगार हूँ॥
मेरा हाल क़ाबिले दीद है कि न आस है न उमीद है।
मेरी घुटके हसरते मर गईं मैं उन हसरतों का मज़ार हूँ॥
मैं कहाँ रहूँ मैं कहाँ बसूँ न यह मुझसे .खुश न वो मुझसे .खुश।
मैं ज़मीं की पीठ का बोझ हूँ मैं फ़लक के दिल का .ग़ुबार हूँ॥

वा हँसी के दिन वो ख़ुशी के दिन गये "हश्र" याद सी रहगई।
कभी बाद जामये नाव था मगर अब मैं उसका उतार हूँ॥

हश्र

(१२२)

पहाड़ों का यों लम्बी ताने य सोना।
वो गुंजाँ दरख़्तों का दोशालः होना॥
वो दामन में सब्ज़ा की मख़मल बिछौना।
नदी का बिछौने की झालर पिरोना॥
य राहत मुजस्सिम य आराम मैं हूँ।
कहाँ कोहो दरिया यहाँ मैं हीं मैं हूँ॥
य पर्वत की छाती प बादल का फिरना।
वो दम भर में अब्रों से पर्वत का घिरना॥
गरजना चमकना कड़कना निखरना।
छमाछम छमाछम य बूँदों का गिरना॥
उरूसे फ़लक का य हँसना य रोना।
मेरे ही लिये है फ़क़त जान खोना॥
य वादी का रंगीं गुलों से लहकना।
फ़िज़ा का य बू से सरापा महकना॥
य बुलबुल सा ख़ंदाँ लबों का चहकना।
वो आवाज़े नै का बहरसू लपकना॥

गुलों की य कसरत इरम रूबरू है।
य मेरी ही रंगत है, मेरी ही बू है॥
अजब लुत्फ़ है कोह पर चाँदनी का॥
य नेचर ने ओढ़ा है जाली दुपट्टा॥
दिखाता है आधा छुपाता है आधा।
दुपट्टे ने जोवन किया है दुबाला॥
नशे में जवानी के माशूक़े नेचर।
है लपटी हुई "राम" से मस्त होकर॥
जिधर देखता हूँ जहाँ देखता हूँ।
मैं अपनी ही ताब और शाँ देखता हूँ॥

स्वामी रामतीर्थ

शब्दार्थ-कोश

अ

अक्स ..	छाया	अक़ीदा ..	विश्वास
अजल ..	मृत्यु	आशियाँ ..	घोंसला
अहद ..	शपथ, वादा	अज़दहा ..	अजगर
अदा ..	हाव-भाव	असीर ..	क़ैदी
असद ..	शेर	अहले करम ..	परोपकार-रत
अजज़ा ..	अंश	अज़ल ..	सृष्टि का पहला दिन
अश्क ..	आँसू	आलम ..	जगत
अग़यार ..	दुश्मन	अफ़ज़ूँ ..	अधिक
अयाँ ...	प्रकट	अफ़लास ..	निर्धनता
अलम ..	रंज	अफ़शा ..	प्रकट
अनक़ा ..	एक कल्पित पक्षी	अफ़साना ..	कहानी
अख़फ़ा ..	गुप्त	अयज़ाज ..	कौशल
आरज़ू ...	अभिलाषा	असास ..	सामान
आतिशे ख़ामोश ..	बुझी हुई आग.	असा ..	दण्ड, लाठी
अख़्तर ..	तारे	आसी ..	पापी
आस्तान ..	चौखट	आक़ा ..	मालिक
औज ..	उन्नति	आज़ार ..	रोग
आहंग ..	संगीत, विचार	अन्दलीब ..	बुलबुल
अबस ..	व्यर्थ	आफ़ताब ..	सूर्य
अंजुमन ..	सभा	अयादत ..	देखभाल

आरिज़ .. कपोल
आलम .. संसार, गति
आबेबक़ा .. अमृत
आहन .. लोहा
आहू .. हिरन

अहबाब .. मित्र
अब्र .. बादल
अब्रू .. भौं
अक़ीदा .. विश्वास

इ

इरशाद .. आज्ञा
इशरत .. विषय भोग
इन्तज़ार .. प्रतीक्षा
इब्तदा .. प्रारंभ
इशारत .. भ्रूभंगी
इबरत .. शिक्षा

इज़्तराब .. बेकली
इरम .. स्वर्ग
इन्तहा .. अंत
इख़्तलाफ़ .. भिन्नता
इताब .. रोष

उ

उल्फ़त .. प्रेम

उदू .. दुश्मन

ए

एक़बाल .. सौभाग्य, प्रताप
एख़फ़ा .. छिपाना

एतक़ाद .. विश्वास

क

क़यामत .. प्रलय
काकुल .. केश
क़ासिद .. दूत

कफ़ेपा .. तलुवा
कफ़्स .. जूता, खड़ाऊँ
क़तरा .. बून्द

कसाफ़त .. स्थूलता
कुलाह .. टोपी
क़दह .. प्याला
कूज़ह .. छोटा घड़ा
क़ंबा .. वस्त्र
कफ़ .. हथेली
क़फ़स .. पिंजड़ा
क़स्द .. विचार
क़ामत .. शरीर
कोह .. पहाड़
कोहकन .. फ़रहाद
क़ैस .. मजनूँ
केश .. स्वभाव

ख

ख़िज्र .. एक फ़रिश्ता
ख़ाल .. तिल
ख़ूबाँ .. रूपवान्
ख़ुम .. पीपा
ख़िरमन .. खलियान, ढेर
खलिश .. तकलीफ़
ख़्वाब .. स्वप्न
ख़ार .. काँटा
ख़िरद .. बुद्धि
ख़ुरशीद .. सूर्य
ख़ुर्रम .. प्रसन्न
ख़मोशी .. चुप
ख़्वाहिश .. वासना
ख़ूगर .. अभ्यस्त
ख़िलवत .. एकान्त

ग

गदा .. भिखारी
गुल .. फूल
गुल-उज़ार .. फूल ऐसे गाल
गुलशन .. फुलवारी
गुलज़ार .. फुलवारी
गोर .. क़ब्र
गुहर .. मोती
गेसू .. केशदाम
गुंचा .. कली
गुल .. फूल
ग़ैर .. प्रतिद्वंदी
गोशा .. कोना
गोश .. कान
गुर्रा .. अभिमान
गराँ .. महँगा
गुदाज़ .. घुलाने वाला

गर्दिश	..	चक्कर	गिरिया	..	रोना

च

चमन	..	वाटिका	चश्म	..	आँख
चाह	..	कुंवाँ			

ज

जन्नत	..	स्वर्ग	जिगर	..	कलेजा
जफ़ा	..	अत्याचार	जलवा	..	प्रकाश
जहाँ	..	संसार	ज़ौक़	..	शौक़
ज़र्रा	..	कण	ज़ोफ़	..	निर्बलता
ज़ीस्त	..	जीवन	जलवागरी	..	शोभा
जुनूँ	..	उन्माद	जलवत	..	प्रकट
ज़वाल	..	अवनति	जाम	..	प्याला
ज़ुलमत	..	अन्धकार	ज़ाहिद	..	भक्त
जमाल	..	सौन्दर्य	ज़ेब	..	शोभा
ज़र	..	सोना			

त

तक़सीर	..	अपराध	तनहा	..	एकान्त
तायर	..	पक्षी	तर्क	..	त्याग
तुन्दख़ू	..	बदमिज़ाज	तारक	..	त्यागी
तनज़्ज़ुल	..	अवनति	तरब	..	संगीत
तिश्नगी	..	प्यास	ताराज होना	..	लुट जाना

तामीर .. बनावट, निर्माण
तमन्ना .. इच्छा
तक़लीद .. अनुकरण
तीमारदार .. रोगी की सेवा करने वाला
तग़ा फुल .. बेपरवाही

द

दफ़ .. खँजड़ी
दाम .. जाल
दुख़्तरे रिज़ .. अंगूर की शराब
दुई .. भेद भाव
दहन .. मुँह
दश्त नवरदी .. वन-भ्रमण
दोज़ख़ .. नर्क
दहक़ाँ .. किसान
दुश्वार .. मुश्किल
दरमाँ .. औषध
दश्त .. जङ्गल
दामन .. पल्ला
दुश्नाम .. गाली
दाद .. इन्साफ़, न्याय
दहर .. दुनिया

न

नजूमी .. ज्योतिषी
निशात .. ख़ुशी
नातवाँ .. दुर्बल
नागहानी .. अनिश्चित
नासेह .. समझानेवाला
सोज़ .. दुःख
नुत्क़ .. भाषण शक्ति
नीमकश .. आधा चुभाहुआ
नाला .. आह, रोना
नक़्शे क़दम .. चरण चिन्ह
नश्वो नुमा .. उत्पत्ति
नसीम .. वायु
नक़ाब .. घूँघट, वह पर्दा जो मुँहपर डाला जाता है
नविश्ता .. पत्र
नज़ारा .. दर्शन
नोहाख़्वाँ .. शोक प्रकट करने वाला
नालाँ .. रोते हुये
नजात .. मुक्ति
नुकता .. गूढ़ बात
निहाँ .. गुप्त

निशातेकार .. काम करने की उमङ्ग

नग़मा .. राग

नामुराद .. विफल मनोरथ

प

पैग़ाम .. संदेशा

पन्द .. सीख

परस्तिश .. पूजा

पैमाँ .. वादा, वचन

पैरहन .. कपड़ा

पस्ती .. अवनति

पिनहाँ .. छिपा हुआ

फ़

फ़रेब .. धोखा

फ़ुरक़त .. विरह

फ़ना .. लय

फ़ुग़ाँ .. आह

फ़रियाद .. दुहाई

फ़लक .. आकाश

फ़ौत .. मृत्यु

फ़ितना .. पाप

ब

बक़ा .. अमरत्व

बज़्म .. सभा

बख़्त .. भाग्य

बार .. बोझ

बर्ग .. पत्ता

बादःख़्वार .. शराबी

बयाबाँ .. जंगल

बेहिजाब .. बेशरम

बारे .. एकबार

बहर .. समुद्र

बेदार .. जगा हुआ

बर्क़ .. बिजली

बेदाद .. ज़ुल्म

बेनियाज़ी .. बेपरवाई

बोसा .. चुम्बन

बातिल .. झूठा

बेबहरा .. मूर्ख

बहिश्त .. स्वर्ग

बेकसी .. निस्सहाय अवस्था

म

मह ..	चन्द्रमा	मुज़्तर ..	परेशान
मरदुमक ..	आँख की पुतली	महबूब ..	प्रियतम
महर ..	सूर्य, कृपा	मैराज़ ..	सीढ़ी
मुक़द्दर ..	भाग्य	मीना ..	काँच की सुराही
मिज़गाँ, मिज़ा	पलक	महव ..	तन्मय
मुश्ताक़ ..	भक्त	मै ..	शराब
मैकशी, मै ख़ुरी	मद्यपान	मुद्दआ ..	मतलब
मुज़दा ..	ख़ुशख़बरी	मुहाबा ..	एक साथ
मोतक़िद ..	भक्त	मर्ग ..	मृत्यु
मुकर्रर ..	दोबारा	मुदाम ..	हमेशा
मुसव्विर ..	चित्रकार	मुहाल ..	असंभव
मदारात ..	ख़ातिरदारी		

य

यास .. निराशा

र

रेश ..	दाढ़ी	रुसवा ..	बदनाम
रक़ीब ..	प्रतिद्वन्दी	रियाज़त ..	भजन
राहत ..	आराम	रम्ज़ ..	भेद
रुख़सार ..	गाल	राज़ ..	भेद
रुख़ ..	मुँह	रहगुज़र ..	मार्ग
रू ..	मुँह	रोज़े जज़ा ..	प्रलय का दिन
रिन्द ..	मस्त	रश्क ..	डाह

ल

लख़्त	..	टुकड़े	लब	..	ओंठ
लाग़री	..	दुर्बलता	लौह	..	मस्तक

व

वस्ल	..	मिलन	वली	..	सिद्ध
वफ़ात	..	मृत्यु	वहशी	..	पागल
वायज़	..	उपदेशक	वहशत	..	पागलपन

श

शबनम	..	ओस	शोहरत	..	प्रसिद्ध
शफ़ा	..	चिकित्सा	शीरीं	..	मीठा, फ़रहाद की प्रेमिका
शादी	..	ख़ुशी			
शादियाना	..	बाजा	शमा	..	मोमबत्ती, दीपक
शीशा	..	काँच का प्याला			
शेवा	..	रुचि, कार्य	शिकवा	..	शिकायत
शोला	..	अग्नि	शाहिद	..	द्रष्टा
शिताब	..	जल्द	शगुफ़्ता	..	विकसित
शिकेब	..	शान्ति			
शब	..	रात			

स

सैयाद	..	शिकारी	सैफ़	..	तलवार
सनम	..	मूर्ति, प्यारा	समन	..	चमेली का फूल

सहरा	..	जंगल
सुबू	..	बड़ा घड़ा
साग़र	..	प्याला
सेराब	..	तृप्त
सितमगार	..	दुःख देनेवाला
सदा	..	ध्वनि
सताइश	..	तारीफ़
संग	..	पत्थर
साक़ी	..	शराब पिलाने वाला

सह्र	..	जादू, प्रातःकाल
सग	..	कुत्ता
सब्ज़ा	..	घास, हरियाल
सई	..	चेष्टा
समर	..	फल
साहिल	..	किनारा
साज़	..	बाजा
सवाब	..	पुण्य
सिला	..	पुरस्कार

ह

हकीम	..	दार्शनिक
हलक़ा	..	घेरा
हुजूम	..	भीड़
हैफ़	..	शोक
हस्ती	..	स्थिति, सृष्टि
हंगाम	..	आक्रमण चहलपहल।
हश्र	..	प्रलय का दिन
हक़ परस्त	..	आस्तिक
हिकमत	..	विज्ञान, दर्शन

हिज्र	..	विरह
हैवान	..	पशु
हविस	..	इच्छा
हसरत	..	निराशा, इच्छा,
हया	..	लज्जा
हलाल	..	द्वितीया का चाँद
हर्ज़ी	..	अप्रसन्न
हनोज़	..	अबतक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

की पुस्तकों का

सूचीपत्र

कविता-कौमुदी

पहला भाग—हिन्दी

इस पुस्तक में चंदवरदायी, विद्यापति ठाकुर, कबीरसाहब, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, सूरदास, मलिकमुहम्मद जायसी, नरोत्तम दास, मीराबाई, हितहरिवंश, नरहरि, हरिदास, नन्ददास, टोडरमल, बीरबल, तुलसीदास, बलभद्र मिश्र, दादूदयाल, गंग, हरिनाथ, रहीम, केशवदास, पृथ्वीराज और चम्पादे, उसमान, मलूकदास, प्रवीणराय, मुबारक, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारीलाल, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपतिमिश्र, जसवंतसिंह, बनवारी, गोपालचंद्र, बेनी, सुखदेव मिश्र, सबलसिंह चौहान, कालिदास त्रिवेदी, आलम और शेख, लाल, गुरुगोबिन्दसिंह, घनआनन्द, देव, श्रीपति, बृन्द, बैताल, उदयनाथ (कवीन्द्र), नेवाज, रसलीन, घाघ, दास, रसनिधि, नागरीदास, बनीठनीजी, चरनदास, तोष, रघुनाथ, गुमान मिश्र, दूलह, गिरिधरकविराय, सूदन, सीतल, ब्रजवासीदास, सहजोबाई, दयाबाई, ठाकुर, बोधा, पदमाकर, लल्लूजीलाल,

जयसिंह, रामसहाय, दास, ग्वाल, दीनदयालगिरि, रणधीरसिंह, विश्वनाथसिंह, राय ईश्वरीप्रताप नारायण राय, पजनेस, शिवसिंह सेंगर, रघुराजसिंह, द्विजदेव, रामदयाल नेवटिया, लक्ष्मणसिंह, गिरिधरदास, लछिराम, गोविन्द गिल्लाभाई के जीवनचरित्रों और उनकी चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। प्रारम्भ में हिन्दी का एक हज़ार वर्षों का इतिहास बड़ी खोज से लिखा गया है। अन्त में प्रेम, हास्य, शृङ्गार और नीति के बड़े ही मनोरञ्जक घनाक्षरी, सवैया, कवित्त, दोहे, पहेलियाँ, खेती की कहावतें और अन्योक्तियाँ संगृहीत हैं। यह पुस्तक शिक्षित मनुष्य के हाथ, हृदय और वाणी का शृङ्गार है। बढ़िया काग़ज़, उत्तम छपाई और स्वर्णाक्षरों से अंकित, रंगीन कपड़े की मनोहर जिल्द से सुसज्जित यह पुस्तक सुन्दर हाथों में सर्वथा स्थान पाने योग्य है।

यह पुस्तक कलकत्ता युनिवर्सिटी की एम० ए० कक्षा में और पटना यूनिवर्सिटी की बी० ए० कक्षा में कोर्स है। पंजाब और नागपुर यूनिवर्सिटी ने भी इसे हिन्दी की उच्च परीक्षा में रक्खा है। अब तक इसके चार संस्करण हो चुके हैं। मूल्य ३)

सम्मतियाँ

इस पुस्तक की प्रशंसा बड़े बड़े लब्धप्रतिष्ठ देशी-विदेशी विद्वानों ने की है। सर जार्ज ए० ग्रियर्सन, डाक्टर फर्कुहर, रेवेरेंड के, मिस्टर आर० पी० डिउहर्स्ट ने इस पुस्तक की भूरि-भूरि महिमा गाई है। देशी विद्वानों में से विश्वविदित कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सम्मति यहाँ उद्धृत की जाती है—

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर—

आपनार संकलित "कविता-कौमुदी" ग्रन्थखानि पाठ करिया परितृप्ति लाभ करियाछि। हिन्दी कवितार ए रूप सुन्दर एवं धारावाहिक संग्रह आमि आर कोथाओ देखा नाई। आपनी एइ कवितागुलि प्रकाश करिया भारतीय साहित्यानुरागी व्यक्तिमात्र केइ चिरकृतज्ञता पाशे आबद्ध करियाछेन।

कविता-कौमुदी

दूसरा भाग—हिन्दी

इसमें नीचे लिखे कवियों की जीवनियाँ और उनकी चुनी हुई कविताओं का संग्रह है—

हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, विनायक राव, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, लाला सीताराम, नाथूराम शंकर शर्मा, जगन्नाथप्रसाद "भानु", श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, शिवसम्पत्ति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, विजयानन्द त्रिपाठी, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास रत्नाकर, राय देवीप्रसाद "पूर्ण," कन्हैयालाल पोद्दार, सैयद अमीर अली "मीर," जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, मिश्रबन्धु, रघुनाथसिंह, गिरिधर शर्मा, रामदास गौड़, माधव शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही," रूपनारायण पांडेय, रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायण, मन्नन द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पांडेय, लक्ष्मीधर वाजपेयी, शिवाधर पांडेय, जयशङ्करप्रसाद, गोपालशरणसिंह, बदरीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, मुकुटधर, वियोगी हरि, गोविन्ददास।

अंत में "कौमुदी-कुञ्ज" नाम से फुटकर कविताओं का बड़ा अनूठा संग्रह है। बढ़िया सफ़ेद चिकना काग़ज़, अच्छी छपाई, कपड़े की सुन्दर और मजबूत जिल्द और दाम सिर्फ़ तीन रुपये।

कविता-कौमुदी

तीसरा भाग—संस्कृत

इसमें निम्नलिखित संस्कृत-कवियों की जीवनियाँ और उनकी चमत्कारपूर्ण कविताएँ संगृहीत हैं:—

अकालजलद, अप्पय दीक्षित, अमरुक, अमितगति, अश्वघोष,

आनन्दवर्धन, कल्हण, कालिदास, कुमारदास, कृष्ण मिश्र, क्षेमेन्द्र, गोवर्धनाचार्य, चन्दक, जगद्धर, जगन्नाथ पंडितराज, जयदेव (१), जयदेव (२), त्रिविक्रम भट्ट, दामोदर गुप्त, दिवाकर, धनञ्जय, पद्मगुप्त, प्रकाशवर्ष, पाणिनि, पाजक, बाण, जल्हण, बिल्हण, भट्टनारायण, भट्टभल्लट, भवभूति, भर्तृहरि, भारवि, भास, भिक्षाटन, भोज, मङ्खक, मयूर, माघ, मुरारि, मोरिका, रत्नाकर, राजशेखर, लीलाशुक, वररुचि, वाल्मीकि, वासुदेव, विकटनितम्बा, विज्जका, विद्यारण्य, व्यासदेव, शिवस्वामी, शीलाभट्टारिका, श्रीहर्ष, सुबन्धु, सोमदेव, हर्षदेव।

प्रारम्भ में संस्कृत-साहित्य का इतिहास है। अन्त में कौमुदी-कुंज में संस्कृत के रस, ऋतु, पहेली, नायिका-भेद, निन्दा प्रशंसा-विषयक मनोहर श्लोकों का बड़ा ललित और आनन्दवर्धक संग्रह है। पुस्तक सुन्दर सजिल्द, छपाई सफ़ाई बढ़िया। दाम तीन रुपया।

कविता-कौमुदी

चौथा भाग—उर्दू

हिन्दी-अक्षरों में उर्दू के वली, आबरू, नाजी, यकरङ्ग, हातिम, आरज़ू, फ़ुग़ाँ, जानजानाँ, सौदा, मीर, दर्द, सोज़, जुरअत, हसन, इन्शा, नासिख़, मसहफ़ी, आतिश, नसीम, ज़ौक़, ग़ालिब, नज़ीर, मोमिन, अनीस, दबीर, अमीर, दाग़, हाली, आसी, अकबर, आदि मशहूर शायरों की, दिल को हुलसानेवाली, तबीयत को फड़कानेवाली, कलेजे में गुदगुदी पैदा करनेवाली, आशिक़-माशूक़ के चोंचलों से चुह-चुहाती हुई, महावरों की मौज में चुलबुलाती हुई, बारीक विचारों की मिठास से दिमाग़ को मस्त करनेवाली, निहायत शोख़; बातों ही से हँसाने और रुलानेवाली उर्दू-ग़ज़लों और तीर की तरह चुभनेवाले शेरों का अनोखा संग्रह है। इसमें उर्दू-भाषा का निहायत दिलचस्प इतिहास भी है।

छपाई-सफ़ाई मनोहर; काग़ज़ बढ़िया; कपड़े की सुवर्णाङ्कित जिल्द; दाम केवल तीन रुपये ।

पथिक

पथिक एक खण्ड-काव्य है। स्वर्णाक्षर-अंकित रङ्गीन कपड़े की जिल्द से सुसज्जित और सादे और रङ्गीन मिलाकर ६ चित्रों से अलंकृत है। छपाई बड़ी ही उत्तम हुई है। दाम १)

नीचे लिखी हुई सम्मतियाँ पढ़कर देखिये, पथिक कैसी पुस्तक है।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजी—

इस पुस्तक का पहला संस्करण एक लाख प्रतियों का होना चाहिये।

पण्डित श्रीधर पाठक—

"पथिक" सर्वांशतः एक सत्काव्य है।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय—

पथिक एक मौलिक काव्य है। इसमें भाव और माधुर्य का मणि-काञ्चन योग है।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त—

इस कालीन सिद्ध कविवर ने पावन पथिक कहानी।
उज्ज्वल गीतों में रच की है कीर्तिमयी निज बानी॥

लाला भगवानदीन, अध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी—

पथिक को सिर से पैर तक देखा। रङ्ग चोखा और ढङ्ग अनोखा है। भाषा नुकीली और वर्णनशैली बड़ी चुटीली है।

पंडित लोचनप्रसाद पांडेय—

पथिक ने दर्शन दिये पवित्र, हुए हम पावन तथा कृतार्थ।
मधुर मोहक उपदेश ललाम, श्रवण कर जाग उठा परमार्थ॥

धन्य कविवर ! तव प्रतिभा दिव्य, धन्य भावुकता भाषा-भक्ति ।
धन्य यह देशोद्धार उपाय, धन्य रामेश्वर-दर्शन-शक्ति ॥

पंडित नाथूराम शङ्कर शर्मा—

शङ्कर पथिक प्रतापी माना, भाव रुचिर रचना का जाना ।
पाय प्रकाश ज्ञान-सविता का, फूला हृदय-पद्म कविता का ॥

पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी—

वर्णन सुन्दर और स्वाभाविक है। कल्पना और रचना बड़ी ही रोचक है।

बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन—

मुझे निश्चय है कि त्रिपाठी जी के इस काव्य को हिन्दी-भाषा में आदरणीय स्थान मिलेगा और हिन्दी के उच्चकोटि के काव्यों में इसकी गणना होगी।

पण्डित कृष्णाकान्त मालवीय—

काव्य में जितने गुण होने चाहियें, वह प्रायः सब "पथिक" में मौजूद हैं।

बाबू गोविन्ददासजी (जबलपुर)—

सुन्दर रचना है और बड़े अच्छे भाव हैं।

बाबू भगवान्दास, एम० ए०, काशी—

खड़ीबोली की कविता की ओर मेरी रुचि पहले कम थी। पर इसको पढ़कर मुझको निश्चय होगया कि खड़ीबोली में भी कविता के सब उत्तम गुण रक्खे जा सकते हैं।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त—

भगवान् करे, यह पुस्तक भविष्य-वाणी की जगह ले।

सेठ जमनालाल बजाज—

प्रत्येक नवयुवक को, जो जीवन का आदर्श बनाना चाहता है, पथिक से बहुत लाभ होना सम्भव है।

कुललक्ष्मी

स्त्रियों के लिये यह बड़े ही काम की पुस्तक है। ऐसी उपयोगी पुस्तक स्त्रियों के लिये अभी तक हिन्दी-भाषा में दूसरी नहीं निकली। इसमें इन विषयों का वर्णन है:—

स्त्रियों के गुण—सौन्दर्य की सृष्टि, लज्जा, नम्रता, गम्भीरता, सरलता, संतोष, श्रमशीलता, स्नेहशीलता, अतिथि-सेवा, देव-सेवा, सेवाशुश्रूषा, सुजनता, कर्तव्यज्ञान, सतीत्व।

स्त्रियों के दोष—आलस्य, विलासिता, स्वेच्छाचारिता, अव्यवस्था, कलह, दूसरे की निन्दा और ईर्ष्या-द्वेष, अभिमान और अहङ्कार, स्वास्थ्य से लापरवाही, हास-परिहास और व्यर्थ वार्तालाप, असहनशीलता, अपव्यय।

पति के प्रति स्त्री का कर्तव्य। सास, ससुर के प्रति बहू का कर्तव्य। अन्यान्य आत्मीयों के प्रति स्त्री का कर्तव्य। जेठ, देवर, जेठानी, देवरानी, और ननद इत्यादि। नौकर नौकरानी आदि।

रोज़ के काम—सवेरे का काम, रसोई, पान बनाना, स्वच्छता और सुव्यवस्था, लिखना, पढ़ना, और दस्तकारी, रोज़ाना हिसाब, सेवा-शुश्रूषा, व्रत उपवास, पढ़ने योग्य पुस्तकें, मितव्ययता।

पौराणिक नीतिकथा—लक्ष्मी और रुक्मिणी का संवाद। सुमना और शांडिली का संवाद। पार्वती का स्त्रीधर्म-वर्णन। द्रौपदी और सत्य-भामा का संवाद।

मिलन

यह एक खंडकाव्य है। पाँच सर्गों में समाप्त हुआ है। पथिक और मिलन दोनों दो सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। साहित्यरसिक लोग इसकी कथा को पथिक से उत्तम बताते हैं। मूल्य चार आना।

हिन्दी-पद्य-रचना

यह हिन्दी का पिंगल है। नौसिख पद्य-रचयिताओं को यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़ लेनी चाहिये। दाम चार आना।

बाल-कथा कहानी, पहला भाग

बच्चे इसकी कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते लोटपोट हो जाते हैं। दाम चार आना।

बाल-कथा कहानी, दूसरा भाग

इसकी कहानियाँ बड़ी रोचक और हँसानेवाली हैं। दाम पाँच आना।

सुभद्रा

यह एक उपन्यास है। एक घंटे का मनोरंजन और जन्म भर के लिये शिक्षा। दाम आठ आना।

आकाश की बातें

इस पुस्तक में आकाश के ग्रह, उपग्रह और तारात्रों का हाल है ≡)

नीति-शिक्षावली

इसमें नीति के १३४ श्लोकों का संग्रह है। हिन्दी में अर्थ भी लिखे

दिये गये हैं। श्लोक सबको कंठस्थ रखने चाहियें। बच्चों को बालकपन से ही इन्हें याद कराते रहना चाहिये। दाम दो आने।

हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास

इस पुस्तक में हिन्दी का एक हज़ार वर्षों का इतिहास बड़ी खोज से लिखा गया है। दाम छः आना।

रहीम

रहीम खानख़ाना की जीवनी और उनकी कुल कविताओं का, जो अब तक मिल सकी हैं, इस पुस्तक में संग्रह है। दाम तीन आने।

प्रेम

बँगला के सुप्रसिद्ध लेखक श्री अश्विनीकुमार दत्त के प्रेम नाम की पुस्तक का सरल और सुन्दर अनुवाद। दाम छः आने।

दम्पति-सुहृद्

इसमें इन विषयों का वर्णन है:—

दम्पत्ति, दाम्पत्य प्रेम, रूपतृष्णा, सुखतृष्णा, संसार और गृहकार्य, सन्तान-पालन, चरित्र-गठन, नानाकथा, विलासिता, दाम्पत्य कलह, क्षमा गुण, अवस्था, मितव्ययिता, दान, भिक्षा, साहाय्य-प्रार्थना, कृतज्ञता, पारिवारिक सम्मान, रहस्य-रक्षा, विविध। पुस्तक सजिल्द है। दाम सवा रुपया।

सद्गुरु-रहस्य

लेखक—कुमार कौशलेन्द्र प्रताप साहि, रायबहादुर

इस पुस्तक को आप एक बार पढ़ डालिये, अपने पुत्र-पुत्रियों को पुरस्कार और मित्रों को उपहार में दीजिये, आप का परम कल्याण होगा!

आप भगवान् के चरणों की उस शीतल छाया में जाकर खड़े होंगे, जहाँ संसार के दुःख-दावानल की आँच नहीं पहुँचती। बीसवीं सदी के घोर नास्तिकता-पूर्ण वातावरण में तो इस पुस्तक का प्रचार घर-घर होना चाहिये। यह अवध के एक राजवंशीय नररत्न भगवद्भक्त के दश वर्षों के गंभीर मनन का फल है। इसमें काल-कर्म, माया और प्रेम तथा ज्ञान-विज्ञान की परीक्षा करके तथा वैज्ञानिक सचाइयों के द्वारा भी भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। विद्वान् लेखक ने भक्त कवियों के मर्मस्पर्शी पदों, दोहों और विविध छंदों से भाषा में ऐसा प्राण डाल दिया है कि पढ़ते-पढ़ते मन लहालोट हो जाता है। हिन्दी में अभी तक ऐसी अच्छी पुस्तक नहीं निकली। यह पुस्तक इंडियन प्रेस में इतनी सुन्दरता से छपाई गई है कि देखकर नेत्रों का जीवन सफल हो जाता है। पुस्तक में आठ चित्र भी हैं। कपड़े की मनोहर जिल्द लगी है। दाम लागत मात्र २॥)। सद्गुरु-रहस्य आपके हृदय-मन्दिर का दीपक, वाणी का अलङ्कार, हाथों का भूषण और अलमारी का शृंगार है।

रामचरित-मानस, सटीक

सस्ता संस्करण

टीकाकार

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी

मूलपाठ बहुत शुद्ध, टीका बहुत सरल, काग़ज़ बढ़िया, दाम अत्यंत सस्ता। अभी केवल अयोध्या कांड छप रहा है। दाम लगभग छः आने।

चिन्तामणि

भजनों का संग्रह। इसको एक प्रति प्रत्येक हिन्दू की जेब में रहनी चाहिये। दाम दो आने।

प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

कविता-कौमुदी—पाँचवाँ भाग
" " छठाँ भाग,
" " सातवाँ भाग,
" " आठवाँ भाग,
" " नवाँ भाग
" " दसवाँ भाग,
" " ग्यारहवाँ भाग
" " बारहवाँ भाग
" " तेरहवाँ भाग
रामचरितमानस—मूल
" " सटीक

अँग्रेज़ी ३)
फ़ारसी ३)
बङ्गला ३)
गुजराती ३)
मराठी ३)
भक्तकवि ३)
स्त्रीकवि ३)
ग्रामीण कविता ३)
हिन्दी-सुभाषित ३)

पुस्तकें मिलने का पता—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग